Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Aur Telugu Upanyason Mein Nari Chetna

A Thesis submitted during 2013 to the university of Hyderabad in Partial fulfillment of the Award of a Ph.D. degree in Department of Hindi, School of Humanities

By

Akella. Sarojini

02HHPH06

सा विद्या या विमुक्तये

2 0 1 3

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
Central University P.O.
Prof.C.R.Rao Road
Gachibowli
Hyderabad
Andhra Pradesh-500 046
INDIA

Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Aur Telugu Upanyason Mein Nari Chetna

By

Akella. Sarojini

02HHPH06

2 0 1 3

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
Central University P.O.
Prof.C.R.Rao Road
Gachibowli
Hyderabad
Andhra Pradesh-500 046
INDIA

CERTIFICATE

This is to certify that that the Thesis entitled '**Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Aur Telugu Upanyason Mein Nari Chetna'** { **'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना'**} Submitted by **A.Sarojini** bearing Regd No. **02HHPH06** in Partial fulfillment of the requirements for the Award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

The Thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Dr. R.S.Sarraju
Supervisor, Professor
Department of Hindi
University of Hyderabad
Hyderabad – 500 046

Counter signed

Head of the Department

Dean of the School

Declaration

I Akella. Sarojini hereby declare that the Thesis entitled '**Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Aur Telugu Upanyason Mein Nari Chetna'** { **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना** } submitted by me under the guidance and Supervision of **Prof. R.S.Sarraju**, Professor, is a bonafide Research Work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any other degree or diploma.

Name: **A.Sarojni**

signature of the student

Regd No. **02HHPH06**

Date: 17.06.2013

---.

आभार

इस शोध-प्रबंध में मैंने नारी चेतना के आलोक में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के बीस हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का तुलनात्मक अनुशीलन किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध मैंने आदरणीय प्रो. आर.एस.सर्राजु के सुयोग्य एवं अनुभवी परामर्शपूर्ण निर्देशन में लिखा है। वस्तुतः यह उन्हीं की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का परिणाम है, औपचारिकता के नाम पर उनका आभार मानकर मैं तो उऋण नहीं हो सकती। इस शोध कार्य के लिए प्राचार्य और हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो वी कृष्णा, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के प्रति मैं आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर उपयोगी सुझाव देकर शोध-कार्य को पूर्ण करने की प्रेरणा दी है।

डॉ. माणिक्याम्बा, डॉ. राजश्री मोरे, डॉ. अर्चना झा तथा अन्य गुरुजनों के प्रति मैं आभारी हूँ। इन विद्वत्जनों ने चर्चाओं के दौरान सुझाव देकर मेरे इस शोध-कार्य की पूर्ति में सहायक बने। मैं उन सभी पुस्तकालयों और ग्रन्थालयों के अध्यक्षों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ, जिनके सहयोग से मैं इस कार्य को पूर्ण कर पाई हूँ। अन्य विभागीय एवं पारिवारिक सदस्यों ने भी इस शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए सदा प्रोत्साहित करते रहे।

मेरे अध्ययन काल में ,मेरे पति सत्यनारायण मूर्ति, मेरी बड़ी बहनें, जीजा जी और भाई सदा प्रोत्साहित करते रहे। मेरी सुपुत्रियाँ और दामादों ने मुझे अपार स्नेह और उत्साह देकर शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरी मदद की। समय-समय पर विषय सामग्री को जुटाने में श्री एस.नरसिंहम और शोध प्रबंध के डी.टी.पी. में श्री दीपक रस्तौगी ने काफी मदद की। उन दोनों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ।

अंत में मेरे गुरुवर श्री सुंदर चैतन्यानंद महाराज जी के प्रति नतमस्तक हूँ, जिनकी कृपा से यह शोध कार्य पूर्ण हो सका ।

विनीत

आ.सरोजनी

This star line should be removed

अनुक्रमणिका

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ सं.
	भूमिका	i - xi
	प्रथम अध्याय	
1.	**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी के जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि**	01
	1.1 अंतिम दशक की नारी का सामाजिक जीवन	02
	1.2 अंतिम दशक की नारी का आर्थिक जीवन	13
	1.3 अंतिम दशक की नारी का राजनीतिक जीवन	28
	1.4 अंतिम दशक की नारी का धार्मिक जीवन	35
	1.5 अंतिम दशक की नारी का सांस्कृतिक जीवन	36
2.	*द्वितीय अध्याय*	
	बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों के कथ्य	48
	2.1 परंपरा बनाम वर्तमान का संघर्ष : 'अपने-अपने कोणार्क'	49
	2.2 नारी मुक्ति चेतना और संगठनात्मक विद्रोह : आवां	55
	2.3 उदारवादी राजनैतिक परिस्थितियों में जनतांत्रिक संबंध और मान-सम्मान की माँग : 'इदन्नमम'	75
	2.4 भारतीय मूल्य और नारी के व्यक्तित्व विकास में परिवार की भूमिका : 'निष्कवच'	86
	2.5 भारतीय रूढ़ियों से टकराहट और अस्तित्व बोध-स्वेच्छा की माँग : 'छिन्नमस्ता'	94
	2.6 वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के नये मानदण्ड-स्वेच्छा प्रतिमान : 'मुझे चाँद चाहिए'	102
	2.7 समाज मनोविज्ञान के आलोक में नारी का स्वाभिमान और सुरक्षा की माँग : 'कठगुलाब'	115

2.8 नारी और पुरुष की संघर्ष गाथा,संतुलित बुद्धि की माँग : 'कलिकथा-वाया बाइपास' 137
2.9 आर्थिक स्वतंत्रता बनाम मानवीय मूल्यों की माँग : 'अपनी सलीबें' 148
2.10 परंपरागत मूल्यों पर नारी का अंत:संघर्ष और अपने अस्तित्व की लड़ाई : 'दिलो-दानिश' 152

तृतीय अध्याय

3. **बीसवी सदी के अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के कथ्य** 176
3.1 पाश्चात्य सभ्यता के मोह में बेटे के द्वारा माँ की उपेक्षा : 'मुझे जाने दो' [**నన్ను వెళ్ళి పోనీరా**] 176
3.2 स्त्री-पुरुष संबंधों के परिवर्तन के विभिन्न नये आयाम : 'फिर से बहार आई' [**మళ్ళీ వచ్చిన వసంతం**] 183
3.3 विवाह व्यवस्था बनाम व्यक्ति की स्वेच्छा का प्रश्न : 'मरीचिका' [**ఏండమావులు**] 195
3.4 नारी स्वेच्छा और बिना विवाह के ही संतान को जन्म देने की समस्या : 'कुंती पुत्रिका' [**కుంతీ పుత్రిక**] 203
3.5 मध्यवर्गीय नारी जीवन की वास्तविकताएँ : 'दिखता हुआ अतीत' [**కనిపించిన గతం**] 209
3.6 नारीवाद के द्वारा नहीं जनतांत्रिक आंदोलनों के द्वारा नारी मुक्ति संभव है : 'जंगल की पुत्री ' [**అడవి పుత్రిక**] 221
3.7 समलैंगिकता और प्रकृति विरुद्ध व्यवहार का विरोध, स्त्री-पुरुष के सहयोग पर बल : 'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' [**ఆకాశంలో విభజన రేఖల్లేవు**] 230
3.8 युवा पीढ़ी का मनोजगत, प्रेम और सेक्स : शादी के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण : 'नज़रिए' [**దృక్కోణాలు**] 244
3.9 पारिवारिक व्यवस्था बनाम विवाह की प्रक्रिया में स्वेच्छा का प्रश्न : 'कुमारी मधुमति' [**కుమారి మధుమతి**] 260
3.10 विवाह के बाद नारी जीवन में बदलाव और पति के साथ समझौते के रास्ते अपनाने की विवशता : 'सहजा' [**సహజ**] 273

चतुर्थ अध्याय

4. **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना**

4.1	**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक चेतना**	292
4.1.1	प्रेम विवाह व्यवस्था : परिवार का संदर्भ	292
4.1.2	समझौतों की अस्वीकार्यता	310
4.1.3	वैवाहिक जीवन की प्रतिद्वंद्विता	317
4.1.4	मातृत्व का नवीन प्रतिमान	323
4.2	**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की आर्थिक चेतना**	329
4.2.1	दोहरी जिम्मेदारी	347
4.2.2	वैचारिक – दैहिक संघर्ष	351
4.2.3	कामकाजी नारी का यांत्रिक जीवन	360
4.2.4	नारी देह अर्थ संपादन का साधन	368
4.3	**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की राजनीतिक चेतना**	375
4.3.1	राजनीतिक नेताओं की भोगविलासी प्रवृत्ति	376
4.3.2	नारी की राजनीति के प्रति जागरूकता	377
4.3.3	महिलाओं का समकालीन राजनीतिक भ्रष्टाचार के प्रति सजगता	379
4.3.4	नारी राजनीतिक अपराधीकरण की शिकार	381
4.3.5	स्वार्थपूर्ण राजनीति की शिकार नारी	384
4.4	**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की धार्मिक चेतना**	390
4.4.1	नारी साम्प्रदायिक भावना की शिकार	390
4.4.2	धार्मिक अंधविश्वासों से प्रभावित	393
4.4.3	धार्मिक असमानता	394
4.4.4	परंपराओं से प्रभावित	400

4.4.5 ईश्वर के प्रति अटूट आस्था 404

4.4.6 परंपरा की दुहाई देते अत्याचारी पुरुष 408

4.5 बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सांस्कृतिक चेतना 413

4.5.1 सांस्कृतिक चेतना के प्रति नवीन दृष्टिकोण 413

4.5.2 सांस्कृतिक रुढ़िगत परंपराओं का विरोध 415

4.5.3 संस्कृति के नाम पर नारी पर पुरुष अत्याचार 418

4.5.4 संस्कृति एक व्यक्तिगत धारणा 419

4.5.5 स्त्री की उदात्त सांस्कृतिक चेतना 424

पंचम अध्याय

5. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन 436

5.1 सामाजिक परिप्रेक्ष्य में 443

5.2 आर्थिक परिप्रेक्ष्य में 450

5.3 राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में 452

5.4 धार्मिक परिप्रेक्ष्य में 463

5.5 सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में 467

ग्रंथानुक्रमणिका

1. आधार ग्रंथ सूची – हिन्दी 476

2. आधार ग्रंथ सूची – तेलुगु 477

3. सहायक ग्रंथ सूची 478

4. संदर्भित पत्र-पत्रिकाएँ 483

भूमिका

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना

भूमिका

उपन्यासकार जब वस्तुपरक दृष्टि से जीवन की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है तब उसका ध्यान उन सामाजिक अंतः संबंधों पर जाता है जिनसे किसी समय का सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने विशेष रूप से उन सामाजिक अंतःसंबंधों पर ध्यान दिया जिनसे भारतीय समाज की संरचना के केन्द्र में उपस्थित स्त्री-पुरुष संबंध के विकास की प्रक्रिया की समीक्षा होने लगी। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। भारतीय समाज के विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय चिंतन में जो मूलभूत परिवर्तन हुए हैं, उसी के कारण उपन्यासकारों की दृष्टि स्त्री-पुरुष संबंधों पर नये सिरे से सोचने की ओर प्रेरित हुई। नैतिकता पर आधारित स्त्री-पुरुष संबंधी अवधारणाएँ धर्मनिरपेक्ष और समानता पर आधारित मानव संबंधों की अवधारणाओं में रूपांतरित हुई तो गहरे स्तर पर उपन्यासकारों की दृष्टि प्रभावित हुई। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की समाज दृष्टि में संपन्न परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक स्थिति से दूसरी स्थिति में संक्रमण की पृष्ठ-भूमि को और उपन्यासकारों के अनुभव जगत के यथार्थ को स्पष्ट करना जरूरी है। इसलिए अंतिम दशक के भारतीय समाज की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

समग्रतः अंतिमदशक कीभारतीयपृष्ठभूमिहिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों के सामने वैविध्यपूर्णचिंतन औरस्थितियों को प्रस्तुत करतीहै। द्रुतगतिसे बदलनेवाली आर्थिकस्थितियाँ, उदारवादीराजनीति, भूमण्डलीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्रमेंनित्यनवीनप्रगति के कारणलेखन कीपृष्ठभूमितेजी से बदलती जारहीहै। इसपृष्ठभूमिमें हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारोंने अपनीसृजन चेतना के बलपरनारी चेतना समग्रतः अंतिम दशक की भारतीय पृष्ठभूमि हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों के सामने

वैविध्यपूर्ण चिंतन और स्थितियों को प्रस्तुत करती है। द्रुतगति से बदलनेवाली आर्थिक स्थितियाँ, उदारवादी राजनीति, भूमण्डलीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित्य नवीन प्रगति के कारण लेखन की पृष्ठभूमि तेजी से बदलती जा रही है। इस पृष्ठभूमि में हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने अपनी सृजन चेतना के बल पर नारी चेतना की बहुआयामी वास्तविकताओं को आत्मसात करने का प्रयास ही नही ंकिया वरन्‌ इन वास्तविकताओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करने का प्रयास भी किया है।

अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासकारों के औपन्यासिक कथ्य अंतिम दशक की भारतीय समाजिक, आर्थिक और राजनैतिक वास्तविकताओं के आधार पर की बहुआयामी वास्तविकताओं को आत्मसात करने का प्रयास ही नहीं कियाव रन् इन वास्तविकताओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करने का प्रयास भी किया है।

अ ग्रामीण भारतीय समाज से लेकर महानगरीय समाज तक समानांतर कई बहुलताओं को लेकर भारतीय समाज बहुआयामी विशेषताओं और जटिल संबंधों को रचनाकारों के सामने प्रस्तुत करता है। यहाँ एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक होती जा रही है वहाँ भारतीय सामाजिक व्यवस्था स्थानीय और जातीय होती जा रही है। राजनैतिक मोर्चे पर जनतंत्र और धर्म निरपेक्षता दिखाई देती है। विभिन्न राजनैतिक समूह अपने-अपने ढंग से राज्य प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। राजनैतिक विचारधाराएँ सत्ता प्राप्त करने के संघर्ष, बौद्धिक स्तर पर तरह-तरह के प्रभाव, आर्थिक जीवन की वास्तविकताएँ सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इस बहुल वास्तविकताओं की स्थिति में भारतीय नारी चेतना का विकास नारी अस्मिता की अभिव्यक्ति को कथ्य का रूप देता है। नारी और पुरुष के संबंधों में दमन और सहमति की अंतः क्रीड़ा कई संदर्भों में भारतीय सामाजिक यथार्थ को अनावृत्त करती है।

ग्रामीण भारतीय समाज से लेकर महानगरीय समाज तक समानांतर कई बहुलताओं को लेकर भारतीय समाज बहुआयामी विशेषताओं और जटिल संबंधों को रचनाकारों के सामने प्रस्तुत करता है। यहाँ एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक होती जा रही है वहाँ भारतीय सामाजिक व्यवस्था स्थानीय और जातीय होती जा रही

है। राजनैतिक मोर्चे पर जनतंत्र और धर्म निरपेक्षता दिखाई देती है। विभिन्न राजनैतिक समूह अपने-अपने ढंग से राज्य प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। राजनैतिक विचारधाराएँ सत्ता प्राप्त करने के संघर्ष, बौद्धिक स्तर पर तरह-तरह के प्रभाव, आर्थिक जीवन की वास्तविकताएँ सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इस बहुल वास्तविकताओं की स्थिति में भारतीय नारी चेतना का विकास नारी अस्मिता की अभिव्यक्ति को कथ्य का रूप देता है। नारी और पुरुष के संबंधों में दमन और सहमति की अंतः क्रीड़ा कई संदर्भों में भारतीय सामाजिक यथार्थ को अनावृत्त करती है। इस बहुल वास्तविकताओं की स्थिति में भारतीय नारी चेतना का विकास नारी अस्मिता की अभिव्यक्ति को कथ्य का रूप देता है। नारी और पुरुष के संबंधों में दमन और सहमति की अंतः क्रीड़ा कई संदर्भों में भारतीय सामाजिक को अनावृत्त करती है।

विशेषकर नारी-जाति पर विभिन्न समाजों में परिव्याप्त पुरुष की अहंवादिता ने स्त्री में आक्रोश और वैमनस्यता को जन्म दिया। समाज में सहजता, उदारता और समता का क्षेत्र खंडित होता गया। परन्तु सामाजिक जीवन में अनाचार, शोषण, दमन, अत्याचार आदिभावनाएँ शेष रह गयीं। नारी शोषण भी इस महत्वपूर्ण क्षुब्ध वातावरण में होता जा रहा है।

अतः नारीवादी सिद्धान्त नवीन युग की नवीन सोच के रूप में उत्पन्न हुआ है। इस सिद्धान्त का आरम्भ सबसे पहले पश्चिमी देशों से हुआ। नारीवाद के विभिन्न आयाममनोविश्लेषणवादी, मार्क्सवादी, उग्रवादी और उदारवादी आदि के रूप देखे जा सकते हैं। इन सभी सिद्धान्तों में विद्रोह की भावना ही प्रबल दिखाई देती है।

साधारणतः नारी की चेतना से हमें किसी देश के एक काल विशेष से संबद्ध स्त्री और पुरुष में अभिव्यक्त परिवर्तनशीलता को समझते हैं। विशेषतया ये केवल स्त्री की जागृति से संदर्भित होती है। यह चेतना जनजीवन में लक्षित तत्कालिक जीवन में उत्पन्न अप्रत्याशित गतिरोध और गतिशीलता से उत्पन्न हो सकती है। एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास मानव जीवन के निकट होने से जीवन को यथार्थता से प्रस्तुत करता है। साधारणतया लोगों को यह कहते सुना जाता है कि –"क्या स्त्री भी

लिख सकती है? क्या इस समाज में स्त्री लेखन जैसी कोई बात भी हो सकती है.....? अतः कहा जा सकता है कि साहित्यकार कोई लिंग विशेष से बंधित नहीं होता। यह कला तो कुछ भाग्यवान जीवों को ईश्वर द्वारा प्रदत्त की गई है।

नारी लेखन आज सामाजिक चेतना का वाहक बन गया है। नारी घर से बाहर आकर खुला आकाश खुली आँखों से देख सकी है और इतना ही नहीं उसने पुरुषों के समान उसे समझा भी है। उसे समझ कर उसने उसमें उड़ान भी भरनी प्रारम्भ कर दी है। नारी में आज इतनी समर्थता आ गयी है कि वह शकुन्तला और उर्मिला को सक्षमता के साथ प्रस्तुत कर सकती है। अब और शोषण उसे पसंद नहीं। स्त्रियों के लिये जो नैतिक मर्यादा अनिवार्य थी वह भारत के विभाजन के पश्चात् एक दम बिखर गयी। सारी संस्कारशील मान्यताएँ एक चुनौती बन कर रह गयी।

तेलुगु और हिन्दी उपन्यासकारों ने नारी की छटपटाहट को विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत किया है। कुछ महिला लेखिकाओं ने सीमा लाँघने का प्रयास भी किया है। अब यह देखने में आ रहा है कि डिग्री हासिल कर महिलाएँ नौकरी या शादी करते ही ‘सब कुछ कर सकने’ का जज्बा लेकर निकल पड़ी हैं। वह अपनी नौकरी को सुरक्षित रखने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार हैं चाहे उनके वैवाहिक जीवन पर गहरा असर क्यों न पड़ता हो। उन्हें अपनी स्वेच्छाचारिता के लिए कोई भी समझौता स्वीकार है।

कुछ महिला उपन्यासकारों ने नारी की वास्तविक पीड़ा को उतारने का सफल प्रयास किया है। समय की माँग के अनुसार बदलाव को समझा और अनुभूत किया है। महिला लेखन एक सीमा में बंधा हुआ दर्शित होता है। उनमें एक प्रकार की निरीहता या फिर परिस्थितियों के प्रति विवशता और समर्पण दिखाई देता है। आज के वातावरण में यह फूँकार अवश्य सुनाई पड़ती है कि –“हे नारी तू आज़ाद है, तू पुरुष की कठपुतली या खिलौना नहीं है।”यह भी सच है कि कार्यानुभूति का अवसर महिलाओं को पुरुष की तुलना में कम ही मिला है।

नवीन युग में नारी में आत्मविश्वास और कुछ कर गुजर जाने की मंशा प्रबल होती दिखाई दे रही है। माँ, पत्नी, बहन, प्रेमिका आदि रूपों से हटकर नारी के

अस्तित्व, निजत्व, उसके मानवीय रूप या एक मानव के नाते उसकी भूमिका को लेकर कहीं कोई बुनियादी अंतर नज़र नहीं आता। इसीलिए कहा जाता है कि विद्रोह व्यक्ति से नहीं, परिस्थितियों से होता है, जिसका डटकर सामना करना और उनमें परिवर्तन ला पाना ही सच्चा विद्रोह है।

भविष्य के नारीवाद में नारी की छवि वही होगी जिसमें अच्छाई और बुराई दोनों का समावेश हो क्योंकि वही छवि व्यावहारिक और विश्वसनीय है। इस तरह कहा जा सकता है कि – नारी द्वारा नारी के शोषण को मिटाए बिना नारी शोषण से मुक्ति असंभव है।

युगीन हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों की यह विशिष्टता रही है कि उन्होंने ऐसे पक्षको प्रस्तुत किये, जो अधिकतर पुरुष उपन्यासकारों से अछूते विषय रहे। ऐसे हिन्दी उपन्यासकारों में,कृष्णा सोबती, राजी सेठ, चंद्रकांता,मृदुला गर्ग,प्रभा खेतान,चित्रा मुद्‌गल,मैत्रेयी पुष्पा,नमिता सिंह, अलका सरावगी,और तेलुगु उपन्यासकारों में के.रामलक्ष्मी,गोविंद राजु सीतादेवी,वोल्गा, डॉ.मुक्तेवी भारती, शारदा अशोकवर्धन,मुदिगोंड़ सुजाता रेड्डी,डी.कामेश्वरी, वनजा, और इंद्रगंटि जानकी बाला आदि उपन्यासकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

"बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना" मेरे शोध का विवेच्य विषय है। इसमें अंतिम दशक के महत्वपूर्ण तेलुगु और हिन्दी उपन्यासों को लिया गया है। इनमें नारी चेतना के विभिन्न स्तरों का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। यह चित्रण परिस्थिति और वातावरण सापेक्ष किया गया है। विगत दो दशकों में नारी की आवाज़ सभी मान्यताओं को चीरती हुई बुलंद हुई है, यहाँ उसके उसी यथार्थवादी स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। विवेच्य उपन्यासकारों ने इसे एक बुनियादी और मूल्यगत चुनौती मानकर अपनी साहित्यिक संरचना को लोकहित की दृष्टि से एक शस्त्र माना है। नारी चेतना युगीन समाज की एक महत्वपूर्ण और आवश्यक माँग है। नारी चेतना केवल नारी के लिए ही नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक

पुरुष पिता, भाई, पति, आदि के लिए भी उपयोगी है। विश्लेषित विषय को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में**"बीसवीं सदी केअंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में** सृजन की **पृष्ठभूमि** के रूप **में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप की** विवेचना की गई है।

आर्थिक रूप से भी नारी ने अपनी योग्यता को प्रदर्शित किया है। जब तक वह आर्थिक स्वतंत्रता नहीं पायेगी तब तक उसका विकास नहीं हो सकता। अतः प्रस्तुत अध्याय में नारी की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है जिसके बल पर विवेच्य उपन्यासों का आर्थिक परिदृश्य निर्मित होता है।

युगीन राजनीतिक समस्याओं ने समाज को निगलना प्रारम्भ कर दिया है। इसकी चपेट में नारी-जाति भी आरही है।आज का आतंकवाद भी राजनीति का आश्रयपाकर बढ़ता जा रहा है।

मनुष्य के जीवन में धर्म और समाज ये दोनों समानांतर चलते हैं। इनका विकास भी साथ-साथ ही होता है। परिवर्तन भी दोनों में एक साथ होता दिखाई देता है। धर्म एक आध्यात्म की वस्तु है। यह अलौकिक आकाश में विचरण करता है। परन्तु मनुष्य यहीं पर इसकी खोज करता है। अतः समाज में रहकर ही मनुष्य को धर्म-मार्ग तय करना होता है। नैतिकता भी धर्म की कसौटी पर ही कसी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्री की कुछ कठिनाइयाँ देखी गयी हैं। इसी आधार पर प्रस्तुत अध्याय में नारी की धार्मिक स्थिति का भी स्वरूप जानने का प्रयास किया गया है। संस्कृति भी समाज और धर्म के आयामों से जुड़ी हुई है। बल्कि कहा जा सकता है कि उसी पर संस्कृति का गठन होता है। संस्कृति किसी भी देश की पहचान होती है। यह मनुष्य को सभ्य बनाती है। अतः कहा जा सकता है कि अच्छी संस्कृति के अभाव में किसी देश का विकास संभव नहीं है। संसार में ऐसी कोई जाति नहीं जिसने संस्कृति की उंगली पकड़ कर चलना न सीखा हो। अतः प्रस्तुत अध्याय में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के स्वरूप की विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

द्वितीय अध्याय में**"बीसवीं सदी केअंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों** में**हिन्दी** के विवेच्य उपन्यासों के**कथ्य"** का विश्लेषण किया गया है। विवेच्य उपन्यासों के कथ्य विभिन्न विषयों को लेकर अग्रसर होते हैं। प्रत्येक उपन्यास में कथ्य का विकास क्रमिकरूप से होता है। कथ्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेशों को लेकर आगे बढ़ता है। युगीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित परिवेशों के साथ न्याय करने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी के 10 उपन्यासों को शोध का विषय बनाया गया है ।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्यों के अध्ययन के बल पर यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत मूल्यों पर नारी का अंत:संघर्ष और नारी के अस्तित्व की लड़ाई अभी भी जारी है (**दिलो-दानिश**)। नारी अपनी आर्थिक स्वतंत्रता एवं जाति वाद के अहं के बल पर नये मानवीय मूल्यों की माँग कर रही है **(अपनी सलीबें**)। बाजारवादी राजनैतिक परिस्थितियों में जनतांत्रिक संबंधों के आलोक में नारी मान-सम्मान की माँग चाहती है (**इदन्नमम**) और उसका वर्तमान संघर्ष प्राचीन जीवन की परंपराओं को तोड़ते हुए नये विकास की ओर संकेत करता है **(अपने-अपने कोणार्क**)। नारी अपने व्यक्तित्व के विकास में भारतीय मूल्यों की समीक्षा करती है और परिवार की नयी भूमिका को रेखांकित करती है (**निष्कवच**)। वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के नये मानदण्ड – स्वेच्छा प्रतिमान की ओर संकेत करता है (**मुझे चाँद चाहिए)।** समय और मनोविज्ञान के आलोक में नारी के स्वाभिमान का नारा और सुरक्षा की माँग अंतिम दशक के उपन्यासों की वास्तविकता है **(कठगुलाब**)। नारी भारतीय रूढ़ियों से टकराती हुई अपने अस्तित्व के लिए स्वेच्छा की माँग करती है (**छिन्नमस्ता**)। इस संघर्ष के दौरान वह संतुलित बुद्धि की माँग भी करती है **(कलि-कथा वाया बाइपास**)। इस प्रक्रिया में नारी मुक्ति चेतना संघठनात्मक विद्रोह का रूप धारण भी कर लेती है **(आवां)।** अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्य भारतीय समाज में विकसित होने वाली नारी चेतना के बहुमुखी आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

तृतीय अध्याय में**"बीसवीं सदी केअंतिम दशक के तेलुगु** के विवेच्य उपन्यासों के **कथ्य** का विश्लेषण किया गया है। उपन्यासों के कथ्य विभिन्न विषयों को इस तरह से प्रस्तुत करते हैं कि ये कथ्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेशों को लेकर आगे बढ़ते हैं। उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित परिवेशों के साथ न्याय करने का सफल प्रयास किया है। अंतिम दशक के भारतीय नारी जीवन के व्यापक पक्षों का प्रौढ़तम चित्रण तेलुगु उपन्यासों में भी हुआ है। कथ्य के अनुरूप विषय वस्तु का गठन और चरित्रों की समन्वित दृष्टि का विकास तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है। अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के सृजन में जब नारी जीवन की नयी प्रेरणाएँ अपना योगदान देने लगी हैं, तब तेलुगु उपन्यासों में नव्यतम रूप में कथ्य उभरने लगे। नारी की समाज मनोवैज्ञानिक स्थिति, नयी स्थितियों में नारी का अंतर्द्वंद्व तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है। प्रस्तुत अध्ययन में तेलुगु के 10 उपन्यासों को शोध का विषय बनाया गया है **।**

पाश्चात्य सभ्यता के मोह में पारिवारिक मूल्यों का विघटन, बेटे के द्वारा माँ की उपेक्षा (**मुझे जाने दो**) परिवार में नारी की उपेक्षा का परिचय देता है। विवाह की प्रक्रिया में पारिवारिक व्यवस्था की भूमिका और स्वेच्छा के प्रश्न को लेकर भी विचार किया गया है **(कुमारी मधुमती)।** विवाह के बाद पति के साथ नारी-जीवन में आने वाला परिवर्तन समझौते के रास्ते को अपनाने की विवशता और उससे उभरने की कोशिश के प्रति भी ध्यान दिया गया है **(सहजा)।** दूसरी ओर विवाह के बिना संतान को जन्म देने की समस्या और नारी स्वेच्छा की चर्चा की गयी है **(कुंती पुत्रिका)**। विवाह व्यवस्था और व्यक्ति स्वेच्छा के प्रश्न पर विचार किया गया है **(मरीचिका)**।नारी के प्रश्नों पर विभिन्न आंदोलनों और वादों के परिप्रेक्ष्य में भी तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है **(जंगल की पुत्री**)। इस संदर्भ में यह वास्तविकता सामने रखी गयी है कि प्रेम, सेक्स और शादी को युवा-पीढ़ी की दृष्टि से विचार किया गया है **(नज़रिए)।** इस तरह स्त्री-पुरुष के संबंधों में परिवर्तन के नये आयाम (**फिर से आई बहार**) और मध्य वर्गीय नारी जीवन की वास्तविकताएँ (**दिखता हुआ**

अतीत) यहाँ तक कि समलैंगिक समस्या और प्रकृति विरुद्ध व्यवहार का विरोध को भी लेकर(**आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं**) तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक चेतना** को लेकर लिखा गया है। विवेच्य कृतियों में नारी की सामाजिक चेतना के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। युगीन सामाजिक परिवेश की अनेक समस्याओं पर सवाल उठाये गये हैं। नारी को इन सामाजिक अत्याचारों की जंजीरों में जकड़ा बताया गया है। परन्तु यह संतोषजनक है कि नारी इस जकड़ से छूटने का प्रयास अवश्य करती जा रही है। चर्चित उपन्यासों में आधुनिक नारी और आधुनिक पुरुष के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। प्रेम की युगीन परिभाषा का नवीन मूल्यांकन इन उपन्यासों की विशेषता है। पुरुष के साथ प्रत्येक क्षेत्र में समझौतों की अनिवार्यता का बहिष्कार और वैवाहिक जीवन में बुद्धिजीवी नारी की प्रतिद्वंद्विता और मातृत्व के नवीन प्रतिमान आश्चर्यजनक रूप में संप्रेषित हैं।

शोध कार्य में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की आर्थिक चेतना** पर मूल्यगत चर्चा की गई है। प्रस्तुत उपन्यासों के माध्यम से युगीन नारी की आर्थिक चेतना की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। नारी की आत्म-निर्भरता उसकी आर्थिक संपन्नता पर ही निर्भर करती है। आर्थिक चेतना ही मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ‘रोटी, कपड़ा और मकान’ की चिंता दूर होने पर ही मनुष्य विकास की दूसरी सीढ़ियाँ चढ़ने की आकांक्षा कर सकता है। अतः स्त्री के लिए भी यह उतनी ही आवश्यक बात है।चर्चित उपन्यासों में स्त्री को इस सत्य को समझते देखा गया है। उसने आर्थिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में अपनी चेतनता को दौड़ाना प्रारम्भ कर दिया है। उसने इस क्षेत्र में कामयाबी भी हासिल की है। स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता पा जाने के कारण निस्संदेह रूप से उसकी जिम्मेदारी दोहरी हो गयी है। उसे अब घर और बाहर दोनों व्यवस्थाओं को संभालना पड़ता है। इन जिम्मेदारियों

को निभाने के लिए उसे दैहिक संघर्ष करना पड़ रहा है। कहीं-कहीं उसे दैहिक शोषण का शिकार होना पड़ रहा है।

शोध कार्य में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की राजनीतिक चेतना** का यथार्थपूर्ण-चित्रण प्रस्तुत किया गया है। राजनीति की अराजकता का परिणाम हमने अंग्रेजों की अधीनता में रहते देखा है। भारत की विकृत राजनीति ने ही अंग्रेजों की शक्ति और साहस को बढ़ावा दिया था। स्वतंत्रता संग्राम के समय में ही नारियों का राजनीति और स्वतंत्रता प्राप्ति में योगदान प्रारम्भ हुआ। आज उत्तर आधुनिक युग में नारी भी राजनीति का एक अहं हिस्सा है। वह राजनीतिक में भी जोर-शोर सेकार्यरत है। इतना ही नहीं आज की नारी राजनीति को अच्छी तरह से समझती भी है। कई ऊँचे-ऊँचे पदों पर वह अपनी प्रभुता से आसीन भी है। अत: उपन्यासकारों ने नारी चेतना के संदर्भ में राजनीतिक चेतना के विभिन्न स्वरूप को अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है। यह क्षेत्र नारी-जाति के लिए एक नवीन अहसास था परन्तु महिलाओं ने दूसरे क्षेत्रों के समान इस पर भी अपनी सक्षमता का हमला बोल दिया है। इस क्षेत्र में भी वह अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर सफलता हासिल करती जा रही है। अत: प्रस्तुत अध्याय में विशिष्ट उपन्यासों के माध्यम से विवेच्य विषय पर प्रकाश डाला गया है।

शोध कार्य में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की धार्मिक चेतना**में नारीकी संस्कृति और संस्कारों के मर्म को छूनेवाली धार्मिकक्षेत्र पर दृष्टिपात किया गया है। धार्मिक क्षेत्र ही है जहाँ से नारी शोषण का आरम्भ होता है। धार्मिक संस्कृति और संस्कार ही हैं, जहाँ पर पुरुषों ने इन पर अत्याचार करने प्रारम्भ किये। धार्मिक अनुष्ठानों के संदर्भ में भी स्त्री की अवहेलना की जाती थी, स्त्रियों को भेद-भाव की नज़रों से देखा जाता था। भगवान के दरबार में भी स्त्रियों को कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ता था। यहाँ पर भी पुरुष समाज का एकाधिकार कायम था। अत: नारी ने इस क्षेत्र से भी विद्रोह की मशाल जलानी प्रारम्भ कर दी। उसने वैदिक समय के अपने अधिकारों का पुन:निर्माण करने का बीड़ा उठा लिया। अत: इतना बड़ा विद्रोह भला इन सक्षम उपन्यासकारों की

चमत्कारिक दृष्टि से कैसे छूट सकता था। अतः साहित्यकारों ने अपनी कलम के माध्यम से इस क्षेत्र में भी अपनी संप्रेषणीयताकी सक्षमता दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ा। धार्मिकता के साथ-साथ सांप्रदायिकता अपने आप चली आती है। इन उपन्यासकारों ने विवेच्य विषय पर भी अपनी अभिव्यक्ति की छाप छोड़ दी। कृतिकारों ने कोमल, भावुक और मार्मिक क्षेत्र में स्त्री की हुँकार और ललकार का सहज वर्णन प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से नारी चेतना या आंदोलन की मुहिम को प्रोत्साहन दिया है। नारी-चेतना की क्रांति में इनका सराहनीय योगदान स्वीकारना समीचीन होगा।

शोध कार्य में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सांस्कृतिक चेतना** का विस्तृत स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। नारी-चेतना के विकास के इस आंदोलन में संस्कृति अहं भूमिका निभाती है। इस मानव समाज की नींव का पत्थर संस्कृति ही तो है। संस्कृति के अभाव में मानव समाज का गठन और विकास संभव नहीं हो सकता। संस्कृति ही है जो किसी देश, प्रदेश, गाँव, जाति, समूह, कबीले, कस्बे आदि की एक अलग पहचान बनाती है। जिस देश की संस्कृति जितनी सुदृढ़ और सुलझी होगी उतना ही वह देश समृद्ध और शक्तिशाली होगा। संस्कृति ही मनुष्य की पहचान है। अतः कहा जा सकता है कि नारी मुक्ति आंदोलन सांस्कृतिक चेतना के बिना संभव नहीं हो सकता। यही कारण है कि उपन्यासकारों ने आंदोलन की प्रमुख नब्ज़ संस्कृति को पकड़ा। युगीन आधुनिकता से प्रभावित होने पर भी उन्होंने प्राचीन संस्कृति को नज़रअंदाज़ करने की कोशिश नहीं की। संस्कृति को ही आधार बनाकर उन लोगों ने नारी की नवीन सांस्कृतिक चेतना की आत्मा को पहचाना और अपनी कलाकृतियों के माध्यम से इसे उजागर भी किया। आधुनिक हिन्दी और तेलुगु के साहित्यकार ही तो हैं जिन्होंने सबसे पहले सांस्कृतिक तौर पर स्त्री-पुरुष की समानता, वेदों में वर्णित बताया और उसका पुनर्गठन किया। नारी ने शिक्षित होकर संस्कृति का अध्ययन किया और अपनी अस्मिता को पहचाना। उसने पुराने रुढ़िवादी तत्वों का घोर विरोध किया, जिसे पुरुषों ने अपनी स्वार्थवृत्ति से तोड़-मरोड़ कर रख दिया था। शिक्षा के अभाव में ऐसा करना संभव नहीं है। विवेच्य

सभी पहलुओं पर विचार विवेच्य कृतियों में सफलता और सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में **बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन** किया गयाहै।इस विवेचना से भारतीय साहित्य में नारी चेतना के विकास का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। भारत में विभिन्न जाति, सम्प्रदाय, धर्म आदि के समान विभिन्न भाषा व संस्कार भी हैं। शोधकार्य से यह बोध होता है कि इन विभिन्नताओं के होने के बावजूद भी हमारी सोच में एकता का एक सुदृढ़ भाव विचरण कर रहा है। किसी एक युग में किसी एक भाषा में, कोई एक साहित्यिक प्रवृत्ति का चलन होता है तो वह अनायास ही दूसरी भाषा में भी दिखाई देती है। अतः कहा जा सकता है कि हमारा भारतीय समाज एक ही संस्कृति से संबंद्ध है। हाँ, इसकी भाषाएँ अनेक अवश्य हैं। इस संदर्भ को प्रस्तुत करने के लिए अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासकारों ने अपने लेखन को माध्यम बनाया है। नारी की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति के यथार्थपूर्ण स्वरूप को उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है। अधिकांशतः इन्हें अवश्यंभावी सफलता प्राप्त हुई है।

प्रथम अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी के जीवन की सामाजिक,आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि

प्रथम अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी के जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में जहाँ नारी का सम्मान एक ओर दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं का यौन शोषण, छेड़-छाड़ की शिकायतें भी दिखाई देती हैं। गरीब औरत के श्रम का शोषण एक ओर है, तो दूसरी ओर समाज और परिवार में नयी औरत की समस्याएँ कुछ भिन्न-सी दिखाई देती हैं। नयी नारी अपनी पारंपरिक जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो पाई है। नये माहौल में नारी में एक तरह का प्रतिरोध दिखाई देता है। अपनी छवि को बचाने और परंपरागत मान्यताओं की कैद से मुक्त होने की छटपटाहट दिखाई देती है। इन सबके बावजूद अधिकाँश महिलाएँ घर के काम में व्यस्त रहने वाली गृहिणी ही बनकर रह जाती हैं। अधिक जागरूक, अपने पैरों पर खड़ी होने वाली, अपनी बात मजबूती से कहने वाली नारी परिवार के नये केन्द्र के रूप में प्रस्तुत होती है। इन परिस्थितियों में नारीवाद की परिकल्पना उभरती है। समता का विचार आधुनिकीकरण, उद्योगीकरण, संपत्ति संबंधी पुनर्व्याख्याएँ राज्य संस्था की भूमिका आदि कारकों ने नारी को मुक्तकामी बना दिया। पितृ सत्ता के स्रोत, परंपरा, धर्म, रीति-रिवाज़ों का विरोध हुआ और परिवारेतर यौन संबंधों की स्वतंत्रता का आवाह्न भी किया गया था।

नारीवादी आंदोलन ने भारतीय समाज में महिला-मुक्ति की योजनाओं के बल पर सामाजिक विकास करने की कोशिश की थी। इस पृष्ठभूमि में हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का जो सृजन अंतिम दशक में हुआ है, उनमें नारी चेतना के विकास की नयी दिशाओं का संकेत मिलता है।

उपन्यासकार जब वस्तुपरक दृष्टि से जीवन की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है तब उसका ध्यान उन सामाजिक अंत: संबंधों पर जाता है जिनसे किसी समय का सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने विशेष रूप से उन सामाजिक अंत:संबंधों पर ध्यान दिया जिनसे भारतीय समाज की संरचना के केन्द्र में उपस्थित स्त्री-पुरुष संबंध के विकास की प्रक्रिया की समीक्षा होने लगी। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। भारतीय समाज के विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय चिंतन में जो मूलभूत परिवर्तन हुए हैं उसी के कारण उपन्यासकारों की दृष्टि स्त्री-पुरुष संबंधों पर नये सिरे से सोचने की ओर प्रेरित हुई। नैतिकता पर आधारित स्त्री-पुरुष संबंधी अवधारणाएँ धर्मनिरपेक्ष और समानता पर आधारित मानव संबंधों की अवधारणाओं में रूपांतरित हुई तो गहरे स्तर पर उपन्यासकारों की दृष्टि प्रभावित हुई। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की समाज दृष्टि में संपन्न परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक स्थिति से दूसरी स्थिति में संक्रमण की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उपन्यासकारों के अनुभव जगत के यथार्थ को स्पष्ट करना जरूरी है। इसलिए अंतिम दशक के भारतीय समाज की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है और भारतीय समाज के अंतिम दशक में संपन्न परिवर्तनों का रेखांकन करते हुए भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का परिचय देते हुए यह जरूरी हो जाता है कि उपन्यासकारों के उपन्यास सृजन की पृष्ठभूमि की समीक्षा की जाए।

1.1 अंतिम दशक की नारी का सामाजिक जीवन

मनुष्य नैसर्गिक रूप से परिवर्तन चाहने वाला प्राणी है। जैसे-जैसे वह जीवन-पथ पर अग्रसर होता जाता है, और उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं वैसे-वैसे परिवर्तन की दिशा भी बदलने लगती है।

यही कारण है कि समाज भी इस बदलने की प्रक्रिया से अछूता नहीं है। प्राचीन मनुष्य ने अपनी विकास-यात्रा विभिन्न सोपानों से होकर तय की है। समाज में रहने वाले मनुष्यों को आदिम, ग्रामीण, शहरी, असभ्य, सभ्य, अशिक्षित, शिक्षित आदि वर्गों

में बाँट कर सामूहिक रूप में उनके अस्तित्व को पहचान सकते हैं। लगातार ये समूह परिवर्तन के मार्ग पर चलते आ रहे हैं। ये परिवर्तन हमारे सामाजिक मूल्यों, आचार-व्यवहार, परंपराओं, संस्कृति, सामाजिक संबंधों, आदर्शों व मानदण्डों को प्रभावित करते रहते हैं। इस प्रकार समाज का गठन अवश्यम्भावी रूप से बदलने लगता है। इसी परिवर्तन के कारण ही मनुष्य का उत्थान-पतन, सफलता, असफलता, विकास-ठहराव, स्थिरता-अस्थिरता की दिशा निर्धारित होती है। इस परिवर्तन के आधार पर ही सामाजिक मनुष्य या समाज का इतिहास गठित होता है।

परिवर्तन को चाहने वाली मनुष्य की प्रकृति समाज को प्रभावित करती है।

सामाजिक परिवर्तन का अभिप्राय किसी भी जन समुदाय के जीवन-प्रतिमानों में होने वाला रूपांतर होता है।

सामाजिक परिवर्तन उन रूपांतरों से स्पष्ट होता है जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना और प्रकार्यों में घटित होते हैं।

मैकाइवर और पेज के अनुसार – "समाजशास्त्री की दृष्टि से प्रत्यक्षतः हमारी रुचि सामाजिक संबंधों से है। अतः इन सामाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। इनकी निर्माण व्यवस्था-रीतियाँ, कार्य-प्रणालियाँ, अधिकार, पारस्परिक सहयोग, विविध समूहों, नियंत्रण साधना पर निर्भर करती है।"[1]

प्रत्येक समय में यह परिवर्तन की प्रक्रिया स्वाभाविक एवं आवश्यक हो जाती है। इन्हीं बदलावों के कारण मनुष्य के जीवन के मापदण्डों का, उसके जीवन मूल्यों का विकास संभव है। समकालीन समाज में यह विकास इतनी तेजी से हो रहा है कि पलक झपकना कठिन हो जाता है। पलक झपकने के समय मात्र में ही सब कुछ बदला हुआ देखा जाता है। इससे पहले किसी भी युग में इतना तीव्र परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। प्राचीन समय से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होने लगे थे, और आधुनिक वैश्विक युग ने अपना एक नवीन परिचय दुनिया को देना आरम्भ कर दिया। युगीन वैज्ञानिक बुद्धिजीवी व्यक्ति समाज के ढाँचे को नवीन दृष्टि से परखने लगा।

मनुष्य के आपसी संबंध, नवीन जीवन के नवीन प्रतिमान, आधुनिक रहन-सहन, नवीन विचार सब कुछ बदलने लगे। ऐसा लगने लगा कि प्राचीन समाज का पूरे का पूरा ढाँचा ही बदल गया। इस प्रकार समाज में जीवन-मूल्यों को तोड़ा जाने लगा। फलतः जीवन मूल्यों में बिखराव आने लगा। उत्तरशती के पश्चात् तो यह परिवर्तन घोर करवट लेने लगा। इस प्रकार संपूर्ण समाज विघटन के चंगुल में फँसता चला गया। इस घुटन, आक्रोश, बेरोजगारी आदि की समस्या ने अपना भयानक रूप दिखलाना प्रारंभ किया। एक दूसरे के प्रति द्वेष की भावना ने समाज का नाश करने लगा। जनता आध्यात्मिकता को छोड़कर भौतिकता की ओर उन्मुख हुई। अब उन लोगों में व्यक्तिवादिता, स्वार्थपरता, प्राचीन और नवीन संस्कारों का टकराव, प्राचीन नैतिकता, पलायन,नये नैतिक मूल्यांकन, होड़, प्रतिस्पर्धा, अहं आदि की भावना पनपने लगी। इस युग में मार्क्सवाद का प्रभाव भी काफी मात्रा में दिखाई देता है। इस प्रवृत्ति ने धर्म और भगवान के प्रति उदासीनता लाने का काम किया, जो इस युग की यह सबसे बड़ी कठिनाई थी। समाज में व्याप्त असमानता, ऊँच-नीच भेदभाव आदि दुराग्रहों ने नौजवान पीढ़ी को आक्रोश से भर दिया।

वर्तमान युग के लोग सामाजिक संबंधों से विमुख होकर स्वकेन्द्रित होते गये। सामाजिक संबंधों से भी यह द्वेष की भावना पनपने लगी। उनमें अपनेपन की भावना समाप्त होती गई। आज के इस भौतिक जीवन ने उन्हें एक दूसरे से अजनबी बना दिया है।

अंतिम दशक में नारी जीवन

आज नारी बुद्धिजीवी होने के कारण जागृत होने का प्रयास कर रही है। शिक्षा प्राप्ति के लिए वह अपनी चार दीवारी से बाहर निकलकर जीवन और समाज को स्वतंत्र दृष्टि से देख रही है। उसकी यही शिक्षा ने उसे सार्वजनिक कार्यों की ओर भी जागृत होने का संदेश दिया है। परन्तु एक राजनीतिक क्षेत्र ही ऐसा है जहाँ वह थोड़ी बहुत उदासीन दिखाई देती है। वर्तमान समय में भी ऐसी कई स्त्रियाँ हैं जो अपना प्राचीन धर्म और आस्था को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। दूसरी ओर आधुनिक विचारधारा ने भी बराबर उनको प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया है। आज वह नये

दौर के प्रभाव से अपना रहन-सहन, खान-पान, सोच-विचार आदि पर अमल करना चाहती है। आधुनिक युग ने स्त्री की नैतिकता को भी काफी प्रभावित किया है। आज की युवती समाज के बंधनों को मानने से इनकार कर रही है।

युगीन समाज के जो विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन देखे जाते हैं उसमें स्त्री किसी भी रूप में पीछे नहीं है। स्त्री का स्वावलंबी होने के लिए नौकरी करना, अपनी पहचान बनाने के लिए राजनीति में भी सक्रिय होना, पुरुषों के समाज में बराबर हिस्सेदारी की आशा रखना, दांपत्य जीवन में समानाधिकार पाने की कोशिश करना आदि समाज के परिवर्तन की दर और अधिक बढ़ा देता है। नारी का एकनिष्ठ प्रेम अब प्रेम और विवाह इन दो रूपों में बदल गया है। स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मानसिक विचार और आचरण में विघटन की ओर झुकाव दिखाई दे रहा है। पति की कामुकता ने पत्नी को विद्रोह करने पर मजबूर कर दिया है। इस कामुकता के लिए स्त्री की निर्भरता ही कारण थी, जिसका लाभ पुरुष सदियों से उठाता चला आ रहा है। जागरूक स्त्री, पुरुष वर्ग के इस निरंकुश व्यवहार के कारण क्रोधित हो जाती है।

सदियों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था सामाजिक एवं गतिशील व्यवस्था है जो अपनी जाति के लोगों पर खान-पान, रहन-सहन, व्यवसाय एवं विवाह आदि कई विषयों पर प्रतिबंधों को बड़ी कठोरतापूर्वक अमल करती हैं। जाति की सदस्यता जन्म पर निर्भर है। हर जाति की अलग ढंग से अपने नियम एवं कानून की निश्चित व्यवस्था होती है।

डॉ.ए.आर.देसाई के अनुसार –"जब जाति के कार्य स्थिति, मिलने वाली सुविधाओं और असुविधाओं का निर्धारण करती है। ग्रामीण क्षेत्र का जातीय विभेद आज भी सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिमानों, गृह-निवास आदि के प्रतिमानों का निर्धारण करता है। जाति ने विभिन्न समूहों के मानसिक दृष्टिकोण को विकसित कर सामाजिक दूरी के उच्च एवं निम्न संबंधों द्वारा विभिन्न स्तरों को वर्गीकृत किया है। समस्त जातीय संरचना पिरामिड के सदृश है। जिसका आधार अस्पृश्य और शिखर

अभिजात वर्ग है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में जाति प्रथा सामाजिक संरचना का मूलाधार है और ग्रामीण जीवन में आज भी जाति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।"[2]

पुरुषों के विभिन्न अत्याचार आज की नारी की बड़ी समस्याओं में से हैं। आधुनिक महत्वाकांक्षी स्त्री इन सब का विरोध कर रही है। कभी-कभी स्त्री की विलासिता भी पारिवारिक जीवन में कलह उत्पन्न कर रही है। दांपत्य जीवन टूटने के मार्ग पर चला जाता है। नारी जीवन में आज की युगीन समस्या तलाक भी एक अहम् भूमिका निभा रहा है। नारी की अहंनिष्ठ भावना दांपत्य जीवन की सामंजस्यता को तोड़ने में काफी हद तक जिम्मेदार है। दांपत्य कलह का यह प्रभाव बच्चों के मन पर पड़ रहा है। संतान अपनी मनोवैज्ञानिक सोच को सुदृढ़ नहीं बना पा रही हैं। उनकी मानसिकता कमजोर होती जा रही है। प्राचीन समाज की कुछ मान्यताएँ दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह और नवीन समाज की मान्यताएँ, प्रेम विवाह, अवैध संतान, विवाह के बंधन से स्वतंत्र और एकाकी नारी आदि नारी जाति में असंतोष और कुंठा उत्पन्न कर रहीं हैं। अंतिम दशक के साहित्य में स्त्री की जो समस्याएँ दिखाई देती हैं उनको सुधारने के कार्यक्रम भी दिखाई देते हैं। गाँवों में महिला मंडली, महिला आयोग, स्त्री शिक्षा, आँगनवाड़ी, महिला समाज आदि संस्थाओं की स्थापना के बल पर नारी जीवन को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। इस तरह के कार्यक्रम न केवल स्त्री के लिए बल्कि समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

आज नारी समस्या उसकी निजी न होकर एक सम्पूर्ण देश की समस्या बन गई है। जब तक समाज के दोनों नींवधारी जीवों अर्थात् स्त्री-पुरुष का विकास नहीं होगा तब तक समाज या राष्ट्र का भी विकास नहीं हो सकता है। इस प्रकार से यह राष्ट्र को शक्तिशाली बनने में बाधा उत्पन्न करती रहेगी। समाज में आज प्रत्येक क्षेत्र में अर्थात् शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, समाज, साहित्य, आदि सभी क्षेत्र में उसे स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार मिलने चाहिए। ऐसा होने पर ही समाज के संपूर्ण विकास के सपने देखे जा सकते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय सरकार द्वारा भारत में शिक्षा के क्षेत्रों में सुधार लाने के लिए नियुक्त 'राष्ट्रीय आयोग' ने नारी शिक्षा के प्रावधान के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत किये थे - बालक-बालिकाओं को एक साथ प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जायेगी, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए अलग-अलग शिक्षा संस्थाओं का निर्माण होगा, अनेक महाविद्यालयों का भी निर्माण किया जायेगा, आदि। विशेष रूप से महिलाओं के लिए विद्यालयों में नर्सिंग, गृह विज्ञान, समाज विज्ञान, व्यवसाय, आदि पर शिक्षा का प्रबन्ध किया जायेगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी शिक्षाएँ रोज़गार को प्राथमिकता प्रदान करेंगी। ग्रामीण बालिकाओं को प्रोत्साहन देने के लिए पाठ्य-पुस्तकें, लेखन सामग्री, स्कूल यूनिफार्म, भोजन और दूध-बिस्कुट की व्यवस्था आदि निःशुल्क रूप से दिये जाने की व्यवस्था की गई है। इसके साथ-साथ वाहन और छात्रावास का भी प्रयोजन है। इतना ही नहीं छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था का लाभ भी प्रदान किया जा रहा है। अध्ययन, अध्यापन, प्रशिक्षण, शोध संस्थाओं का विकास भी प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। बालिकाओं को गृह कार्यों में बाधा उत्पन्न न हो इसीलिए अंशकालिक शिक्षा व्यवस्था का प्रावधान भी आजकल खूब चल रहा है। महिला अध्यापिकाओं को आर्थिक लाभ देने के लिए और उनके लिए सहूलियत प्रदान करने के लिए ग्रामों में अध्यापिका निवास की भी व्यवस्था की जा रही है।

शिक्षा के प्रति जनमानस में जागृति लाने के लिए गाँवों और कस्बों में विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे हैं। यहाँ पर शिक्षा संबंधी जानकारी का लाभ सभी वर्गों के लोग उठा सकते हैं।

सरकार ने 1983-84 ई. में एक बहुत बड़ा कदम उठाया। स्त्री शिक्षा के संबंध में विभिन्न स्तरों पर दस करोड़ रुपयों की राशि के पुरस्कार वितरण की घोषणा कर दी। इसके लिए ये संस्थाएँ योग्य समझी गईं – महिलाओं-बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा माध्यम, प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र, पंचायतें, जिला संबंधित विभिन्न संस्थायें आदि। इसमें सरकार को यह ध्यान देना होगा कि केवल पुरस्कार घोषित करने से कार्य सम्पन्न होने वाला नहीं है। इसकी सफलता के लिए समय दर समय इन संस्थाओं के कठोर निरीक्षण की भी आवश्यकता है। शिक्षा की प्रगति समितियों के मजबूत गठन, उनकी

क्रमिक कार्य योजना, कार्यकुशलता, समस्यानुसार रिपोर्टों का बनना, योजनाएँ जो सही दिशा बनाये हुए हों आदि सभी पर ध्यान देने से ही सफल हो सकती है। केवल कानून-नियम आदि बनाने मात्र से महिलाओं की तरक्की संभव नहीं हो सकती है।

आज इस शिक्षा प्रणाली के विकास में कुछ बाधायें आ रही हैं, जो इस प्रकार हैं – शिक्षा को केवल समाज तक ही सीमित रखा गया। जबकि शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का विकास करती है। दूसरी बात यह है कि शिक्षा धर्म-निरपेक्षता के आधार पर चल रही है। इससे व्यक्ति या समाज में यह दुराव आ रहा है कि वह तो अमुक धर्म से संबंध रखता है। ऐसी शिक्षा के कारण मानवीय भावनाओं का हनन होने लगा, मनुष्य का मनुष्य मात्र के लिए प्रेम घटने लगा। शिक्षा की यही प्रणाली परिवार संस्थाओं में विलगता लाने की भागीदारी निभा रही है। परिवार में कलह, द्वेष, तनाव, क्रूरता आदि कमजोर विचार पनप रहे हैं। तीसरी समस्या कृषि के क्षेत्र में आयी है। भारत एक कृषि-प्रधान देश है। आज बहुत-सी कृषक महिलाओं को कृषि संबंधी शिक्षा प्राप्त नहीं। ग्रामीण कृषक महिलाओं का बहुत बड़ा भाग इस शिक्षा योजना से वंचित है। इन्हें वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करने का आयोजन करना चाहिए। घरेलु-उद्योग और सामान्य जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। ग्रामों में स्त्रियों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा, पौष्टिक आहार की उपलब्धता, वह भी कम दाम में- आदि सुधारों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता होनी चाहिए। ग्रामीण अंधविश्वास, जादू-टोना, भूत-प्रेत जैसी मान्यताओं पर से इनका ध्यान हटाना चाहिए। शिशुओं और बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कार आदि योजनाएँ लागू करनी चाहिए।

उपर्युक्त परियोजनाएँ लागू करने पर ही देश की महिलाओं विशेष-कर ग्रामीण, पिछड़ी, अशिक्षितों का भला हो सकता है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या सरकार द्वारा दिये गये अथवा दिये जाने वाली सहायता का सही उपयोग हो रहा है?

आज महिलाओं का असंतोष, आक्रोश आदि इस गंभीर सवाल के जवाब है। इनकी सहायताओं का दुरुपयोग किया जा रहा है। ये सुविधाएँ इन बेचारी महिलाओं और बच्चों तक भ्रष्टाचार के कारण पहुँच नहीं पा रही हैं। समाज को स्थिर और

मजबूत बनाने के लिए पुरुषों से अधिक महिलाओं को अधिक ज्ञानी, समझदार और शिक्षित होने की आवश्यकता है क्योंकि देश का भविष्य आने वाली युवा पीढ़ी है। अतः उस युवा पीढ़ी का गठन स्त्रियों द्वारा ही संपन्न होता है। माँ ही पूर्णरूप से अपनी संतान के पालन-पोषण की जिम्मेदारी उठाती है। कहा जा सकता है कि देश की महिलाओं के हाथ में ही देश के भविष्य निर्माण की नींव है।

आज की कितनी ही ऐसी महिलाएँ और लड़कियाँ मिलेंगी जो अपने भविष्य के बारे में शून्य जानकारी रखती हैं। उन्हें स्वयं को नहीं पता कि वे भविष्य में क्या बनना और पाना चाहती हैं। वह केवल इस विचार से परिचित हैं कि आगे चलकर उसे विवाह करना है, घर बैठे दो-चार बच्चों को पालना और घर को किसी भी तरह चलाना है। समाज, देश, विज्ञान, कानून, तरक्की आदि से उसे कोई सरोकार नहीं है।

मनुष्य के चहुमुखी विकास के लिए शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वतंत्रता के पश्चात् जो पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई गई उसमें भी स्त्री शिक्षा पर काफी चर्चा हुई। आज के सभ्य समाज में शिक्षा के बिना कुछ भी संभव नहीं। शिक्षा स्वच्छ मानव जीवन की आत्मा है। शिक्षा मनुष्य को सही जीवन की राह पर अग्रसर करती है। शिक्षा के माध्यम से ही हम आधुनिक विज्ञान और विकास को ग्रहण कर सकते हैं। इसी से हमारी मानसिकता उजागर होगी। ग्रहण करने की उसकी शक्ति दुगुनी होगी। शिक्षा से ही हम सही-गलत की पहचान कर सकते हैं। मनुष्य जाति की विभिन्न प्रकोपों से रक्षा भी शिक्षा के आधार पर ही की जा सकती है। शिक्षा एक सुदृढ़ साधन है जिसके माध्यम से हम एक विशेष समाज का गठन कर सकते हैं और उसका सामंजस्यपूर्ण विकास कर सकते हैं। मनुष्य के भीतरी विद्रूपता को समाप्त कर शिक्षा एक साफ-सुथरा मन प्रदत्त करती है। जब तक समाज के अन्दर की कमजोर सोच को बदलकर शिक्षा के माध्यम से मजबूत नहीं बनाया जा सकता तब तक यूँ ही मानव समाज को काल के अंधकार में लौटते रहना होगा। यह अंधकार नारी जाति पर भी अपना बुरा प्रभाव डालेगा। अतः स्त्री शिक्षा, स्त्री जीवन सुधार करने का भी खूब बोलबाला होने लगा। लगभग सौ वर्षों के प्रयास के बाद भी इस ओर उतनी अधिक

सफलता प्राप्त नहीं हो पायी। इस विचार पर सभी बड़े-बड़े भाषण तो देते हैं परन्तु यथार्थ रूप से पुरुष-प्रधान समाज ऐसा करना नहीं चाहता।

वैदिक समय से ही स्त्री के उद्धार की बात समझी और सोची जाती थी। एक समय ऐसा भी था जब स्त्री घर की स्वामिन हुआ करती थी। परन्तु आज स्थिति ऐसी नहीं है। अतः आधुनिक युग में कई आंदोलन चलाये गये जो स्त्री के विकास के लिए प्रयत्नशील थे-जैसे, तिलक, गोखले, राजा राममोहन राय, सुभाष, मदनमोहन मालवीय, गाँधी आदि। इन महापुरुषों में स्वामी विवेकानंद का नाम बड़े आदर से लिया जा सकता है। आज जो कुछ भी विकासशील स्त्री की अवस्था है वह इन्हीं महापुरुषों की बदौलत प्राप्त हुई।

इसी अज्ञानता के कारण स्त्रियों में हीन-भावना पनपने लगी। वह चाहकर भी आगे नहीं बढ़ सकी। पहले से ही दयनीय स्त्री को दुष्ट पुरुषों के अत्याचार भी सहने पड़े।

आधुनिक युगीन वैश्वीकरण की दुनिया के लिए स्त्री शिक्षा कुछ हद तक कारगर सिद्ध हो रही है। वह इंजीनियर, डॉक्टर, नर्स, समाज सेवी, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक आदि सभी कुछ में सफलता प्राप्त कर रही है परन्तु उसे गृह-शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान नहीं है। वह यह समझ नहीं पा रही है कि घर और बाहर दोनों का सामंजस्य कैसे बिठाएँ। कैसे दोनों का ताल-मेल कराएँ। आखिर देश का भविष्य तो उसके घर में ही बैठा है, उसकी संतान के रूप में। अतः सरकार और समाज को चाहिए कि स्त्री का घर-परिवार और बाह्य संसार इन दोनों क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करके उसकी शिक्षा का प्रावधान करे।

आधुनिक नारी –शिक्षा की समस्याएँ

आधुनिक नारी शिक्षित होने के बावजूद भी सही कदम उठाने में सफल नहीं हो पा रही है। इसका कारण यह है कि सदियों से उसे इतना दबाकर रखा गया, इतनी यातनाएँ दी गई, इतना बेआबरू, ज़लील किया गया, इतना अभिशप्त किया गया की उसे ऊपर उठना एक स्वप्न के समान लग रहा है। वह अभी तक अपनी आँखें ठीक

तरह खोल नहीं पा रही है। इसीलिए समाज और जीवन को ठीक तरह से आँक नहीं पा रही है। यही कारण है कि उसके पैर कभी-कभी लुढ़क रहे हैं। वह भटकाव के मार्ग में निकलती दिखती है।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने लिखा है कि स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। लड़कियों की शिक्षा पर जितना भी जोर दिया जाए उतना ही थोड़ा है। इस शिक्षा आयोग ने स्त्रियों की शिक्षा के निम्नलिखित कारणों पर बल दिया है –

1. स्त्री शिक्षा का हमारा मानवीय संसाधनों के पूर्ण विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है।
2. स्त्री शिक्षा से घरों का सुधार होता है।
3. स्त्रियों की शिक्षा के सर्वाधिक संस्कारमय वर्षों में चरित्र के निर्माण में अपना विशेष स्थान है।
4. घर की चारदीवारी के बाहर स्त्रियों का कार्य आज देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। और आगामी वर्षों में वह और भी बड़ा आकार ग्रहण कर लेगा, जिसका प्रभाव अधिकतर स्त्रियों पर पड़ने लगेगा। भारतीय जीवन को विकसित बनाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को ही विभिन्न प्रकार के कार्यों हेतु शिक्षा की आवश्यकता है। यदि थोड़े से कार्यों को मान्यता दी जाए तो प्रतियोगिता बढ़ जाएगी और विभिन्न प्रकार की योग्यताओं को प्रकट करने का अवसर नहीं मिलेगा और इस प्रकार विभिन्न आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होंगी। एक समाज में विभिन्न प्रकार के पेशे उपलब्ध होंगे। शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य स्त्री-पुरुषों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करना है।

स्वभाव से स्त्री बहुत सरल होती है। उसके जीवन की आवश्यकताएँ बहुत सीमित होती है। उसका सुख भी एक सीमा के दायरे में रहता है। उसकी अधिकार प्राप्ति की बहुत-सी कोशिशें नाकाम हो रही हैं। युगीन समाज में शिक्षित नारी अपने पारिवारिक जीवन के हद तक रह कर संतुष्ट नहीं है। वे आज असमंजसता की स्थिति में खड़ी हैं। एक ओर वह अपनी महत्वाकांक्षा, अपना भविष्य पाने के लिए प्रयत्नशील

है तो दूसरी ओर वह पति, परिवार, बच्चे आदि की ओर से निश्चिंत भी नहीं होना चाहती।

आज मध्यमवर्ग के समाज में लगभग अधिकांश स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। ऐसा करना उनके लिए आर्थिक अनिवार्यता है। यह शिक्षा उनकी सामाजिक अनिवार्यता भी बनती जा रही है। मध्यमवर्गीय पुरुष या संतान अनपढ़ पत्नी या माँ को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं। हर पुरुष यही चाहता है कि उसकी पत्नी उसके दफ्तर के सहयोगी कर्मचारी, उसके मित्रों, परिवार जनों के सामने एक सभ्य शिक्षित नारी के रूप में प्रस्तुत हो। लेकिन वहीं दूसरी ओर वह नारी को इससे आगे बढ़ने देना नहीं चाहता। वह तो उसे अपने हद तक सीमित रखना चाहता है लेकिन शिक्षा ने नारी को पुरुष तक सीमित स्वतंत्रता से आगे बढ़ने की राह दिखा दी है। अब वह अकेले स्वयं के बलबूते पर अपने भविष्य के स्वर्ग को देखना चाहती है और यही चाहत दांपत्य और परिवार में अशांति -कलह का कारण बन रहा है।

एक समय ऐसा भी था कि स्त्री की इस स्वतंत्रता, स्वावलंबन को ऊपर न उठने के लिए बाल-विवाह, पतिव्रता, पवित्रता, आदर्श पत्नी, पति को ईश्वर मानने का विचार, आदि पर जोर दिया जाता था। मुगलों के शासन के समय सती प्रथा की आवश्यकता पड़ी थी, जो स्त्री की आबरू बचाने मात्र के लिए थी, ऐसी प्रथा को भी रूढिगत, अंधविश्वासी प्रथा के रूप में बदल दिया गया। स्त्री को इन सब बातों से प्रभावित होने के लिए धर्म और संस्कृति के नाम पर शिक्षा दी जाती थी।

वर्तमान मानव की मानसिकता बहुत बदल गई है। अतः सरकार और समाज को चाहिए कि वह स्त्री-जाति का उचित विकास करे। उसे सही और गलत की पहचान कराने के लिए ज्ञानी और शिक्षित करे।

आज नारी चाँद पर भी अपनी गरिमा बनाये रखने के लिए सफल हुई है। कल्पना चावला और सुनीता विलियम्स इसके सशक्त उदाहरण हैं। आज पुलिस, सेना जैसे सुरक्षा संबंधी विभागों में भी इन्होंने नारी जाति का नाम रौशन किया है। किरण

बेदी, मेधा पाटेकर जैसी निर्भीक, जागृत, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर स्त्रियाँ जीवंत उदाहरण हैं। आज प्रत्येक स्त्री उन जैसा बनने की अभिलाषा रखती है।

1.2 अंतिम दशक की नारी का आर्थिक जीवन

अर्थ-व्यवस्था किसी भी देश के लिए रीढ़ की हड्डी है। किसी भी समाज या देश की उन्नति एवं विकास उसकी अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर करता है। भारत देश मुख्यतः कृषि प्रधान देश है। उसकी अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार कृषि है। ज्यादातर व्यवसाय कृषि से संबंधित है। प्राचीन काल से भारत देश का आर्थिक ढाँचा कृषि कार्य से जुड़ा हुआ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के नव निर्माण के लिए जो पंचवर्षीय योजनाएँ लागू की गई, लेकिन समाज के जिस वर्ग को इसका लाभ पहुँचना था वह तो नाम मात्र ही रह गया। आज कृषि की प्रधानता के स्थान पर औद्योगीकरण आ गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था उद्योगों पर निर्भर करने लगी है। इस प्रणाली ने समाज में दो नये वर्गों की स्थापना की है – शोषक और शोषित। यह अवश्य देखा गया है कि इस प्रणाली ने भारत की अर्थ-व्यवस्था को कुछ हद तक शक्तिशाली तो बना दिया है। इसने भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिये हैं। इस व्यवस्था ने भौतिकवाद की व्युत्पत्ति की है जिसके कारण मानवता के संबंध कमजोर होने लगे हैं। स्त्री-पुरुष के मधुर संबंधों को आर्थिक तुला पर आंका जा रहा है। उद्योगों के विकास के लिए कारखानों की अत्यंत आवश्यकता होती है। आजादी के बाद भारत में भी कई सहस्रों कारखानों का निर्माण हुआ। इन कारखानों में मजदूर वर्ग के स्त्री-पुरुषों की भरमार होने लगी। भारत के ग्रामीण स्त्री-पुरुष शहरों की ओर पलायन करने लगे। गाँवों में औद्योगीकरण का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में देखा जाने लगा। विशेष रूप से गाँव के देशी खान-पान ने शहरों के आधुनिक खान-पान का स्थान ग्रहण कर लिए।

भारत की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। इस कारण कृषि व्यवसाय से ग्रामीण लोगों की जीविका चलाना मुश्किल होने लगा। जीविका अर्जन के लिये ये लोग कारखानों की तरफ जाने लगे। यहाँ पर अधिक से अधिक लोगों को नौकरियाँ मिलने

लगी। खेती के बजाए कारखानों में काम करना ग्रामीण स्त्री-पुरुष को आसान लगने लगा। औद्योगीकरण के कारण उत्पादन में वृद्धि होने लगी। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था स्थिर होने लगी। इस स्थिरता के कारण वर्तमान स्त्री-पुरुष तथा गरीब लोगों को आर्थिक सुविधा की प्राप्ति होने लगी। ये जीवनोपयोगी सामग्री का जुगाड़ करने लगे और अपने जीवन को आधुनिक और सभ्य बनाने लगे। इसके कारण कृषि में भी कई विकासशील परिवर्तन हुए।

औद्योगीकरण ने एक ओर भारतीय-जीवन को सुविधाजनक बना दिया है। परन्तु दूसरी ओर इस प्रणाली के कारण मानवता को भारी नुकसान हुआ। मनुष्य में सेवा भाव, सहृदयता आदि का लोप होने लगा। अर्थात् नारी और पुरुष भी मशीन के समान भौतिक होने लगा । संतुलित सामाजिक मनोवृत्ति लुप्त होने लगी। आधुनिक जीवन की चमक-दमक ने भारतीय जीवन को कुंठित बना दिया। मानव में विद्रोही भावनाएँ करवट लेने लगी।

आज ऐसे कई स्त्री-पुरुष बेरोजगार हैं जो कई डिग्रियाँ लिये हुए हैं, योग्य हैं। इन बेरोजगारों को आजीविका अर्जन के लिए भी नौकरी नहीं मिलती। ऐसे कितने ही हताश लोग इस समाज में हैं जो औद्योगीकरण के विकास को बद्‌दुआएँ दे रहे हैं। कई ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार हैं जो नक्सलवादी बनने के लिए बाध्य हैं। गाँव के लिए प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति के बाद अपने परिवार का व्यवसाय अपनाने को तैयार नहीं। विदेशी स्तर पर भी शहरों के शिक्षित युवा वर्ग का यही हाल है। युवक किसी भी प्रकार की नौकरी करने के लिए तैयार हैं बजाय घरेलू उद्योग-धंधों के।

बड़े-बड़े कारखानों के खुल जाने से मजदूर संगठनों का विकास अवश्य हुआ है। पूँजीपति भी हार मानने वालों में से नहीं हैं वे एक से एक शोषण के नये मार्ग खोजते जाते हैं। कुल मिलाकर स्त्री-पुरुषों का श्रम शोषण बढ़ता जा रहा है। इससे वर्ग संघर्ष तेजी पकड़ रहा है। अंतिम दशक में कई मजदूर संगठन विभिन्न आंदोलनों द्वारा अपनी स्थिति सुधारना चाहते हैं।

अंतिम दशक में सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित देश में कई उद्योग-धंधे प्रारंभ हो गये। दूसरे देशों की तरह भारत में भी सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित उद्योगों की मात्रा बढ़ने लगी। भारत में भी कई बड़े-बड़े नगर बन रहे हैं जिनमें सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित उद्योगों की तरक्की की कोई सीमा नहीं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और कारखानों की झड़ी लग गयी है।

कम्प्यूटर के कारण एक ओर मानव ने विकास की सीमा पार की तो दूसरी ओर इस संगणक ने भारतीयों को बेरोजगारी के कारागार में धकेल दिया है। देश की आम जनता इससे बहुत प्रभावित हुई। उसकी आय का एक स्रोत बन्द हो गया। देश में धन का असमान वितरण समाज के दोनों वर्गों के बीच की खाई को और गहरा करने लगा।

आधुनिक युग के प्रारम्भ में ही भारत में औद्योगिक विकास की नींव पड़ने लगी थी परन्तु आज समकालीन समय में यह काफी तेजी से अपने पैर पसार रही है। भारत की पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि को मुख्य स्थान प्राप्त था परन्तु अगली योजनाओं में आई.टी.को वह स्थान मिलने लगा। भारत में बड़े पैमाने पर आई.टी. पर उद्योग धंधों का प्रसार होने लगा।

इसके कारण ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर बढ़ने लगी। इससे महानगरों का निर्माण हुआ। प्रतिदिन तीन सौ से पाँच सौ ग्रामीणवासी हैदराबाद, मुम्बई, कलकत्ता, चैन्नई, दिल्ली, बंगलौर आदि शहरों की ओर जाते हुए दिखाई दे रहे हैं । जिस कारण शहरों में जीवन अस्त-व्यस्त होने लगा। महँगाई बढ़ने का भी यह एक प्रमुख कारण है। इससे चक्काजाम की समस्या बेनियंत्रित हो रही है। मकानों के किराए की दर बढ़ रही है। जीवन की जद्दोजहद के कारण असंतोष बढ़ रहा है और विभिन्न अपराध बढ़ते जा रहे हैं। अपराधों के नये-नये कारण और तरीके सामने आ रहे हैं। कुल मिलाकर मनुष्यता हाहाकार कर उठी है। व्यक्ति और समाज की दूरियाँ बढ़ने लगी हैं। व्यक्ति का समाज से नया संबंध स्थापित होने लगा। कम्प्यूटरीकरण और सूचना प्रौद्योगीकरण की यह दुनिया वर्ग, जाति, धर्म, समाज पर आधारित न होकर व्यक्तिगत शक्ति पर स्थापित होने लगी। पूँजीपति तानाशाह बनने लगा। यहीं से

परिवार टूटने की प्रथा भी प्रारम्भ हो गई। भारत की सामाजिक प्रथा की सुदृढ़ नींव संयुक्त परिवार प्रथा थी पर आज यह विशेषकर नगरों में कम ही दिखाई देती है, जिससे व्यक्ति अकेलेपन का शिकार होता जा रहा है। उसे सही-गलत की पहचान कराने वाली पुरानी पीढ़ी का साथ अभीष्ट और अनुकूल नहीं लगता।

औद्योगीकरण और शिक्षा विकास ने शासन तंत्र को मजबूत बना दिया है। इसके विकास के कारण आज प्रत्येक देश राजनीतिक रूप से संपन्न होता जा रहा है। परन्तु शासन व्यवस्था के सही न होने के कारण शिक्षितों की बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। आवश्यक योग्यता प्राप्त करने के बाद भी योग्य व्यक्ति को बिना सिफारिश नौकरी नहीं मिलती। एक पद के लिए कितने ही आवेदन पत्र आते हैं। विशेषकर गाँव के शिक्षित दावेदारों की तो दयनीय अवस्था हो रही है। इसी कारण ये लोग हीनता-ग्रन्थि, कुंठा, द्वेष, निराशा का शिकार होते जा रहे हैं। यही भावनाएँ तत्पश्चात् द्वंद्व, बदला, आक्रोश, द्वेष जैसी कुंठित मानसिकता में बदलती जा रही हैं। नक्सलवाद, आतंकवाद, विद्रोह आदि के संगठन भी दिन-ब-दिन इसी कारण से बढ़ते जा रहे हैं।

आज देश का अधिकाधिक कार्य कम्प्यूटरों और मशीनों से ही होता है और इसी से बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। आज देश के सम्मानजनक व्यवसाय डॉक्टरी और इंजीनियरिंग भी बेरोजगारी के कटघरे में आकर खड़े हो गये हैं। नौकरी के लिए विभिन्न कार्यालयों में लंबी कतारें दिखाई देती हैं। अंतिम दशक के स्त्री-पुरुषों को सरकारी नौकरी मिलना एक स्वप्न के समान हो गया है। ये शिक्षित होने के बावजूद किसी भी स्तर की नौकरी करने के लिए बाध्य हैं। ये नौकरियाँ अधिक श्रम लेकर कम वेतन देती हैं जिससे युवकों की आजीविका खतरे में पड़ जाती है। इस प्रकार ये अपने जीवन से संतुष्ट नहीं। अंतिम दशक के अनेक उपन्यासों में इस समस्या का मार्मिक और यथार्थपूर्ण चित्रण हुआ है। भारत जैसे स्वतंत्र विकासशील देश में बेरोजगारी की समस्या ने अपना जाल-सा फैला दिया है। यह एक भुलभुलैय्या के समान है, जिससे बाहर आने का मार्ग असंभव-सा लगने लगा है।

आर्थिक विघटन का रहन-सहन, खान-पान पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। व्यक्ति और परिवार हीनता का शिकार बन रहे हैं। मनुष्य अपने मस्तिष्क को चिन्तामुक्त नहीं

रख पा रहा है, इससे उसके दिमाग पर बुरी प्रकृतियों का साया मंडरा रहा है। शिक्षित-पीड़ित-व्यक्ति को जीवन बेमतलब लगने लगा। जीवन के आनंद से वह दूर जा रहा है। इन सब कारणों से वह स्वस्थ नहीं रह पा रहा है। हर तीसरा आधुनिक व्यक्ति मधुमेह और ऊँचे-नीचे रक्तचाप का मरीज़ है। दूसरी बिमारियाँ अलग जिसके नये-नये नाम आये दिन सुनने में आते हैं। हमेशा उसे अपनी नौकरी की फिकर रहती है। गैर-सरकारी नौकरी में अस्थिरता हमेशा बनी रहती है। लगातार आज का व्यक्ति अपनी नौकरी के प्रति चिंतित है।

वैश्विक स्तर पर कई व्यापारिक संगठन कार्यरत हैं। इन सगठनों के मुख्य कर्ता-धर्ता पूँजीपति ही होते हैं। अत: ये जो भी फैसले लेते हैं वे सभी स्वयं के हित को ध्यान में रख कर किये जाते हैं। इससे साधारण शिक्षित वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन संगठनों के नये फैसलों से उसे कोई लाभ नहीं होता बल्कि उसकी समस्याएँ और अधिक बढ़ने लगती हैं। संसार के देशों में आयात-निर्यात की भरमार हो रही है। यह व्यवस्था भी एकतरफा है। विकासशील देश विकसित देश से आयात कराता है और विकासशील देश के नागरिकों को काम नहीं मिलता। विकासशील देश अपना उत्पादन यदि स्वयं करने लगे तो यह समस्या कम हो सकती है।

आज ग्लोबलाइजेशन ने सारे संसार पर अपना प्रभाव जमा दिया है। इस वैश्वीकरण के कारण विश्व के सारे देश एक-दूसरे के करीब आ गये हैं। आदान-प्रदान की व्यवस्था सुविधापूर्वक आसानी से होने लगी है। इस नवीन प्रणाली ने विश्व की सीमाओं को संकीर्ण कर दिया है। सभी जल्दी से जल्दी आपस में संपर्क बनाने के लिए सक्षम हैं। कोई एक आविष्कार या समाचार विश्व के किसी भी देश के कोने में होने दीजिए कुछ ही पलों में यह विश्व के कोने-कोने में पहुँच जाता है।

वैश्वीकरण ने दुनिया को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। आज सारा का सारा विश्व एक व्यापार केन्द्र बन गया है। जहाँ दृष्टि दौड़ाएँ - वहाँ विभिन्न प्रकार की व्यापारिक संस्थाएँ दिखाई देंगी। आज के मनुष्य और उसके देशों में विभिन्न प्रकार की भिन्नताएँ दिखाई देती हैं परन्तु वैश्वीकरण ने सभी को जोड़कर रखने का बीड़ा उठा लिया है। इंटरनेट के सशक्त माध्यम से सभी एक दूसरे से आसानी से जुड़ रहे हैं।

ग्लोबलाइजेशन के पहले आर्थिक वितरण लगभग समान रूप से होता था। जो जिसके योग्य है उसे उतना मिल जाता था। मेहनत करने से आर्थिक समृद्धि लगभग समान रूप से हो जाती थी। लगन और योग्यता के आधार पर आर्थिक अर्जन संभव था। अनेक अधिराष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन साथ मिलकर भूमण्डलीकरण का संचालन करते थे। इसकी बागडोर इन्हीं के हाथों में थी।

बाहरी वस्तुएँ जो भारत में आयात होती हैं वे कम दामों में मिलती हैं। वैश्वीकरण के कारण व्यक्ति को उन वस्तुओं की जानकारी आसानी से मिलने लगी और वे अपनी मर्जी से विचार कर उन्हें खरीदते थे। इंटरनेट के माध्यम से घर बैठे-बैठे ये वस्तुएँ मंगाई जा सकती हैं। इस प्रणाली के कारण आज निर्धन, अशिक्षित किसान भी कृषि संबंधी जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकता है। अब कोई व्यक्ति अनपढ़-गँवार नहीं है। वह किसी भी तरह, किसी की भी सहायता से इंटरनेट के माध्यम से, किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकता है। ग्रामीण जनता भी संसार के समाचारों से अवगत है। वस्तुओं की खरीददारी में भी वे पीछे नहीं है। आज उन्हें देशी-विदेशी चीज़ों में फर्क पता है। यही कारण है कि आने वाले समय में स्वदेशी कंपनियों को नुकसान होने की आशंका बनी हुई है। वैश्वीकरण के कारण देश की अर्थव्यवस्था गंभीर हो सकती है। भारत में उत्पादन करने वाले कारखाने आधुनिक समकालीन तकनीक के अभाव में अपना बाजार खो सकते हैं। ऐसी स्थिति में वे चीन, जापान, अमेरिका आदि देशों से मुकाबला नहीं कर सकते। यह आज की बात नहीं है पिछले तीस-चालीस वर्षों से भूमंडलीकरण के स्वरूप की दिशा बदलनी प्रारंभ हो गई। पिछले कुछ वर्षों में इस परिवर्तन की मात्रा बढ़ने लगी है। ब्रिटेन की मुद्रा प्रणाली गिरने लगी क्योंकि अमेरिका डॉलर की स्थिरता बनाये रखने से मुकर गया। सिर्फ डॉलर के साथ ही ऐसा नहीं हुआ बल्कि अन्य बदली हुई मुद्राओं को अपनी विनिमय बाजार की ताकत द्वारा निर्धारित होने के लिए छोड़ दिया। इतना ही नहीं तत्पश्चात् भूमंडलीय पूँजी व्यापार केन्द्र का बीजवपन हुआ। भारत संस्थान, विश्वव्यापार संगठन आदि ने वैश्वीकरण को एक नवीन आकार दिया और उसके नियमित संचालन के लिए कानून-व्यवस्था का निर्माण किया। सूचना प्रौद्योगिकी में हुए बदलाव ने चीज़ों

और अर्थ के बहाव को तेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संचार की लागत में अधिक कमी से इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बहुत प्रोत्साहन मिला।

1989-90 ई. में समाजवादी सोवियत संघ और अन्य इस तरह के देशों के पतन के पश्चात् अमेरिका ही दुनिया का एक ताकतवर देश बन गया। आत्मनिर्भर, प्रभुत्वसंपन्न, गुटनिरपेक्ष, स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के निर्माण की बात अब पीछे रह गयी। अब इन सब सिद्धांतों को कोई महत्व प्राप्त नहीं है। विकासशील देश अमेरिका और उसके सहयोगी देशों का मुँह ताकते रहते हैं। अमेरिका सारे देशों का मार्गदर्शक है। इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज ही नहीं बल्कि पूर्ण रूप से बदल गई है।

वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) का नारी पर प्रभाव

सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् नवउदारवाद को वैचारिक शून्यता को पाटने के लिए प्रेरित किया गया। प्रत्येक क्षेत्र में प्रोत्साहन देने का प्रयास किया। इस प्रकार ऐसे सभी देश आर्थिक स्वतंत्रता का सुख भोग सकें। समाजवादी देशों जैसे सोवियत संघ और पूर्वी यूरोपीय देशों ने प्रौद्योगिक, व्यापार और आर्थिक सहायता देकर निर्धन देशों की सहायता की। सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रम इसी विचारधारा के प्रभाव के कारण उन्नत हुए। इस प्रकार 1989 ई. के पश्चात् ज्यादातर विकासशील देशों ने अमेरिका की ओर रूख कर दिया, इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं था। यहाँ पर इन देशों को विश्वबैंकों और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से दिशा निर्देश प्राप्त होने की संभावना थी।

इस विश्वजनीन घटना के पश्चात् पूँजीवादी देशों के पुराने सपनों के पुनः स्थापित होने की संभावना बढ़ने लगी। ये लोग सारे संसार को व्यापारी केंद्र के रूप में देखना चाहते थे। 'आम राय वाशिंगटन' को बड़े धड़ल्ले के साथ स्थापित किया गया। विकासशील देशों को यह कह कर गुमराह कर दिया गया कि स्वदेशी जमापूँजी की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार विकासशील देशों में विदेशी पूँजी जमा होने लगेगी। विकासशील देश इससे समृद्ध होने लगेंगे। नवउदारवाद एक शक्तिसंपन्न मत बन गया। यह विकासशील देशों का अग्रणी बन गया। ये राजकीय हस्तक्षेप और

विनियमन के बदले प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा देगा। इससे राज्यों का दबदबा नहीं बढ़ सकता। इस परियोजना के कारण प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी और कार्यकुशलता में दक्षता आयेगी। उत्पादन में भी बहुत वृद्धि होगी।

तत्पश्चात् किसी प्रकार का उन्नतिशील परिवर्तन नहीं हुआ। भारत इसका जीवन्त उदाहरण है। ज्यादा से ज्यादा देशी-विदेशी निवेश दक्षिण और पश्चिम भारत के राज्यों में जा रहा है। इसके कारण क्षेत्रीय संतुलन बिगड़ रहा है। इससे भारत की अखंडता खतरे में पड़ सकती है। कम्पनी उपक्रम अधिग्रहण के कारण बाज़ार पर एकाधिकार कायम होने लगे। इसी कारण समाज में असमानता बढ़ती जा रही है।

आज निजीकरण बहुत चर्चा में है। इसके कारण पूँजीपतियों की निरंकुशता को बढ़ावा मिलता है। श्रम-साध्य जनता पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। ऐसी व्यवस्था में राज्य मजबूर हो जाते हैं अतः श्रमिक वर्ग के पास कोई आसरा नहीं रहता। ऐसी स्थिति में समाज विद्रोही तत्व जन्म लेते हैं। युवक-युवतियों को योग्यतानुसार अर्थव्यवस्था में समान रूप से भागीदार बनना पड़ रहा है। अतः स्त्रियों को दुहरा भार उठाना पड़ेगा। नारी समाज पर इसका काफी प्रभाव देखा जाता रहा है। सन् 1990 से रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। आर्थिक समृद्धि भी घटने लगी है। पूँजीवादी, माफिया लोगों का बोलबाला बढ़ने लगा। मंडल आयोग नपुंसक होने लगे। उनकी सिफारिशें बेकार जाने लगी। 'गरीबी हटाओं' के नारे शांत हो गये। दिन-ब-दिन घरेलू उद्योग धंधे विलुप्त होते जा रहे हैं। कई सरकारी कारखाने बंद हो चुके हैं। इन सबके ऊपर भ्रष्टाचार सिर चढ़ कर बोल रहा है। ऊँची शिक्षा आम जनता के लिए कठिन होने लगी है। स्वास्थ्य सेवाएँ भी उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। शिक्षा कार्यकारी सिद्ध नहीं होती। नवीन तकनीकी शिक्षा प्रणाली इतनी मँहगी है कि आम जनता उसका खर्च नहीं उठा पाती। इस विषय के अनेक शोधकर्ताओं ने यह सत्य सामने लाया कि जो समाज में जितना ऊँचा उठेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा।

वाशिंगटन में वेड ने नवउदारवार का खंडन किया है। वेड ने सबसे पहले इस प्रणाली पर प्रश्न उठाया। उन्होंने उसके दुष्परिणामों पर ध्यान आकर्षित किया। नोबेल पुरस्कार प्राप्त जोसेफ स्टिग्लिट्ज भी इस धारणा को नहीं मानते कि नवउदारवादी

व्यवस्था के कारण मानव समाज का विकास उन्नत होगा। इसके लिए उन्होंने चीन का शाश्वत उदाहरण दिया है। चीन ने नव उदारवाद को अपनाए बिना ही इतनी तरक्की पायी है। उसने निजीकरण को भी नहीं अपनाया। पूर्वी एशिया ने भी अपनी आर्थिक समृद्धि इसके बिना ही हासिल की। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि इससे समृद्धि की बात तो दूर बल्कि इससे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था जोखिम में पड़ जायेगी। हमेशा पूँजी की प्रवाहता पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए।

वाशिंगटन आम राय श्रम के लचीलेपन और उसकी गतिशीलता पर ध्यान देती है। मजदूरों को लेना और निकालने की क्रिया वह अपने ही हाथों में रखना चाहती है। वह इसमें सरकार की दखलअंदाजी पसंद नहीं करती। वे अपनी सुविधानुसार काम करने का ढंग बदल सकती है। ऐसी व्यवस्था में श्रम को मशीन के कोई एक पूर्जे के समान माना जा रहा है। मजदूर और मशीन के पूर्जे के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। इससे बाजार में कुशलतापूर्वक पक्का काम होगा। इससे श्रमिकों की भलाई होगी। लैटिन अमेरिका के बाजार के अनुभव नवउदारवाद के सिद्धांतों से विपरीत है। ये व्यवस्था बरसों से अपने आप को समर्पित कर किये जाने वाले कार्य को नकारना चाहती है। वह श्रमिकों को कानूनी सुरक्षा एवं संरक्षण नहीं देना चाहती। कई ऊँच-नीच का कारण बताकर उनकी श्रम आय को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इन जागृत कदमों को अपनी शर्तों में बाँधकर विकासशील देशों पर थोपने में लगे हैं। मजदूरों को दैनिक वेतन पर या ठेके पर रखकर उनके सेवानिवृत्ति लाभ पर अंकुश लगाना चाह रहे हैं। स्थायी मजदूरी की नियुक्ति नहीं की जा रही है। सरकारी विभागों में भी स्थायी श्रमिकों की संख्या कम कर दी जा रही है। भविष्य निधि योजनाओं में भी कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाली आय में कटौती की जा रही है। कई पेंशन की निधियों को खारिज किया जा रहा है। स्वास्थ्य केन्द्रों, शिक्षा संस्थानों, हवाई अड्डों, डाक संस्थानों आदि का निजीकरण हो रहा है। इसका यह अर्थ हुआ कि अब सरकार रोज़गार उपलब्ध करने के लिए उत्तरदायी नहीं रहेगी। अब तक भूमण्डलीकरण को पूँजी तक ही सीमित माना जाता है। इसका विकल्प हमें ठीक तरह नहीं मालूम है। विकल्प की अस्पष्टता

के कारण ही हम समझने में असमर्थ हैं। इससे हम डर रहे हैं कि इससे बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं।

अब आर्थिक शक्ति का केन्द्र बन गया है–विश्व बैंक। पूँजीवाद हमेशा अन्तर्राष्ट्रीयता चाहता है। अतः भूण्डलीकरण का अर्थ हुआ पूँजीवाद का भूमण्डलीकरण लेकिन यह प्रणाली केवल पूँजी के आधार पर नहीं चल सकती अर्थात् यहाँ पूँजी का भूमंडलीकरण होना आवश्यक है। इसी प्रकार श्रम के साथ-साथ समाजवाद का भूमण्डलीकरण भी आवश्यक है। पूँजी और समाजवाद के अन्तर्विरोध के तेज़ होने के कारण पूँजीवाद समाजवादी विश्व-व्यवस्था में परिवर्तित हो सकता है, कारण की आज का पूँजीवाद पूँजी का भूमण्डलीकरण का आसक्त तो है पर श्रम के मामले में वह ऐसा नहीं चाहता। परन्तु इस प्रकार की प्रक्रिया चल रही है। समाज के लिए एक नया मार्ग खोजा जा रहा है।

समाजवाद को एक देश तक सीमित कर देने की प्रक्रिया अब प्राचीन हो चली है। आज संसार में अधिक से अधिक लोग समाजवाद की परिकल्पना रूस-चीन जैसी क्रांति के माध्यम से नहीं करते। वे एक देश में स्थापित होने वाली सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करके उसे वैश्विक व्यवस्था के रूप में करना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि इसमें समाजवाद के नाम पर की गई गलतियाँ दोहराई जायें। उसमें मानवीय जनतांत्रिक व्यवस्था कायम हो। समकालीन समय में जन वैश्विक पूँजी के विरुद्ध श्रम के संघर्ष को महत्व देने के लिए कार्यरत है।

अधिक से अधिक स्वचालित मशीनों का निर्माण, निजीकरण की तरफ उठ रहा है। इससे वे श्रमिकों के संगठित क्षेत्र को असंगठित क्षेत्र में बदल रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उत्पादन के विकेंद्रीयकरण की ओर बढ़ रही हैं। पूँजी तो आसानी से यहाँ से वहाँ आयात-निर्यात की जा सकती है, परन्तु श्रमिकों और मजदूरों का आयात-निर्यात कैसे हो सकता है। यही कारण है कि श्रमिकों में बेरोज़गारी की दर बढ़ती जा रही है। यह समस्या आज विकसित देश के श्रमिक भी झेल रहे हैं। पिछले दस वर्षों में कई यूरोपीय देशों में यहाँ तक की अमेरिका में भी करोड़ों श्रमिक बेरोजगार हो गये

हैं। अकेले अमेरिका में भी यही दौर चल रहा है। ऐसा इसीलिए किया जा रहा है कि ये मजदूर एकता के सूत्र में बँध न पाएँ। यही कारण है कि आज विकासशील देशों के इस वर्ग में असंतोष की भावना प्रबल होती जा रही है। धर्म, रंग, जाति और लिंग के आधार पर श्रमिकों को बाँटने का प्रयास किया जा रहा है।

भूमण्डलीकरण की व्यवस्था से उत्पादक पूँजी का नहीं बल्कि वित्तीय पूँजी का इजाफा हो रहा है। यह अवस्था बहुत तेजी से दुनिया के कोने-कोने में पहुँच सकती है और श्रम के देशांतरण को समाप्त कर सकती है। उधारी में डूबे विकासशील देशों से बहुत तेजी से अधिक लाभ कमा सकती है। इससे वास्तविक उत्पादन नहीं बढ़ता। इस प्रकार आर्थिक वृद्धि भी नहीं होती। इस प्रभाव से विकसित देश के श्रमिक अछूते नहीं हैं। उन्हें केवल इस सामूहिक लूट से कुछ अंश देकर शांत कर दिया जाता है। उनकी बदहाली और बेरोजगारी समाप्त करने के लिए इतना काफी नहीं है। इनका असंतोष तो बढ़ता ही है। इस असंतोष को दबाने के लिए राजनीतिक और अन्य प्रकार के प्रयास किये जाते हैं। ये उपाय जाति, नस्ल, सम्प्रदाय आदि के आधार पर द्वेष फैलाकर परिपूर्ण किये जाते हैं। इसमें सभी संस्थाओं का प्रयोग किया जाता है। ये संस्थाएँ लगातार कुछ-न कुछ गतिविधियाँ करती रहती हैं ताकि श्रमिकों का ध्यान किसी तरह बँटा रहे। आम जनता अपनी आँखों से संसार भर में चलाये जा रहे भूमण्डलीकरण के भ्रम जाल को न देख सके। ये भटकावे निम्न रूपों में किये जाते हैं - आर्थिक घोटाले, सेक्स स्कैंडल, आतंकी धमाके, युद्ध, जनसंहार, दंगे-फसाद, वारदातें ताकि जनता का ध्यान इस तरफ लगा रहे। पूँजीवादी मीडिया भी इसका प्रचार व प्रसार इस गर्मजोशी के साथ करता है कि इससे महत्वपूर्ण समाचार या समस्या दूसरी नहीं है। इन ‘धमाकों’ की आड़ में संसार भर की पूँजी कहाँ से कहाँ वितरित हो जाती है, इसके अन्तर्गत कितनी जन विरोधी नीतियाँ बन जाती हैं, इसका कुछ पता नहीं चलता। इस अवसर पर कितने ही मजदूर और श्रम विरोधी कानून लागू होते जाते हैं।

समकालीन समय में आज जनता जागृत होने लगी हैं। पूँजीवादियों द्वारा खेले जाने वाले इस खेल को समझने की बुद्धि आ चुकी है। यह बात उन्हें अच्छी तरह

समझ में आ गयी है कि उनके अच्छे कार्यों को संसार के सामने नहीं लाया जायेगा। इसी कारण वे अपना स्वयं का मीडिया बनाने लगे हैं। यह मीडिया छोटी पत्रिकाओं से अपना कार्य प्रारंभ करेगा। दूसरी ओर इन्होंने सोचा था कि इंटरनेट पर अपनी स्वयं की एक वेबसाइट खोल कर प्रसारण और प्रचार का काम करें।

उदारीकरण और नारी

1989 में भारत में जो मध्यावधि चुनाव हुए थे, उसके बाद नई सरकार ने नीतियों में कई परिवर्तन किये थे। भारत सरकार ने निजीकरण को बहुत बढ़ावा दिया था। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारतीय बाजार में आसानी से प्रवेश होने दिया जा रहा था। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण भारत को विकसित देश के रूप में स्थापित करने का प्रयास था। सरकार ऐसा मान रही थी कि उदारीकरण की व्यवस्था के कारण भारत में आर्थिक और सामाजिक असमानता समाप्त हो जायेगी। रोजगार की दर भी बढ़ जायेगी। अतः भारत भी दूसरे विकसित देशों की देखादेखी करने लगा। ऐसा माना जा सकता है कि इन सब के पीछे विकसित देशों का हाथ हो। इससे विदेशों में हमारा महत्व बढ़ सकता है। भारत सरकार ने पूँजी को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में लगा दिया है। उत्पादन एवं उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए निजीकरण को अपनाया जा रहा है। इससे पहले सरकार ने विपरीत नीति अपनाई थी। परन्तु अब प्रत्येक क्षेत्र को निजी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। सरकार इससे यह अनुमान लगा रही है कि उन्नति तेजी से हो पायेगी। लेकिन आधुनिक समय में भ्रष्टाचार ने आर्थिक व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया है। वस्तुओं के दाम तेजी से बढ़ने लगे हैं। वस्तुएँ बाजार में कम होने लगी। इससे समस्याएँ और तेजी से बढ़ने लगी। इस प्रकार नवीन विदेशी आर्थिक नीतियों की नकल देश के आम आदमी को तोड़ने लगी। ऋण के भार से आदमी को तोड़ ही दिया। मनुष्य बाजार में बिकाऊ होने लगे। बेकारी की मार ने स्त्रियों को अपनी आबरू बेचने के लिए मजबूर कर दिया।

भारत में उदारीकरण का प्रारंभ खाड़ी युद्ध के दौरान हुआ। इस दौरान आर्थिक संकट भारत पर छाने लगा। उदारीकरण की नीति से नब्बे के दशक में तात्कालिक आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। यह सहायता भारत को विकसित देशों की

सूची में लाने के लिए काफी नहीं थी। इस समय भारत ने कई सुधार जरूर किये। भारत से एक वर्ष पहले चीन ने उदारीकरण अपनाया। आज वर्तमान समय में वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया है। इसी नीति के कारण दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश 'एशियन टाइगर्स' के स्वरूप में स्थित हैं। भारत के स्वदेशी समूह के लोगों ने यह आशंका बताई कि इस उदारीकरण की नीति के कारण पहले तो भारत आर्थिक रूप से दूसरों का गुलाम बनेगा और तत्पश्चात् राजनीतिक रूप से भी उसकी स्वतंत्रता छीन ली जायेगी। संसार के दक्षिणी देशों के पास सुरक्षित प्राकृतिक साधन की भरमार है। उनके पास सस्ता मानव श्रम है। अतः वे सुरक्षित हैं। भारत में ये दोनों साधन नहीं हैं।

भारत में भी विदेशी पूँजी के आगमन से देशी मुद्रा की दर गिरती जा रही है। चीनी, खाद्य और तेल जैसी मूल चीज़ों में भारत आत्मनिर्भर हो सकता है लेकिन ये बाहर से मंगाई जाती हैं। लेकिन भ्रष्टाचार हो रहा है। संसद में भी कई बार ये प्रश्न उठाये गये हैं। इस उत्पादन से जुड़े कई हजार किसान मजदूर हैं जिनकी मेहनत को यूँ नीलाम किया जा रहा है।

स्वतंत्रता के बाद सरकार प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन लाने का दंभ भरती है। शिक्षा और प्रशासनिक क्षेत्र में इस ओर कोई कदम नहीं उठाया गया। सरकार बार-बार चुनाव जीतने के बाद अपने वायदे भूल जाती है। उच्च शिक्षा के नाम पर कोई बेकार डिग्री थमा दी जाती है। इसी कारण युवा पीढ़ी में असंतोष फैला हुआ है। युवा पीढ़ी को तकनीकी शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। व्यवसायिक शिक्षा का प्रयास तो किया गया परन्तु कुछ प्रगति नहीं हुई।

बहुराष्ट्रीय कारखानों की प्रविष्ठि और नारी का विकास

भारत में कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उदित होते देखा गया है। आन्ध्र प्रदेश के पी.वी.नरसिंहाराव के शासन काल में वैश्वीकरण की आवाज बुलंद होने लगी थी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सारे प्रतिबंध हटा दिये गये। विदेशी कंपनियाँ स्वतंत्रता से भारत में अपना काम प्रारम्भ कर सकती थीं। उस पर किसी प्रकार की पाबन्दी नहीं थी। विदेशी मुद्रा व पूँजी को भी सारे प्रतिबन्धों से मुक्ति दे दी गई थी। देश में आयात-

निर्यात संबंधी प्रतिबन्धों को हटा दिया गया। इससे विदेशी कंपनियों के साथ भारत की प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी। इस कारण चीजों में गुणवत्ता बढ़ने लगी। ऐसी स्थिति में आम जनता लाभान्वित होती है। उसे कम दामों में अच्छी वस्तु खरीदने का अवसर मिलता है। इस कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा। हमारी मुद्रा विदेशों में जाने लगी। इससे विदेशी आर्थिक व्यवस्था समृद्ध होने लगी। विदेशी वस्तुओं की गुणवत्ता अच्छी होती थी और कीमत कम भी होती थी अतः उसकी खरीदारी अधिक की जाने लगी। भारतवासी ऐसी वस्तुओं के प्रति आकर्षित होने लगे। यह ध्यान रखना होगा कि भारत एक विकासशील राष्ट्र है। ऐसे राष्ट्रों पर बहुराष्ट्रीय प्रणाली का अधिक प्रभाव पड़ता है।

इन कंपनियों का मुख्य उद्देश्य कम खर्च करके अधिक लाभ कमाना ही होता है। यहाँ भारत जैसे देश में सस्ते और मजबूर मजदूर मिल जाते हैं।

भारतीय आर्थिक व्यवस्था नारी केन्द्रित विज्ञापन से प्रभावित

आधुनिक युग विज्ञापनों का युग है। हर क्षेत्र में विज्ञापनों की महत्वपूर्णता बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है कि विज्ञापनों के अभाव में कोई भी देश अपना विकास नहीं कर सकता। वैश्वीकरण के युग में प्रत्येक वस्तु का विज्ञापन होने लगा है। इसके कारण उत्पादन का प्रचार-प्रसार होता है। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने जैसे ही प्रवेश पाया विज्ञापनों की जैसे आँधी आ गयी। वर्तमान समय प्रतियोगिता का युग बन गया है। जहाँ देखो वहीं प्रतिस्पर्द्धा का खेल खेला जा रहा है। सारी कंपनियाँ विज्ञापनों के माध्यम से उपभोक्ता तक अपना माल पहुँचाने में लगी हैं। चाहे उस वस्तु का उपभोक्ता पर किसी प्रकार का प्रभाव क्यों न हो। वह वस्तु अमुक समाज के लिए उपयोगी है या नहीं, उस वस्तु के उपयोग से समाज के व्यक्ति पर विपरीत प्रभाव ही क्यों न पड़ने दीजिए, समाज का मासूम और नादान अंग इससे बुरे प्रभाव में तो नहीं पड़ रहा आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो कंपनियाँ सोचना ही नहीं चाहती। इसका प्रभाव शहर तक ही सीमित नहीं है बल्कि ग्रामवासी भी इसके अच्छे बुरे प्रभाव से प्रभावित हैं।

व्यापारिक नीति और नारी के जीवन मूल्यों में परिवर्तन

आज भारत की व्यापारिक नीति जीवन के मूल्यों को बदल रही है। प्राचीन भारतीय व्यापारिक संस्कृति और मान्यताएँ परिवर्तित हो रही हैं। यह परिवर्तन द्रुतगति से हो रहा है। व्यापारिक व्यवस्था केवल आयात-निर्यात नहीं है बल्कि आज उसमें वैचारिक तंत्र जन्म ले रहे हैं। प्रत्येक बाजार व्यवस्था में भी नवीन विचारधारा का समावेश हो रहा है। व्यापार केवल व्यक्तिगत और सामूहिक सामाजिक अर्थ उपार्जन का माध्यम नहीं है। आज इसमें क्रमिक गंभीर चिंतन की व्यवस्था देखी जा रही है। यह चिंतन प्रक्रिया समाज के धनिक वर्ग को और धनी बनाने के लाखों मौके प्रदान कर रही है और निर्धन को और निर्धन बनाने के उपाय कर रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस चिंतन प्रक्रिया की डोर अमीर व्यक्ति या कंपनी के हाथों में ही होती है।

इस व्यवस्था को समकालीन समय में 'मुक्त बाजार' के नाम से संबोधित किया गया है। इस व्यवस्था में एक हितकर दृष्टि यह है कि व्यक्ति की स्वेच्छा, इच्छा और उसकी चयन की क्षमता को बनाये रखा जा सकता है। यह बाज़ार व्यवस्था पारदर्शी स्पर्द्धा को जाग्रत करती है। इसके माध्यम से उपभोक्ता तोल-मोल और अच्छी वस्तु प्राप्त कर सकता है। अतः कहा जा सकता है कि उपभोक्ता ही अपने स्वेच्छापूर्वक निर्णय ले सकता है। बाज़ार की प्रतियोगिता में अपने आप को बनाये रखने में कंपनी को लगातार अपने उत्पादन की अच्छाई पर ध्यान रखना पड़ता है। वह उत्पादक वस्तु पर किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकता। यह स्पर्द्धा की भावना अच्छे से अच्छे वस्तु निर्माण की ओर अग्रसर करवाती है। इस आधार पर नवीनीकरण का बोलबाला होने लगता है। कार्य-कुशलता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। 'चलता' की भावना नहीं चलती। उद्यमी व्यक्ति को बढ़ावा मिलता है।

इस बाजार व्यवस्था में किसी भी समय कोई भी व्यक्ति या कंपनी प्रवेश पा सकती है। कोई भी कुछ भी बेच या खरीदने के लिए स्वतंत्र है। व्यापार के माध्यम से

वह अपना लाभ कमा सकता है। अंत में इस बाजार में वही टिका रह सकता है जिसके पास अधिक धन है।

आज का वैश्विक बाज़ार किसी चीज़ के लिए जवाबदेह या जिम्मेदार नहीं है। वह मुक्त तो हो गया है लेकिन पूँजीवाद से नहीं बल्कि आम आदमी की चिंता से। लेकिन आज मुक्त बाजार पूँजीवाद और राजनीति से स्वतंत्र होकर अपना निस्वार्थ सामाजिक अस्तित्व बनाना चाहता है। वह राजनीति की नहीं बल्कि आम व्यक्ति की धरोहर बनना चाहता है।

आधुनिक युग में इस 'मुक्त बाज़ार' प्रणाली में व्यक्ति को वास्तविक सहायता देय है या नहीं? यह एक संजीदगी भरा प्रश्न है। इसका जवाब बड़ी गंभीरता और सतर्कता से देना होगा। आज प्रत्येक व्यक्ति भूमंडलीकरण को दोष दे रहा है। इस व्यवस्था ने दुनिया के देशों में आपसी भाईचारा मिटा कर रख दिया है। इनमें आपस में इतनी कड़वाहट आ गई है कि इसे पाटना आसान नहीं होगा। संपत्ति का केन्द्रीयकरण बढ़ता जा रहा है। दूसरी ओर गरीबी बढ़ती चली जा रही है। संसार के कई लोगों को महत्वहीन बना दिया गया है। 'मुक्त बाजार' व्यवस्था के कारण सभी अपंग हो गये हैं। विशेषकर गरीब, पिछड़े और विकासशील देश इसका शिकार बने हुए हैं। देशी सरकार इस स्थिति में कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि परिस्थितियाँ उसके हाथ से निकल चुकी हैं। यह कहा जा सकता है कि इस नीति के कारण अर्थव्यवस्था ही नहीं राजनीतिक व्यवस्था भी इसके चपेट में आ रही है। अर्थ–व्यवस्था किसी भी देश की आत्मा होती है। अर्थ के अभाव में कोई भी व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। किसी भी देश, समाज या व्यक्ति का विकास अर्थ पर ही निर्भर करता है।

1.3 अंतिम दशक की नारी का राजनीतिक जीवन

राजनैतिक क्षेत्र में उदारवादी जनतंत्र और भारत के संदर्भ में एक प्रयोगपरक व्यवस्था का प्रतिरूप रह गया है। भारत में आतंकवाद भयानक समस्या बन कर खड़ा है। यह समस्या आज की नहीं है जब से भारत आज़ाद हुआ तभी से हम इसका

सामना करते आ रहे हैं। भारत की कश्मीर जैसी सुंदर स्वर्ग रूपी भूमि को इसने लहू-लुहान कर दिया है। कश्मीर में आये दिन भोली-भाली मासूम जनता को इसका शिकार होना पड़ता है। बाबरी मस्जिद भारत की दूसरी आतंकवादी समस्या है। हाल ही में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा कुछ हद तक इस समस्या को हल करने का प्रयास किया गया है।

इस आतंकी समस्या ने नेताओं और जनता दोनों को त्रस्त कर दिया है। इस आतंकवाद ने कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से बंगाल तक अपना भयंकर जाल फैला रखा है। समय-समय पर भारत के किसी भी प्रांत में, किसी भी शहर में बम विस्फोट की संभावना बनी रहती है। ये लोग मासूम जनता से भरे बाज़ार में विस्फोट कराने से जरा भी नहीं चूकते। उनमें मानवता जैसी भावना मर चुकी है। "सामान्यत: किन्ही राजनैतिक उद्देश्यों या धार्मिक उन्मादों के कारण एक व्यक्ति या समूह द्वारा जो हिंसात्मक कार्यवाइयाँ की जाती हैं, उसे 'आतंकवाद' का नाम दिया जाता है।"[3]

इस आतंकवादी समस्या से उभरने के लिए सभी देशों के राजनीतिज्ञों को अपने स्वार्थों से मुक्ति पाकर सामने आना होगा। उन्हें एकजुट होकर इसका हल ढूँढना होगा। परन्तु आज स्थिति इसके विपरीत है। विश्व के सर्वदलीय बैठक में मतभेद पाये जाते हैं। विश्व की 'राष्ट्रसंघ' जैसी मान्य संस्था भी आतंकवाद से छुटकारा पाने का उपाय सोचने में असमर्थ है। "जिन हिंसात्मक गतिविधियों को अमेरीका और पश्चिमी संसार आतंकवाद कहता है उन्हें कट्टरपंथी मुसलमान 'जेहाद', फिलीस्तीन व कश्मीर जैसे भू-भागों को स्वतंत्र देश बनाने की तमन्ना रखनेवाले 'स्वतंत्रता की लड़ाई', अमेरीका अहम् के विरोधी, उत्पीड़न व शोषण के विरुद्ध संघर्ष तथा तटस्थ सोचने वाले 'क्रिया की प्रतिक्रिया' कहते हैं।"[4] शक्तिशाली देशों के सदस्य अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए विश्व का भविष्य दाँव पर लगाते जा रहे हैं।

सारा संसार इससे अव्यवस्थित होता जा रहा है। सुरक्षा के नाम पर आर्थिक व्यवस्था बिगड़ती जा रही है। सुरक्षा के नाम पर आम जनता को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसी स्वार्थ के कारण सरकारें टैक्सों में वृद्धि कर रही हैं।

आज देश का सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी इससे ग्रस्त है। देश का प्रत्येक नागरिक स्त्री, बच्चा, बूढ़ा, सभी वर्ग, सभी जाति इससे त्रस्त हैं। सभी आतंक के शिकार बन गये हैं। मुसलमान जनता तो दुहरी मार सह रही है। आज उन्हें मुसलमान होने का भुगतान भरना पड़ता है। संसार की दूसरी धर्म-जातियाँ इन्हें हीन दृष्टि से देखती हैं, इनकी उपेक्षा करती हैं, इसका सबसे जीवन्त उदाहरण हाल ही में सिनेमा के पर्दे पर आयी फ़िल्म 'माई नेम इज़ खान' में देखा जा सकता है।

युगीन समय में तो उन्होंने इस मानव बमों, रासायनिक हथियारों आदि का प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिये हैं। इसके साथ ही उन्होंने स्नेह और ममत्व की मूर्ति नारी को भी इसमें घसीटना प्रारम्भ कर दिया है। वे नारी के शरीर को भी मानव बम बनाने से नहीं चूकते। इस प्रकार नारी देह के आकर्षण का लाभ उठाया जा रहा है। इसका सबसे बड़ा और खतरनाक उदाहरण राजीव गाँधी हत्या कांड है, जिसमें शुभा नाम की महिला को आत्मघाती के रूप में इस्तेमाल किया गया था।

बिहार राज्य के नक्सलवाड़ी स्थान से उत्पन्न हुआ गरीब किसानों और मजूदरों का विरोध स्वर जो देश की बाकी जनता के लिए 'नक्सलवाद' कहलाया। वास्तव में आर्थिक और सामाजिक विषमताओं से उत्पन्न हुई मनोवृत्ति है। सामान्यतया बाधित और पीड़ित व्यक्ति ही इस मार्ग को अपनाता है। विशेषरूप से नक्सलवादी जरूरतमंदों की सहायता करते हैं। ग़रीब किसान, मजदूर, खेतिहर आदि को अपना अधिकार दिलाने का प्रयास करते हैं। नक्सलवाद का संगठन ही शोषित वर्ग की सहायता करने के लिए बनता है। इनका मुख्य ध्येय जनता की रक्षा करनी है । ये कभी-कभी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विस्फोटक सामग्री और बमों का प्रयोग करते हैं।

यह आन्दोलन राज्य की विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परिस्थितियों आदि से संबंधित होता है। इस आन्दोलन की उत्पत्ति का मूल कारण ज़मीन होती है। भूमि समस्या ही नक्सलवादियों को जन्म देती है। इस ओर समाज के पिछड़े, दलित, ग्रामीण, निम्न जन-जाति, बेरोजगार जो शिक्षित हैं, लोग आकृष्ट हुए हैं। चारू मजूमदार के अनुसार – "वर्ग शत्रु के रक्त में हाथ न डुबोया हुआ व्यक्ति क्रांतिकारी नहीं है।"[5]

ये लोग जमींदारी प्रथा में परिवर्तन लाना चाहते हैं। ये भूमि पर ग़रीब किसान के हक़ के लिए संघर्ष करते हैं। ये नक्सलवादी बन्धुआ मजदूरों को स्वतंत्र कराना चाहते हैं। इनका ध्येय है कि वे निम्न श्रमिक वर्ग को देश के सिंहासन पर बिठाये। गाँवों में जमींदारी-भूस्वामित्व की प्रथा, पूँजीपति वर्ग, बड़े-बड़े मिल-मालिकों के विरोध में काम करना ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है। उनके इस भूमि-वितरण के मार्ग में यदि कोई बाधा उत्पन्न कर रहा है तो वे हत्या करने से भी पीछे नहीं हटते। नक्सलवादी मजबूर और विवश निम्न जाति के लिए संघर्षरत रहते हैं। इनके ये संघर्ष लम्बे समय तक चलते हैं। इनके संघर्ष के अनेकों तरीके होते हैं। एक राष्ट्रीय दल परोक्षता के साथ इनसे जुड़ा रहता है। नक्सलवादी राष्ट्र में समानता का अस्तित्व कायम करना चाहते हैं। समाज में पीड़ित लोगों की सहायता करने के लिए ये अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार ये किसी भी कीमत पर क्रांति लाना चाहते हैं।

ये लोग हमेशा जन में चेतना लाना चाहते हैं। स्वरक्षा के लिए हथियारों का प्रयोग करने में वे किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। ये योजनाबद्ध तरीके अपना कर अपनी माँगों को मनवाते हैं। इनकी योजनाएँ सरकार को बाध्य करती हैं। नक्सलवाद विश्व बैंक की अर्थ व्यवस्था को नहीं स्वीकारता। जिस किसी मकसद से सरकार इन विश्व बैंकों से ऋण लेती है, उस उद्देश्य की प्राप्ति वह ठीक तरह सही रूप से कर रही है कि नहीं इस बात का ध्यान भी ये लोग रखते हैं। राज्यों द्वारा ऐसा नहीं किये जाने पर वे विभिन्न बाधित तरीके अपनाकर सरकार को धन के सही प्रयोग के लिए विवश कर देते हैं। श्रमिक वर्ग को उनका श्रमतुल्य धन दिलाने के लिए भी ये प्रयत्नशील रहते हैं। ये स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्ति के लिए लड़ते हैं। ये लोग समूह-

अधिकार के समर्थक हैं। देश के नागरिकों को संविधान संबंधी अधिकार दिलाने के पक्ष में होते हैं। ये हर मामले में समानता लाने के पक्ष में होते हैं। ये समाज में साम्य स्थापित करने की अभिलाषा रखते हैं। ये लोग देश में उद्योग व्यवस्था पर भी ध्यान देते हैं और उन्हें व्यवस्थित ढंग से चलाकर उनको बचाने के उपाय करते हैं।

ये लोग जमींदारी व्यवस्था के विरोध में समाज के विभिन्न वर्गों को एकत्रित कर लेते हैं। धनिक किसान, मध्यस्त किसान, गरीब किसान, निर्धन श्रमिक, निम्न मजदूर आदि को एक छत्र में लाकर ठेकेदारों का विरोध करते हैं। इन्हें बड़े-बड़े संगठनों से सहयोग प्राप्त होता है, बुद्धिजीवी शिक्षित वर्ग, श्रमिक संगठन, किसान संगठन, मजदूर-किसान संस्थान, पिछड़ा वर्ग संगठन आदि। ये अन्तर्राष्ट्रीय दलाली करने वालों को नफरत से देखते हैं, जो अधिक धन कमाने के लिए विदेशी देशों से संपर्क बनाते हैं। ब्याज से संबंधित पैसे कमाने वालों के वे कट्टर दुश्मन बन जाते हैं। राष्ट्रीय बुर्जुआ (देशी पद्धतियों से देश के प्रयोजन के लिए सोचने वाले) और पेट्टी बुर्जुआओं को साथ रखकर अन्तर्राष्ट्रीय बुर्जुआ का विरोध करना नक्सलवाद का सिद्धांत है।

इनसे संबंधित अनेक राष्ट्रीय पार्टियों के नाम इस प्रकार हैं – (1) सी.पी.आई.एम. पीपुल्स वार (झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र आदि राज्यों में स्थित, (2) सी.पी.आई.एम.एल. (न्यू डेमोक्रेसी) पार्टी (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, प.बंगाल, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में स्थित, (3) सी.पी.आई.एम.एल. (प्रतिघटना) पार्टी (आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और कश्मीर में स्थित, (4) यू.सी.सी. आर. आई. एम. एल. के 2,3 ग्रुप (आन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश और उत्तर भारत में स्थित) आदि प्रमुख हैं। इनमें सी.पी.आई.एम.एल. (पीपुल्स वार) (आन्ध्र प्रदेश और बिहार में स्थित) और एम.सी.सी. (मार्किस्ट कम्यूनिस्ट कमेटी) (बिहार और उत्तर भारत में स्थित) आदि पार्टियाँ चुनाव में भाग लेती हैं। इन पार्टियों के मूल सिद्धांत और लक्ष्य लगभग एक ही हैं।

क्षेत्रवाद और नारी की समस्याएँ

क्षेत्रीयता आज की राजनीति को प्रभावित करती जा रही है। हमारे पूर्व गृह मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल और पूर्व प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू के प्रयासों से भारत में छोटे-छोटे राज्यों का गठन संभव हो सका था। इन राज्यों को भाषा प्रयुक्त राज्य कहा जाता है अर्थात् भाषा के आधार पर राज्यों का गठन। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, उत्तर प्रदेश आदि इसी प्रकार के राज्य हैं। इन राज्यों में तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम, हिन्दी आदि भाषाओं का प्रयोग बहुसंख्यक जनता करती है। आज भी कई ओर से छोटे-छोटे राज्यों की माँग होती रहती है। इसके लिए आंदोलन भी किये जा रहे हैं। ये आंदोलन यहीं तक सीमित नहीं हैं बल्कि क्रांति का रूप धारण कर रहे हैं। इसके कारण हिंसात्मक वातावरण भी उत्पन्न हो रहा है। कई राज्यों में हिंसात्मक गतिविधियाँ जैसे - हत्या, मारपीट, चोरी-डकैती, मान-हानि आदि जैसी वारदातें आये दिन सामने आती हैं। इन वारदातों के कारण सरकारी और निजी संपत्ति का नाश हो रहा है। जनता क्षेत्रवाद में फँसकर स्वयं का नुकसान कर रही है, ऐसे में उसे यह ज्ञान नहीं होता कि सरकारी संपत्ति स्वयं उसकी है, वह राज्य प्राप्ति के मद में अंधी होती जा रही है।

कुछ राजनीतिक पार्टियाँ भी इस प्रकार के कायोढह में मददगार बन रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय हालात भी इसके लिए जिम्मेदार कहे जा सकते हैं। सार्वभौम-व्यापारिक संस्थान को इन छोटे-छोटे राज्यों से अधिक लाभ कमाने का स्वार्थ होता है। इनसे वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी आसानी से लाभ कमा सकते हैं। इसका सबसे बड़ा शिकार रूस और धीरे-धीरे यूगोस्लोविया भी इसी नीति की ओर अग्रसर हो रहा है। पाकिस्तान भी इससे अछूता नहीं है। श्रीलंका में एल.टी.टी.ई. (लिबरेशन टैगरस ऑफ तमिल ईलम), टी.यू.एल.एफ. (तमिल युनाइटेड लिबरेशन फ्रंट) और ई.पी.आर.एल.एफ. (ईलम पीपुल्स रेवल्यूशनरी लिबरेशन फ्रंट) आदि संगठन क्रांति मचाकर उसे भी छोटे राज्यों में विभक्त करने पर तुले हुए हैं।

देश के राज्यों को छोटे टुकड़ों में बाँटने से पहले सोच विचार करने की अत्यंत आवश्यकता है। भाषा-प्रयुक्त राज्य आयोग (लिंग्विस्टिक प्रोविन्सेस कमीशन -

एल.पी. सी.), राज्य पुनर्विभाजन आयोग (स्टेट री-ऑर्गनॉईजेशन कमीशन - एस.आर.सी.)। ऐसे कई राज्य देखे जा सकते हैं जो क्षेत्रवाद की परिधि में फँसते जा रहे हैं। भारत भी इसी राह पर चलने की सोच रहा है।

राज्य सरकार चलाने के लिए कुछ शर्तें या मानदण्ड होने आवश्यक हैं। सरकार द्वारा क्रमशः 1948, 1949 में छोटे राज्यों के संबंध में अपनी स्वनुकूलता व्यक्त की गयी और राज्य के सुचारू प्रशासन के लिए निम्न उद्धृत अंशों की आवश्यकता को सूचित किया गया –

1. प्रशासन में जनता की भागीदारी
2. अधिकार विकेन्द्रीकरण
3. सही नेतृत्व
4. शिक्षित कर्मचारी

उपर्युक्त कहे गये अंश प्रशासन के लिए आवश्यक हैं लेकिन भू-भाग के प्रमाण के नहीं। चाहे राज्य बड़ा हो या छोटा एक अच्छी सरकार की आवश्यकता पड़ती है। राज्य की शासन व्यवस्था न्याय संगत होनी चाहिए। भारत में कई छोटे-छोटे राज्य भी हैं जो अपनी-अपनी व्यवस्था सुविधानुसार कर लेते हैं। यह जरूर है कि उनका विस्तार कुछ कम हुआ है। परन्तु वे अपना पालन स्वयं करने के योग्य हैं। राज्यों के निर्माण का मुख्य कारण है कि उसकी पालन व्यवस्था सुचारू रूप से चले। परन्तु ऐसा करने से कई समस्याएँ सामने आती हैं।

छोटे राज्यों के गठन से लाभ और हानि दोनों हैं –

छोटे-छोटे राज्यों के गठन से शासक और जनता के बीच निकट संबंध स्थापित होने की संभावनाएँ हैं। सरकार की योजनाएँ – नागरिकों को मालूम होना और नागरिकों की जरूरतें शासकों तक पहुँचना आसान होता है। विकेन्द्रीकरण अधिकार द्वारा जनता को लाभ पहुँचता है। सरकार विकास की ओर ध्यान दे सकती है। बाजार का प्रबंध सुव्यवस्थित करे तो व्यापार की सुविधाएँ बढ़ेंगी जिससे

अर्थव्यवस्था में वृद्धि की संभावनाएँ होती हैं। राज्यों में सामाजिक, भौगोलिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक समितियों के गठन से भावात्मक एकता बढ़ने की संभावनाएँ पूर्ण होंगी। सामाजिक आवश्यकताओं के साथ प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग भी सही होगा।

जातिवाद और नारी

जातिवाद चिरंतन समस्या बन गया है। यह समाज में अलगाव की स्थिति उत्पन्न करता है। एक उपजाति अपनी जाति का समर्थन करने के लिए संभाव्यरूप से प्रेरित होती है। ऐसा करने पर दूसरी जातियों के हितों की हानि होती है। यही कारण है कि आज वर्तमान युग में भारत देश में यह समस्या जोर पकड़ती जा रही है। जाति-भेद की यह भावना समाज में अराजकता फैला रही है। जातिवाद एक सुदृढ़ विचार नहीं बल्कि एक अंधमार्ग है जो समाज के सभी क्षेत्रों पर अपना प्रभाव डाल रहा है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लिए ये बहुत ही नुकसानदेह है।

भारत में जातिवाद की धारणा आजादी के बाद काफी तेजी से फैलने लगी। विशेषकर ग्रामीण जीवन में यह भावना अधिक देखी जाती है। ग्राम-व्यवस्था पंचायती राज, ग्रामीण चुनाव व्यवस्था आदि पर भी इसका प्रभाव दिखाई देता है। इसके कारण समाज का विघटन होने लगा है। सामाजिक न्याय, समानता आदि का हनन होने लगा है। युगीन राजनीतिक और सामाजिक जीवन को भी यह ग्रसित करता जा रहा है।

1.4 अंतिम दशक की नारी का धार्मिक जीवन

मानव जीवन में समाज और धर्म दोनों का समानान्तर विकास होता रहता है। परिवर्तन की दृष्टि से भी समाज और धर्म एक साथ देखे जा सकते हैं। बहुत हद तक धर्म के गठन का आधार सामाजिक व्यवस्था ही होती है।

वास्तव में धर्म आध्यात्म की वस्तु है। धर्म इस लोक से परे अलौकिकता में विचरण करता है। अतः समाज में रहकर ही मनुष्य धर्म का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म जो मानव निर्मित ही है, अतः वह सामाजिक मान्यताओं में घुल-मिलकर अपने सिद्धांतों

को समाज में ही स्थापित करने का प्रयास करता है। धर्म के आधार पर कर्मकांड करने वाले आडम्बरयुक्त साधु, संत, फकीर, पंडा, मुल्लाओं, आदि के प्रति समाजवाले श्रद्धा दिखाते हैं। इन पर समाज को निष्ठा होती है और समाज अंधविश्वास भी करता है। अधिकतर देखा गया है कि सामाजिक परंपरा को धर्म के साथ मिला दिया जाता है। ऐसी मान्यताओं में भी नारी को निम्न दर्जा दिया जाता है। उसे किसी धार्मिक कठिन अनुष्ठान, सती प्रथा, विधवा जीवन, आदि के नाम पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसका शोषण किया जाता है। स्त्री जीवन को पाप-पुण्य की डोर में इस प्रकार उलझा दिया जाता है कि वह इस पाखंडी रीति-रिवाजों से स्वतंत्र होने से डरती है। उसे हमेशा पाप का डर रहता है। नैतिकता भी धर्म की कसौटी पर कसी जाती है। ऐसी कसौटी पर केवल नारी जाति को ही परीक्षा देनी पड़ती है।

समकालीन समय की बुद्धिजीवी विचारशील नारी ने इस पाप-पुण्य के चक्कर से स्वयं को स्वतंत्र करने की ठान ली है। अब वह यह समझ चुकी है कि यह सब पुरुष प्रधान समाज द्वारा निर्मित केवल स्त्री के लिए ही माया जाल है। उसे मूर्ख बनाया जा रहा है। अतः वह इस दिशा में भी जागृत हो रही है। वह धार्मिक बेड़ियों को भी तोड़ देना चाहती है। भारतीय धार्मिक परंपरा में नारी को न्याय की प्रतिमूर्ति माना गया है।

धार्मिक अनुष्ठानों का अनुसरण स्त्री के लिए जितना आवश्यक और कठोर होता है उतना पुरुष के लिए नहीं। धार्मिक परंपराएँ हमारे सामाजिक जीवन में कर्मकांडों और अंधविश्वासों के रूप में समाहित हैं। अंतिम दशक के धार्मिक जीवन में परिवर्तन दिखाई देता है। भारत को धर्म-निरपेक्ष देश माना जाता है। धार्मिक मनुष्यता के बावजूद धर्म के नाम पर आंदोलन और झगड़े भी दिखाई देते हैं।

1.5 अंतिम दशक की नारी का सांस्कृतिक जीवन

संस्कृति मनुष्य को सभ्य बनाने का साधन है। वह मानव को श्रेष्ठ और उन्नत बनाती है। सभ्यता का जन्म जिस उन्नत विचारधारा से पल्लवित हुआ है उसी को हम

संस्कृति की संज्ञा दे सकते हैं। अत: कहा जा सकता है कि सभ्यता और संस्कृति मानव समाज के गठन की नींव का पत्थर हैं।

मनुष्य सभ्य होता जाता है तो उसकी संस्कृति परिवर्तित होती रहती है। ग्रामीण भारतीय समाज में भी अंतिम दशक में हम एक बड़ा परिवर्तन पाते हैं। गाँव के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, खान-पान, त्यौहार, पूजा-पाठ, विधियों आदि सभी में यह परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। गाँवों में नवजात का जन्म, शादी-ब्याह, दाह-संस्कार आदि में परंपरागत परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इन परिवर्तनों के बावजूद भारतीय ग्रामीण समाज पुरानी परंपरा और संस्कृति का कट्टर समर्थक है, उससे अपनी परंपराओं पर अटूट विश्वास है। इसीलिए वह पद्धत्तियों का अधिक उल्लंघन सहन नहीं करता। आज ग्रामीण युवा-पीढ़ी में ये आस्थाएँ घटती दिखाई दे रही हैं। ग्रामीण जन-धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन विशेष महत्व से करते हैं। सभी वर्ग के लोग इसे उल्लास के साथ अपने सामर्थ्य के अनुसार मनाते हैं। कुछ गाँवों में आज युवा-पीढ़ी में प्राचीन आस्थाओं के प्रति अनास्था दृष्टिगोचर हो रही है। प्राचीन समय में पर्वों के अवसर पर रामायण-महाभारत के पाठ किये जाते थे। ग्रामीण कलाकार नाट्य कला के माध्यम से सांस्कृतिक मनोरंजन किया करते थे। परन्तु आज यह सब बंद हो चुका है। त्यौहारों के दिन एक-दूसरे के घर जाकर आहार व मिष्ठान आदान-प्रदान करना और प्रेमपूर्वक एक-दूसरे के गले मिलने की प्रथा भी विलुप्त होती जा रही है। ऐसे अवसरों पर अकेलापन भी दिखाई देने लगा है। युगीन समय में ग्रामीण छात्र इस दुराव का तेजी से शिकार बनते जा रहे हैं।

युगीन ग्रामीण जीवन में स्थानीय देवी-देवताओं की मान्यता बढ़ती जा रही है। गाँवों में लोग पीरबाबा, देवी-देवताओं आदि की भक्ति में निरत रहते हैं। इन्हीं में ये अपनी आस्था बनाये रखते हैं। विभिन्न धर्मावलम्बी दरगाहों पर जाकर अपनी मन्नतें माँगते हैं। विभिन्न धार्मिक अनुयायी एक होकर अपनी आस्था का परिचय देते हैं। देवी-देवताओं को संतुष्ट करने के लिए भजन-कीर्तन, व्रत, हवन, रोज़ा आदि का प्रचलन यहाँ खूब चलता है। ये लोग बलि प्रथा पर भी विश्वास करते हैं। ऐसे मौकों पर इनकी

अमानुषिकता का बीभत्स रूप देखने को मिलता है, इसमें क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, क्या सिक्ख, क्या ईसाई सभी बराबर के उत्तरदायी हैं।

ये लोग भविष्यवाणी, ज्योतिष विद्या पर भी अटूट विश्वास करते हैं। पुजारियों पर भी इनका अंधविश्वास होता है। अंतिम दशक के जीवन में वास्तुविद्या पर आस्था भी बढ़ती जा रही है। इनकी आस्था प्राचीन वेद-पुराणों में कम होती जा रही है। रामायण, महाभारत, सावित्री-सत्यवान, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, गायत्री मंत्र, शिवपुराण, विष्णुपुराण आदि के प्रति इनकी आस्था घटती जा रही है। लोक-मानस में प्रसिद्ध लोक कथाएँ, हमारी पारम्परिक प्राचीन प्रथाओं का आधार होती हैं और वे हमारे जीवन-मूल्यों का मार्ग प्रदर्शित करती हैं परन्तु आज यह कथाएँ विघटन के कगार पर खड़ी हैं।

वैवाहिक जीवन में परिवर्तन

शहरी जीवन में वैवाहिक प्रथाओं के परिवर्तन का विशाल रूप देखने को मिलता है। समाज के विकास के साथ विवाह की पद्धतियों में अधिक बदलाव दृष्टिगोचर हो रहा है। अंतिम दशक के युग में गाँवों में इन वैवाहिक परंपराओं का पालन आज भी हो रहा है। परन्तु, धीरे-धीरे ये परम्पराएँ शहर से गाँवों की ओर बढ़ती जा रही हैं अर्थात् शहरी समाज की वैवाहिक पद्धतियों का परिवर्तित प्रभाव ग्रामवासियों पर दिखाई पड़ रहा है। आज गाँवों में भी शादी के समय दुल्हन के लिए पालकी का प्रयोग ना के बराबर होने लगा है। विवाह के समय पीपल के पत्तों से बनी पत्तल नीचे बिछाकर मेहमानों को पंक्ति में बिठाकर आग्रह के साथ भोजन कराया जाता था। परन्तु आज शहर की देखा-देखी ये लोग भी कुर्सी, मेज और स्वयं परोस लेने की प्रथा पर चल पड़े हैं। मेहमानों को मन से स्नेह पूर्वक खिलाने की प्रथा जैसे समाप्त ही हो गई है।

गाँवों में भी लड़का और लड़की प्रेम विवाह, रजिस्टर मैरेज आदि के अनुयायी हो गये हैं। ये लोग अब माँ-बाप के आशीर्वाद को इतना अधिक सम्मान और महत्व नहीं देते।

इतना ही नहीं ग्रामीण स्त्री-पुरुष की वेश-भूषा पर भी शहरीकरण छाता चला जा रहा है। खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार आदि सभी मनोभावनाओं में परिवर्तित दृष्टिकोण दिखाई दे रहा है। ये भी फैशन की दुनिया के त्रस्त बनते जा रहे हैं। गाँवों में भी आधुनिकीरण की नवीन दृष्टि का प्रभाव तेजी से बढ़ता हुआ दिखता है। गाँव के स्त्री-पुरुष अपने बालों की सजावट भी बदल रहे हैं। वे आधुनिक नायक-नायिकाओं का अनुकरण करना चाहते हैं।

प्राचीन झोपड़ी के स्थान पर मजबूत घरों का निर्माण होने लगा है। घरों में बिजली का प्रावधान होने लगा है। यहाँ पर भी शहरी जीवन के समान जीवन की सुविधाएँ बढ़ने लगी हैं।

संचार माध्यमों से प्रभावित नारी-जीवन

वर्तमान समय संचार माध्यमों का युग है। इस माध्यम ने संसार के किसी भी क्षेत्र को प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ा। क्या छोटे, क्या बड़े, क्या गाँव, क्या शहर कहीं भी इसके अभाव में जन-जीवन नहीं चल सकता।

लगभग सौ वर्ष पहले भारत में फ़िल्मों का प्रचलन प्रारंभ हुआ। आज यह दशा है कि सिनेमा जन-जीवन का एक प्रमुख अंग बन गया है। सिनेमा-जगत की आज अपनी एक अलग पहचान है।

सिनेमा मनोरंजन का प्रमुख साधन है। इसमें अनोखे दुर्लभ दृश्य प्रभावपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किये जाते हैं। फ़िल्मों के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान संबंधी जानकारी भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। जब सिनेमा की दुनिया का प्रारम्भ हुआ तो उसमें केवल कौतूहल और आश्चर्यपूर्ण भावों का प्रदर्शन होता था, परन्तु आज नए-नए वाद्ययंत्रों ने अपना चमत्कार दिखाना प्रारंभ कर दिया है। संगीत की विभिन्न नई तकनीकों ने अपना जादू फैला दिया है। स्वर और गीतों को नये-नये रागों के माध्यम से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाने लगा है। मूलरूप से फ़िल्म एक कला की कोटि में ही आती है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि यह एक आविष्कृत कला है जो बीसवीं सदी के विज्ञान द्वारा प्रदत्त है। परन्तु किसी भी कला का उद्देश्य मानव जीवन को उन्नत

बनाना ही होता है। आधुनिक व्यवसायिक सिनेमा अपने इस उत्तरदायित्व को किसी सीमा तक पूर्ण कर पा रहा है। हम यह कह सकते हैं कि लगभग सभी फ़िल्में आनंद प्रदान करती हैं और लोक-कल्याण का संदेश देती हैं । फ़िल्में अपने इस प्रकार के क्लाइमैक्स के लिए विभिन्न स्तरों से गुजरती हैं, अशांति, अतृप्ति, कुंठा, यहाँ तक कि हत्याएँ भी की जाती हैं। इस प्रकार से एक हिंसक और अपराधबोधपूर्ण माहौल तैयार किया जा रहा है। परन्तु, इन सबसे हमें सही मार्ग निकालने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि माता-पिता घर गृहस्थी को ढंग से नहीं चला रहे हैं, संतानों के बीच अन्याय कर रहे हैं तो क्या संतान को उनके साथ हिंसा, बुरा व्यवहार या उनकी हत्या कर देनी चाहिए। ठीक इसी प्रकार से यह भी उचित नहीं है कि जब व्यवस्था से यदि वह कुछ गलत कर रहा है तो न्याय पाने के लिए शस्त्र उठाना गलत होगा। ऐसी फ़िल्मों को हम मनोरंजन के लिए देख रहे हैं। परन्तु, हमारी सभ्यता और संस्कारों पर ये बहुत बुरा प्रभाव डाल रहे हैं। इस प्रकार से हमारे स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्य विघटित हो रहे हैं।

फ़िल्में, कला-विज्ञान, व्यावसायिकता, सृजनशीलता, शास्त्रीय लोक आदि का सम्मिश्रण हैं। यह सिनेमा का स्वरूप प्राचीन समय में नहीं था। यह आधुनिकता का ही अंकुर है। सिनेमा के माध्यम से समाज के अंतरंग को समझा जा सकता है। ये दर्शक को सकारात्मक बना देता है।

यह एक मोह जाल है जो दर्शक को जीवन की यथार्थता, सार्थकता, घोर सत्यता आदि का परिचय करवाता है। वह अपनी कला के आकर्षण से दर्शक को मोहित कर लेता है। यह जनता को प्रभावित करने वाला सबसे अधिक सशक्त साधन है। यही कारण है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में फ़िल्में बनती हैं। संसार में सबसे अधिक फ़िल्में भारत में बनने के बावजूद इसका प्रभाव उतना अधिक नहीं पड़ता। भारतीय जन व समाज इसे इतनी अधिक गंभीरता से नहीं लेते।

सिनेमा मानव की एक अद्‌भुत खोज है। इसमें सृजन की सारी कलाएँ स्थान पाती हैं जैसे – साहित्य, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, नृत्यकला, छायांकन आदि विज्ञान की आधुनिक प्रणाली ने इतने नये आयामों में बटोर कर रखा

है कि, ऐसा लगता है कि यह प्रणाली सब कुछ कर गुजरने में सक्षम है। आज यह कथोपकथन और संगीत पर ही अधिक ध्यान दे रहा है। यह एक सशक्त दृश्य माध्यम है। गति, विधान और भाषा के माध्यम से यह अपनी साख जमाये हुए है। प्राचीन साहित्य के समान यह भी सरकार और जन दोनों का ही शस्त्र बनता जा रहा है। यह राजनीति से बहुत प्रभावित हुआ माना जाता है। दूरदर्शन पर पौराणिक कथाएँ 'रामायाण' और 'महाभारत' ने धर्म प्रचार का प्रशंसनीय कार्य किया। 'भारत एक खोज' और 'चाणक्य' जैसे ऐतिहासिक धारावाहिकाओं ने देश के गौरवपूर्ण इतिहास को प्रस्तुत किया। इससे देश के स्कूल के बच्चों की पीढ़ी ने भारतीय प्राचीन धर्म, समृद्धि संस्कृति और इतिहास को जाना। युवा भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। धारावाहिक जीवन-मूल्यों के मापदण्डों को दर्शाते हैं और फ़िल्में वस्त्र, आभूषण, केश सज्जा आदि को प्रभावित करती है। इसमें मुहावरों और कहावतों के प्रयोग जनता पर अच्छा-बुरा प्रभाव डालते हैं। फ़िल्में आधुनिक युग में किसी भी प्रचार-साधन से अधिक लोकप्रिय और प्रभावी हैं चाहे राजनेता का भाषण हो या किसी धर्मगुरु के उपदेश हों। समाज, विचार, सभ्यता, संस्कृति, कला आदि यदि रूढ़िगत हो जाते हैं तो अप्रिय बनने लगते हैं। आज सिनेमा एक शताब्दी से भी अधिक का समय तय चुका है। दिनों-दिन उसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। जन उसके पीछे पागल हुए जाते हैं। अपने अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के समान सिनेमा जाने के लिए भी बदस्तूर प्लानिंग की जाती है, इसका सबसे बड़ा कारण है कि इस माध्यम ने समय की माँग को हमेशा पूरा किया है। आवश्यकतानुसार समय-समय पर उसमें परिवर्तन लाते गये। इसने कोई सीमा-रेखा नहीं बाँधी। उसने कभी भी ससीम में असीम की खोज की है। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जहाँ वह अपनी दृष्टि नहीं दौड़ाता। इसने प्रकृति का अंश-अंश स्वीकार किया है। जहाँ भी परिवर्तन या बदलाव की आशंका थी वहाँ उसने स्वीकार कर लिए। बदलने के भाव को हमेशा सिनेमा ने आत्मसात किया। बदलाव और सिनेमा का चोली-दामन का साथ है।

फ्रांस आधुनिक कला की जन्मदात्री माना जाता है। अत: सिनेमा का जन्म भी इस खूबसूरत धरती पर ही हुआ है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर इसका प्रभाव पड़ता

है। राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, भूमिपति-किसान, उद्योगपति-श्रमिक, इन सभी पर किसी न किसी तरीके से सिनेमा का प्रभाव पड़ता है। आज कल यह एक मनोरंजन का साधन बन गया है, किसी न किसी रूप से व्यक्ति को यह शांति प्रदान करता है। आधुनिक मनुष्य के मानसिक तनाव को यह कम करता है। आज शहर और गाँव दोनों क्षेत्रों के लोग सिनेमा के पात्रों का अनुकरण करते हैं। नये-नये फैशन, रहन-सहन में बदलाव यहाँ तक कि भाषा का परिवर्तन भी इन्हीं फ़िल्मों के कारण होते हैं। अत: कहा जा सकता है कि इसका नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके प्रभाव के कारण एक ओर समाज तरक्की कर रहा है तो दूसरी ओर समाज का पतन भी हो रहा है। सिगरेट, गुटका, शराब, ड्रग्स आदि के सेवन की लत सिनेमा के विज्ञापन और स्वयं सिनेमा में उनके प्रयोग को देखकर पड़ रही है। हिंसा, गुण्डागर्दी, अश्लील बातें भी आज की युवा पीढ़ी इसी से सीख रही है।

आकाशवाणी आधुनिक मानव की बड़ी सफलताओं में से एक है। किसी एक बात या समाचार को मीलों दूर बैठे लोग एक साथ एक समय में सुन सकते हैं। मार्कोनी जो इटली निवासी है, ने रेडियो का आविष्कार किया। इससे ग्रामीण जनता आज भी भरपूर लाभ उठा रही है। इस चमत्कारिक प्रणाली ने व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया सभी को प्रभावित किया है। इसके कारण हम सब मानव समाज एक दूसरे के निकट हो पाये हैं। हमारे आपसी संपर्क मानव जीवन को उन्नति और उल्लास से भर दिये हैं। इसी कारण आज सारा संसार विश्वबंधुत्व के बंधन में बंधा हुआ है। सारे संसार की एकात्मकता इसी पर आश्रित है।

संपूर्ण संसार में घटित घटनाओं, समाचारों आदि को गाँव के लोग भी अपने घरों में बैठकर जान सकते हैं। आज गाँव की भाषा में जो विकास देखा जाता है, उसका श्रेय आकाशवाणी को ही जाता है। ये लोग विभिन्न भाषाओं को जानने लगे हैं। विभिन्न संगीत का बोध इन्हें होने लगा है। आज साहित्य भी इसी माध्यम से जन-जन तक विशेषकर ग्रामों तक पहुँचाया जा रहा है।

शहरों में दूरदर्शन के आ जाने से आकाशवाणी का चलन थोड़ा कम होने लगा है। परन्तु आज भी यह श्रव्य माध्यम ग्रामों की लोकप्रिय प्राणाली है। अत: कहा जा

सकता है कि जनसंचार का यह सशक्त श्रव्य माध्यम है। इससे शिक्षा और विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। ग्रामीण जन इससे ज्ञानार्जन भी करते हैं। रेडियो के कार्यक्रमों में हिन्दी भाषा की एक प्रमुख भूमिका है। चूँकि यह श्रव्य साधन है इसीलिए अशिक्षित भी बोलने की इस प्रक्रिया से प्रभावित होता है। इसीलिए हिंदी के साथ-साथ इसमें अनेक भारतीय भाषाओं का प्रयोग होता है। अधिकाधिक ग्रामीण जन इससे लाभान्वित होते हैं। 'आकाशवाणी' से प्रसारित समाचार बुलेटिन, संगीत, ज्ञान-विज्ञान की बातें, मौसम की जानकारी, चक्काजाम की जानकारी, ज्योतिशास्त्र, गायनकला, संगीत कला, वार्तालाप, विशेष जीवनी की आख्यायिका आदि का लाभ उठाया जाता है। सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह है कि आज इसी ने हिंदी को व्यावसायिक भाषा बनाने में योगदान दिया है। विभिन्न स्तरों पर शिक्षा संबंधी कार्यक्रम भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इस माध्यम से अहिंदी भाषी जन को हिंदी शिक्षण योजना द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी के माध्यम से विभिन्न भाषाओं में एकता लाने का प्रयास किया जा रहा है।

दूरदर्शन समकालीन युग की आवश्यक माँग है। आज ऐसे लगता है कि शहर या ग्राम दोनों ही इस संचार साधन के बिना अपना विकास नहीं कर सकते। संचार साधन आज का सबसे सशक्त जनप्रिय माध्यम है। श्रव्य और दृश्य दोनों का सम्मिश्रण होने के कारण शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों के लोगों के लिए उपयुक्त है। यह आधुनिक वैज्ञानिक दुनिया का चमत्कारपूर्ण उपयोगी आविष्कार है। ये जनता में समाचार, शिक्षा और मनोरंजन का एक साथ निवारण करता है। यह उपकरण विदेशी उपनिवेशों का प्रचार बनकर हमारे निजी उद्योग व्यवस्था पर प्रभाव डाल रहा है। देशी लोग विदेशी उत्पाद के रंग में जल्दी रंग जाते हैं। इस प्रकार यह हमारे देशी वाणिज्य-व्यापार की गरिमा को कम कर रहा है। यह क्रिया बहुत हानिकारक सिद्ध हो रही है। उपभोक्ता स्वेच्छा से और आसानी से विदेशी वस्तुओं का क्रय कर रहे हैं और हमारी देशी सम्पत्ति अपने आप दूसरे देशों में एकत्रित हो रही है। स्वेदशी संवेदनाओं को जैसे भारतीय मनुष्य भूलता जा रहा है। जन मानस में संवेदनाओं की पलायनवादी अवस्था के कारण आपसी संबंध बिगड़ते चले जा रहे हैं। दूरदर्शन पश्चिमी संस्कृति और

आर्थिक व्यवस्था का बाजार बन गया है और वह भी बहुत ही आसानी से, सुविधापूर्वक उपलब्ध होने वाला बाजार। हमारी युवा पीढ़ी का आज पश्चिम के रंग में डूब जाने के लिए यह भी एक सशक्त साधन है। इसी साधन के सहयोग से उपनिवेशवादी देश विकासशील राष्ट्रों को अपने शोषण के जाल में फँसा लेते हैं। इन्होंने दूरदर्शन के जरिए मानवता जैसी पावन भावना को कई वर्गों में विभाजित किया है। उत्तेजन और असंवेदनशील दृश्यों-कृत्यों को दिखाकर वह हिंसा और विघटित भावनाओं को प्रेरित कर विरोधी भाव उत्पन्न कराता है।

दूरदर्शन का दूसरा रूप काफी सुघटित है। यह मनोरंजन का एक सरल उपलब्ध साधन भी है। यह आधुनिक सूचना माध्यमों में अपनी तुलनीयता नहीं रखता। हमारी दिनचर्या में यह बाधा अवश्य डाल रहा है। बच्चे विभिन्न कार्यक्रमों के कारण अपनी पढ़ाई-लिखाई से भटक रहे हैं। लेकिन खाली समय घर बैठे बिना धन खर्च किए समय बिताने का यह एक अच्छा साधन है। ज्ञान और शिक्षा से संबंधित जानकारी भी इसमें प्राप्त होती है। यह प्रांतीय भाषा, राष्ट्रभाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा से हमारा सम्पर्क बढ़ाता है। इस विकास ने तकनीकी के क्षेत्र में श्रव्य-दृश्य माध्यम से कला की चरम सीमा पा ली है। मनोरंजन की दुनिया में मनुष्य की इससे बड़ी उन्नति और क्या हो सकती है।

एक अनपढ़ किसान गाँव में बैठकर कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त कर सकता है। बुआई, कटाई, पानी देने की व्यवस्था, फसल के बारे में आधुनिक और वैज्ञानिक जानकारी उसे प्राप्त होती है। मौसम की भविष्यवाणी की जानकारी भी किसान को दूरदर्शन के माध्यम से प्राप्त होती है। दूरदर्शन के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा के संबंध में भी महत्वपूर्ण जानकारी देश के कोने-कोने में पहुँच रही है, ऐसे कितने ही अनगिनत लाभ यह हमें उपलब्ध करवा रहा है।

आज का वैज्ञानिक युग संगणक (कम्प्यूटर) का युग है। संगणक इस दुनिया का सबसे सशक्त संचार माध्यम है। इस संगणक का प्रभाव संसार के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ता है। संगणक में इंटरनेट वह व्यवस्था है जो दो संगणकों के माध्यम से किन्हीं दो व्यक्तियों, कम्पनियों, देशों आदि का आपस में संबंध जोड़ती है। यह वह बेतार का

तार है जो दूर-दूर तक हमारा एक दूसरे के साथ संपर्क बनाता है। इसके माध्यम से हम विभिन्न वेबसाइट देख सकते हैं। किसी भी विषय पर अनेकानेक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसी के आधार पर ई-मेल भी किया जाता है। इसी से हम आपस में बातचीत भी कर सकते हैं। प्राचीन पत्राचार का यह एक आधुनिक रूप माना जा सकता है। इसके माध्यम से सूचना, चित्र आदि को विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में एक या उससे भी अधिक लोगों को एक साथ क्षण भर में बिना किसी असुविधा के भेजा जा सकता है। इससे समय और श्रम की बचत होती है। क्षणों में पत्र-व्यवहार इसमें संभव हो जाता है।

इसमें जानकारियाँ असीम मात्रा में प्राप्त होती हैं। शैक्षिक समाज में यह एक आवश्यक वस्तु बन गई है। अशिक्षित समाज में भी यह प्रणाली बहुत चर्चित और उपयोगी सिद्ध हो रही है।

आज इंटरनेट ने संसार को भी अधिकाधिक रूप से प्रभावित किया है। अब यह प्रचार-प्रसार का अत्याधिक शक्तिशाली माध्यम बन चुका है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के बारे में यह जानकारी रखता है। कई गोपनीय जानकारियाँ जैसे – स्त्रियों से संबंधित, चिकित्सा संबंधी जानकारियाँ जो हम स्वच्छंद रूप से प्राप्त करने के लिए असुविधा महसूस करते हैं, वही जानकारी हम आसानी से गोपनीय रखते हुए इंटरनेट से प्राप्त कर सकते हैं।

सारे संसार की पत्र-पत्रिकाओं की जानकारी भी इसमें प्राप्त की जा सकती है। संसार के सभी विषयों का ज्ञान इसके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि इंटरनेट ने सूचना की दुनिया में एक नयी क्रांति ला दी है। यह समाज के सभी वर्गों के लिए उपयोगी है। समाज की संस्कृति, सभ्यता, संस्कार आदि सभी मानवीय भावनाओं के संबंध में इसमें जानकारी पायी जा सकती है। इससे केवल अपनी भाषा ही नहीं बल्कि चित्रों, चिन्हों आदि के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पेपर के बिना कार्य प्रणाली, ई-प्रशासन, ई-भुगतान, पत्रों का आदान-प्रदान, वैज्ञानिक एवं भौगोलिक जानकारी आदि सब बिना किसी पेपर फाइल का प्रयोग किये इसमें सुरक्षित रखा जा सकता है।

भारत में सांस्कृतिक-जीवन की आधारशिला आज के नवीनीकरण से परिवर्तित हो गई है। विज्ञान ने जीवन को बिल्कुल ही बदल दिया है। फिर चाहे वह आर्थिक हो या सांस्कृतिक जीवन। हमारा खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, क्रिया-कर्म, धार्मिक अनुष्ठान, आदर-सत्कार आदि सभी पर आधुनिकता की छाया अवश्य दिखाई देती है। अतः इन समस्त उपकरणों ने संस्कृति की रूप-रेखा ही बदल दी है।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक आते-आते भारत में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। सूचना क्रांति के कारण नये समाज का निर्माण हो रहा था। इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक धरातल पर एक नयी पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के विकास और लोकतंत्र के आलोक में भारतीय समाज नयी दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था। भारत की स्वतंत्रता के 40-50 वर्षों के बाद भारत के जनतंत्र की कमियाँ महसूस होने लगी। सामाजिक जीवन के गठन में कॉर्पोरेट आर्थिक मॉडल के आदर्श विकल्प के रूप में सामने आ गये। स्वातंत्र्योत्तरकालीन आर्थिक परिस्थितियाँ अंतिम दशक तक आते-आते एकदम बदल गयी और भारतीय सांस्कृतिक परिवेश वह नहीं रह गया जिसमें भारतीय जीवन मूल्यों की बुनियाद पड़ी थी। अंतिम दशक में आधुनिकता ने नया रूप ले लिया। नारी और पुरुषों की सोच और उनके विचार में क्रांति दिखाई देती है। उपभोक्तावादी संस्कृति और भूमंडलीकरण के आलोक में राष्ट्रीय, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सीमाएँ टूटने लगी और नारी के चिंतन में गतिशीलता आ गई। आर्थिक आज़ादी जनतांत्रिक चिंतन के आलोक में समाज के विभिन्न वर्ग अपने-अपने अस्तित्व और अपनी-अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करने लगे। दलित अपनी आवाज उठा रहे थे। पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था और चिंतन के खिलाफ नारी भी आवाज उठा रही थी। नारी शिक्षा और नारी की आर्थिक स्वतंत्रता अब समाज की पुरानी समस्याएँ हो गयी हैं। नारी की एक नयी छवि उभरकर सामने आयी और नारी का एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ। सूचना क्रांति और उपभोक्ता क्रांति नारी की नयी छवि को बहुत दूर तक ले जाती है। ज्यादातर मध्यम वर्गीय महिलाएँ आर्थिक स्वावलंबन के कारण परिवार और समाज की मान्यताओं को तोड़कर प्रतिष्ठित

मर्यादाओं की सीमाओं से बाहर आ गयी हैं। नारियों और गृहिणियों की वैवाहिक समस्याओं के बारे में खुलकर सवाल-जवाब किये जाते हैं। ऊँचे प्रबंधक के पदों पर काम करने वाली महिलाएँ सर्वाधिक आकर्षक छवि प्रस्तुत करती हैं।

समग्रत: अंतिम दशक के उपन्यास सृजन की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि अंतिम दशक तक आते-आते भारतीय समाज में बड़े पैमाने पर परिवर्तन होने लगे जिन्होंने उपन्यास लेखन की चेतना को प्रभावित किया तद्नुसार उपन्यासकारों ने भारतीय समाज की वास्तविकताओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है।

द्वितीय अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों के कथ्य

द्वितीय अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों के कथ्य

उपन्यासकार जब वस्तुपरक दृष्टि से जीवन की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है तब उसका ध्यान उन सामाजिक अंत: संबंधों पर जाता है जिनसे किसी समय का सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने विशेष रूप से उन सामाजिक अंत:संबंधों पर ध्यान दिया जिनसे भारतीय समाज की संरचना के केन्द्र में उपस्थित स्त्री-पुरुष संबंध के विकास की प्रक्रिया की समीक्षा होने लगी। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। भारतीय समाज के विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय चिंतन में जो मूलभूत परिवर्तन हुए हैं उसी के कारण उपन्यासकारों की दृष्टि स्त्री-पुरुष संबंधों पर नये सिरे से सोचने की ओर प्रेरित हुई। नैतिकता पर आधारित स्त्री-पुरुष संबंधी अवधारणाएँ धर्मनिरपेक्ष और समानता पर आधारित मानव संबंधों की अवधारणाओं में रूपानरित हुई तो गहरे स्तरपर उपन्यासकारों की दृष्टि प्रभावित हुई। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की समाज दृष्टि में संपन्न परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक स्थिति से दूसरी स्थिति में संक्रमण की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उपन्यासकारों के अनुभव जगत के यथार्थ को स्पष्ट करना जरूरी है। इसलिए अंतिम दशक के भारतीय समाज की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

बीसवीं सदी केअंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासकारों के औपन्यासिक कथ्य, अंतिम दशक की भारतीय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक वास्तविकताओं के आधार पर निर्मित हुए हैं। सच्चाई यह है कि अंतिम दशक का भारतीय समाज एकोन्मुखया एक रूप समाज नहीं है।

ग्रामीण भारतीय समाज से लेकर महानगरीय समाज तक समानांतर कई बहुलताओं को लेकर भारतीय समाज बहुआयामी विशेषताओं और जटिल संबंधों को रचनाकारों के सामने प्रस्तुत करता है।जहाँ एक ओर भारतीय अर्थ व्यवस्था वैश्विक

होती जा रही है वहाँ भारतीय सामाजिक व्यवस्था स्थानीय और जातीय होती जा रही है। राजनैतिक मोर्चे पर जनतंत्र और धर्मनिरपेक्षता दिखाई देती है। विभिन्न राजनैतिक समूह अपने-अपने ढंग से राज्य प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। राजनैतिक विचारधाराएँ सत्ता प्राप्त करने के संघर्ष, बौद्धिक स्तर पर तरह-तरह के प्रभाव, आर्थिक जीवन की वास्तविकताएँ सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इस बहुल वास्तविकताओं की स्थिति में भारतीय नारी चेतना का विकास नारी अस्मिता की अभिव्यक्ति को कथ्य का रूप देता है। नारी-पुरुष के संबंधों में दमन और सहमति की अंतः क्रीड़ा कई संदर्भों में भारतीय सामाजिक यथार्थ को अनावृत्त करती है। इसलिए हिन्दी तेलुगु उपन्यासकारों के उपन्यासों में कथ्य ग्रहण और अभिव्यक्ति के स्तर पर वैचारिक विभिन्नता पाई जाती है। इस विभिन्नता के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों के उपन्यासों के कथ्यों और कथा वस्तु का विश्लेषण किया जा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन में अंतिम दशक में प्रकाशित हिन्दी और तेलुगु के 20 उपन्यासों का चयन किया गया है। इनका कथ्य और वस्तुपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.1 परंपरा बनाम वर्तमान का संघर्ष :‘अपने-अपने कोणार्क’

1995में चंद्रकांता द्वारा लिखित उपन्यास –‘अपने-अपने कोणार्क’ प्राचीन उडीसा की सांस्कृतिक धरोहरः पुरी और कोणार्क-जीवन के दो पहलू, जिसे लेखिका ने ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिदृश्य के साथ वर्तमान की सच्चाइयों के साथ जोड़कर देखा है। प्राचीन भारत का जीवन एक साधारण जीवन नहीं था। अपने को नियमित रूप में बाँधकर, कोई भी समस्या लोगों के लिए समस्या न होकर चुनौती हो पाती थी जिन्हें स्वीकार कर लोग जीवन-यापन करते थे।

भारतीय जीवन में मुगलों के आगमन पर उनमें कोई तबदीली नहीं आयी, किन्तु अंग्रेजों के आगमन से उनकी संस्कृति के मोह में पड़कर, अपनी परंपराओं के पालन में काफी परिवर्तन आ गये थे।

समाज सुधार, स्त्री उद्धार तथा धर्म सुधार आंदोलनों के कारण अलौकिक परंपराएँ लोक जीवन में व्यर्थ समझी जाने लगी। व्रत, उपवास रखकर ईश्वर की आराधना करना अनावश्यक समझा जाने लगा। मन को स्वच्छ रखकर चाय-नाश्ता, भोजन-शयन की तरह ईश्वर की आराधना भी एक अंश ही मानने लगे, न कि जीवन का चरम लक्ष्य है। भौतिक सुखों का आकर्षण सबके जीवन में जबर्दस्त प्रवेश करने लगा।

'अपने-अपने कोणार्क' की नायिका कुनी जो प्राचीन परंपराओं से अवगत होने पर भी उस राह पर न चलकर जमाने से न्याय माँगती है। सूर्य मंदिर-कोणार्क एक होने पर भी लोग अपने-अपने कोणार्क को अपने अनुभव से लेते हैं। किन्तु बुद्धिमान वर्ग हर तरफ स्वयं को नीति-नियमों से सामंजस्य बनाकर चलना चाहता है। परिस्थितियों और परिवर्तनशील प्रतिमानों के कारण स्वयं को नियमों में बँधा पाते हैं।

कुनी घर की बड़ी बेटी है। उसकी दो बहनें तथा दो छोटे भाई भी हैं। उड़ीसा के जगन्नाथ भगवान जीवन उनके बीच एक केन्द्र बिन्दु हैं।सागर तट, प्राकृतिक घटनाओं के उद्दीपन में योगदान देते हैं।

कुनी के विवाह के लिए रिश्ता आता है। लड़के का नाम प्रभाकर था। दोनों एक दूसरे को पसंद करते हैं। किन्तु दहेज में गहना-गुरिया, साजो-सामान, रंगीन टी.वी., स्कूटर आदि की माँग की जाती है।

कुनी ने देखा कि उसके पिताजी को इन सब चीजों को जुटाने में मुश्किल हो जाएगी। पिता की दीनावस्था को कुनी ने समझ लिया। कुनी से देखा न गया। आखिर कुनी ने बऊ (दादी) से कह दिया कि-“नहीं बऊ, बप्पा को मेरे लिए किसी का पैर नहींछुएँगे। मौसा हमारी तरफ से उन लोगों को कोई भी संदेशा नहीं देंगे। मुझे यह शादी नहीं करनी है।”[1]

यह कुनी की संवेदना मात्र न होकर कुनी जैसी स्वाभिमानी युवतियों की संवेदना है। नारी को एक मोल भाव की वस्तु समझा जाता है। अत: उसका स्वाभिमान जाग उठता है। किन्तु यह निर्णय उनके भविष्य के जीवन को हिला देने वाला हो

सकता है। क्योंकि पुरुष बिना विवाह के जी लेगा, किन्तु बहन-बेटियों के लिए घर में रह कर जीवन-यापन करना किसी को भी जँचेगा नहीं। भले ही आत्माभिमान जाग उठा हो किन्तु परिवेश व परिस्थिति उसे हर क्षण नोच खाएगा।

युवावस्था में तो गुजारा हो जाएगा। किन्तु बुढ़ापे या बीमारी में कौन करेगा? जब आज पुरुष समाज अपनी हवस पूर्ति के लिए गिद्ध की नज़र देखता है। इन सबको सह पाना आज की नारी के लिए काफी कठिन है।

अत: इस परिस्थिति में ऐसे समाज की आवश्यकता है जहाँ नारी स्वतंत्रता से जी सके।

कुनी द्वारा विवाह प्रस्ताव ठुकराए जाने के बाद उसे सिद्धार्थ नामक युवक से प्रेम होता है। ऐसी स्थिति में कुनी दुविधा में पड़ जाती है कि क्या उसका ऐसा करना ठीक है?या पाप है? हमारे देश में प्यार की भावना की कद्र नहीं है क्योंकि किसी अन्य स्त्री या पुरुष से प्रेम अपने आत्मा के नियंत्रण में असफल होना है। आग में तपकर सोने-सा दमकने की प्रशंसा होती है। किन्तु एक ओर मन है जो सब रिवाजों को छोड़कर अपनी आवश्यकताओं को पूरी कर लेना चाहता है तो फिर पछताना न पड़े। इस द्वंद्व के बीच प्राय: आत्मा की हार और मन की जीत हो जाती है। कुनी कहती है –“मुझे जैसे चोरी करते रंगे हाथ पकड़ लिया।”[2]

कुनी सिद्धार्थ से कहती है –“यह विश्वास और किवदंतियों का प्रदेश है सिद्धार्थ।” सिद्धार्थ कहता है कि –“ताज्जुब है, दुनिया बदल गयी है पर, हमारे यहाँ अभी भी आदिम सभ्यता और अंधविश्वासों में जीने वाले लोग बहुतायत में मौजूद हैं, पिछड़े हुए सभ्य लोग।”[3]

आज का युवक द्वंद्व में जी रहा है। न पीछे की ओर देखता है और न आगे कीओर ।

आज का युवक अपने भविष्य के बारे में बिना कुछ सोचे-समझे अपने मन की चाह को पूरा कर लेना चाहता है। इसी संदर्भ में कुनी कहती है –“किन्तु आदिवासियों

में एक बात अच्छी है। वह है कि प्रेम करने में कोई रोक नहीं। विवाह अपनी सहमती से तय हो जाता है।इस दुविधा से कुनी खीझ उठती है और कहती है कि –"कितना सहज होता है दूसरों को सीखें देना, यह करो, यह न करो के अनुशासन में बाँध देना।"[4]

मनुष्यों का समाज भी एक समुन्दर होता है, समय गुजरते, कुछ लोगों की मनमानी करते-करते यह समाज इस तरह का बन जाता है, जो पुरातन से भिन्न होता है। बदलते युग व परिस्थिति को वे दोष देते हैं किन्तु सबसे पहले स्वयं के मन में ही कमजोरी होती है जिसका कि बदलते परिवेश पर दोषारोपण होता है। आज सत् युग, द्वापर युग, त्रेता युग को बीतेकरोड़ों वर्ष हो गये। रोटी कपड़ा और मकान प्राप्त करने के केवल आयाम बदले हैं, किन्तु मनुष्य वही है।

कुनी के मन में एक बात दृढ़ता से घर कर गयी है कि –"प्रेम करना पाप है।" इसी पर उसका ध्यान रहा था। इतने में आगे चलकर उसे रामकृष्ण परमहंस का एक और वाक्य मिला कि –"चाहना पाप है तो मन में चाह उत्पन्न होना भी पाप है।"[5]

कुनी अपने मन व समाज को समझाने के लिए कहती है कि –"पाण्डवों तथा कुंती के मन में भी पाप था क्योंकि श्रीकृष्ण ने एक गुठली को रोपते समय कहा था कि यदि सभी अपने-अपने पाप या इच्छा निस्संकोच स्वीकारो, तो यह आम पक जाएगा। अत: सभी ने अपनी इच्छाओं को स्वीकारा तो आम पक गया था। कुंती ने स्वीकारा कि वह कर्ण के प्रति आकृष्ट है।"[6]

कुनी के लिए अपनी स्थिति बहुत दुविधाजनक लगने लगीवह घर की बडी बेटी है। वह जो भी करेगी, उसका प्रभाव सब पर और दूर-दूर तक पड़ेगा। दूसरी ओर एक नारी के होते स्वयं की भी इच्छाएँ प्रबल थी। उसकी स्थिति से सभी को सहानुभूति थी। किन्तु वह निस्सहाय। कई बार कुनी को भाई-भाभियों से ताने भी सुनने पड़ते थे। यह ऐसी बात है जहाँ मनुष्य टूट जाता है। मन में बात आती है कि इतना किया किन्तु क्या हुआ ?

छोटी भाभी कावेरी पति दिवाकर की गैर-गिम्मेदारी के लिए मुझे जवाबदेह ठहरा दी। दिवाकर लौटा तो मैंने उसे डाँटा –"तुम कावेरी के लिए रूके क्यों नहीं, जब उसे तैयार होने को कह गए थे। वह तैयार होकर आई तो तुम पता नहीं कहाँ खिसक लिए। यह तो बड़ी बेहुदी की बात है।

कावेरी के गुस्से का कारण जब मैंने पूछा तो वह बताने लगी कि –"इस घर में बहुओं की बेइज्जती के सिवा और क्या मिलता है दीदी?पूछती हो क्या हुआ? आपकी तो चलती खूब है। आप भी तो किसी को कुछ सिखाती-समझाती नहीं हैं।" "मैंने इनसे शादी की है। कोई भागकर तो नहीं आई हूँ। मेरी भी कोई मान-मर्यादा है, कोई इच्छा है। मुझे तैयार होने को कह गए और आप बिना-बताए पता नहीं कहाँ चल दिए। क्या यही यहाँ का तौर-तरीका है?"[7]

कुनी एक बार बीमार पड़ जाती है। पिताजी के परिचित एवं विख्यात डॉक्टर के पास ले जाया जाता है। डॉक्टर कुनी की जाँच के बहाने मर्म अंगों को स्पर्श करता है। कुनी झिड़का कर घर आ जाती है। वह डाक्टर चिकित्सा के बहाने घर पर भी आता है।

डॉक्टरत्रिपाठी चेकअप, एक्स-रे, ब्लड टैस्ट वगैरह करवाकर 'स्पांन्डिलिसिस' बताया था। उसके लिए कुछ व्यायाम और ट्राक्शन के लिए मुझे क्लिनिक पर आने के लिए कहा –"मैं ट्राक्शन में बंधी दो दिन लेटी रही। नर्स व्यायाम सिखाती। लेकिन तीसरे दिन नर्सों को दूसरे काम सौंपकर डॉक्टर खुद मुझे 'गाइड' करने लगा और उस दिन मैंने डॉक्टर की जगह एक जंगली जानवर के पंजे अपनी देह पर रेंगते महसूस किए। मैं झटके से उठकर बैठ गई तो गर्दन में टीस उठी। उसकी जुबान से मीठे शब्द झर रहे थे पर हाथ मेरे जिस्म के नरम हिस्से तलाश रहे थे। मेरी हड़बड़ी में उठते भी उसने दोनों हाथों से मुझे भींच लिया।"[8]

मन में अपने पर ही गुस्सा आने लगा कि –"मैंने चिल्लाकर इस भले आदमी को भरे क्लिनिक में बेनकाब क्यों नहीं किया?"[9]

पढ़ाई और शिक्षा में काफी अंतर है। अनपढ़ भी शिक्षित होता है किंतु पढ़े-लिखे व्यक्ति अशिक्षित हो सकते हैं। जब तक शरीर से संबंधित विषयों को महत्व दिया जाता रहेगा, तब तक पढ़ा लिखा तथा जानकार व्यक्ति भी शरीर के लिए ही करेगा, चाहे वह अध्यापक हो, डॉक्टर हो, स्त्री हो या पुरुष।

सिद्धार्थ का पत्र प्रियंवदा नामक मित्र के द्वारा कुनी को मिलता है। पत्र में सिद्धार्थ ने जिक्र किया था कि अमेरिका सहित मित्र राष्ट्र भी बगदाद पर आक्रमण करते हैं। जहाँ-तहाँ बम गिरते रहते हैं। किसी पत्रकार के साथ टैक्सी में जोर्डन की ओर जाते समय बम गिरा और उसका एक पैर सेप्टिक हो गया जिसे काटना पड़ा। किन्तु नासिरा नाम की नर्स ने उसकी सेवा-सुश्रुषा कर उबार लिया है। नासिरा का भी कोई अपना नहीं होने के कारण उससे विवाह करना आवश्यक हो गया है। अतः कुनी के सारे सपनों पर पानी फिर जाता है।

इस पत्र को पढ़ने के बाद कुनी के मन में हलचल मचलने लगी। घर का वातावरण भी पहले-सा उतना ठीक नहीं लग रहा है। कुछ समय के लिए घर से दूर कहीं बाहर रहना चाहती है। कुनीने निर्णय कर लिया कि-“फालतू कामों में अब नहीं उलझना। मैं कुछ वक्त आदिवासी बच्चों-स्त्रियों के साथ बाँट लूँगी।”[10]

कुनी तो ननिहाल कोरापुट के पास एक छोटे से सोरा गाँव की ग्रामवासियों के लिए कुछ करना चाहती है। शायद मेरे मन को भी कोई सुकून मिल जाता है। राय मौसा जी ने सुझाव दिया कि –“बालासोर, संबलपुर, गंजाम आदि प्रदेश में शोषण के शिकार आदिम अवस्था में चिपके आदिवासियों के बच्चों को शिक्षा देने के लिए कहा।”[11]

कुनी एक वर्ष के लिए संबलपुर गाँवमेंठहरकर आदिवासियों को पढ़ाने जाती है।पहली बार वह अपने माता-पिता को छोड़कर संबलपुर जाती है। वहाँ पर पढ़ाने-लिखाने का प्रयास चलता है। माता-पिता धन कमाने की लालच में बच्चों को पढ़ने नहीं भेजते। बीमार हो जाने पर वहाँ के अस्पताल जाते नहीं है। क्योंकि उनके देवता नाराज हो जाएँगे।

प्रभा मौसी कुनी के लिए डॉक्टर कारिश्तालाती है। जिसके दो छोटे बच्चे हैं, किन्तु माँ नहीं है। उसकी उम्र भी चालीस के आसपास होगी।कुनी उसी डॉक्टर अनिरुद्ध के साथ विवाह कर लेती है, जो धनवान है। अत: जीवन के अपने-अपने कोणार्क होते हैं। यह परिस्थिति स्वयं बनती जाती है या अदृश्य शक्ति कार्य करती है।

चाहत का होना या मन में प्रेम का उत्पन्न होना क्या पाप है? इसका उत्तर व्यक्ति तथा उसकी इच्छाओं पर अधिक निर्भर है। जिसके लिए जो लक्ष्य है वही प्राप्त होता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कठिनाइयाँ तो अधिक हैं किंतु उसमें अनुभव प्राप्त होने पर आनंद भी कुछ कम नहीं है। किंतु मनुष्य को देर सबेर आनंद की प्राप्ति होती है तथा सम्मान मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्राचीन जीवन की परंपराओं का पुन:स्थापन दिखाई देता है। इसमें जीवन को एक तपस्या के रूप में दर्शाया गया है। आधुनिक जीवन भी एक साधारणता के गलियारे में विचरित जीवन नहीं बल्कि यह आसमान को छूने वाला एक भव्य सपना ही है। अत: प्रत्येक समस्या एक चुनौती बनकर सामने आती है। अत: कुनी के माध्यम से नारी की जीत को यहाँ पर दिखाया गया है।

2.2 नारी मुक्ति चेतना और संगठनात्मक विद्रोह :'आवां'

चित्रा मुद्गल आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की बहुचर्चित, सम्मानित एवं प्रतिनिधि लेखिका और जानी मानी समाज सेविका है। इन्होंने 'आवां' नामक उपन्यास सन् 1999 ई. में लिखा। इस उपन्यास पर सहस्राब्दी का पहला अंतर्राष्ट्रीय 'इन्दु शर्मा कथा सम्मान' लंदन (इंग्लैंड) में पाने का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ। इसके अलावा बिड़ला फाउंडेशन द्वारा 'व्यास सम्मान' तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'साहित्य भूषण सम्मान' से इन्हें अलंकृत किया जा चुका है।

श्रीमती कुसुमा वार्ष्णेय के अनुसार –"'आवां' नारी को हर तरह के अवमूल्यन से बचने को उत्प्रेरित करता है। रुढ़ियों और अवमूल्यन दोनों से जब नारी मुक्ति होगी तो वही मुक्ति चेतना का सही अर्थ होगा।"[12]

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा के अनुसार –"'आवां' एक जलती हुई भट्टी है। समाज में व्याप्त विसंगतियों की या यों कहूँ मानवीय जीवन की उन ज्ञान-अज्ञान विसंगतियों की जिन्हें आज हम प्रत्येक व्यक्ति के मुखौटे के अंदर देख सकते हैं।"[13]

श्री इन्दु प्रकाश पाण्डेय ने कहा है कि –"चित्रा ने नारी के देह भोग को बलात्कार, विवाह, मन के वरण, स्त्री के विवाहेतर संबंधों से जोड़कर देह मुक्ति चेतना के सही अर्थ को ढूँढने की चेष्टा की है।"[14]

'आवां' में मुख्य रूप से तीन प्रकार के विषयों का उल्लेख है :-

1. 'कामगार आघाडी' जो एक ट्रेड यूनियन है और पूरी रचना के हर अध्याय में यह कामगार आघाडी इस प्रकार हस्तक्षेप करता है जैसे वह पूरे उपन्यास की चेतना हो।

2. स्त्री संगठन है –'श्रमजीवा'(पापड़ बेलने वाली) घरेलू उद्योगों को संचालित करता यह संगठन दूसरा हस्तक्षेप है। यही एक के वर्चस्व केन्द्र पुरुष हैं तो दूसरे के वर्चस्व के केन्द्र स्त्री।

3. तीसरा संगठन है –'जोगी री' जो वेश्या (जिन्हें अधिक सभ्य भाषा में सेक्स वर्कर्स कहा जाता है)वर्कर्स का संगठन है। यहाँ आकर चित्रा जी ने सर्जनात्मक विचलन किया है। यहाँ न पुरुष का वर्चस्व है, न स्त्री वर्चस्व। यहाँ वर्चस्व है एक भाव संवेग का और यहाँ की केन्द्रीय वस्तु है – व्यथा, जो जघन्य मजबूरी से शुरू होती है और किसी अगम्य अपराध की आग में झुलसकर अंत में समाप्त होती है।"[15]

'आवां' उपन्यास की नायिका नमिता है, जो कामगार आघाड़ी के महासचिव देवीशंकर पाण्डेय की बड़ी पुत्री है। नमिता की एक छोटी बहन छुनिया और भैय्या मुन्ना है। माँ उर्मिला शाहबेन के 'श्रमजीवा' में पापड़ बेलने का काम करती है।

श्रमिक संघर्ष के अनशन के समय किसी ने देवीशंकर की पीठ में छुरा भोंककर उसे घायल कर देता है जिसकी वजह सेवह लकवे से ग्रसित होकर बिस्तर

पर पड़े रहने के लिए मजबूर होते हैं। पिता की अस्वस्थता के कारण नमिता की पढ़ाई छूट जाती है। घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए बच्चों को पढ़ाना, साड़ियों में फॉल टाँकना, श्रमजीवा में पापड़ बेलना और पिता की देखभाल करना आदि सबकाम वह बड़ी फुर्ती से करती है।

इन परिस्थितियों में देवीशंकर की जगह पर कार्यालय में अन्ना साहब की कृपा से रु.1500 के वेतन पर नमिता की नियुक्ति की जाती है। एक दिन कार्यालय में अन्ना साहब नमिता के पास आकर बैठ जाते हैं तो नमिता को कुछ अजीब सा लगता है। अन्ना साहब उसकी शंका को देखकर कहने लगता है कि - "शायद मैं तुम्हारे संग कोई अनधिकार चेष्टा करने वाला हूँ। ऐसा कुछ भी नहीं करने वाला हूँ मैं जिससे तुम्हारी अस्मिता पर आंच आए।"[16] "देह मुझे नहीं भोगती। भूले-भटके मैं स्वयं अपनी दैहिक और मानसिक थकान उतारने के लिए उसका उपयोग कर लेता हूँ और नई स्फूर्ति, नई ऊर्जा के साथ श्रमिक-सेवा में संलग्न हो उठता हूँ... इधर देखो मेरी ओर, नमिता !" "मेरी खुरदरी उँगलियाँ तुम्हारे सूख रहे होंठों को पपड़ियाता हुआ नहीं देख सकती। जबान फेर देखो ! दोस्त की बेटी हो तुम, बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूँ, मैं तुम्हारा पिता नहीं हूँ, रिश्ते की इस गहन अंतर्सूक्ष्मता को महसूस कर लोगी तो स्वयं को शोषित अनुभव नहीं करोगी। न छुड़ाने की कोशिश करो, न उठने की....।"[17]

लेखिका चित्रा मुद्‌गल कहती है कि उम्र में और ओहदे में आदमी कितना ही बड़ा क्यों नहो लेकिन जब लड़की आर्थिक तंगी से गुजरती है तो वहाँ ऐसे व्यक्ति भी उस मौके का फायदा उठाना चाहते हैं। ऐसी हरकतें करने वालों का एक नमूना है अन्ना साहब। पिता के बराबर उम्र के और दोस्त होते हुए, बेटी के उम्र की बराबर की लड़की के साथ अश्लील हरकत करने मेंबाज नहीं आते और वह भी अपने कार्यालय में ही। तो ऐसी स्थितियों में लड़की के लिए सुरक्षित जगह है कहाँ?

नमिता के सामने घर की आर्थिक तंगी और दूसरी ओर अन्ना साहब का विराट व्यक्तित्व। नमिता के सामने एक ओर आत्म सम्मान और दूसरी ओर पैसों की आवश्यकता!किसे छोड़े? किसे अपनाये ?

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि नमिता जैसी निम्न-मध्य वर्ग की लड़कियाँ आत्म सम्मान एवं संस्कारों के प्रति जागरूक रहने की कोशिश करती हैं, लेकिन समाज उसे कहाँ बचने देता ?

नमिता अपनी नौकरी की खबर शाहबेन को देती है तो वह बहुत खुश होती है। शाहबेन के शब्दों से नमिता का व्यक्तित्व मालूम होता है–"ईश्वर के घर में देर है अंधेर नहीं। बहोत अच्छी खबर सुनाई तूने छोकरी। तेरे को पापड़ लाटते देखके मैं बापू से दररोज प्रार्थना करती होती कि बापू, तुम्हारी ये लाक छोकरी की उम्र पढ़ने को ठहरी, अच्छी नौकरी की ठहरी। उसके ऊपर कृपा करना... मेरे को बरदाश्त नहीं बापू , बरदाश्त नहीं। कौन बरदाश्त करेगा बापू। अपने मुलुक की भविष्य की झाँसी की रानी।" श्रमजीवा में बैठ के पापड़ लाटे ?"[18]

देवीशंकर की अस्वस्थता पर चिंतित होने का दिखावा करते हुए अन्ना साहब अपने घर की चाबी नमिता की माँ के हाथों सौंप देता है। माँ से नमिता चाबी को वापस करने का आग्रह करती हुई कहती है कि –"लौटा दीजिए उन्हें, क्योंकि हम उनके घर में नहीं रह सकते।"

"हमारे पास रहने के लिए अपना घर है - बाबूजी का कमाया हुआ।"

माँ कहती है कि –"मगर अपना घर किराये पर उठाकर सुख-चैन की बंसी बजा सकते हैं तो बजा लेने में कैसा परहेज।"

"परहेज बहुत बड़ा है। हम जीवन भर अन्ना साहब की कृपा-तले दबकर नहीं रह सकते।"

"दिक्कत क्या है तेरी ?"

"बस इतनी कि वे चाहें अपनी अनुकंपा किसी बेघर-बार पर बरसाएँ। हमारा स्वाभिमान खरीद नहीं सकते। फिर हमें किराये की जरूरत ही क्या है ?मैं साड़े तीन हजार कमा रही हूँ। पापड़ बेल तुम कम नहीं कमाती ?"[19]

माँ और नमिता के संवाद के दौरान नमिता का स्वाभिमान और अन्ना साहब की चालबाजी मालूम होती है।

नमिता अन्ना साहब के घर की चाबी रखने से इनकार कर देती है तो माँ पूछती है कि –“तेरे ब्याह के बाद हमारा क्या होगा?” इसके उत्तर में नमिता दृढ़ता से कहती है कि –“उसकी चिंता छोड़ो। ब्याह-शादी पर से मेरा विश्वास उठ गया है। तुम्हारे और बाबूजी के कटु संबंधों ने इसकी कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी।”[20]

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि घर के आपसी रिश्ते, व्यवहार, परिस्थितियाँ किस प्रकार बच्चों की मानसिकता को प्रभावित करती हैं। शादी तो किसी की भी जिंदगी में एक अहं भूमिका है। तो इसके प्रति इस प्रकार के विरोधी स्वभाव का पनपना बहुत ही विचित्र लगता है।

देवीशंकर नमिता को बहुत मानते हैं लेकिन माँ उर्मिला बात-बे-बात पर उसे ताना देती रहती है। पति और नमिता के प्रति माँ रुष्ठ व्यवहार करती है। माँ के साथ कुंती मौसी भी नमिता के प्रति ईर्ष्यालु है।

पवार से बातें करते समय अपने माँ-बाप के व्यवहार के बारे में बताती है – “बाबूजी हमेशा स्वयं अपने विवेक के उपयोग पर बल देते हैं.... और माँ की तो बाबूजी बहुत इज्जत करते हैं। मुझे तो अक्सर ऐसा लगता है कि मेरे घर में स्त्री नहीं, पुरुष प्रताड़ित है।”[21]

कुंती मौसी नमिता की शादी के बारे में माँ के कान भरते हुए सलाह देती है कि –“दीदी, पहला काम करो, नमिता के पर कतरो। नौकरी छोड़ उसे घर बैठाओ। फिर सुयोग ताड़, हाथ पीलेकर, गंगा नहाओ।”[22]

लड़का कैसा भी हो, किसी न किसी तरह नमिता की शादी करा देने के संदर्भ में दीदी से कुंती मौसी कहती है –“पानी अब भी सिर पर से नहीं गुजरा दीदी। चित्त ठिकाने कर इतमीनान से सोच-विचार लो। जिस लड़के की बात चलाई थी नमिता के हाथ पीले करने की अब भी हाथ से नहीं छटका।”[23] मौसी के इस शादी के प्रस्ताव को

सुनकर नमिता साफ इनकार कर देती है कि - "कह दे मौसी को मुझे शादी ब्याह नहीं करना। कह दे मौसी को चैन से सोए। पाँच साल तक मेरे लिए दुल्हा खोजने में उनकी एड़ियाँ न रगड़े। छोटे भाई बहनों को अधर में छोड़ मैं अपना बैंड बजवाने बैठ जाऊँ।"[24]

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि नमिता का अपनी माता और मौसी के साथ बिल्कुल नहीं जमता।

एक बार अंजना वासवानी नमिता से चिल्ड बियर पीने के लिए कहती है तो नमिता मना करते हुए कहती है कि –"संस्कारों की बात है, मैडम। संस्कारों के प्रतिपक्ष में खड़े होना मेरे लिए सहज नहीं।"[25]

इसका जवाब अंजना वासवानी के सामने खुलता है। संयोगवंश बाबा ज्वैलर्स की अंजना वासवानी से नमिता की मुलाकात लोकल ट्रेन में होती है। हड़बड़ाहट में नमिता सही टिकेट के बिना पहले दर्जे के डिब्बे में चढ़ जाती है तो अंजना वासवानी ने नमिता को जाने बिना ही टिकट चैकिंग के समय मदद करने का आश्वासन देती है। ऐसे लोगों के प्रति सद्भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अंजना वासवानी अपना परिचय पत्र देकर जरूरत पड़ने पर उससे संपर्क करने की बात कहती है। नमिता को बाबा ज्वैलर्स में साढ़े तीन हजार की नौकरी मिलना, किसी के लिए भी सपनों की उड़ान से अधिक है। 'क्रिस्टल' में अनोखे ढंग से वासवानी नमिता का जन्मदिन मनाती है, फैशनबुल पोषाक और पर्स खरीदती है, पर्स में एक बड़ा नोट रखकर कहती है –"पाओगी वह नोट, सोने का अंडा देने वाली मुर्गी की भाँति तुम्हें अनगिनत नोट देगा, जैसा कि पहले मेरे पर्स में सुरक्षित नोट ने किया....।"[26]

नमिता स्वयं इस अनपेक्षित एवं अप्रत्याशित व्यवहार से निश्चेष्ठ होती है। जो ममता माँ से नहीं मिलती है वह अंजना वासवानी से मिलते ही मन में संदेह होने पर भी कुछ कह या समझ नहीं पाती है।

अंजना वासवानी नमिता के संदेह को दूर कर उसे यकीन दिलाने की कोशिश में कहती है कि –“सोने का खारापन, मैं बिना अग्नि-परीक्षा के अनुभव कर सकती हूँ, नमिता।”[27]

इतना तो मानना है कि अंजना वासवानी बड़े ही चतुर एवं व्यावहारिक है। नमिता की स्थिति को समझकर वह बड़ी समझदारी से उसे वह अपने वश में कर रही है। नमिता को समझने में कहीं चूक नहीं हुई थी। सचमुच नमिता तो सोना ही है। नमिता जैसी लड़कियाँ समझदार होते हुए भी वासवानी के स्नेहिल व्यवहार में पूरी तरह से सिक्त हो जाती हैं। इन स्थितियों से किशोरी उम्र की कितनी लड़कियाँ उभर पाएँगीं ?

गौतमी और अंजना वासवानी दोनों किसी और के लिए एजेंट के रूप में काम करती हैं। यह एक ऐसा गिरोह है जिसकी चपेट में नमिता जैसी कई लड़कियाँ अनजाने में आ जाती हैं। इस दैन्य एवं निस्सहाय स्थिति की कीमत क्या कभी कोई चुका पाएँगे ?

बाबा ज्वैलर्स में नौकरी करते समय अंजना वासवानी ने नमिता से कामगारी आघाड़ी की अच्छी खासी नौकरी को छोड़ने की मजबूरी को पूछती है। अंजना वासवानी ने नमिता के सामने एक आकर्षक प्रस्ताव रखकर सोच-विचार करने के बाद जवाब देने के लिए कहती है कि –“हैदराबाद के सुप्रतिष्ठित ‘राधा कृष्ण ज्वैलर्स डीलर’ ने अपने यहाँ हैदराबाद शैली के आभूषणों में मोतियों और रत्नों की बेजोड़ कारीगरी के प्रशिक्षण हेतु एक अभिनव पाठ्यक्रम प्रयोग की दृष्टि से आरंभ किया है। प्रशिक्षण के दौरान उन्हीं के लिए काम करना होगा। कुल ग्यारह माह की अवधि है प्रशिक्षण की। प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण हेतु नाममात्र की फीस भरनी होगी। बंजारा हिल्स में उनका शोरूम है। पत्थर गट्टी के निकट प्रशिक्षण केन्द्र। रहने-खाने की व्यवस्था प्रशिक्षार्थी को स्वयं करनी होगी।”[28]

पिता की अस्वस्थता और घर की आर्थिक तंगी की परिस्थितियों में घर और बाहर की जिम्मेदारियाँ नमिता को निभाना है। इस व्यावसायिक प्रशिक्षण की विशेष

जानकारी की सख्त जरूरत है। अंजना वासवानी ने यह भी आश्वासन दिया है कि "उसकीतनख्वाह प्रत्येक माह की पहली तारीख को उसकी माँ के पास पहुँच जाएगी। मैडम का ऋण उतारने के लिए उसे उनके यहाँ काम करना होगा। ऋण-मुक्ति के उपरांत कोई बाध्यता नहीं होगी।"[29]

लेखिका चित्रा मुद्गल कहती है कि बिना कोई गारंटी या सुरक्षा संबंधित कागजात, इतनी कीमती सुविधाएँ देना किसी को भी आश्चर्य कर देता है। लेकिन नमिता की उम्र इतनी कच्ची है कि इन सभी विषयों को समझने में असमर्थ है।

वासवानी आभूषणों में नमिता के फोटोस का कैटलॉग दिखाकर इस कैटलॉग के चमत्कार के बारे में नमिता को बताती है –"आभूषण विश्व बाजार में तहलका मचाकर रख दिया तुम्हारे कैटलॉग ने। विश्वास करने लायक बात नहीं। लाखों का सौदा तीन हफ्ते के भीतर ?"[30]

संजय लाखों का सौदा पाने की खुशी में नमिता को 'पर्णकुटी' जगह पर ले जाता है। वहाँ पर संजय कनोई अपने मन की भावनाएँ नमिता के सामने व्यक्त करता हैं कि –"तुम्हारे बिना मैं नहीं रह पाऊँगा, नमिता.... नहीं रह पाऊँगा.... ऐसी बेचैनी कभी किसी के लिए न जन्मी.... स्तब्ध हूँ... वह क्या हो गया है मुझे ! जिन कामों को मेरे मातहत कर सकते हैं, करते रहे हैं, उनके बहाने मैं स्वयं दौड़ा चला आता हूँ.... सिर्फ.... तुम्हारे लिए.... तुम्हारी एक झलक पाने-भर के लिए। तुमने संजय का संयम तोड़ दिया....तुम....न, न, मुझे रोको नहीं, नमिता ! बहुत प्यासा हूँ मैं। अतृप्त ! चिर अतृप्त.... प्रेम की अनंतता मुझे महसूस करने दो.... उतरने दो उन वीथियों में जिनकी चंदनगंध बेसुध किए दे रही..."

धीरे-धीरे हैदराबाद में प्रशिक्षण के दौरान नमिता और संजय कनोई का संबंध घनिष्ट होता है जिसके फलस्वरूप नमिता गर्भवती होती है। पवार के द्वारा अन्ना साहब की हत्या की खबर सुनते ही अंदर ही अंदर घबराहट होने केकारण गर्भस्राव हो जाता है। नमिता के बिना न रह पानेकीबात कहने वाला संजय कनोई, नमिता के मुँह से गर्भस्राव की बात सुनते ही आपे से बाहर हो जाता है। उसी गुस्से में जो मुँह में आये

बकने लगता है। डॉक्टर यास्मीन को फोन कर सच्चाई का पता करने की बात नमिता कहती है तो उस पर लांछन लगाता है कि - "डॉ. यास्मीन को मैं खरीद सकता हूँ तो पोट-पाट तुम खरीद नहीं सकती?"

"मैं उन्हें खरीदूँगी?किसलिए?"

"गर्भ गिरवाकर – गिर जाने की कहानी गढ़ने।"

"कैसी बातें कर रहे हैं

आप.... तो बिक सकती है?"

"बिकने के लिए मुँहमांगी कीमत चाहिए।

कीमत दी होगी तुमने।"

"मेरी औकात क्या है, आप जानते नहीं?"

"तुम्हारी औकात न सही, तुम्हारे चाहने वालों की तो हो ही सकती है - अमोल ने अदा कर दी होगी...."[31]

"अपमान कर रहे हैं आप मेरा...."

"अपमान तो तुमने किया है मेरा... तुमने वही किया जो तुम्हारे मन में था। माँ नहीं बनना चाहती थीं न तुम।"

"फोन पर किसी की मौत की खबर सुनकर बच्चा गिर जाए। कभी संभव है?"

इस गर्भस्राव की बात को संजय हजम नहीं कर पाता है तो नमिता को उलाहना देने लगता है –"तुम मुझसे मेरा सपना नहीं छीन सकतीं... मैं कभी तुम्हें क्षमा नहीं करुँगा। हत्यारिन !"[32]

संजय अपने गुस्से में असलीयत का वमन करता है कि –"जानती हो?बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया?उस मामूली औरत अंजना

वासवानी की औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा इतना-भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करे और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए। वह ऐसी पचासों लड़कियों को परोस सकती थी, जो मुझसे यौन-संबंध कायम कर केवल पचहत्तर हजार में मुझे बाप बना सकती थी...."

"मैं रंडियों से बाप बनना नहीं चाहता था, जिनके लिए बच्चा पैदा करना महज सौदा-भर हो और जो अनेकों से सौदा कर चुकी हों... मुझे नहीं गवारा थी ऐसी किराये की कोख! मुझे सिर्फ उस लड़की से औलाद चाहिए थी जो पेशेवर न हो... पवित्र हो, जो मुझसे प्रेमकर सके। सिर्फ मेरे लिए माँ बने! सिर्फ मुझसे सहवास करे... हमारा मिशन सफल रहा.... तेरह वर्ष बाद मैं बाप बना.... अपने बच्चे का बाप। उस औरत से जिसे मैं सचमुच प्यार करने लगा! उसी ने .... उसी ने मुझे धोखा दिया? मेरे बच्चे की जान ले ली।"[33]

जिन पैसों की ताकत के बारे में अंजना वासवानी ने नमिता को समझाया आज उन पैसों की ताकत संजय के रूप में दिखाई दी। संजय कनोई धनिक व्यापारी पैसों से नमिता को खरीद लिया। उस कुँवारी को पैसों का प्रलोभन देकर माँ बनने को मजबूर किया। नमिता न चाहते हुए भी माँ बनी। दुर्भाग्य के कारण गर्भपात होने परएक लड़कीलिएआत्मीयता, स्नेहआदिकाहोनाआवश्यक है,संजय कनोईउसे दिखाने के बजाय, उस पर लांछन लगाते, नीचा दिखाते, झूठा आरोप करते और धमकी देते हुए नमिता को निर्जीव और मूक बना दिया।

उसके इतना ही कहकर नहीं छोड़ा, बल्कि पैसेवाले एवं पुरुष होने का अहं दिखाने की भी कोशिश की थी कि –"मगरमच्छ की सिसकियाँ मत भरो। जवाब दो.... कम खूबसूरत है गौतमी तुमसे ?.... गौतमी मुझे बहुत मानती है। मैं चाहता तो वह मेरे लिए दस बच्चा पैदा कर देती। मैंने कभी नहीं चाहा। गौतमी अच्छी मित्र हो सकती है, प्रेयसी नहीं... न मेरे बच्चे की माँ... जूठी कोख है गौतमी।"

"जिस टुच्चे से कैरियर के लिए तुमने गर्भ गिराया... क्या कमा लोगी तुम दो कौड़ी की डिजाइनर बनकर, नमी!कितना समझाया था तुम्हे....."

"मैं तुमसे घृणा करता हूँ.... तुमसे....।"[34]

लेखिका कहती है कि संजय के रूप में पुरुष में स्थित अहं, सत्ता, ओछी बुद्धि, घमंड, प्रतिशोध आदि कई भावनाएँ उपर्युक्त कथनों के हर वाक्य में प्रतिफलित हो रही हैं।

संजय कनोई की ओछी बुद्धि को जानने के बाद नमिता को वास्तविकता का बोध होने लगा कि –"गर्भ कल नहीं आज गिरा है उसका। किराप साधु मरा नहीं है। मरेगा भी नहीं! जब तक औरत अपने पेट को उसकी लातों के प्रहार से स्वयं को बचाना नहीं सीख जाती..."[35]

संजय कनोई के इस भयानक आघात से वह काफी देर तक उभर नहीं पायी। इस मोहभंग को बरदाश्त नहीं कर पा रही थी, फिर भी अपने को संभालकर उठी और श्रीनिवासन से भेंट किए पोस्टर पर लिखी हुई कविता को पढ़ने लगी –

हम लड़ेंगे, जब तक दुनिया में

लड़ने की जरूरत बाकी है।

हम लड़ेंगे कि लड़े बगैर

कुछ नहीं मिलता।

हम लड़ेंगे कि अब तक

लड़े क्यों नहीं।

इस कविता को बार-बार पढ़ने के बाद नमिता में उत्तेजना भर आयी। वास्तविकता का बोध हुआ कि "अपना हक पसीने से ही मिलता है। पसीना चाहे श्रम का हो या संघर्ष का, प्रतिवाद का हो या आक्रोश का। उसे सुलगाओ। उससे मुलाकात करो। तुम शायद उससे बिना मिले ही उनसे डर गई। डरो मत! उठो! उठकर चलो।"

"जो अपने से लड़ सकता है, वही उनसे लड़ सकता है।"[36]

लेखिका चित्रा मुद्‌गल कहती है कि नारी जाति के लिए नमिता एक उदाहरण है। समाज में पग-पग पर नारी को ठोकरें खानी पड़ती है। घर-बाहर मौसा जी, अन्ना साहब, कार्यस्थल पर – फोटोग्राफर सिद्धार्थ और संजय कनोई तो उसे दैहिक एवं मानसिक तौर पर कुचल दिया। घर में माँ के ताने, कुंती मौसी की ईर्ष्या, बाहर गौतमी और अंजना वासवानी के चालाकीपन के चक्रव्यूह में से निकलकर वह अपनी जिंदगी जीने की ठान ली है।

आखिर नमिता यही दिखाना चाहती है कि हमें जीना है तो साहस और संघर्ष के साथ आगे बढ़ना है। सुनंदा का कथन उसे याद आता है -

"जो शर्त पहले नहीं थी, बाद में शर्त क्यों बने? समझौते को मैं भी राजी नहीं हुई। मुझे लगा, दीदी समझौते 'आदि' तो होते हैं, अंत नहीं।"[37]

उपरोक्त सुनंदा के कथन में स्पष्ट धारणा को अब नमिता समझने लगी। समाज में नारी को दबाने की जो चाल, शक्तियाँ हैं, उनसे जूझकर, उन्हें निरस्त करने में नारी को निर्भीकता के साथ जिंदगी में आगे बढ़ना पड़ता है।

सुनंदा को अपने विचारों के प्रति पूर्णरूप से अवगाहन है। इसी विषय को नमिता से कहती है कि –"दीदी! कुआरी माँ जचकी का हक लड़ने से पहले वे सांप्रदायिक उन्माद को खत्म करने की लड़ाई लड़े, वरना सब बरबाद हो जाएगा। खोली-खोली के भीतर घुसकर हिन्दू-मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों में उन्मादी मर्दों के हाथों से उनकी कटारें छीन लें।"[38]

उपरोक्त कथनों से मालूम होता है कि सुनंदा काफी समझदार और व्यावहारिक है। लोगों में संप्रदाय के प्रति जो विषम मानसिकता है उसे खत्म करना चाहती है।

ये सब कुछ सुनने के बाद नमिता सुनंदा से पूछती है कि –"धर्म परिवर्तन के लिए गुपचुप राजी हो जाती तो शायद विद्वेष की यह आग....।"सुनंदा नमिता की बातों को काटते हुए बोलने लगती है कि-"गलत सोच रही, दीदी! धर्मांधों के लिए मात्र मैं

एक बहाना भर हूँ। मैं बहाना न रहूँ तो कल वे कोई और बहाना तलाश लेंगे। गढ़कर उनमें तेल के पीपे उलीचेंगे। दीदी, जरूरत है, उनकी कलाइयाँ धर लेने की – मजबूरी से, ताकि वे हाथ न छुडा पाएँ। तीली न सुलग पाएँ। और यह काम अब कोई नहीं, सिर्फ स्त्रियाँ कर सकती हैं।"[39]

सुनंदा के विचारों से ज्ञात होता है कि उसका अपना स्वाभिमान, अंतश्चेतना की प्रखरता, सच्चाई का सामना करने की नारी शक्ति के प्रति विश्वास, क्षमता, बिन ब्याही मातृत्व धर्म निभाने का साहस आदि नारी में छिपे हुए विशेष गुण व्यक्त हो रहे हैं।

'आवां' उपन्यास में एक सशक्त नारी के रूप में चित्रित है – सुनंदा। किशोरी बाई की बेटी सुनंदा आरिफ के बेटे सुहैल से प्यार करती है। जब तक माँ किशोरी बाई को सुनंदा के गर्भवती होने वाली बात का पता चलता है तब तक सुनंदा का छठा महीना चल रहा है। माँ चिंतित होकर गर्भ गिराने की बातकहती है तो सुनंदा बिल्कुल नहीं मानकरअपना दृढ़ निर्णय सुनाती है कि –"बच्चा नहीं गिराएंगे। अपने जांगर पालेंगे।"[40]

आज की नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण परिस्थितियों की या समाज की परवाह या अपराध बोध महसूस नहीं कर रही है।

एक दिन सुहैल किशोरी बाई के सामने स्वीकर करता है कि –"सुनंदा की कोख में उसी का बच्चा है। सुनंदा से शादी करने के लिए घर वाले राजी हो गये हैं। अब्बू की एक शर्त है कि सुनंदा को इस्लाम कबूलकर अपना नाम बदलना होगा। ब्याह उन्हीं के रीति से होगा।"[41]

सुनंदा इन शर्तों को सुनकर क्रुद्ध होकर कहने लगती है कि –"धर्म बदलकर ब्याह करना उसे मंजूर नहीं।"[42] आरिफ भाई के कानों में सुनंदा की जिद्द पहुँची तो वे झुकने को तैयार हो गए और कहते हैं कि –"इस्लाम कबूल करें, न सही। बिरादरी में

नाक रखने -भर के नाम बदल लें।"[43]लेकिन सुनंदा को अपना नाम बदलना भी मंजूर न हुआ।"[44]

उपरोक्त कथनों से मालूम होता है कि परिस्थितियाँ नारी को झुकाने के लिए मजबूर हैं लेकिन आधुनिक स्त्री झुकने के लिए तैयार नहीं है। पहले की तरह शादी नहीं हो तो कैसा? 'नाक कट जायेगी' वाले विषय की परवाह नहीं कर रही है। चुनौतियों का सामना करने के लिए वह बिल्कुल तैयार है।

नमिता सुनंदा से इस विषय को जानकर पूछती है कि –"सुहैल को तुम प्यार करती थी, इस्लाम को कबूल कर लेने में क्या दिक्कत थी?"[45]

सुनंदा बड़ी चतुराई से इस प्रश्न का उत्तर देती है कि –"प्रश्न यह था दीदी, कि मैं औरों की सुख संतुष्टि के लिए अपने सच को घोंट दूँ या अपने स्व के संरक्षण के लिए उस के उगने को देह धरने दूँ, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ.... सुहैल से प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं, इस्लाम से करना होगा..... या हिन्दुत्व से।"[46]

नमिता और पवार के संवाद से भी सुनंदा का व्यक्तित्व झलकता है। सुनंदा के बारे में पवारकहता है कि - "जिस औरत की अस्मिता की रक्षा के लिए उनके घरों के मर्द उन्मादी तांडव मचाने को आतुर हो रहे, जरा वे उस स्त्री का मन टटोलकर देखें?सहमत है वह उनसे? क्या वह अपने 'स्व' की लड़ाई कट्टरपंथियों और धर्मांधों के कंधों पर चढ़कर लड़ना चाह रही है।"[47]

नमिता प्रत्युत्तर देती है कि - " सुनंदा ने सुहैल से ब्याह करने से इन्कार नहीं - गौर करने की बात है। उसने मुसलमान बनने से इन्कार किया। वह हिन्दू होकर मुसलमान से ब्याह करने को राजी थी, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाह रही थी। छोटी बात है यह?"[48]

नमिता की बातों में सुनंदा का व्यक्तित्व साफ नजर आता है। वह तो संप्रदायों से परे मानवता की समर्थक बन रही। सुनंदा को समझने के लिए सुनंदा जैसे विचारवाले होने चाहिए।

सतमासी में सुनंदा को बेटी पैदा होती है। असमय प्रसव के कारण कंपनी को पहले से जचकी की खबर नहीं दे सकी। इसके प्रत्युत्तर में 'मे एण्ड बेकर' कंपनी से सुनंदा को नोटिस मिला कि - " कामपर लौटे - चेतावनी यह थी कि अगर वह ब्याह का प्रमाण-पत्र नहीं प्रस्तुत करेगी कम्पनी में तो न तो उसकी जचकी की छुट्टियाँ कानूनन मंजूर होंगी, न छुट्टियों की तनख्वाह मिलेगी। ब्याहता स्त्रियाँ ही जचकी के फायदे की कानूनन अधिकारिणी हैं।"[49] सुनंदा का नमिता से कही गयी बातों से मालूम होता है कि –"देखिए दीदी, सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है, न कि कुंआरी माँ या ब्याहता माँ के विशेषणों के लिए। कुंआरी माँ क्या ब्याहता माँ के ही समान घोर कष्टों से होकर नहीं गुजरती? उसे आराम की जरूरत नहीं होती?माँ बनना किसी के निजी मामले की बजाय कंपनी का मामला कैसे हो गया?"[50]

लेखिका चित्रा मुद्गल कहती है कि इस कथन में सुनंदा का आक्रोश, अधिकारों के प्रति उसकी सूझ-बूझ, कानून के प्रावधानों का अवगाहन मालूम होता है। व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा ही समाज में चुनौती करने की क्षमता बढ़ती है। जिसमें विश्वास और विषय का अवगाहन हो वे ही समाज से जूझ सकते हैं और दूसरों का संबल बन सकते हैं। अपने अधिकारों को पाने की इस दौर में सुनंदा नारी जाति के लिए प्रेरणा स्रोत बनी।

नमिता के जन्मदिन के संदर्भ में नया पर्स खरीदकर अंजना वासवानी ने उसमें पाँच सौ के दो करारे नोट रखकर पैसों की ताकत के बारे में समझाती है –"पैसे की ताकत मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है। पैसे की ताकत से एक बुद्धिहीन, अपाहिज, असमर्थ व्यक्ति बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद, बड़ी आसानी से अपने हितों के लिए उसका उपयोगकर, समाज और संसार का सर्वाधिक समर्थ

व्यक्ति बन सकता है। सत्ताधारी बन सकता है। प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। लोगों पर शासन करने के लिए नोट की शक्ति को पहचानो। सुख-सुविधाएँ जुटाने में उसकी भूमिका की कद्र करो। नोट से ही तुम अपने बाबूजी के लिए बेहतर इलाज खरीद सकती हो.... और भाई-बहनों के लिए उज्ज्वल भविष्य....।"[51]

वासवानी अंत में यह भी कहती है कि तुम गहरे द्वंद में डूबी हो, उबर जाओ। अनर्गल न सोचो। यह सब तुम्हें दान में नहीं दे रही हूँ, नमिता। तुम्हारी मेहनत से इसका प्रतिशत वसूल होगा। यह तो निवेश है मेरा.... निवेश !"[52]

अंजना वासवानी ने नमिता को काफी समझदारी से पैसों की ताकत और उसकी महिमा के बारे में बताते हुए धीरे-धीरे उसे अपनी चपेट में कर लेती है। 'निवेश' शब्द से जो अर्थ सूचित होता है उससे तो नमिता को कितना अवगाहन है यह तो मालूम नहीं लेकिन अंजना वासवानी तो पूरी तरह से सचेत है।

अंजना वासवानी के आफिस में नमिता को लिपिकीय कार्य का काम कमऔर आभूषणों की मॉडलिंगका काम ज्यादा करना पड़ता है। इसी सिलसिले में आभूषणों के बड़े व्यापारी संजय कनोई और उसकी पत्नीप्रमुख महिला उद्यमी निर्मला से उसकी मुलाकात होती है। नमिता का मॉडल के रूप में पहने आभूषणों की प्रकृति औरसाज-सजावट के बहाने संजय कनोई का स्पर्श, व्यवहार और आँखों की भाषा नमिता से कुछ अनकहे होते हुए भी अलग बोध कराता है।

नमिता को मॉडलिंग के फोटो सेशन के लिए गौतमी, फोटोग्राफर सिद्धार्थ मेहता और संजय कनोई के साथ खण्डाला जाना पड़ता है। इस समय सिद्धार्थ नमिता के सामने उसके कैरियर को लेकर एक विचित्र-सा प्रस्ताव रखता है कि – "देखो पोर्टफोलियो मैं तुम्हारा तैयार करवा दूँगा। फीस की शक्ल भर बदल जाएगी। अन्यथा न लेना। मैं बेहद ईमानदार, पेशेवर रवैया का व्यक्ति हूँ। तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचाने में कोई कोर-कसर नहीं रखूँगा। लेकिन प्रत्येक अनुबंध में साठ प्रतिशत मेरा और चालीस तुम्हारा पोर्टफोलियों बनाने की एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक संबंध रखने होंगे। हिसाब बराबर। और कोई चिंता है ?"[53]

सिद्धार्थ के इस अप्रत्याशित व्यवहार से नमिता को घबराहट होने लगती है। इस प्रस्ताव से सिद्धार्थ के अंदर छिपा भेड़िया रूप साफ नजर आता है। वह मुँहतोड़ जवाब देती है कि –"आपके प्रस्ताव पर थूकती हूँ, सिद्धार्थ जी ! शुभचिंतक को तो अपनी जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है, दलाल को नहीं। दलाल को हर औरत रंडी नजर आती है। बेहतर होगा आप फोटोग्राफी छोड़, चकला खोल लें।"[54]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती है कि मॉडलिंग की दुनिया में ज्यादातर लड़कियों प्रति पुरुष कीदृष्टि नीच होती है और जिसका फायदा वे दैहिक संबंध के तौर पर भी उठाना चाहते हैं। उस मामले में सिद्धार्थकोई अपवाद नहीं है।

'खण्डाला' में फोटो सेशन के दौरान रात में नमिता के दरवाजे पर चाभी पड़ी रहने के कारण संजय कनोई नमिता के कमरे के अंदर प्रवेश करता है। संजय खुद नमिता को बताता है कि –"शिशु गुलाब को छू लेने... अंक में भर दुलार लेने की इच्छा बांध तोड़ने लगी। उन्माद-सा तारी हो गया मुझ पर.... अंक में कुनमुनाते तुम्हारे चेहरे पर मैंने अनगिनत चुंबन अंकित कर दिए.... तभी सहसा तुम चीखकर जग गई...."[55]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती है कि अकेली औरत या लड़की को, पाकर पुरुष के मन में कामुक भावना जागना आम बात है। पुरुष उस कामुक चेष्टा को रोकने के बजाय, उस मौके का फायदा उठाना चाहता है। इस मामले में संजय कनोई कोई अपवाद नहीं ।

नमिता संजय से इतना तो पूछ पाती है कि –"बाहर भूलवश छूट गई चाभी को आप कहीं रखकर वापस भी लौट सकते थे।"

"सोती हुई लड़की के संग कलुषित चेष्ठा.... आप जैसे शिष्ठ व्यक्ति को शोभा देता है.... हो सकता है भय से...."[56]

इसकी प्रतिक्रिया में संजय कहता है कि –"तुम इस बात पर अवश्य गौर करो कि जो कुछ हुआ, सुनियोजित नहीं था। मन में तुम्हारे प्रति विशिष्ठ भावना तो है ही।"[57]

वर्षा का अंतर्मन हर्षा के रूप में संजय के बारे में चेतावनी देती है कि –"शादी शुदा पुरुष जब भी किसी काम्य स्त्री पर डोरे डालना चाहते हैं, स्त्री के विरुद्ध स्त्री का मोर्चा खोल देते हैं। मानकर चलते हैं कि स्त्री की निंदा सुन स्त्री मुदित होगी। स्वयं को उसकी तुलना में श्रेष्ठ मान, गर्वोन्नत!इसी नुस्खे की चपेट में हो तुम! तुलना किसी साधारण स्त्री से नहीं हो रही तुम्हारी, निर्मला कनोई से हो रही है। देश की सुप्रतिष्ठित महिला उद्यमी से। तुम मामूली स्त्री नहीं रही। संजय कनोई की प्रेयसी मामूली स्त्री नहीं हो सकती....।"[58]

दलित नेता पवार भी संजय कनोई के बारे में नमिता को सचेत करने की कोशिश करता है।

नमिता की दोस्त स्मिता मुँहजोर एवं आक्रामक है। नमिता अपने साथ अन्ना साहब से हुए असभ्य व्यवहार को बताकर रोने लगती है तो स्मिता का पारा आपे से बाहर होने लगता है और कहने लगती है कि –"पें – पें छोड़!पें पें करने से कुछ हासिल नहीं होने वाला। पें – पें की बजाय उसी समय हिम्मत दिखाती। कुरसी उठा पटक देती साले हरामी के सिर पर। बहाने गढ़ता फिरता अपने फूटे सिर के पीछे !मजदूर नेता हो यामटका किंग, सब साले मर्द हैं कुत्ते कटखने। माफी माँगने से क्या होता है और तू क्यों माफ करने लगी?जिस काम में तू राजी नहीं, हरामखोर ने तेरा इस्तेमाल किया कैसे?"[59]

लेखिका चित्रा मुद्गल का कहना है कि जब तक नारी चुप-चाप सहती रहेगी, तब तक मर्द स्त्रियों के साथ खिलवाड़ करने की कोशिश करते रहेगे। ऐसी स्थितियों में नारी को साहस के साथ व्यवहार को काबू में रखने की बातको स्मिता के मुख से कहलवाया।

इसी संदर्भ को लेकर स्मिता कहती है कि ऐसे दुष्ट लोगों को छोड़ने के बजाय उसका पोल खोलकर बाजार में घसीटना है। स्मिता अपने व्यवहार को समझाने लगती है कि –"चुप कर बोमड़ी। वैसे मैं होती तेरी जगह तो साले बुड्डे से खूब 'खो-खो' खेलती। चल करवा ले जो तू करवाता है। हाथ भर ही तो डिटोल से धोने होंगे। धो लेंगे। मगर हर बार की 'खो' पर निकाल दस हजार की गड्ढी। मलाई खाएगा साआला, और मुफ्त के मारे हुए चुटुकुला सुनाकर मामला रफादफा कर लेगा....।"[60]

लेखिका चित्रा मुद्गल कहती है कि कुछ लड़कियाँ स्थिति का फायदा उठाकर उलटे उस आदमी को मुँह खाने को विवश कर देती हैं।

स्मिता का कई लड़कों से अवैध संबंध है। लेकिन उसमें किसी प्रकार का अपराधबोध नहीं होता। लड़कों को अपनी ऊँगली पर नचाकर उसका मजा लेती है। एक दिन शरत से मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए साथ में कण्डोम लाने की बात कहती है तो शरत पूछता है कि कण्डोम कहाँ मिलता है, कैसे इस्तेमाल करेगा, इस विषय से शरत अनभिज्ञ है। तो इसी बात पर स्मिता चिढ़कर शरत से पूछती है –"जो कुछ और करना होता है उसे भी जानते हो या नहीं।"[61]

"बहुत अच्छी तरह। कोई शिकायत नहीं होगी तुझसे"

लेकिन स्मिता इस बात से संतुष्ट न होकर गुस्से में खूब सुनाती है कि –"मुझे होगी। इसलिए होगी गधे की औलाद कि मैं तेरे बच्चे की कुंआरी माँ नहीं बनना चाहती और जो लड़का कण्डोम इस्तेमाल करना नहीं जानता, वह मेरा प्रेमी होने के काबिल नहीं। बैठ घर में।"[62]

आज की नारी इतनी जागरूक हो गयी कि लड़कों को मुट्ठी में बाँधकर रखे और अपना मतलब निकाले। पसंद या नापसंद की बात मुँह पर बोल देना बहुत कम लड़कियों में यह साहस दिखाई देता है।

देवीशंकर पांडे जैसे व्यक्ति का भी किशोरी के साथ अवैध संबंध का होना इन शब्दों में व्यक्त होता है –"पांडे बाबू!आप की बेटी सुनंदा नहीं रही। उसे हमने नहीं

मारा। अपनी मौत का कुआं जिद्दन ने खुद ही खोद लिया। मैं क्या करती?किस विधि बचाती?"[63]

नमिता उस चिट को पिताजी के हाथ थमा देती तब देवीशंकर ने भी इस रिश्ते को स्वीकार किया और खुद बताता है कि –"नमी!तुम्हारी सगी बहन थी।"[64]

नमिता अपनी अंतरात्मा हर्षा से अपनी व्यथा को बाँटने लगती है कि –"ब्याहता किशोरी बाई के संग क्या बाबूजी ने भी अन्ना साहब की भाँति दुष्कर्म किया होगा कि अपने सुहाग की ओट ले वह दुष्कर्म की परिणति भुगतने को बाध्य हुई? मगर बाबूजी के प्रति उन जैसी स्वाभिमानी स्त्री बरसों - बरस बीत जाने के बावजूद कोमल भाव कैसे रख सकती है? अन्ना साहब मेरे प्रति उस सीमा तक वहशी नहीं हुए, फिर भी मैं उन्हें जीवन में कभी सहज भाव से ले पाऊँगी?मानसिक बलात्कार की जघन्यता से स्वयं को उबार सकूँगी?"[65]

मेरा आक्रोश इर्ष्याजनित भ्रूण है, हर्षा, या बाबूजी के छद्म से उपजा क्षोभ?सुनंदा की मौत ने जो स्वीकारोक्ति का बाध्य बाबूजी को सौंपा, जीवन क्यों नहीं दे पाया? इस कडुवे सच को वे पहले क्यों नहीं बाँट पाए मुझसे? ग्लानि ने बाध्य किया अब? लेकिन तब मैं शायद उनकी भटकन को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का विवेक संजो पाती कि माँ जैसी असहिष्णु कर्कशा के संग उनसे विमुख होने की संभावनाएँ अस्वाभाविक नहीं।"[66]

लेखिका चित्रा मुद्गल कहती हैं कि किसी के लिए अपने पिता का अवैध संबंध की जानकारी से व्यथित होना स्वाभाविक है। लेकिन यहाँ नमिता अपने आप का विश्लेषण करने लगती है और इस तह तक पहुँचती है कि शायद माँ 'असहिष्णु कर्कशा' संबोधित करते हुए पिता की मानसिक एवं दैहिक व्यथा को समझने की कोशिश करती है। शायद नमिता के प्रति पिता का प्यार और माँ का दुर्व्यवहार भी ऐसी सोच के पीछे का कारण बन सकता है। नमिता आम लड़की की तरह न होकर थोड़ी-सी सहृदयता और सहनशीलता से इसे समझने की कोशिश करते अपनी अलग

पहचान बनाती है। लेकिन ऐसी सोच की संभावनाएँ कम होती हैं परन्तु नारी कुछ इसी प्रकार एक अलग, निराले और विरले विचार के साथ आगे बढ़ती दिखाई दे रही है।

2.3 उदारवादी राजनैतिक परिस्थितियों में जनतांत्रिक संबंधों और मान-सम्मान की माँग :'इदन्नमम'

इदन्नमम का अर्थ है जो है इस पर मेरा अधिकार नहीं है।

इस उपन्यास के द्वारा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि किसी परिवार में, मंदाकिनी जैसी लड़की हो तथा जिसके माता-पिता किसी कारणवश उससे दूर हो गये हों, तो उस बढ़ती लड़की की देखभाल कौन करेगा? यदि बऊ जैसी बुढ़िया स्त्री हो तो कैसे अपने पुत्र की निशानी को सँभाले?बऊ का स्वयं को संभालना कठिन हो जाता है, भला आज के दौर में मंदाकिनी जैसी चंचल लड़की की हिफाज़त कैसे करें? मैत्रेयी पुष्पा जी ने समस्या को उठाकर उसे सुलझाने का भी रास्ता बताया है मंदा पात्र के माध्यम से।

मंदाकिनी के पिता सोनपुरा गाँव के जमींदार थे। गाँव में कोई अच्छा अस्पताल न था। गाँव के लोगों को काफी दिक्कत का सामना करना पड़ता था। अतः उन्होंने गाँव में अस्पताल बनाने का निर्णय लिया तथा शीघ्र ही एक भव्य अस्पताल बनाया गया जहाँ डाक्टर आराम से रह सके। अस्पताल के प्रारंभोत्सव के समय मंत्री जी के आने का इंतजार हो रहा था कि मार-काट एकाएक शुरू हो गयी। महेन्द्र, जिन्होंने अस्पताल बनवाया था, बीच-बचाव करने गये तभी वह लाठियों से मारा गया। अंत में गोली मार दी गयी। स्पष्ट है कि आज के समाज में कोई भला कार्य भी करने जाओ तो उसे राजनीतिक रंग दे दिया जाता है। लोग चीजों को शंका से देखते हैं और तर्क-वितर्क करने लगते हैं कि किसको फायदा हो रहा है। कई बार ऐसा भी होता है कि राजनीति को ध्यान में रखकर कल्याण-कार्यक्रम किये जाते हैं। स्वार्थ की राजनीति से परमार्थ को भी निरर्थक कर दिया है। अपनी देह की तृप्ति के लिए आत्मा को भी मार दिया जाता है। आज राजनीतिक-भाषा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। हत्या करने वालों की आत्मा, शरीर में विद्यमान होकर अन्य शरीरों को भी नष्ट कर रही है।

मंदाकिनी की माँप्रेमा विधवा हो गयी है। उसके पति के देहांत के बादअपनी बेटी मंदा को छोड़कर रतन यादव के साथ चली जाती है। समाज में नारी का अहम् स्थान है। सारी सामाजिक मर्यादाएँ बहुतायत नारी पर ही निर्भर होती हैं। नारी के टूटने से सारी सामाजिक प्रथाएँ भी टूट जाती हैं। मानव के मन पर पड़े प्रभाव बहुत समय तक मिटते नहीं हैं।

शारीरिक सुख को ही महत्व देने पर उसका अधोपतन हो जाता है। आत्मा की राह पर चलने से उसका उत्थान होता है। इसी बात को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में समझाया। मंदा की माँ का पलायन आज की नारी की स्वतंत्रता को कलंकित करता है। इसके प्रभाव को पीढ़ी दर पीढ़ी भुगतना पड़ता है।

अकेली बऊ, पोती मंदा को लेकर बैलगाड़ी वाले गनपत के साथ श्यामली गाँव के लिए निकल पड़ती है जहाँ उसके दूर के भाई का परिवार तीन भाइयों, उनकी बहुओं के साथ रहता है।सोनपुरा में उसकी पोती मंदा के लिए खतरा था क्योंकि जिसके साथ मंदा की माँ चलीगयी थी, वे मंदा को उठा ले जाएँगे या उसकी माँ खुद बेटी को उठा ले जा सकती है।

गाँव में एक विचित्र दशा में श्यामली बऊ पहुँचती है। पता नहीं वहाँ के लोग किस प्रकार का बर्ताव करेंगे। लेकिन वहाँ सभी आकर मर्यादा पूर्वक बिठाते हैं। राजी-खुशी पूछते हैं। तथा शाम के समय बऊ के भाई जिन्हें दादा कहकर संबोधित करती है, उनसे मुलाकात होती है तो बऊ अपना सारा हाल सुनाती है।

तीनों भाइयों के परिवार में बऊ को लेकर गुम-सुम और मन-मुठाव था। दादा के छोटे भाई गोविंद सिंह नहीं चाहते थे कि उनका परिवार कोई समस्या मोल ले। किन्तु दादा शरणार्थी का तिरस्कार नहीं करना चाहते थे।

मंदा की हिफाजत के लिए उसे दादा के मित्र चीफ साहब से सलाह कर चीफ साहब की बहन के मकान के ऊपर वाले कमरे में छिपा रखने का निर्णय लिया गया। किन्तु खान-पान निरामिश होने के कारण चीफ साहब के किसी मित्र के पास से खाने-

पीने का इंतजाम किया गया था। चीफ साहब की बहन का नाम अनवरी था जिनका सात या अठा वर्ष का पुत्र शकील था।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने आज के राजनैतिक परिवेश का चित्र हमारे सामने रखा है। अर्थात् आज मनुष्य का स्तर इतना गिर गया है कि भारत में भरत के चरित्र का कहीं नामो निशान नहीं।बऊ कहती हैं –"वे लोग जीभ-जुबान से लोक-सभा विधान सभा में लड़ते हैं, स्याही-कलम से अखबारों में और करम-आचरण से हम औरों के बीच मचवाते हैं महाभारत। इन्हीं सब की भर-पाई कर रहे हैं हम लोग। कुपरिणाम भुगत रहे हैं।"[67]

बऊ को अपने पर दु:ख होता है कि कितनी समस्याएँ झेलनी पड़ रही हैं।

श्यामली गाँव के सब लोग मिल-जुलकर रहते हैं। उनमें जात-पात का भेद नहीं था। इनका मिल-जुलकर शादी-ब्याह, भजन आदि में भी साथ-साथ उठना-बैठना, खाना-पीना चलता था। बऊ को गाड़ीवाला कहता है –"तुम देखती नहीं बऊ, ब्याह कारज तक में चमार टोली की पंगत सबसे पहले बिठाएँगे और फिर उन्हीं के रोंगर, लोधी-कुरमी बैठ जाते हैं। यादव, छत्री और संग-संग पुजारी महराज भी।"[68]

स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेजी शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान के चलते लोग जात-पात तथा ऊँच-नीच को लोग महत्वहीन समझने लगे। केवल अपने कार्य से मतलब रह गया है। खान-पान में बफे सिस्टम तथा अन्य जाति वालों से रोटी-खाना बनवाना आम बात हो गई है। बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि साफ-सुथरेपन को आधिक महत्व दिया जा रहा है।किन्तु बऊ के आश्चर्य का ठिकाना नहीं है। ऐसा उसने पहली बार देखा है। बऊ कहती है –"श्यामली की बात अपने सोनपुरा में जाकर बतावे तो साँची नहीं मानेगा कोई। है ही अचरज।"[69]

गाँव में राजनीति के हाल-चाल की चर्चा करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहतीहैं कि श्यामली गाँव में चुनाव नहीं होते हैं ताकि गाँव के लोागें का बॅटवारा न हो। केवल पंचायत रहती है जो हर बात की देखभाल करती है। "चुनाव नहीं होने देते गाँव में। कहते हैं आजादी का जख्म हमने आँखों देखा है। भइया, इस आजादी को संजोकर

सुरक्षित रखो, संभाले रहो।"[70]दादा का मत है –"वोटों के कारण पार्टी बँट जाती है गाँव में बस्ती का विभाजन होता है।"[71]

आज के इस विषैले राजनीतिक दाँव पेच में पार्टीहीन राजनीति मधु का काम करेगी। कम से कम इस प्रकार की व्यवस्था गाँवों में होनी चाहिए। इस कारण से लोगों में वैमनस्य दूर होकर भाई चारा बढ़ेगा। हल-बदली, खाना हथियाने के लिए किसी की मान-हानि करना जैसे अमानुष तरीकों को तो तिलांजली दिया जा सकता है। क्योंकि भारत में चुनाव के दौरान देश एक युद्ध स्थल दिखता है। पार्टियों की मृकुटियाँ बनी रहती हैं। अब आवश्यक है कि ऐसी राजनैतिक परिस्थितियाँ जिसमें लोगों का आपस में प्रेम बढ़े। एक दूसरे की मान-मर्यादा करे।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि - चुनाव के नाम जो कुछ अरबो-खरबों का रुपया भस्म होता है तो आपसी कल्याण के यज्ञ में हवन होता है तो कौन-सी असंगत बात है? सभी धर्मां में जो समान बातें हैं अब आवश्यक है कि इस प्रकार का ग्रंथ सभी पुस्तकालयों तथा बाजारों में उपलब्ध हो।

यह आवश्यक है कि दौड़-धूप की इस जिंदगी में भाई-बहन का त्यौहार बना रहे। लोग कालक्रम में अपने भाई-बहनों को भूल जाते हैं जिनके साथ अपना बचपन गुजारा था। एक परिवार के होकर क्या फायदा हुआ कि एक दूसरे के आँसुओं तक को नहीं पोंछते। अपने भाई-बहनों की देखभाल नहीं कर सकते हैं तो क्या औरों के काम आऐंगे?उपन्यास में रक्षा बंधन के अवसर पर सावन के महीने में झूले झूलना, भुजरियाँ उगाना सांस्कृतिक परंपराओं का भी चित्रण किया गया है।

भारतीय त्यौहार अपने धर्म तथा संस्कृति से जुड़े हैं। उनके पालन करने से शांति मिलती है। भावनाओं में परिवर्तन करने की शक्ति का बीज हमारे त्यौहारों में है। यह आवश्यक नहीं कि त्यौहारों के लिए काफी धन हो। जो कुछ घर में हैं उससे मनाया जा सकता है। सामान्य दिनचर्या से हटकर कम से कम त्यौहारों के समय प्रसन्न रह सकते हैं किन्तु मद्यपान, जुआ आदि त्यौहार के रस में विष घोलने वाला है।

इस बात को समझना आवश्यक है। मंदाकिनी को रक्षा-बंधन के बहाने शकील को राखी बाँधने का मौका मिल जाता है। जिस कारण दोनों घर के सदस्यों में मैत्री बढ़ जाती है। बऊ को अनवरी से मिलकर आँखें भर आती हैं। रक्षा-बंधन के अगले दिन बऊ, मंदाकिनी को लेकर श्यामली गाँव आती है। दादा के दिये कमरे में रहने लगती हैं जहाँ मकरंद से मुलाकात होती है।मकरंद और मंदाकिनी के बीच अपने-अपने गाँव को लेकर नोक-झोंक होती है। जिसके बहाने वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर प्रेम-विरह में पड़ते हैं।कहना अतिशयोक्ति न होगा कि युवाओं के प्रारंभिक जीवन में, उनको शादी-ब्याह का अर्थ समझ में नहीं आता। मकरंद मंदाकिनी को छाती से लगाकर कहता है –"रह सकोगी हमारे बिना?"[72]

आजकल फ़िल्मी अंदाज में युवाओं में प्रेम शादी, ब्याह होने की छाप दिखती है। सिनेमा बनाने वाले प्रोड्यूसर, डायरेक्टर को केवल धन कमाने की होड़ लगी रहती है। इसलिए इन बच्चों की नासमझ का आसरा लेकर इन बेचारों को कहीं का नहीं छोड़ते। कच्चे मस्तिष्क वाले युवकों को वही सही लगता है। आज कक्षा में प्रथम आने वाले छात्र भी फ़िल्मी हीरो-सा व्यवहार करते हैं। जो वास्तव में विलेन के समान, गुरुजनों, माता-पिता तथा अन्य के साथ व्यवहार करता है। सिनेमा बनाने वाले कहते हैं कि –"वह तो मनोरंजन का साधन बना रहे हैं जिसमें अच्छा व बुरा दोनों होते हैं और वे किसी को देखने के लिए जबरदस्ती भी नहीं करते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। दुष्चरित तथा उच्छृंखल वृत्ति को ही अधिक आकर्षणीय ढंग से बनाते हैं। भारतीय सिनेमा कलाकारों में इतनी कलात्मकता नहीं है कि बिना हीरो-हीरोइन तथा नाच-गान के कोई जीवन के रोचक अंश का प्रदर्शन कर सके।

आज कई ऐसे नव विवाहित लोग जिन्होंने इन्हीं सिनेमाओं की कहानी और तथाकथित गीत व वाद-संवाद की बातों को सत्य मानकर, अपने मन पसंद वर-वधू की कल्पना करते हुए माता-पिता के बन्धनों को तोड़ दिये हैं, वे अब अपना सर पीट-पीट कर पछता रहे हैं।

आश्चर्य है कि इस ओर सरकार व समाज की दृष्टि जाती ही नहीं कि ऐसा क्यों हो रहा है। आजकल टी.वी. में व बाहर में कैसे शर्मनाक पोस्टर्स लगाये गये हैं कि छः सात वर्ष के बच्चों के मन में भी यौन भावना आने लगी। जब सिनेमा, टी.वी. में ये चलचित्र व धारावाहिकाएँ बंद हो जाऐंगी उस दिन से राम राज्य आ जायेगा।

प्रस्तुत उपन्यास में भी वही होता है। मंदाकिनी, मकरंद का स्कूल आते-जाते वक्त अत्यंत ही बेचैनी से इंतजार करती है। कुछ दिनों तक आगे-पीछे करते हैं फिर एक-दूसरे को गले से लगा लेते हैं।

दादा को लगा कि यहाँ पर भी मंदा सुरक्षित नहीं है, इसलिए ओरछाा नामक जंगल की एक गुफा में भेज देते हैं। वहाँ पर भी सुरक्षित न होने के कारण बिरगंवा गाँव की ओर बऊ के रात भर चलने के कारण मंदाकिनी तेज ज्वर से ग्रसित हो जाती है।वैद्य गाँव नहीं आते हैं तो कुसुमा भाभी दवाई लाने गाँव जाती है। इस बीच में मंदाकिनी का ज्वर तीव्रतर हो उठता है। रात के समय रोशनी न होने के कारण गहन अंधकार छा जाता है। अंधकार का लाभ उठाकर सहलाने के बहाने आया हुआ कैलाश मामा जो मास्टर भी है मंदा का बलात्कार करता है।''[73]

मैत्रेयी पुष्पा कुसुमा भाभी द्वारा कहलवाती हैं –''बिन्नू अपने मन में तनिक भी भय मत लाना। झिझक-हिचक में मत रहना। जो हुआ सो भूल जाना। इतनी बड़ी जिंदगी में अच्छा-बुरा घट जाता है बिटिया। इसके कारण मन में गाँठ लगाने से क्या फायदा? जो तुमने किया नहीं उसके लिए अपने को दोसी क्यों मानना?''[74]

''आज तक यही देखते आये हैं कि स्त्री का बलात्कार हो तो, उसके प्रति दया दिखाना या उसकी व्यथा को दूर करने के बजाय पूरा समाज उस स्त्री को हेय दृष्टि से देखता है लेकिन आधुनिकता कुसुमा के रूप में दिखाई पड़ रही है कि - अनपढ़, गँवारी, कुसुमा मंदा को इस अपराध बोध से बाहर लाने का प्रयास करती है। स्त्री में आयी हुई सकारात्मक चेतना को लेखिका यहाँ सूचित कर रही है जो समाज के लिए हितकारक है।यह एक ऐसी परिरिस्थिति है कि जिसमें मन असमंजस में पड़ जाता है। ऐसे समय में ढांढस न बंधाया गया तो तीव्र वेदना को झेलना पड़ता है।इस बलात्कार

का कारण पुरुष होते हुए भी उसे खुले आम छोड़ दिया जाता है और जिस पर जुल्म होता है हम उसके प्रति सहृदयता दिखाने के बजाय उसे सर झुकाने को विवश करते हैं।"[75]

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि समाज को सही दिशा-निर्देश करने वाले शिक्षक ही भक्षण कर रहे हैं तो समाज की सुरक्षा की जिम्मेदारी किसके हाथ में थामे?स्पष्ट है वर्तमान समय में सभी अपने-अपने स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं। आये दिन समाचार पत्रों में बलात्कार की ऐसी घटनाएँ छपती हैं जिसे पढ़कर दंग रह जाते हैं।

इन सब बातों की वजह केवल मनोरंजन के नाम पर बनाये जा रहे अश्लील और हिंसक कार्यक्रमों के कारण हो रहा है। विद्यालयों की पढ़ाई-लिखाई व्यापार बन जाने के कारण अध्यापक और विद्यार्थी नामक कोई चीज़ नहीं रह गयी। केवल पैसा ही धुरी बनकर जीवन की चक्की को चला रहा है।

पाठ्यक्रमों में भी नैतिकता से संबंधित पाठ गिने-चुने रह गये हैं।हमारी शिक्षा-दीक्षा केवल धन कमाने के लिए है। इस कारण से हत्याएँ हो रही हैं। भाई-भाई को मार रहा है और कहीं पिता-पुत्र, कही पुत्री से मार-काट हो रही है। पति-पत्नी के संबंध कमजोर पड़ने लगे हैं।

वापसी श्यामली आने पर बऊ को देखतेगले में बाँहें डालकर रोने लगीकि "बऊऽऽ, हमें छोड़कर क्यों चली आयी तुम?"[76] दरवाजे पर दस्तक हुई। मंदाकिनी ने चाहकर भी आँखें उठा नहीं पायी। मकरंद को कनखियों से देखा। उसका मन बहुत रोने को हुआ। भीतर से दु:ख उमड़ने लगा और आँखें भर आयीं।

मन्दाकिनी ने स्वयं पहली बार प्रश्न किया "तुम्हारे इम्तहान हो गये हैं।

हाँ। बारहवीं में आ गया हूँ। बायोलोजी ली है। डाक्टर बनने के लिए।"

"तुम डाक्टर बन जाओगे?" महीन स्वर में कहा। मकरंद वादा करता है कि वह डॉक्टर बनकर उन्हीं केअस्पताल में काम करेगा।

काका गोविंद सिंह, दादा (बड़े भाई) से कहता है कि मन्दा को और बऊ को साथ रखकर बेवजह औरों का सिर दर्द मोल लिया है, । गोविन्द सिंह सलाह देता है कि –"मंदाकिनी का ब्याह अपने किसी लड़के से कर दे। सारी जमीन-जायदाद मिल जाएगी तथा कोर्ट कचहरी भी खत्म हो जाएगी।"[77] तब तो हम दिन-रात मेहनत करेंगे। दादा आश्चर्य से गोविंद की ओर देखता है, बोल दिया न इंसानियत अपने स्वार्थ-लाभ में। बऊ भी स्वयं इस नतीजे पर पहुँची कि मन्दा का ब्याह मकरंद से हो।"

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि दादा जैसे लोग आज विरले मिलते हैं। आज के जमाने में कोई भी किसी की मदद बिना फायदे के नहीं करता है। ज्यादातर लोग अपनी मौज मस्ती में डूबे रहना चाहते हैं। चाहे वह बऊ जैसी अबला ही क्यों न हो।आज के मनुष्य बिना पाये कुछ देना नहीं चाहते हैं ।

मंदाकिनी की सगाई मकरंद से होती है। मंदाकिनी की माँ प्रेमा को पता चलता है तो वह किसी से कहला भेजती है कि वह मंदा को देखना चाहती है।प्रेमा कामंदा से मिलने की इच्छा वह कुसुमा भाभी द्वारा दादा पंचम सिंग तक खबर पहुँचाती है कि – "विनति करना, हमारी ओर से भीख माँगना, दादा हमारी बिटिया का मुख एक बार हमें दिखा देवें। भगवान उनको सात जनम तक सतजुगी संतान दे।"[78]

सोच-विचार करने के पश्चात् मंदा को प्रेमा से मिलाया जाता है जिसके गोद में महीनों की लड़की थी। ऐसा विचित्र दृश्य कभी-कभार देखने को मिलता होगा। जहाँ अपनी शादी लायक बेटी कुँवारी है तथा माँ अपने अन्य प्रीतम के संग रंग-रेलियाँ मनाती हुई बच्चे की माँ बनती है।

इस बीच विक्रम जो कि दादा का बड़ा बेटा है, कहता है कि मन्दाकिनी से विवाह कर लेने पर रतन सिंह जो प्रेमा का प्रिय है उससे भी दुश्मनी मोल लेनी होगी। अतः दादा सबके बहकावे में आकर मकरंद को पढ़ाई के बहाने इलाहाबाद भेज देते हैं। बऊ तथा मंदाकिनी की आशाओं पर पानी फिर जाता है।किन्तु मकरंद जाते समय कहता है कि "पहले आँसू पोंछो। हौसले से रहना। मैं पढ़ने जा रहा हूँ। मेहनत करूँगा, डॉक्टर बनूँगा तुम्हारे आस्पताल में।"[79]

मंदाकिनी स्तब्ध रह जाती है। भारतीय नारी के जीवन में यह विकट परिस्थिति होती है कि कई लोग उसे पसंद करने आते हैं तथा कई लोग कोई न कोई रोब निकालकर ठुकरा देते हैं। इसका नारी मन पर तथा घरवालों पर कुपरिणाम का असर पड़ता है। शिक्षा पाते हुए भी भारत में यह स्थिति आजतक बनी है। मंदाकिनी मकरंद की बातों से आश्वस्त होती है।

इस बीच कुसुमा जो कि विक्रम की पत्नी है, एक नवजात शिशु के साथ रात के समय चिरगाँव से चलकर घर आती है। दरवाजा खटखटाने पर भी कोई नहीं खोलता। क्योंकि वह एक गरीब परिवार की बेटी है। डबल बब्बा जो बाहर सो रहे थे, जो पहले डाकू रह चुके थे, उन्होंने दरवाजे को जोर-जोर से मारकर विक्रम सिंह आदि को उठाते हैं। वे बाहर आकर देखकर भी उसे भीतर नहीं बुलाते। इस बात को लेकर डबल बब्बा और विक्रम सिंह में मारपीट चलती है, अंत में डबल बब्बा को वहाँ से चले जाने के लिए कहा जाता है।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने स्पष्ट किया है कि डाकू लोग भले ही धन लूटते होंगे लेकिन उनके मन में भी किसी कोने में मानवता छिपी रहती है। वे अन्याय को बरदाश्त नहीं करते, जब किसी को अपमानित किया जाता है।

इसअपमान से कुसुमा का नारीत्व जाग उठता है तथा अन्याय के खिलाफ कहती है –“जो व्यवहार कर लाया जब उससे ही कोई ताल्लुक नहीं है तो इस घर में हमारा कौन ससुर और कौन जेठ।”[80]लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का कहना है कि आज एक सीमा के पार नारी शोषण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार है। उसका साहस कई अबलाओं को सबला बनाने वाला है।बऊ, मन्दाकिनी तथा कुसुमासाथ रहने लगाती हैं। मंदाकिनी नवजात शिशु को लाड़-प्यार से उठाती है उसका नाम ‘कुँवर’ रखती है जिससे कुसुमा को बहुत अच्छा लगता है।

रिश्ते में खटास आने की वजह से मकरंद के इलाहाबाद जाने के पश्चात् मंदाकिनी वापस अपने गाँव सोनपुराचले जाना चाहती है। बऊ और गनपत भी तैयार हो जाते हैं। सात साल बाद पहुँचने पर सोनपुरा बहुत कुछ बदल सा गया था। जाते ही

पता चलता है कि गोविंद सिंह ने बऊ की जमीन अभिलाख सिंह के हाथ बेच दी है क्योंकि कर्ज बाकी था। अत: बऊ को रहने के सिवाय अब खाने-पीने का कोई साधन नहीं था।

लेखिका का कहना है कि स्वार्थ में मनुष्य अंधा और कसाई हो जाता हैं। लालच व मोह के कारण उसे न बूढ़े माँ-बाप की देख-भाल दिखाई देती है और न भाई-बहन व मित्र।गोविंद सिंह जैसे पात्र आज झुंड के झुंड मिलते हैं। किसी का दर्द न रहा,

एक बार गोविंद ने बिना पढ़वाए मंदाकिनी से अदालत के खर्च के लिए घर बेचने के कागजात पर दस्तख्त करवा लिये थे। बऊ मंदा सेपूछती है –"मंदा याद है कुछ ?हमने खेत के कागजादों पर लगाई कभी अंगूठी निशानी ? मन्दा कहती है – "केस के समय बहुत से कारण थे, अँगूठा भी लगाया था।"[81]

अभिलाख सिंह क्रेशर लगवाता है जो पत्थर को बारीक से तोड़ता है जहाँ आसपास के लोग मजूरी करते हैं किन्तु सोनपुरा वालों को वह काम नहीं देता क्योंकि उन्हीं की जमीन को उसने हड़प लिया है।

कई बार उससे तथा क्लर्क से मजूरी देने की विनती करती है किन्तु वे सरकारी वकीलों की तरह हाँ-हाँ कहकर कुछ नहीं करते हैं। गाँव-गाँव घूमकर मंदा जो कि रामायण, भागवत आदि बाँटती है। इसी बीच टीकमसिंह नामक महाराज से मन्दा का परिचय होता है। जो एक कहानी के द्वारा अन्याय के खिलाफ क्रांति करने का उपदेश देता है जो मंदा को बहुत अच्छा लगता है।

मन्दाअभिलाखकीचालको नाकामकरने की कोशिशमें,गाँव के प्रमुख लोग परधान, द्वारका नाथ, मास्टर साहब आदिकेसाथमिलकर,रोजी-रोटी के लिए सबसे धन जुटाकर एक ट्रेक्टर खरीद़नेतय करती है । सभी लोग चंदा देते हैं। कुछ लोग छिपाया हुआ धन, सोना, चाँदी, आभूषण भी देते हैं। कुछ पैसे कम पड़ने पर 'जवाहर

रोजगार योजना' से धन लेकर एक ट्रेक्टर खरीदते हैं जिससे रोजगारी की समस्या हल होती है।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का कहना है कि आज स्वरोजगार तथा निजी कार्य आदि सीखकर रोजी-रोटी कमायी जा सकती है। सरकारी नौकरियों की ओर से हट कर स्वरोजगार जैसी योजनाएँ चलाने पर बेरोजगारी की समस्या कुछ हद तक हल हो सकती है, किन्तु भय है कि कार्य न करने वालों से तथा अभिलाख सिंह जैसे लोगों से जो दूसरों की रोजगारी छीनना चाहते हैं। पुलिस व न्याय व्यवस्था को सुचारू रूप से कार्य करना पड़ेगा।

धन की अधिकता से लोग पाप कर्म करते हैं तथा निर्धन होकर कुछ लोग पाप करने में मदद करते हैं। "जगेसर ने निगाहें आड़ कर देखा। लड़की आँखें झुकाकर बैठी है। चेहरा सुगढ़ है देह नाजुक। चाँदी की बाली कानों में झूल रही हैं। हाथ में लाल रंग की चूड़ियाँ हैं। आँखों में काजल लगा है, इत्यादि।जगेसर उस चौदह वर्ष की लड़की से ब्याहने के लिए उस पहाड़ को खरीदता है जहाँ पर अहल्या रहती है। चार बच्चों का बाप होकर भी अनेक विरोधों को झेलकर उससे विवाह करता है तथा अंत में मार कर उसे छोड़ देता है।

लेखिकामैत्रेयी पुष्पा नारी पर होने वाले कई अत्याचारों की परतें खोलते हुए इसके खिलाफ लड़ने,नारी को सजग होने की बात कह रही है।

अभिलेखसिंह तथा जगेसर दोनों मित्र हैं जो साथ रहकर खूब पीते हैं। अभिलेख सिंह एक बार कुछ लोगों के संग आ कर मंदाकिनी तथा अन्य मजदूरों पर आक्रमण करता है जिसके जवाब में मंदा स्वयं सभी को एकजुट कर उनपर आक्रमण करती है।

गाँव में हैजा जैसी बीमारी फैलती है किन्तु वहाँ न कोई अस्पताल, न कोई डाकखाना न कोई यातायात के साधन। जब चुनाव होता है तो सभी ने चुनाव का बहिष्कार किया।जहाँ अपने अस्पताल में एक डाकटर को लाने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु असफल।

मंदा को खबर मिलती है कि अभिलेख सिंह को सुगुना ने चाकू से मार डाला है क्योंकि उसने उसपर अत्याचार किया था तथा उसका गर्भ रह गया था।किन्तु सुगुना भी आत्मदाह कर लेती है। सुगुना उसी अस्पताल में लायीजाती है जहाँ पर डाक्टर के न होने पर कम्पाउडर से दवा दिलवाती है । आखिर सुगुना मर जाती है। मंदाकिनी के सपने सपने ही बन कर रह गये। न मकरंद से विवाह किया न ही वहाँ पर अस्पताल बनपायाा

मैत्रेयी पुष्पा ने आज की हालातों का रूबरू वर्णन किया है जहाँ न कोई विश्वास है न कोई विश्वसनीय कहने के लिए, बड़े-छोटे, भाई-भतीजे हैं। किन्तु सभीअपने स्वार्थ में झुलस गये हैं।

अत: जरूरत है मन्दा की तरह कुछ हिम्मत से कार्य करने की तथा उसके सपनों को पूरा करने की। 'इदन्नमम' में अपने को तटस्थ रखकर मैत्रेयी पुष्पा ने एक संपूर्ण जीवन का सृजन किया है।

2.4 भारतीय मूल्य और नारी के व्यक्तित्व विकास में परिवार की भूमिका :'निष्कवच'

राजी सेठ द्वारा रचित 'निष्कवच' उपन्यास अंतिम दशक व वर्तमान समय के कुछ युवाओं की विचित्र सोच या फुव्वड़ चाल को बेपर्दा या निष्कवच करता है।

जब तक कवच में जीवन रहता है तब तक वह सजा-सँवारा तथा सुंदर लगता है। किन्तु राजी सेठ ने उसे निष्कवच कर उस पार देखकर उसकी मन:स्थिति का भण्डाफोड़ किया है।

आज का युवावर्ग मूल्यों की परवाह न करते हुए केवल अपनी भौतिक आवश्यकताओं तथा अपने ऐशो-आराम की शान दिखाने में अंधाधुंध रहता है। उसके पीछे केवल पाशविक सोच व क्रिया-कलाप हैं जिससे मनुष्य का अधोपतन होता है।

'निष्कवच' के प्रथम अंश में 'नीरा' जो अभी अपने बाल्यकाल से पूरी छूटी नहीं। अभी-अभी उसमें वयस्कता झलकती है, विशाल के घर में रहती है। विशाल जो

कि इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है तथा उसका मित्र बासु भी लगभग प्रमुख पात्र ही है।

लेखिका स्वयं बासु बनकर प्रकट हो रही है। नीरा विशाल की मौसी की बेटी है। "अर्थ व स्वार्थ लोलुप पिता जेवर लेकर, बाहर से दरवाजे का सांकल लगाकर गर्भवती पत्नी को छोड़ कर चम्पत हो गया था।"[82]

राजी सेठ ने इस बात की ओर इशारा किया है कि आज कितने ही ऐसे मर्द हैं जो अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तथा इच्छाओं के चलते स्वयं अपने घर, परिवार को, संसार को भभकती आग में निस्सहाय छोड़ देते। यदि मनुष्य को मूल्यों का पुरुषार्थ पर आस्था होती तो ऐसा नहीं करते हैं। अतः कुछ मूल्यों का अनुगमन करना और उनके लिए प्राण दे देना सभी के लिए कल्याणकारी होता है।

यही कारण है कि नीरा अपनी मौसी के घर पर आकर अपनी पढ़ाई-लिखाई व गुजारा करती है। जिसका बेटा विशाल बी.ए. अंतिम वर्ष में पढ़ रहा है।

नीरा के मन में यह गहरा घाव है कि उसके माता-पिता ने अपनी मौज-मस्ती भरी मानसिकता के कारण गैर-जिम्मेदारी से उसे छोड़ दिया है। लेखिका का कहना है कि आज लाखों ऐसी लड़कियाँ हैं जिनके माता-पिता या तो नहीं हैं, यदि माँ-बाप हो तो भी वे अपना उत्तरदायित्व बच्चों की आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं निभा रहे हैं।

नीरा कहती है –"तुम मेरी मम्मी की बात कर रहे हो न? मैं कुछ भी नहीं हूँ उनके लिए। जब जहाँ चाहा, ठेल दिया। कोई न कोई बहाना बनाकर।"[83] वह माँ का आदर नहीं करती और कहती है कि – सच तो यह है कि –"वह कभी मुझे अपनी माँ नहीं लगती।"[84]

लेखिका राजी सेठ का कहना है कि बच्चों के मन में अपने माता-पिता के प्रेम का अभाव उन्हें हमेशा खटकता है जो उसके जीवन पर गहरा असर डालती है। यह भी कारण हो सकता है कि बच्चे पढ़ाई-लिखाई में मन नहीं लगाते हैं। वे स्वयं को

असहाय तथा निराधार महसूस करते हैं। इसी प्रकार का व्यवहार भविष्य में भी दिखाई देता है।

उसे शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से उसकी माँ दिल्लीवासी बहन के पास उसे भेज देती है। लेकिन नीरा सोचती है कि –"माँ ने छुटकारा पाने के लिए ऐसा किया है।"[85] नीरा स्वभाव से विद्रोही है।

लेखिका राजी सेठ का उद्देश्य है कि बच्चों को पालने में माँ-बाप की जिम्मेदारी अहं होती है। जिसके अभाव में बच्चे विद्रोही बन सकते हैं। यदि घर में वैसा वातावरण मिलता तो शायद वह ऐसी नहीं बनती।

विशाल अपनी एम.ए. की पढ़ाई पूरी करने के लिए इलाहाबाद चला जाता है। इसी कारण नीरा और मौसी में प्रेम अधिक बढ़ जाता है। जिस कारण विशाल की गैर-मौजूदगी में विशाल की माँ नीरा का अधिक ध्यान रखती है तथा जिसको लेकर कभी-कभी विशाल से नोक-झोंक होती है।

बचपन से ही नीरा पढ़ाई के प्रति उदासीन थी। अपने मौसरे भाई विशाल से कहती है–"पर तुम तो जानते हो मुझे किताबें पढ़ने का शौक नहीं है, आय लाइक ह्यूमन बीइंग्स।"[86]

आम लड़कियों की तरह नीरा का मन भी पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगता है। वह टी.वी. सिनेमा के प्रति आकर्षित होती है। उसे सिनेमा में देखे गये चित्र, बहुत भाते हैं। इसलिए नीरा बार-बार शीशे में अपने को देखती-सँवरती रहती है। "पुस्तकों को ऐसी निवृत्ति के भाव से रखती है जैसे कोई अटपटा काम कर रही हो। मुँह रगड़ती है। कपड़े संभालती है। बार-बार शीशा देखती है।"[87]

लेखिका का कहना है कि नीरा चल-चित्रों के प्रभाव के कारण, उन्हीं की तरह सजना-सँवरना चाहती है किसी सुंदर युवक को वशीभूत करना चाहती है।

इस बीच विशाल का एक मित्र बासु नामक लड़का जिसका विशाल के घर आना-जाना लगा रहता है। वह एक महत्वाकांक्षी तथा धैर्यशाली युवक था। वह अपने

व्यक्तिगत जीवन के बारे में किसी को पता नहीं चलने देता है। वह विशाल से मिलने घर आया था। वह स्टीरियो पर नाच-गान सुनता रहता था। फिर शतरंज भी खेलता रहता था।

लेखिका राजी सेठ का उद्देश्य है कि आज कई शिक्षित युवक चाहे कितने ही गरीब क्यों न हो नाच-गान आदि से ग्रसित हैं। वे समझते हैं कि नाच-गाना से ही वे समकालीन बन सकते हैं। वे सिनेमाओं का अनुकरण करते हुए फैशन करके स्वयं को आधुनिक मानते हैं।

नीरा से भी बासु की मुलाकात होती है। नीरा भी शतरंज खेलते समय बासु के हाव-भाव को देखती है। वह बासु से प्रेम करने लगती है। किन्तु बासू अपने मन की दुर्बलता को इसके सामने नहीं आने देता। फिर भी धीरे-धीरे बासू भी नीरा से प्रेम करने लगता है। क्रमशः दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए बेचैन रहते हैं।

लेखिका राजी सेठ यह बताना चाहती है कि कुछ युवतियाँ प्रारंभ में सब के प्रति आकर्षित हो जाती है। उन्हें हर बार एक नयी चीज़ तथा नये माहौल की तलाश रहती है। बासू जैसे व्यक्ति के प्रेम में पड़ते देख विशाल भी आश्चर्य चकित रहता है। मनुष्य कामना व इन्द्रिय, देर से ही सही फिर भी वहाँ के माहौल में रम ही जाते हैं।

नीरा से प्रेम के बारे में पहले बासू कहता है–"सोचो जरा, ये चीज़ें-मेरा मतलब है–प्यार, घर, कोमलता– कितना डरपोक और प्रोटेटिव बनाती है, इन्सान को.....।"[88]

लेखिका राजी सेठ ने बखूबी कहलवाया कि इन्हीं प्यार, प्रेम, घर का बहाना कर फ़िल्मों ने हम को खूब निचोड़ा।"[89]

आजकल की फ़िल्मों में बेमतलब का प्रदर्शन है। प्रेम-विवाह, मार-काट के सिवा, इनमें और कोई मौलिक बातें ही नहीं होती।

न्यू इयर ईव पर बासू और नीरा को सुंदर नृत्य करते हुए देखकर विदेश से लौटे चावला दम्पति मुग्ध होते हैं।

चावला दम्पति को अपने वयस्क पुत्र रमण के लिए नीरा खूब जँची। विवाह के प्रस्ताव को भी विशाल के माँ-बाप के सामने रखते हैं। रमण और नीरा मिलकर सैर-सपाटे करने लगे। विशाल को नीरा और रमण का घूमना ठीक नहीं लगा क्योंकि नीरा और बासू एक दूसरे को चाहते हैं तथा विवाह भी कर लेना चाहते हैं।

जब से नीरा की जिंदगी में रमण आया तो बासू को भूलकर रमण से विवाह के सपने देखने लगी। जब विशाल ने नीरा से बासू के प्रेम के बारे में पूछा तो नीरा ने कहा –"बासू मुझे भूल जाएगा जैसे मैं उसे भूल रही हूँ।"[90]

लेखिका राजी सेठ का कहना है कि आजकल ये सब घटनायें आम हो गयी हैं। लड़की पहले किसी से प्रेम करती है और यह प्रेम कुछ समय तक चलता है। एकाएक कोई नया लड़का प्रस्ताव लेकर उसके सामने आता तो वह पहले की तुलना में भव्यता और ऐश्वर्य को देख कर पहले प्रस्ताव को तोड़ लेती है।

लड़कियों को प्रथमतः रूप यौवन का आकर्षण अवश्य रहता है किन्तु अपने जीवन को स्थिरता देने की भी जल्दबाजी रहती है। इन गुणों के चलते यदि पहले से भी बेखबर रिश्ता आता है तोउसे तुरन्त तोड़ देती है तथा नये रिश्ते से नाता जोड़ लेती है। परिस्थितियों के कारण भी लड़कियाँ ऐसा करती हैं। यह तो प्रेमभाव का निष्कवच ही है। प्रेम के मूल्यों को त्यागना आज सुलभ हो गया है। कभी प्रेम के मूल्य राजमहल व प्राणों से भी प्यारे थे।

इसका दुःखद प्रभाव बासू जैसे युवकों पर पड़ता है तथा प्रेमानुभूति में न जाने वे क्या-कया करते हैं। उनकी मानसिक वेदना का क्या कहना? प्रेम के कारण ही जीवन में गरिमा बनी रहती है। अपने प्रेम को निभाने के लिए मनुष्य आग में कूदने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे समय में कुछ युवक कमजोर बनकर हत्या या आत्म-हत्या भी कर लेते हैं।

नीरा तो इतनी जल्दबाजी दिखायी कि वह अपनी माँ के परामर्श को भी अस्वीकार कर देती है –"मेरी माँ को कोई चोट नहीं लगेगी। तुम्हें क्या पता? उन्होंने मुझे कितना प्यार किया है... मनहूस जानवर। दूसरों के हवाले कर रखा।"[91]

दूसरे वृत्तांत में राजी सेठ ने युवाओं की उस सोच व क्रिया कलाप को दर्शाया है। जो सभी की देखा-देखी स्वयं परदेश जाकर धन-दौलत और नाम कमाना चाहते हैं लेकिन यह किसी को मालूम नहीं होता कि जिन लोगों ने धन-दौलत कमाया है, वे कितना परिश्रम किये होंगे। तब कहीं जाकर दुनिया की नज़र में पड़ते हैं।

आज का युवा वर्ग पाश्चात्य देशों को जाना स्वर्ग पहुँचना समझते हैं। भारतीय संस्कृति का ओढ़ावा-पहनावा, उनको गाँव तथा काफी पिछड़ी हुई संस्कृति लगती है।

अंग्रेजी संस्कृति को अपनाकर वे यह दिखलाना चाहते हैं जैसा कि वे 'पाश्चात्य भगवान' बन गये हैं। इसी सोच के चलते धोखा-धड़ी करनेवाली कंपनियाँ कुकुरमुत्तों की तरह उग आयी हैं। वे झांसा देकर बड़ी-बड़ी रकम वसूल करते हैं तथा उन्हें जैसे रेगिस्तान में फेंक देते हैं। कई युवक व युवतियाँ इसके शिकार हुए हैं, उन को वहाँ से वापस आना असंभव सा हो जाता है तथा वे आवश्यकताओं का शिकार बन पशु-तुल्य जीवन बिताते हैं। ऐसे युवक बड़ी दुविधा में पड़ जाते हैं। एक ओर अपनी महत्वाकांक्षा तथा दूसरी ओर बेइज्जती।

अत: राजी सेठ आज के कुछ युवकों की इस भावना का निष्कवच कर उन्हें सचेत करती हैं। तथा भारतीय मूल्य व संस्कृति की महानता को दर्शाती है। दूसरे वृत्तांत में कथानक एक शिक्षित युवक पर केन्द्रित है। उसकी माँ कॉलेज की प्रिन्सिपल तथा वकील है। उपन्यास का नायक किसी मित्र के प्रलोभन पर अमेरिका जाता है।अमेरिका जाने के पश्चात् पता चलता है कि वह मित्र जिसका नाम प्रशांत है, किसी लड़की के प्रेम में फंसकर शिकागो चला गया था।

आजकल यह पता नहीं चलता है कि किस पर विश्वास किया जाय। जिस पर विश्वास करता है वही धोखा देता है। फिर स्थिति को संभालना मुश्किल हो जाता है। लेखिका आज के अविश्वसनीय समाज का निष्कवच करती है।

जिस मित्र ने उसे बुलाया था उसने यह भी नहीं सोचा कि जो भारत से आकर इसअमेरिका में कहाँ और कैसे बिना मदद टिक पायेगा। वह स्वयं अपनी स्वार्थ-पूर्ति करने के लिए अपनी प्रेमिका के साथ शिकागो चला गया था। यह तो भारत की ही

नहीं, शायद किसी भी देश की संस्कृति नहीं है। किन्तु आज अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए अपने शारीरिक प्रलोभनों को पूरा करने के लिए मनुष्य ने अपनी मनुष्यता को बौना कर दिया है। राजी सेठ ने मित्रता की भावनाओं के खोखले आदर्श का 'निष्कवच' किया है।

माता-पिता के समझाने पर भी अनुनय-विनय करने पर भी आज का युवक उनके प्रेम को ठुकरा कर आगे निकल जाना चाहता है जिससे उनको कभी मन की शांति नहीं प्राप्त हो सकती। एक जमाने में माता-पिता की सेवा करना, उनकी भावनाओं की कद्र करना, भारतीयों की अहम् शिक्षा थी।

बहुत से युवक विदेश जाकर अपनी रोटी भी गर्व से कमा नहीं सकते हैं। कथानक का नायक अपनी असली हालत किसी से बयान नहीं कर पाता। इस संदर्भ में उसकी निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

"कैसे कहता है कि किन चीज़ों से टकरा रहा हूँ। अक्सर रात बाहर बितानी पड़ती है। रात कैण्डी बेचनी पड़ती है। थोड़े से सेंट्स का जुगाड़ करने के लिए कारों में पेट्रोल भरना पड़ता है। होटलों में क्रॉकरी धोनी पड़ती है। फुटपाथ पर कश्मीरी मफ़लर और गुजरातियों की बनाई हुई कास्टूयम्स ज्वेलरी बेचनी पड़ती है।"[92]

राजी सेठ का कहना है कि आज के युवक परदेश के मोह में पड़कर विदेश तो चले जाते हैं। वहाँ तो किसी को मित्रता नहीं मिलती। अपने आपको जिंदा रखने के लिए, मन को मारकर हर छोटे-मोटे काम को करने के लिए विवश होते हैं। वापस आने में शर्म आती है। तू-तू होने का भय लगा रहता है।

मित्र द्वारा छले जाने के कारण वह पंख कटे पक्षी की तरह दिशाहीन घूमता रहता है। एक सब-वे में गुण्डों द्वारा लूटा जाता है। वे उसे मारकर बचा कुचा धन लूट लेते हैं और बेहोश पड़ा रहता है। होश आने के बाद पता चलता है कि मार्था नामक युवती जो किसी फोटो स्टूडियो की आधी मालकिन है, उसे इस हालत में अपने घर ले जाती है।

उस घर की छत नीची रहती है। एक अंधेरा-सा कमरा होता है। मनुष्य आज अपनी मात्र भूख-प्यास मिटाने, वातावरण के प्रभाव से बचने के लिए सोने मात्र की जगह से संतुष्ठ है। मनुष्य का स्तर कितना गिर गया है। देह की प्यास बुझाने, नायक को उसी फोटो स्टूडियों में काम पर रखती है। वे दोनों आवश्यकतानुसार एक दूसरे के सहायक होते हैं।

घर से माँ के प्रेम भरे पत्र आते हैं। वे पत्र टूटी-फूटी अंग्रेजी में लिखे होते हैं। क्योंकि नायक को ठीक से हिन्दी पढ़ने नहीं आता। वह अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित था। वह इस बात को समझता है कि माँ उसे इतना भी कष्ट देना नहीं चाहती कि वह हिन्दी में पढ़ने का कष्ट न उठावे।

राजी सेठ ने बखूबी ढंग से आज की व्यवस्था पर कटाक्ष किया है। कुछ लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाते हैं। स्वभावत: बच्चे भी अंग्रेज बनना चाहते हैं। वे अंग्रेजी में पढ़-लिखकर अतिशिक्षित साबित करना चाहते हैं लेकिन यह तो रेगिस्तान साबित हो रहा है।

माँ को पत्र का उत्तर नहीं देता वह अगर लिखे तो भी क्या लिखे। माता-पिता, भैय्या-भाभी और बच्चों के बारे में सोचकर रह जाता। तीज़-त्यौहारों व बर्थ-डे पर ग्रीटिंग कार्ड भेज देता है, जल्दी में हूँ।

इसी बीच वसीम नामक भारतीय युवक जो कि नायक का मित्र, उससे मुलाकात होती है। तीन वर्ष के पश्चात् वसीम के निकाह व शादी के बहाने भारत आने का मौका मिलता है। वसीम स्वयं उसके आने जाने का खर्च देना चाहता है। घर के बारे में सोच-विचार करते हुए हवाई-अड्डे पर पहुँचता है।

घर आने पर माता-पिता कुशल समाचार पूछते हैं। पिता पत्र न लिखने की शिकायत करते हैं। माता अमेरिका वापस न जाने की बात कहती है। किन्तु मार्था के साथ जुड़े होने के कारण न चाहते हुए भी उसे जाना पड़ता है। अपने प्रयास में असफल युवक ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जहाँ से वापसी का रास्ता नहीं जान पड़ता है। माँ की ममता के बावजूद भी वह कुछ नहीं कर सकता है। एक गुमसुम-सा

प्यार बातें करते समय झलकता है।वह अपना समय समाप्त होते ही वसीम के साथ वापस अमेरिका चला जाता है।

लेखिका राजीसेठ ने हर मोड़ पर होने वाले दिखावेपन का 'निष्कवच' पर्दाफाश किया है, चाहे वह माता-पिता का हो, पति-पत्नी का हो, भाई-भाई का हो या मित्र का। सब के सब स्वार्थ से ग्रसित हैं। कहीं अच्छाई - सच्चाई नहीं दिखती है। संस्कृति, संस्कार सब मरुस्थल में 'ओयासिस' बन गया है।

अत: यह बात साबित होती है कि शाश्वत मूल्यों में गरिमा है। भारतीय संस्कृति कितनी महान है।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका राजी सेठ फिर से उन शाश्वत मूल्यों का कवच पहनाने की आवश्यकता को सूचित कर रही हैं।

2.5 भारतीय रूढ़ियों से टकराहट और अस्तित्व बोध- स्वेच्छा की माँग :'छिन्नमस्ता'

प्रभा खेतान के छिन्नमस्ता उपन्यास में कलकत्ता के मारवाड़ी समाज के गुप्ता परिवार की बेटी और अग्रवाल परिवार की बहू प्रिया के अस्तित्व बोध की अभिव्यक्ति है। मारवाड़ी समाज की नारियों का शोषण इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। इस चक्रव्यूह में फँसने वाली नारी व्यथा को और इस चक्रव्यूह को भेदकर उभरी हुई नारी अस्मिता को प्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही प्रभा खेतान का मुख्य उद्देश्य है, जिसे फ्लेशबैक शैली में प्रस्तुत किया है।

बचपन से लेकर पूरी जिंदगी भर प्रिया के साथ ऐसी कुछ तिरस्कृत, विकृत एवं कामुक घटनाएँ घटी हैं जिस कारण प्रिया में अकेलापन एवं नैराश्य छाये हुए हैं, इसके बावजूद उसने चुनौतियों से मुँह चुराने की कोशिश कभी नहीं की थी, बल्कि साहस के साथ उन कठिनाइयों से जूझती हुई आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बनी।

प्रसिद्ध उद्योगपति गुप्ता के परिवार में चौथी बेटी के रूप में प्रिया का जन्म होता है। इसके जन्मते ही दादी माँ अपनी नाराजगी को व्यक्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ती है। कहने लगती है कि –"आ पड़ी ऊपर से ...... भाया साँवर अभी तो दो के ब्याह बाकी हैं..... या तीसरी और तैयार होगी। तेरे तो हि खर्ची ही खर्ची।.... हे राम जी! चार-चार बेटियाँ आ पड़ीं।"[93]

अमीर परिवार में पैदा होने के बाद भी लड़की की पैदाइश के प्रति इतनी उपेक्षा हो रही है। तो मामूली घरों में लड़कियों की क्या हालत होगी, इसका अंदाजा लगा सकते हैं।स्त्री को ही सृष्टि का मूलाधार मानते हुए भी स्त्री की स्त्री के प्रति उपेक्षा असहनीय है। लोग इस कमजोर मानसिकता से उभरेंगे कब?

माँ की उपेक्षा और परिजनों के उपहास के कारण प्रिया के मनमें न्यूनता की भावना बढ़ने लगी। प्रिया खुद अपने शब्दों में सुनाती है –"मैं दर्द से बिलबिला उठती हूँ। नहीं, मैं चुप नहीं रहूँगी। मैं कहना चाहती हूँ...... इससे, उससे...... सब से। अपनी माँ के लिए दु:खी होना, उनकी याद आना......पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं उनसे प्यार करती हूँ? उन्होंने कभी मुझे प्यार नहीं किया, कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें।हाँ शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।"[94]

असहनीय स्थिति है। बचपन की इन परिस्थितियों में प्रिया के लिए दाई-माँ ही एक मात्र शरण है। प्रिया की सूनी जिंदगी में दाई माँ 'ओयासिस' बनकर आई है।

व्यापार में साथियों के धोखेबाजी के कारण पिता की मृत्यु हो जाती है। तब से प्रिया बहुत ही अकेली पड़ जाती है। दाई माँ के अलावा उस घर में उसे एक मात्र चाहने वाले थे पिता जी। अब पिताजी बहुत दूर चले गये हैं जहाँ से वापस आना असंभव है। प्रिया के साथ बचपन से ही विकृत कामुक घटनाएँ घटने लगी थी। पहले तो माँ की उपेक्षा, दादी, भाई लोगों का चिढ़ना, समय-समय पर उसके साथ ऐसी

विकृत घटनाएँ, प्रिया में एक तरह का अपराध बोध, न्यूनता एवं घुटन आदि भावनाएँ बढ़ने लगी।

प्रिया के दसवें बरस में ही प्रिया क़बड़ा भाई विजय उसे जबरदस्ती बाथरूम में ले जाता है और पैंटी उतारने को कहता है। प्रिया नहीं मानी तो उसे जोर से थप्पड़ मारता है। यही बात प्रिया दाई माँ से कहती है कि -"भाभी जी जब पीहर जाती है, भैया इसी तरह छेड़ते रहते हैं। पिछली बार जब भाभी जी पीहर गई थी तब भैया ने मेरे सामने अपने पैंट का बटन खोला था।"[95]

अपने आप में कहने लगती है कि–"कब और कहाँ नहीं मुझपर आक्रमण हुआ?यह कैसा बचपन था?क्या मेरा बचपन...... न केवल भाई बल्कि एक दिन एक नौकर ने भी अपनी गोद में बिठाया था। बहुत छोटी थी, पाँच साल की। दाई माँ ने उसे देख लिया था। बाघिन-सी झपटती हुई दाई माँ उस पर गालियों की बौछार बरसाती। मैं गलत-सही कुछ नहीं समझी थी। मुझे बस मेरे फ्रॉक में लगा एक लिसलिसा पदार्थ याद है, जिसे दाई माँ रगड़-रगड़ कर बड़ी देर तक छुड़ाती रही थी।"[96]

प्रो.मुखर्जी के घर में ही प्रिया के साथ यौन संबंध स्थापित होता है। इसी समय प्रो. मुखर्जी प्रिया के कानों में शहद-सी बातें कहते हैं –"मैं तुमसे प्यार करता हूँ केवल तुम से।"[97]

प्रिया उस यौन संबंध के सुखद अनुभव के बारे में कहती है –"उस दिन न मुझे कोई ग्लानि महसूस हुई और न ही जुगुत्सा। पुरुष का स्पर्श इतना मादक होता है, इतना सुखद ! वह इतना कमनीय, इतना आकर्षक हो सकता है, मुझे पहली बार पता चला। मैं बाईस की उम्र में एक पूरी औरत बन चुकी थी। वह बत्तीस का अनुभवी पुरुष था।"[98]

कुछ महीनों बाद उनसे मिलने घर पर गयी तो पता चला कि हाल ही में उसकी शादी हुई। मुझे देखते ही गुस्से मेंआकर कहने लगा कि –"मूर्ख लड़की। मैंने

कब कहा था कि मैं तुमसे शादी करुँगा? हम दोनों ने मौज की। बस, बात खत्म। और सुना फिर कभी यहाँ मत आना। मैं अब शादी शुदा इनसान हूँ।''[99]

लेखिका कहती है कि किसी भी औरत को इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता है? ऐसी घटनाएँ आदमी के लिए एक साधारण विषय है लेकिन स्त्री के लिए जिंदगी भर का तिरस्कार, अपमान एवं घुटन है।

प्रिया हर मामले में परंपरा से हटकर आधुनिक के अनुरूप बदलना चाहती है। प्रिया, अपनी माँ, भाभी, नरेन्द्र के पिताजी की रखैल तिलोत्तमा की भाँति इस मारवाड़ी समाज की परंपरा की चौखट में बंदी होना नहीं चाहती है। पीरियड में छुआछूत को नहीं मानना चाहती। फैशनेबल कपड़े पहनने में नयापन चाहती है। प्रिया अपनी अम्मा की तरह दब्बू रहना, भाभी की तरह घुटघुटकर मरना नहीं चाहती है। प्रिया अपने आप को समझने लगती है –''सदियों की इस अमानवीय परंपरा को किस बीमारी का नाम दूँ, जहाँ मेरी जैसी विद्रोही लड़कियाँ भी समर्पित नारी और माँ बन जाने में विवश हो जाती है? मैंने अपनी जिंदगी का एक लम्बा हिस्सा अम्मा जैसी न होने के संघर्ष में लगा दिया।''[100] मारवाड़ी नारियों की स्थिति देखकर प्रिया के मन में विरोधी भावनाएँ प्रबल होने लगती है कि –''नहीं, मैं औरत होना नहीं चाहती, मैं कभी किसी से प्रेम नहीं करुँगी। कभी शादी नहीं करुँगी। सेक्स से घृणा है मुझे। एक ठंडी औरत हूँ । पुरुष से बदला लेने का मुझे एक ही तरीका समझ में आया।''[101]

किसी भी स्त्री के लिए पुरुष से घृणा करना, शादी न करने का कठोर निर्णय लेना काफी आश्चर्यजनक है। परिस्थितियों की प्रबलता ही ऐसा निर्णय करने में स्त्री को मजबूर करती है।

प्रिया अपने आप को कोसती है कि –''क्यों मेरी हिम्मत नहीं हुई कि इन विकृत विषयों को किसी को बता नहीं सकी। मैं क्यों इतनी दब्बू हूँ? इतनी कायर? क्या दाई माँ के कारण भय का संस्कार उपजा?या अम्मा की उपेक्षा में या फिर हमारे समाज की हजारों-लाखों स्त्रियों के साथ ऐसा ही घटता रहा है? पर हर औरत मुँह खोलने से

घबराती है। क्या सबको एक ही निर्देश मिला है अपनी माँ से! अपनी बहन से! मत बोलना, बिटिया!"[102]

इतनी उपेक्षा, तिरस्कार, अपमान, घुटन होते हुए भी प्रिया ने कभी हार नहीं मानी।

प्रिया के पति नरेन्द्र कामुकता को प्रधानता देने वाला व्यक्ति है। पति के इस अतिकामुक व्यवहार से वह त्रस्त है।

शादी के दूसरे दिन देवी-देवताओं की पूजा के बाद सुहागरात मनायी जाती है। लेकिन नरेन्द्र ने माँ से साफ-साफ कह दिया कि –"आपके देवी-देवताओं की पूजा अभी बाकी है क्या? मैं नहीं मानता यह सब। सब बेकार की पोगापंथी बात है।"[103] नरेन्द्र अपनी माँ को आदेश देता है कि –"और इसके कपड़े बदलवाइए, ऐसे मत भेजिएगा।"[104]

सुहागरात के दिन प्रिया नरेन्द्र से ईमानदारी के साथ कुछ बातें समझाना चाहती थी। प्रिया सोच रही है कि अमेरीका में एम.बी.ए. पढ़कर आने वाला व्यक्ति सब कुछ समझेगा। लेकिन प्रिया के मुँह खोलने के पहले ही –"वह पढ़ा-लिखा आदमी बीस मिनट में अपनी भूख मिटाकर करवट बदलकर सो गया था। मैं थकी हुई बेदम पड़ी रही। नरेन्द्र की गहरी साँसें, फिर नींद।"[105]

"यह मेरी जिंदगी की पहली रात थी, मेरे जीवन साथी के संग। मेरे दिमाग में बस दो ही शब्द अटक गए थे - सुहागरात और जीवन साथी।"[106]"हनीमून के दस दिनों में नरेंद्र ने बड़ी मुश्किल से दो तीन बार ही बाहर निकलने को तैयार हुआ था। मेरा पोर-पोर ज़ख्मी हो गया था।"[107]

"नरेन्द्र की वहशी भूख से मैं सचमुच घबड़ा उठी थी और बाद में तो उसकी यह सेक्सुअल भूख बढ़ती ही गई। केवल रात के प्रथम प्रहर में नहीं, बल्कि रात में, दिन में, शाम को - वक्त, बेवक्त कभी भी। पार्टी के लिए तैयार होकर हम निकलने वाले होते कि वह मुझे वापस कमरे में घसीट लेता था।"[108]

पापा के मरने के बाद तो नरेन्द्र तो लड़कियों को कभी-कभी घर पर भी लाना शुरू कर दिया था। हर छ: महीने में एक हसीन सेक्रेटरी को बदलता रहा।

एक बार तो एक लड़की छ: महीने के बदले साल-डेढ़ साल तक टिक गई थी। और सच में नरेन्द्र के प्रेम में पागल हो गयी थी वह। उसके गर्भ में नरेन्द्र की संतान भी पलने लगी। पर इस जालिम ने उसे भी निकाल दिया था और हँसते हुए कहा था कि–"अरे भूल जाओ इन कसमों-वादों को!बोलो कितना रुपया लेकर जान छोड़ोगी?"[109]इन बातों को सुनकर नरेन्द्र को उस लड़की ने मुँह तोड़ जवाब दिया कि –"रुपया, यू बास्टर्ड, सन आफ बिच! तुम सोचते हो कि तुम रुपया से हर औरत का मुँह बंद कर दोगे? मैं तुम्हें बरबाद करके छोड़ूँगी।"

नरेन्द्र जैसे घमंडी एवं कामुक पुरुष को अपनी जरूरतों के अलावा उसमें पत्नी को समझने की सोच ही नहीं है। मानता है कि पत्नी पर अपना पूरा अधिकार है। पत्नी एक भोग वस्तु है। जब चाहे जो भी करे, कभी भी उस पर कोई रोक-टोक नहीं। किसी भी स्त्री के लिए ऐसे पुरुषों के साथ जीवन बिताना दुष्कर है, यह तो खुद भुगतने वाला ही जान सकता है। "घायल की गति घायल ही जाने"।

प्रिया के व्यापार का बढ़ना, उसकी व्यस्तता, इस सिलसिले में लंदन आना-जाना देखकर नरेन्द्र चिढ़ने लगा। स्वाभाविकत: अपना पुरुषहंकार दिखाने की कोशिश में प्रिया से कहने लगता है कि –"जिस दिन तुमने काम शुरु किया था, उसी दिन मैंने कह भी दिया था - काम करो पर यह मत भूलो कि तुम विवाहिता हो, एक बच्चे की माँ हो, अग्रवाल की बहू हो।"[110]

"मुझे तुम्हारी फलसफा नहीं सुनना और नहीं तुमसे बहस करनी है। तुम बस एक बात सुन लो। यदि आज तुम लंदन गई तो लौटकर फिर इस घर में कभी मत आना, कभी नहीं।"[111]

प्रिया सवाल करती है कि –“क्यों यह घर क्या केवल तुम्हारा है?”तो नरेन्द्र का जवाब है कि –“हाँ! यह घर मेरा है, और सुना, संजू भी मेरा है।कानून की नज़र में बेटे की कस्टडी बाप को मिलती है।”[112]

“तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे। पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है।”[113]

नरेन्द्र यह भी कह देता है कि - “जिसको जो समझना है, समझ लेने दो। मैं तुम्हें तलाक देना चाहता हूँ।”“यह मत भूलो प्रिया कि मैं पुरुष हूँ, इस घर का कर्ता। यहाँ मेरी मर्जी चलेगी। हाँ सिर्फ मेरी।”[114]

उपरोक्त कथन के दौरान लेखिका प्रभा खेतान कहती हैं कि पत्नी बनकर कितने ही बरस ससुराल में क्यों न बिताए, लेकिन वह घर उसका अपना कभी नहीं हो पाता। सही समय देखकर उसे गैर और परायी बना देते हैं। जब तक चौका-चूल्हा चलाते, चुपचाप पड़ी रहेगी तब तक स्थिति शांत बनी रहेगी। जैसे ही अपना मुँह खोल, बुद्धिबल के साथ व्यावहारिक बनकर कामयाब होने लगती है तो प्रशंसा पाने की बजाय ससुराल में कोप का भाजन बनना पड़ता है। उसकी स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसे मजबूरी में हो, जबरदस्ती से हो उस स्त्री को बेघर होना पड़ता है।

दूसरी बात यह भी है कि सारी मुसीबतों को झेलते हुए नव माह गर्भ धारण कर बच्चे को जन्मने पर भी, कानून भी उस बच्चे को माँ के हवाले नहीं करता क्योंकि माँ आर्थिक रूप से अस्वतंत्र है। नरेन्द्र का मानना है कि प्रिया अब जायदाद में जरूर हक माँगेगी। लेकिन प्रिया के मन में जायदाद को लेकर अपने विचार है –“कौन से हक की ? जब हम दोनों के बीच प्यार का कोई लम्हा भी नहीं बचा ..... उसका मन चाहे जो करे, पर मुझे छोड़ दे।”[115]

प्रभा खेतान कहती हैंकि आज की नारी की सोच में काफी बदलाव आ गया। हर रूप में वह तो स्वावलम्बी है। अब पति के पैसों का मोहताज नहीं है। प्रिया जैसी कई नारियाँ पति के प्यार को चाहती है न कि पति के पैसों को।

मारवाड़ी पूँजीपति परिवार में पैदा होकर भी प्रिया को फल, मेवा, बादाम आदि से वंचित रहना पड़ता था।शादी के बाद करोड़पति नरेन्द्र के घर में पार्टियों का पूरा इंतजाम करने के बाद हिसाब-किताब चुकाना पड़ता था प्रिया को ये सब अजीब-सा लगता था और एक-एक पाई के लिए मोहताज भी होना पड़ता था। इसी संदर्भ में उनके मन में विद्रोही भावनाएँ जागने लगी। वह तो अपनी शैक्षिक योग्यता को ऐसे फिजूल कामों में व्यय करना बेकार समझने लगी। कि - "सारी जिंदगी मैं बस टेबल सजाती रहूँगी? बर्तनों को सम्हालती रहूँगी.... सब कुछ कितने नीरस लगने लगता है।..... गृहस्थी के झमेले में कभी न शांत होने वाली लहरें, क्या इसी को संसार सागर कहा गया है?..... क्या यह ढाँचा नहीं बदलेगा?"[116]

उपरोक्त उद्धरण से प्रभा खेतान कहती हैंकि आधुनिक नारी आज घर गृहस्थी को चलाने तक ही सीमित न रहकर कुछ प्रयोजनात्मक व्यवहार में अपनी बुद्धिबल का प्रयोग करना चाहती है। उसमें यह बदली हुई मानसिकता साफ नजर आने लगीहै ।

एक पाई के लिए भी तरसते हुए प्रिया को नरेन्द्र से माँगना पड़ता था। फिलिप के पूछने पर प्रिया अमीरी के नाम के पीछे छिपी गरीबी को व्यक्त करती है कि –"सच कहूँ फिलिप, पैसे की तंगी थी। अमीरी के आवरण में छिपे गरीब मन का ओझापन झेलते -झेलते मैं थक गई थी।"[117] "नरेन्द्र से रुपया माँगने से हमेशा मैं आहत होती थी। मेरा आहत अभिमान और उसके ताने - "रुपया उड़ाओ, तुम्हें तो रुपया बुकने से ही मतलब है।"[118]

नीना की शादी करते ही प्रिया को खुशी महसूस होने लगी और कहने लगती है कि –"मैं चाहे जो खर्च करूँ, मुझे उसका हिसाब नहीं देना पड़ता.... नीना की शादी की.... मेरे अधूरे अरमान उसकी जिंदगी में पूरे हों।"[119]

फिलिप से बातें करते समय प्रिया इस सामाजिक धारणा को व्यक्त करती है कि –“फिलिप ! अपने पैसों पर खड़ी एक औरत को स्वीकार कर पाने में अभी हमारे समाज को समय लगेगा।”[120] फिर से प्रिया कहने लगती हैं कि –“एक पुरुष पैसे कमाता है और दो-चार लोगों को पाल देता है, लेकिन स्त्री यदि सीमाएँ लाँघ जाए तो वह पारंपरिक समाज उसके लिए खत्म हो सकता है।”[121]

लेखिका प्रभा खेतान कहती हैं कि स्त्री कितनी ही पढ़ी-लिखी, व्यावहारिक एवं स्वतंत्र क्यों न बने लेकिन पुरुष समाज की दृष्टि में वह तो पिछड़ी मानी जाती है।

लेकिन प्रिया को अपने पर इतना विश्वास है। उसी विश्वास को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है कि –“मानव समाज तो बहुत बड़ा है। औरत होकर मैं जो समाज को दे सकती हूँ, वह नरेंद्र पुरुष होकर कभी नहीं दे सकता.... !”[122]

“हर व्यक्ति अपने-आप में एक इकाई अवश्य होता है पर उसमें सच्चे स्त्री और पुरुष वही हो पाते हैं जो पुरुष प्रधान समाज की सीमाओं को पार करके अपने स्वभाव में स्त्री की करुणा को संचित कर पाते हैं, वे ही जीवन का सच्चा सृजन कर पाते हैं।”[123]

उपरोक्त कथन में लेखिका प्रभा खेतान दृढ़ विश्वास के साथ कहतीहैं कि समाज का और जीवन का सच्चा सृजन कर पाने में नारी की भूमिका अहं है जो श्रेयोदायक सिद्ध होता है। परन्तु व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगाता है, वहीं पुरुष को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बिठाता है। यह तो अन्याय है। इस व्यवस्था को बदलना बहुत जरूरी है।

2.6 वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के नये मानदण्ड- स्वेच्छा प्रतिमान :‘मुझे चाँद चाहिए’

सुरेन्द्र वर्मा के ‘मुझे चाँद चाहिए’ उपन्यास में शाहजहाँपुर के पुराणपंथी ब्राह्मण परिवार में जन्मी यशोदा शर्मा बी.ए.प्रथम वर्ष में मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज में पढ़ती थी। कॉलेज के अध्यापक जनार्दन रॉय से यशोदा शर्मा के पिताजी किशनदास

शर्मा को ख़बर दी जाती है कि सिलबिल तथा यशोदा शर्मा ने अपना नाम वर्षा वशिष्ट में बदल लिया है।यशोदा का संबंध जिस परिवार से है वह सामंतवादी मूल्यों वाला पितृसत्तात्मक परिवार है जिस परिवार में अधीनता मुख्य शर्त है।

पिता किशनदास शर्मा क्रुद्ध होकर नाम बदलवाने की आवश्यकता पर प्रश्न करता है। तो वर्षा में किसी प्रकार का भय या अपराध भाव नहीं जागा, बल्कि डटकर जवाब देती है कि –“यशोदा? घिसा-पिटा दकियानूसी नाम। मुझे अपना नाम पसंद नहीं था। यशोदा शर्मा नाम में कोई सुंदरता नहीं।”[124]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा जी का कहना है कि बचपन से ही कुछ बच्चों में धैर्य, साहस, विद्रोह करने की क्षमता दिखाई देती है।

यशोदा के पिताजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। उसी संस्कृत ग्रंथों के प्रभाव से, ‘ऋतु संहार’ को पढ़कर सिलबिल। यशोदा ने अपना नाम ‘वर्षा’ और अपनी जाति का गोत्र वशिष्ट यह शुभ नाम धारण किया। लेखक कहता है कि डिग्री के प्रथम वर्ष की उम्र में यशोदा अपना नाम और गोत्र बदलने की जो चेष्टा की थी यह तो वर्षा के कट्टरपंथी पिता किशनदास जी के लिए एक कड़ी चुनौती थी । वर्षा का आधुनिक दृष्टिकोण और उसे पूरा कर दिखाने का साहस इसी उम्र से ही दिखाई देने लगा।

वर्षा बचपन से ही महत्वाकांक्षी थी। ‘मैं आगे चलकर क्या बनना चाहती हूँ’ इस संदर्भ में वर्षा अपने मन की बात कहती है कि –“मेरा बस चले तो मैं आकाश के दहलीज़ पार बनी सात रंगों की इंद्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुंतला की वन-ज्योत्सना सखी बनूँ, चंद्रमा को देखकर खिल जाने वाली कुमुदुनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुकूल।”[125]

वर्षा के कॉलेज में मिस दिव्या कत्याल नामक अंग्रेजी की प्राध्यापिका छात्रावास की वार्डन भी है। वह कॉलेज की एकमात्र प्राध्यापिका थी जो पढ़ाते समय नोट्स की कॉपी अपने हाथों में नहीं रखती। छात्र जगत् में उन्हें सम्मान मिलता था। संस्थापक दिवस के अवसर पर उन्होंने ‘ध्रुवस्वामिनी’ मंचन करके मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज में एक नये इतिहास का सृजन कर नाम रौशन किया। वर्षा इसी दिव्या

कत्याल से प्रभावित होकर 'सौम्यमुद्रा' नाटक में अभिनय करना शुरू करती है। वर्षा की आर्थिक तंगी को जानकरदिव्या कत्याल डेढ़ सौ रुपयों की ट्यूशन दिलाती है। वर्षा का नाटक में अभिनय करना, ट्यूशन देना आदि पिताजी को अच्छा नहीं लगता था। इसका खण्डन करते हुए पिता जी वर्षा से कहते हैं –"इस वंश में आज तक किसी ने कोई नौकरी नहीं की।"[126] वर्षा इसका प्रतिरोध करती हुई कहती है कि –"वंश में किसी लड़के ने नौकरी नहीं की। वह आगे भी न करे, यह जरूरी नहीं है।"[127]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहता है कि मध्यवर्गीय परिवार में सयानी लड़की पर कई प्रकार की पाबंदी होती हैं, लड़की की कुछ इच्छाएँ अनुचित लगती हैं। ज्यादातर लड़कियों की सुरक्षा को लेकर माता-पिता चिंतित रहते हैं। मानते हैं कि उनकी शादी कर दिये तो जिम्मेदारी पूरी हो जाती है। पिताजी और भाई महादेव दोनों वर्षा की शादी कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं। लेकिन वर्षा की सोच बिल्कुल अलग है। वह तो कैरियर बनाना चाहती है। वह समझती है कि कैरियर में शादी बाधक होगी। इसलिए वह प्रतिरोध करती है। आये हुए विवाह प्रस्तावों को ठुकराकर वंश की मर्यादा का महत्व बताने वाले पिताजी से कहती है कि –"मैं ब्याह नहीं करुँगी। भले तुम लोग चाहे मारो, चाहे कूटो।""अगर तुम लोगों ने जबरदस्ती की तो मैं कुएँ में कूद जाऊँगी।"[128]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहता है कि वर्षा जैसी लड़कियों में अपने भविष्य का निर्णय करने तथा, बड़ों के सामने धैर्य के साथ कहने की क्षमता होती है।

दीदी गायत्री वर्षा को शादी के बारे में समझाने की कोशिश करती है तो वर्षा का जवाब है कि –"केवल मादा बनकर रहना मुझे पसंद नहीं है। मैं सिर्फ मादा नहीं हूँ।"[129]

भाई महादेव को भी निरुत्तर कर देती है कि –"जिस मोड़ पर मैं खड़ी हूँ, उसमें शादी मुझे अपने महत्व की नहीं लगती, जितना पाँवों पर खड़ा रहना लगता है।"[130]

दिव्या कत्याल के घर अंडे वगैराह खाकर ब्राह्मण परिवार की प्रथा को भ्रष्ट कर रही है –"मैं उस दिन भ्रष्ट हो गई थी, जिस दिन मैंने नाटक में काम किया था।"[131]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहता है कि निम्न मध्यवर्गीय परिवार में लोग अपनी इच्छाओं से ज्यादा सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति ज्यादा ध्यान देते हैं।

वर्षा का नाटक में अभिनय करना पिताजी को बिल्कुल पसंद नहीं है। इस संदर्भ में दिव्या कत्याल पिताजी को समझाने की कोशिश करती है–"सबसे पहले मैं आपसे माफी माँगती हूँ कि मैं आपके घरेलू मामले में हस्तक्षेप करने की धृष्टता कर रही हूँ। वर्षा अगर आपकी बेटी है तो मेरी भी छात्रा है। इस नाते से मेरा थोड़ा-सा अधिकार बनता है कि मैं आपके सामने अपना दृष्टिकोण रख सकूँ। इस नाटक को सांस्कृतिक तथा सौंदर्यबोधीय कार्यकलाप के रूप में लेते हैं। .... इस प्रक्रिया में कोई ऐसा कारण नहीं, जिससे वर्षा की सामाजिक बदनामी का डर हो।"[132]

यहाँ दिव्या कत्याल की अध्यापकीय चतुरता, दूसरों को समझाने एवं मनाने की सूझ-बूझ बहुत ही प्रभावोत्पादक है।दिव्या कत्याल प्रगतिशील विचारों की लगती है। डिग्री कॉलेज से त्यागपत्र देकर वह लखनऊ चली जाती है।

दिव्या कत्याल की चिट्ठी को पाते ही वर्षा लखनऊ जाने की तैयारी करने लगी थी। वर्षा के लखनऊ जाने पर घरवाले आपत्ति जताते हैं। उसे स्नानघर में बंद कर लखनऊ न जाने की पूरी कोशिश करते हैं। इसके बावजूद वह लखनऊ की नाटक दुनिया में प्रवेश कर लेती है। लखनऊ से वापस आने के बाद घरवाले उसे बहुत सताते हैं। इससे दु:खी होकर वह खुदखुशी करने का दूसरा प्रयत्न करती है।

वर्षा अभिनय के प्रति लगाव के कारण घर छोड़ने पर मजबूर होतीहै और दिल्ली चली जाती है। अपनी कला की प्रतिभा और अपने अस्तित्व का विकास करते हुए शाहजहाँपुर से नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा तक पहुँच जाती है। राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कला की क्षमता को प्रमाणित करती है। इस बीच परिवार का कटु विरोध भी चलता रहता है। एक ओर अपनी कला की पहचान दूसरी ओर परिवार के विरोध से

जूझते हुए आगे बढ़ती है।"यह कथाकृति, व्यक्ति और कलाकार, परिवार सहयोगियों एवं परिवेश के बीच सनातन द्वंद्व की कथा है।"[133]

नाट्य स्कूल में 'बेवफा दिलरूबा' नाटक में असफलता के कारण वर्षा उदास हो जाती है। इस संदर्भ में पिताजी वर्षा के प्रति नाराज़गी दिखाते हुए नाट्य स्कूल के प्रधान डॉ.अटल जी को पत्र लिखते हैं। डॉ. अटल जी का उत्तर है कि –"छात्रों के व्यक्तिगत जीवन मेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर है। अगर अभिनेत्री के रूप में वर्षा में मैं कुछ कमियाँ देखता तो भी इसके लिए मैं आपसे संपर्क करना उचित नहीं समझता। मेरा आप से परामर्श है कि आप वर्षा को कुछ समय दें।"[134]

उपरोक्त कथन में डॉ. अटल ने अपनी समझदारी का परिचय दिया ।उसे मालूम है कि फ़िल्मी दुनिया में कलाकार को टिकना और प्रतिभा को प्रमाणित करने के लिए काफी समय लगता है। वर्षा की प्रतिभा से वे अच्छी तरह परिचित हैं। वर्षा की प्रतिभा को लेकर इसमें उन्हें कोई संदेह नहीं है। वर्षा के निजी मामले में दखल देनाउन्हें पसंद नहीं है।

वर्षा नाट्याभिनय के क्षेत्र में संघर्ष करती हुई सफलताओं की सीढ़ियाँ पार करने में अग्रगामी बनती रही। 'महानगरों' नाटक में वर्षा को 'ट्रैजडी क्वीन' की उपाधि मिलती है। तब से उसे 'ए' ग्रेड का वेतन रु.700-1300 मिलने लगा। इस कला क्षेत्र में हर्ष जैसे होनहार अभिनेता से परिचय अनुराग में बदल जाता है और वह वर्षा का आत्मीय प्रेमी बन जाता है। हर्ष एम.ए.की शिक्षा अधूरी छोड़कर तथा कई भौतिक संभावनाओं को ठुकराकर वह सिर्फ अभिनय करना चाहता है।

हर्ष के पिता आई.ए.एस. अधिकारी हैं। हर्ष की माँ विशाल हृदय वाली है। ये दोनों अपने बच्चों पर किसी प्रकार के निर्णय लेने पर पाबंदी नहीं लगाते हैं। हर्ष उनका इकलौता बेटा है। हर्ष स्वभाव से जिद्दी और स्वाभिमानी है। अपने कलात्मक अहं को लेकर कट्टर है। इसी कारण वह किसी निर्देशक के पास भूमिका माँगने नहीं जाता है। वह न रंजना के सामने झुकता है न वर्षा के प्रति कटिबद्ध है। वह वर्षा से

कहता है कि –“मैं भावना के स्तर पर तुमसे वैसा ही आज भी जुड़ा हूँ, जैसा पहले था।”[135]

अपने आत्मसम्मान एवं दोस्तों के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण वह रिपर्टरी से त्याग पत्र दे देता है। हर्ष की बहन सुजाता कहती है कि –“हर्ष का ईगो (Ego) किंग साइज है।”[136]‘बूल आएड बॉय’ हर्ष डॉ.अटल का प्रिय अभिनेता है। डॉ. अटल के शब्दों में - “हर्ष का रोल को निभाने का थ्रस्ट मुझे आलीविथर की याद दिलाता है, उसके समृद्ध स्वर और डिकाशन में बटन की नफासत और चमक है।”[137] लेकिन कलात्मक अहं के कारण समझौता नहीं कर पाता है।**कंपन** फ़िल्म में हर्ष को अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होता है। लेकिन फ़िल्म ‘मुक्ति’ के प्रति उसकी कलात्मक लालसा अधिक तीव्रगामी है। इस कारण अन्य सभी फ़िल्म प्रस्तावों को वह ठुकरा देता है।

हर्ष सिर्फ अभिनय की खुशी पाना चाहता है । उसे सिर्फ अभिनय कला का चाँद चाहिए। काफी कलात्मक संघर्ष के बाद हर्षअपनी पसंद के मुताबिक फ़िल्म ‘मुक्ति’ के शुभारंभ के दिन सेट पर जाते हुए वर्षा से वह हाथ मिलाकर ‘कालिगुला’ का संवाद बोलता है –“होलिकान, मैं सिर्फ चाँद चाहता हूँ।”[138] और वह उसे नहीं मिलता है। ‘मुक्ति’ फ़िल्म पूरी नहीं बन पाती है। ऐसा क्यों होता है? वह तो अभिनय कला का स्वयं चाँद था। उपन्यास में कहा गया है कि “किसी भी दृष्टि से देखो, हर्ष को आकाश पर होना चाहिए था।”[139]

डॉ. अटलजी की सिफारिश पर वर्षा को ‘फेडरल रिपब्लिक जर्मनी की स्कॉलरशिप प्राप्त होना, तथा ‘बेवफा दिलरूबा’ के दूरदर्शन पर प्रसारित होने के कारण वर्षा का महत्व बढ़ जाता है। प्रोफेसर कपूर वर्षा को पंद्रह सौ रुपयों के पारिश्रामिक पर सहायक के पद पर नियुक्त करता है। ‘हंसिनी’ नाटक के नीना पात्र के चरित्र में वर्षा को अपनी जिंदगी का प्रतिबिंब दिखाई देता है। जिसके कारण इस भूमिका को वह न करने का निर्णय लेती है। डॉ. अटल जी उसे समझाते हैं कि – “तुमने जो कलापथ चुना है उसमें चुनौती तुमसे एप्पाइंटमेंट लेकर नहीं

आएगी।"[140]डॉ.अटल उसे समझाते हैं कि संसार के सब कलाकार अपनी नाकामयाबी का बोझ ढोते हैं। कलात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में असफलता एक चुनौती होती है। वर्षा डॉ. अटल जी के कहने पर 'हंसिनी' के नीना की भूमिका अदा करने को तैयार होती है।

कलात्मक प्रगति वर्षा के जीवन का अंतिम ध्येय था। इसकी प्राप्ति के लिए वह विवाह को भी महत्व न देते हुए कहती है –"अगर मैंने ब्याह कर भी लिया तो भी रिपर्टरी कभी नहीं छोड़ूँगी।"[141]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा का कहना है कि वर्षा गृहस्थी से भी अधिक महत्व अभिनय को देती है। रंगमंच के प्रति पूर्ण समर्पित है। परिवार पत्नी या बहू के रूप में बंधे रहना उसे कदापि पसंद नहीं है।

'विषकन्या' प्रयोग के बाद वर्षा की प्रशंसा अखबारों में छपने लगी। इसके बाद नाट्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त होता है। हर्ष की अनुपस्थिति वर्षा को बहुत उदास बना देती है।

नाट्याभिनय की सफलता के पश्चात् वर्षा फ़िल्म अभिनेत्री बनने का सपना लेकर मुंबई आती है। वहाँ अभिनय के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करती है। 'जलती धूप' फ़िल्म पर वर्षा को श्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता है। 'जलता हुआ अंगार', 'आरती और अंगारे' में वर्षा को भूमिकाएँ मिलती हैं तथा इससे प्राप्त पूँजी के माध्यम से वर्षा मुंबई में 101 'सिल्वर सैंड' फ्लैट खरीदती है।

नाट्याभिमानी हर्षवर्धन के साथ भी वर्षा का भावात्मक संबंध जुड़ जाता है। हर्ष के साथ मिलन से उसे तुष्टि मिलती थी। हर्ष की बाहों में अपनत्व एवं सुरक्षा की अनुभूति होती थी। यही प्रेम परिणित होते-होते गणतंत्र दिवस के शुभ अवसर पर हर्ष द्वारा वर्षा का कौमार्य भंग होता है जिससे वर्षा अत्याधिक आनंद महसूस करती है। इसी के साथ वर्षा को स्त्री होने का अहसास भी होता है।

उस यौन संबंध के कारण वर्षा किसी प्रकार का अपराध-बोध महसूस नहीं करती है बल्कि वह 'उमंग से प्रफुल्लित अपने-आप मुस्कुरा उठती। अपने आप में गुनगुनाने लगती। मैंने सृष्टि का रहस्य जान लिया है...... मैं स्त्री बन गयी हूँ।"[142]

वर्षा अपने उत्साह और उल्लास को दिव्या कत्याल के पत्र में व्यक्त करती है कि –"निष्ठुर ने रतिरंग के लिए अपना घर और राष्ट्रीय पर्व चुना, जब भारतीय गणतंत्र का संविधान लागू हुआ था। जब राजपथ पर तोपें राष्ट्रपति को सलामी दे रही थीं, तो हठी प्रेमी मेरे कामकलश पर नख-रेखा अंकित कर रहा था।"[143]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा ने वर्षा के तन-मन की प्रफुल्लता को राष्ट्रीय पर्व के इतिहास से जोड़कर इस यौन संबंध की गहराई का व्यापक चित्रण किया है। वर्षा का कौमार्यभंग गणतंत्र दिवस के अवसर पर दिखाकर भारतीय प्रजातंत्र के साथ उसके शरीर को स्वतंत्रता से जोड़ने का भरपूर प्रयास किया है।

निर्देशक सिद्धार्थ को 'जलती जमीन' फ़िल्म में लोकप्रियता मिलती है। हर स्थिति में धीरज बाँधे रखना, संयम से काम करना सिद्धार्थ के मुख्य गुण हैं। उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के शब्दों में –"जहाज के कप्तान के रूप में वह छोटे-छोटे श्रमिकों के हितों एवं सुविधाओं का विशेष ध्यान रख्ता था। अगर लंच के लिए शूटिंग रोकनी है, तो वह कामगारों एवं सहायकों को खाने के लिए पहले भेजता है। खुद सबसे बाद में टेक्स के बीच में खड़े-खड़े खा लेता।"[144]

'जलती जमीन' की नायिका वर्षा है। वर्षा के मन में कैमरामैन सिद्धार्थ के प्रति भी प्रेम होने लगता है। सिद्धार्थ का नरम रूप वर्षा खुद की सुरक्षितता के लिए आवश्यक मानती है। वर्षा, सिद्धार्थ के बारे में सोचती है कि –"उसके स्पर्श में थरथराहट या संकोच और अह्लाद है। उसकी साँसों में समर्पण का स्पंदन है, जिससे मेरा रोम-रोम सार्थकता से सिहर उठता है।"[145]

वर्षा इस सुखद अनुभूति से रोमांचित हो जाती है। फ़िल्म 'फंटूश'के विशेष संवाददाता मेहरू मर्चेंट वर्षा से फ़िल्म जगत् की फ्री-लव और फ्री सेक्स के बारे में

कई प्रश्न पूछते हैं। "शादी से पहले सेक्स, कामसूत्र के आसनों की पसंदगी, वर्षा के कौमार्यभंग की उम्र, वन नाईट स्टैंड के बारे में वर्षा की राय, दो पुरुष के संग एक साथ सेक्स आदि।"[146]

वर्षा इन प्रश्नों से दूर रहना चाहती है परन्तु तरह-तरह की फ़िल्मी पत्रिकाओं में यौन संबंध की खबरें छपने के कारण वह आग बबूला हो जाती है।

'टिंसल टाऊन' पत्रिका में वर्षा का लेस्बियन होने की ओर संकेत है। इसमें वर्षा का दिव्या, अनुपमा, शिवानी, जैनेट के साथ प्रणय संबंधों का उल्लेख किया गयाहै। इस पत्रिका के 'बिंदास वर्षा के नाइट गेम्स' शीर्षक में दिव्या कत्याल को उसकी पहली प्रेमिका के रूप में लिखा है। एक पत्रिका में वर्षा का 'विमल से प्रेम', दूसरी पत्रिका में 'अपने तन-मन की प्यास बुझाने के लिए वर्षा का शादी-शुदा प्रेमी से प्रेम, तीसरी पत्रिका में वर्षा-विमल के प्रेम कांड के कारण शोभा का नर्वस ब्रेक डाउन पर लिखा था। दरियागंज दिल्ली से निकलने वाली पत्रिका में लिखा था कि कोडईकानाल में वर्षा विमल का अवैध बच्चा पल रहा है।"[147]

इन समाचारों से वर्षा काफी व्यथित होती है। इस प्रकार की यौन संबंधों की चर्चाएँ वर्षा के प्रगतिपथ में जरूर रोड़ा बन सकती है। ये सभी पत्रिकाएँ वर्षा को बदनाम करने पर तुली हुई हैं।

इन पत्रिकाओं के समाचार को पढ़कर सिद्धार्थ वर्षा से नाराज होता है। वर्षा इन बातों को स्पष्ट करती हुई कहती है कि –"यही कह सकती हूँ कि मैंने तुम्हारे साथ कोई छल नहीं किया। जो हुआ, उसके पीछे मेरा अहसास था।"[148]

वर्षा के साथ नायक के रूप में काम करने वाला अजय वर्मा वर्षा से रोमांस की माँग करता है। वह इस प्रस्ताव को इनकार करती हुई कहती है कि –"तुम अपनी हर नायिका के साथ रोमांस करते हो। इसीलिए लेस्बियन तो हो ही जाऊँगी।"[149]इस कथन से पता चलता है कि - अभिनेत्रियों पर उनके नायक कैसे अपने अधिकार दिखाते हैं।

इन समाचारों को पढ़ने के बाद वर्षा-हर्ष के बीच तनाव बढ़ जाता है। हर्ष वर्षा से कहता है कि –"मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी।" तो वर्षा भी दृढ़ता से कह देती है कि –"मैं इस दुनिया में तुम्हारी अपेक्षाएँ पूरी करने के लिए नहीं हूँ।"

हर्ष-वर्षा के बीच वैचारिक संघर्ष शुरू होता है।जिस कारण व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता खड़ी हो जाती है। हर्ष वर्षा से कहता है –"जब से इण्डिया टुडे में तुम्हारा राइट-अप छपा है, तुम्हें कुछ हो गया है।"[150]

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहता है कि कलाकारों की प्रतिद्वंद्वता के कारण आपसी संघर्ष, ईर्ष्या बढ़ जाती है।

वर्षा को 'पद्मश्री' उपाधि दिये जाने की सूचना मिलते ही हर्ष जल्दी-जल्दी बाहर निकल जाता है। हर्ष की बेचैनी बढ़ जाती है। हर्ष की असफलता का कारण उसके ऊँचे कलात्मक मूल्य, अपनी जिद हैं और स्वाभिमान है तो दूसरी ओर छुईमुई का अहं।

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहते हैं कि कलाकार में प्रतिभा होते हुए भी किसे सफलता मिलेगी या किसे असफलता मिलेगी यह तो कोई नहीं कह सकता है। सफलता भाग्य पर निर्भर होती है। इसके साथ समय और स्थिति के साथ कलाकार को समझौता करना पड़ता है। वर्षा अधिक समझदार लड़की है इसलिए पग-पग पर ठोकरें खाने पर भी सीढ़ी दर सीढ़ी ऊँचे मुकाम पर पहुँच जाती है और हर्ष अपनी अहं के कारण कई मौके गवाँ बैठता है। हर्ष के साथ-साथ कई और कलाकार हैं – आदित्य, चतुर्भुज, नीलकांत आदि जो पीछे-पीछे ही रह गये हैं। उत्कृष्ट कलामूल्यों के बीच समझौता करने की कीमत पर ही वर्षा स्टार हो गयी थी। वर्षा खुद इस विषय के बारे में कहती है –"मैं लोकप्रिय सिनेमा में बेवकूफ बनी रहूँगी, पर साथ ही लो बजट फ़िल्में भी करूँगी।"[151] लेकिन हर्ष के लिए अभिनय उसका पैशन था और व्यावसायिक शर्तों के आगे हर्ष अपने कलाकार को झुकने नहीं देता इसीलिए अपनी प्रतिबद्धता निभाने में उसे जान तक गँवानी पड़ी।

आज हर जगह वैसे समझौता परस्तों का बोलबाला है। इसे स्वयं हर्ष भी स्वीकार करता है –"'मुक्ति' के बाद मैं हर तरह की फ़िल्म करने को तैयार हूँ। न इंटलेच्युअल सवाल करूँगा, न पैसे का मोलभाव।"[152]हर्ष जैसे लोग खोजने पर भी शायद ही मिलें, समझौता करने के लिए कई लोग तैयार और मजबूर भी हैं।

वर्षा और हर्ष दोनों के संबंध के लिए सामाजिक-पारिवारिक स्वीकृति मिल जाने पर भी वे वैवाहिक बंधन में बंध नहीं पाते क्योंकि रंगमंच की कलात्मक प्रतिद्वंद्विता और फ़िल्मों में वर्षा की सुस्थिरता तथा हर्ष की अनिश्चितता बाधक बन जाती है। यही कारण है कि दोनों स्वतंत्र होते हुए भी विवाह नहीं कर पाते।

लेखक सुरेन्द्र वर्मा कहता है कि ये आधुनिक समाज में स्त्री-पुरुष संबंध के नए मानदण्ड हैं।

आधुनिक विचारों वाली दिव्या, वर्षा को समय-समय पर सही दिशा निर्देश देती है। वर्षा और हर्ष के प्रेम प्रसंग के संबंध में दिव्या कत्याल वर्षा से कहती है कि – "हमारे समाज की प्रकृति ऐसी है कि भावात्मक संबंध को सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिए। यह संबद्ध व्यक्तियों के लिए ही नहीं, आगे आने वाली संतान के लिए भी जरूरी है।"[153] फिर कहती है कि –"अब मैं तुम्हें व्यक्ति के रूप में व्यवस्थित देखना चाहती हूँ।"[154]और सामाजिक धारणा को समझाती है –"जिंदगी में कुछ नैतिक आधार, कुछ मूल्य, कोई विश्वास होना चाहिए...। बार-बार अनुभव या सुख के लिए ऐसा आचार एक ओर व्यक्ति के रूप में हीन और दुर्बल बनाएगा और दूसरी ओर नैतिक दृष्टि से भी मलिन करेगा।"[155]

'मुक्ति' फ़िल्म न बन पाना हर्ष के लिए एक नकारात्मक चुनौती हो गयी है जिसका सामना वह नहीं कर सका। जिद्दी, अहं और असफलता के कारण वह आत्महत्या कर लेता है क्योंकि उसकी कलात्मक प्रतिभा और सफलता के बीच खलनायक की भूमिका निभाने वाले उत्कृष्ट कला मूल्य और समझौता विरोधी कार्यशैली आ जाते हैं।"[156]

हर्ष का यह आत्म समर्पण वर्षा को निर्जीव-सा बना देता है। हर्षविहीन जीवन के प्रति वर्षा की आस्था का मुख्य कारण था – हर्ष की संतान। वह अविवाहित होते हुए भी हर्ष की आखिरी निशानी को जन्म देने का निर्णय लेती है। इस निर्णय से वर्षा के भविष्य की दिशा और दशा बदल जाएगी, यह जानते हुए भी वह कहती है –"मैं इसका मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूँ।"[157]

भारतीय परंपरा को तब चोट पहुँचती है जब वर्षा हर्ष के बच्चे की अविवाहिता माँ बनती है। इस प्रकार 'मैं स्त्री बन गयी हूँ' कहकर जिंदगी की सार्थकता इसी में मानी जाती है कि –"अब वह संपूर्ण स्त्री बन गयी है - जननी, लेकिन पत्नी बने बिना।"[158]

यहाँ हम एक स्त्री के द्वारा भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों में आये बदलाव को देख सकते हैं। लेकिन सवाल यह है कि अभिनय कला में कई ऊँचाइयों को पार करते समय ऐसे निर्णय कैसे ले सकते हैं?

इस संदर्भ में डॉ. निर्मला जैन लिखती हैं कि –"फ़िल्मी दुनिया के प्रभाव और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के दम पर बतर्ज 'नीना गुप्ता', 'वर्षा वशिष्ठ' ने अविवाहित मातृत्व को स्वीकार कर अतिरिक्त साहस दिखाया है।"[159]

यहाँ कालिगुला नाटक की यह पंक्ति याद आती है, जिसमें कालिगुला कहता है कि –"मैं अब समझ पाया हूँ कि आखिर सत्ता की उपयोगिता क्या है? इससे असंभव को संभव करने के कुछ मौके मिलते हैं।"[160]

सच है वर्षा जहाँ है, फिर भी ऊँचाई पर है – पद्मश्री से सम्मानित सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री है उसी मुकाम पर ही ऐसे चुनौतीपूर्ण निर्णय लिये जा सकते हैं। सत्ता की उपयोगिता यही है।

वर्षा ने जो चाहा उसने किया, जो चाहा उसने पाया। वह किसी के अधीन नहीं रही है। तमाम कठिनाइयों – संघर्षों को झेलने के बाद वह जिस मुकाम पर पहुँची थी,

कोई भी स्त्री अपने आपको गौरवान्वित महसूस करेगी। लेकिन इसके बाद भी उसमें एक खालीपन है, एक 'नामालूम-सी उदासीपन' है।

वर्षा उदास क्यों है? इसके उत्तर में महादेवी वर्मा का कथन याद आता है – "अपने पूर्ण से पूर्ण विकास में भी एक वस्तु दूसरी वस्तु नहीं हो सकती, यही उसकी विशेषता है, अतः उससे जो भिन्न है उसका अवश्याम्भावी है। अपने पूर्ण से पूर्ण गौरावान्वित स्त्री भी अपने प्रकृति में इतनी पूर्ण न होगी कि पुरुषोचित स्वभाव को भी अपनी प्रकृति में समाहित कर ले, अतएव मानव समाज में साम्य रखने के लिए उसकी अपनी प्रकृति से भिन्न स्वभाव वाले का सहयोग श्रेष्ठ रहेगा।"[161]

वर्षा के एकाकीपन का कारण है हर्ष की अनुपस्थिति। उसके बिना वह 'भावात्मक रूप से अकेली' है। उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के शब्दों में 'वह भावात्मक विधवा है' वह पत्नी होने का अनुभव करना चाहती है। उसके भीतर सूनेपन की आँधी चल रही है। उस सूनेपन के बारे में रीटा से कहती है कि –"ओवेशन अमूर्त है। आधी रात के अंधेरे में डरावने सपने से नींद टूटे तो उसके (ओवेशन के) स्पर्श से सांत्वना नहीं पायी जा सकती।"[162]

हर्ष की मृत्यु पर वह कहती है –"मेरे वास्ते चंद्रमा हमेशा के लिए बुझ गया है...।"[163]

इस तरह वर्षा की जिंदगी में एक पुरुष की कमी हमेशा के लिए रह गयी है। शायद इसी कारण कहा गया है कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी का उदात्त आधुनिक दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। नारी अपनी स्वतंत्र कल्पना की उड़ान भरना चाहती है। नारी की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं। इसी कारण उसकी कैरियर ओरियंटेड विचारधारा प्रबल होती जा रही है। वह पारंपरिक रूढ़िवादिता को छोड़ भविष्य में सफलता प्राप्त करना चाहती है। परन्तु इसका एक विपरीत प्रभाव भी दृष्टि गोचर हो रहा है कि वह घोर आधुनिकता की चपेट में आकर अपनी नैतिकता को भी दाँव पर लगाती नज़र आ रही है।

2.7 समाज मनोविज्ञान के आलोक में नारी का स्वाभिमान और सुरक्षा की माँग: 'कठगुलाब'

प्रतिष्ठित हिन्दी कथाकार मृदुला गर्ग कामहत्वपूर्ण उपन्यास 'कठगुलाब' है। यह उपन्यास गहरे आत्मनिरीक्षण का अवसर देकर यह चेतावनी देता है कि नारी को ऊसर करती जा रही सामाजिक व्यवस्था आत्मघाती नहीं तो क्या है?

एक आलोचक के शब्दों में "यह उपन्यास एक आँधी की तरह हमें झकझोरता है....।"[164]कठगुलाब उपन्यास में नारीजाति की उभरती वेदना को मनोविश्लेषणात्मक चिंतन के साथ प्रस्तुत किया गया है। हर नारी का अपना एक अलग स्वभाव एवं चिंतन है। जीवन की विसंगतियों से जूझते हुए वहअपने साहस का परिचय देती है।

इस उपन्यास में मुख्य पात्र– स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, विपिन आदि हैं। इस उपन्यास की मुख्य पात्रा स्मिता है, जिसके मन की परतें खोलने की कोशिश की गई है। इसके साथ नमिता, गंगा, असीमा की माँ, एब्यूज्ड वुमेन हाऊस (RAW – Relief for abused Women) की युवतियाँ आदि अनेक पात्र हैं। इन्हीं के साथ अमेरिका से आयी स्पेन की रूथ, पोलैंड की राक्सन, इटली की एलोना, स्कॉटलैंड की सूजन जैसी कई पात्र हैं।

पूर्व और पश्चिम की, मध्यकालीन और आधुनिक, प्रौढ़, युवा और किशोरी, उच्च, मध्य एवं निम्न वर्ग की सभी नारियाँ अनवरत शोषण और प्रताड़ना से उकताकर बदले की भावना से जूझ रही हैं।

वीरेन्द्र सक्सेना के अनुसार "जिंदगी की राहें आसान नहीं हैं, उसमें सफलता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उपन्यास के प्रमुख पात्र किसी कठगुलाब को उगाने के लिए प्रयत्नशील हैं।"[165]

कठगुलाब उपन्यास की प्रमुख नायिका स्मिता जो स्वतंत्र विचारवाली और स्वाभिमानी है। स्मिता की माता कोढ़ियों के अस्पताल में नौकरी करती थी और पिताजी फैक्टरी में मैनेजर थे। उनकी बड़ी बेटी नमिता और छोटी बेटी स्मिता है। माँ

के मरने के बाद पिताजी नमिता और स्मिता को लेकर दिल्ली चले गए थे। पिताजी के गुजरने के बाद स्मिता को अपनी शादीशुदा बहन नमिता के घर में शरण लेने के अलावा और कोई चारा नहीं बचा था। स्मिता प्रथम श्रेणी में बी.एस.सी. में उत्तीर्ण होती है।

स्मिता के साथ जीजा की गंदी छेड़-छाड़ एवं असभ्य व्यवहार से नमिता परिचित है। इसीलिए जल्दी से स्मिता की शादी करवाकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्ति पाना चाहती है। जीजाजी भी स्मिता की शादी करके जल्दी मुक्ति पाना चाहताथा। स्मिता को लेकर जीजाजी की का रवैया था कि " जो मोटा, अधेड़ या पंगु लड़का बिना दहेज शादी करने को तैयार दीखता तो उसे घर आने का न्यौता दे देते और स्मिता को उसे फँसाने के नुस्के समझाते।"[166]

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि घर में अनाथ, जवान लड़की के साथ आर्थिक अभाव भी हो तो उस लड़की की स्थिति बहुत ही गयी -गुजरी होती है।

स्मिता के मन में आगे की पढ़ाई जारी करते हुए बाद में नौकरी करने का इरादा है।स्मिता जीजाजी द्वारा लाये हर रिश्ते से तंग आ जाती है और दीदी के सामने साफ-साफ कह देती है कि –"मैं शादी नहीं करना चाहती। न अधेड़ से, न जवान से, मैं पढ़ना चाहती हूँ।"[167]

बड़ौदा के हॉस्टल में रहकर वह एम.एस.सी. पढ़ना चाहती है। जीजा जी इसके बदले में सुनाता है कि –"तुम्हारा बाप करोड़ों का खजाना छोड़ गया है, निकालकर एक मुश्त हजार रुपये पकड़ा दूँ। एक तुम्हें पाल रहा है, एक इसे और सिर पर लाद लूँ। डेढ़ बीबी रखवानी थी तो दहेज भी ड्योढ़ा देता तुम्हारा बाप। पर उसकी तो अपनी एक डेढ़ से बढ़कर थी न ।"[168]

कुछ मर्द लोग हर बात पर पत्नी के माँ-बाप को कसूरवार ठहरा कर, उन्हें नीचा दिखाने में बड़ा मजापाते हैं। हर मौके पर अपना अहंकार दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं।

नमिता पति की कड़ुवी बातें सुनने के बाद, अपनी वर्तमान असहाय स्थिति को समझकर स्मिता को पढ़कर आगे नौकरी करने के लिए प्रोत्साहित करती है। नमिता कहने लगती है कि "कम से कम बी.ए. तो किए होती। थोड़ा-बहुत कुछ कमा सकती थी। अब तो इतने पैसे भी हाथ में नहीं होते कि तेरी फीस जमा करवा दूँ। हर चीज़ के लिए इनके आगे हाथ फैलाना पड़ता है। फिर तू फिक्र मत कर। जैसे भी होगा, मैं तेरी फीस के पैसे दिलवा दूँगी। तू आगे पढ़। अपने पैरों पर खड़ी हो। हमारे भरोसे मत रह। काम-धाम करेगी तो एक नहीं, अनेक दोस्त मिलेंगे। अपनी मनपसंद शादी करना। मेरी तरह भिखारिन मत बनना।"[169]

नमिता ने पढ़ाई की आवश्यकता को महसूस किया कि पति पर निर्भर रहे तो बात-बेबात पर पति के ताने सुनने के अलावा जिंदगी में कुछ और मिलने का नहीं है। पढ़-लिखकर नौकरी करे तो ही मनचाही जिंदगी जी पाऐंगे। कम से कम स्मिता तो पढ़-लिखकर आत्म-निर्भर बने।

आगे की पढ़ाई के लिए नमिता पति से फीस भरने की बात पूछती है तो जीजा कहता है कि –"आगे पढ़कर क्या करोगी, साली? पहले आँखें पर चश्मा चढ़ा हुआ है। न सूरत न नाजो-अदा। कोई इसको हाथ लगाने से रहा... हा-हा-हा हमारे सिवा।"[170]कहते हुए फौलादी पंजे से कंधा जकड़, उसने स्मिता को अपने ऊपर गिरा लिया था। नमिता देख नहीं पाई थी कि स्मिताकी दुहरी हुई देह के नीचे पति की हथेली उसका वक्ष दबोचे थी।

स्मिता के साथ अपने पति की गंदी हरकते एवं अश्लील व्यवहार से नमिता परिचित है। एक बार नमिता का हाथ स्मिता के चश्मे पर लगा था। शीशा टूटकर नीचे गिर गया था। स्मिता को बिल्कुल नहीं दिख रहा था। चश्मे को ठीक कराने के लिए जीजा से ही पैसे लेना पड़ता तो स्मिता मन ही मन दु:खी होने लगी थी कि –"सब कुछ टाला जा सकता था पर चश्मे का बनवाना नहीं। इच्छा-अनिच्छा को ताक पर रख देख देना पड़ा। गाली की तरह उछाले गए जीजा के रुपये उठाने पड़े।"[171]

अनाथ और आर्थिक अभाव दोनों लड़कियों की स्थिति को बदतर बना देते हैं। उस लड़की के स्वाभिमान का कोई मायना नहीं रहता है। पैसों के सामने सर झुकाना पड़ता है।

स्मिता की अपनी एक मात्र दोस्त असीमा जो बारहवीं के बाद नौकरी करते हुए पत्राचार में बी.ए. की पढ़ाई भी पूरी कर ली थी और बेघर होकर भी घरेलू विज्ञान पढ़ती रही। असीमा के पास पैसे पूछने गयी थी तो असीमा अपना अनुभव बताने लगी कि –"बेवकूफ है, मुझे देख, मैंने अपनी नौकरी के पहले चार महीनों की तनख्वाह कराटे सीखने में खर्च की है। मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साईंस नहीं, कराटे की जरूरत है।"[172]

एक बार नमिता और स्मिता रात में बचपन की बातों को याद करती हुई वैसी ही सो जाती है। "जब स्मिता की आँखें खुली तो वह एक दरिंदे के शिकंजे में थी। बत्ती जल रही थी उसके हाथ खाट से बंधे थे। सामने आदमकद शीशा रखा था। फोकस में न आती, धुँधली प्रतिछाया उसमें देख, वह पूरा दम लगाकर चीखी तो उसका मुँह कपड़ा ठूँसकर बंद कर दिया गया। फिर एक-एक करके उसके जिस्म के सारे कपड़े फाड़-फाड़कर अलग कर दिए गए। उसे पूरी तरह नग्न करके, उसके बदन के हर हिस्से पर थूका, उस पर खुद को लथेड़ा। आँखें बंद करने पर, खींचकर पलकें ऊपर उठाई और देखने पर मजबूर किया। न मानने पर छातियों पर लात-घूँसे बरसाए।"[173]

"और... पूरा वक्त एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। उसे भोग लेने पर वह एक दबी, धीमी, क्रूर हँसी हँसा थाऔर उसे गूँगा, बँधा और नंगा छोड़कर बाहर निकल गया था।"[174]

नमिता को जिस बात का डर था आज वही घटना घटी। स्मिता का अब उस घर में रहना असंभव था। उस रात को उसके साथ इतना पैशचिक व्यवहार करने वाला व्यक्ति जीजा है या और कोई पहचान नहीं पा रही है। आज तक वह तय नही कर पाई कि-"उन तीनों में ज्यादा हैबतनाक क्या था, तेज रोशनी, सामने रखा आदमकद शीशा या बँधे रहने की मजबूरी।"

किसी की जिंदगी में इतनी विकराल स्थिति शायद ही हो सकती है। लेकिन स्मिता की जिंदगी में ऐसी घटना घटी जो जिंदगी भर दुस्वप्न बनकर रही।

स्मिता चुपचाप सहने वाली लड़की नहीं है। इस राक्षस को सजा दिलाना चाहती है, थाने में शिकायत दर्ज़ करना चाहती है लेकिन नमिता मनाने की कोशिश कर कहती है कि –"पुलिस के पास गई तो बदनामी के सिवा कुछ हासिल नहीं होगा। अकेली जान, वे भी तेरा फायदा उठाने की कोशिश करेंगे।""पहले कम भूखी नहीं हैं, गिद्धों की नज़रें।"[175]

नमिता की बातों से मालूम होता है कि पहले की तरह पुलिस थाना भी आज के समय में स्त्री के लिए सुरक्षा की जगह नहीं है। लेखिका मृदुला गर्ग का आशय है किआधुनिक समाज में स्त्री को अगर पुरुष के मुकाबले खड़े होना है तो अपनी सुरक्षा हेतु शारीरिक बल को बढ़ाने की आवश्यकता है ।

स्मिता ने कानपुर पहुँचकर एम.एस.सी होम साइंस के बजाय एम.ए.अर्थशास्त्र में दाखिला ले लिया। ट्यूशनों से गुजारा चलारही थी। अमेरिका में बॉस्टन यूनिवर्सिटी में असिस्टेंटशिप के साथ एम.एस. में दाखिला मिला था। अब पैसों की दिक्कत नहीं रही।

डाक्टर जिमजारविस मनोविशेषज्ञ थे। उनसे स्मिता अपने मनोरोग का निदान करवाती थी। उसी से स्मिता की शादी भी हुई । जिमजारविस की एक खास आदत है कि स्मिता से हर प्रश्न का हाँ कहलवाना, और उस हाँ से खुशी महसूस करना। काफी समय तक स्मिता कठपुतली की तरह जिम की बातों को मानती थी और हाँ कहती थी। अगर स्मिता नहीं कर पाती है तो जिमजारविस के पास एक ही विकल्प बचता था। वह है –"देह को भोगने का एक नया तरीका ईजाद करवा देना । पहले से ज्यादा तिरस्कारपूर्ण अपमानजनक और अश्लील।"[176]

ऐसा करते हुए जिम अपनी हरकत पर गर्व करने लगता था। धीरे-धीरे जिम की इस चाल को स्मिता समझने लगी थी। "एक बार जिम जारविस साइकियाट्रिस्ट,

लाजवाब ने बिस्तर पर सोई निर्वसन स्मिता को गोद में उठाया और वार्डरोब के पल्ले खोलकर उसमें लगे आइने के सामने ले आया। हाथ बढ़ाकर बत्ती जला दी और प्यार से सहला-चूमकर उसे जगा दिया। फिर मीठी मदहोश आवाज़ में पूछा –"अब तो तुम्हें आइने से डर नहीं लगता?"[177]

स्मिता को बिना चश्मे के उस आदमी को तय करना नामुमकिन था।वह अपनी नंगीदेह और और उस पर लटका हुआ उसका चेहरा देखकर भयभीत हो गई थी। पास में रखा शीशे का फूलदान उठाकर उस शीशे पर मार दिया और गुसलखाने में जाकर कै करने लगी। तो उसे लगने लगा कि आज भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार हुआ जो बरसों पहले हुआ था। बाद में काफी देर तक नहाती रही। गाउन पहनकर जिम के पास आकर दृढ़ स्वर में बोली थी –"दुबारा कभी मत करना।"[178]

जिम जारविस किसी न किसी तरह स्मिता को अपने निदान द्वारा स्मिता को काबू में रखना चाहता है। एक बार स्मिता से आत्म-प्रेरणा (ऑटो सजेशन) का अभ्यास करवाना चाहता था तो स्मिता कहते-कहते हँसने लगी तो उसे पागल ठहरा दिया लेकिन उसे मालूम हो गया कि स्मिता उसे बेवकूफ बना रही थी। तो गुस्से में बड़बड़ाने लगा। गालियाँ बकते हुए वह उसके ऊपर उछला और बैल्ट की चपेट से उसे नीचे गिरा दिया। और बैल्ट से उस पर वार करते-करते उसका गाऊन खींचकर अलग किया और उसका भोग करने की कोशिश की।"[179]

स्मिता तो पहले की तरह इस दुर्व्यवहार को चुपचाप सहन नहीं कर सकी। क्योंकि इस बार वह बंधनमुक्त होने के कारण अपना आक्रोश दिखाने लगी कि -उसने जिम को पटकनी देकर जमीन पर गिरा दिया। उसकी बैल्ट छीन ली और अच्छी तरह उसकी धुनाई करके रख दी।

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैंकि पहले तो ऐसे पैशाचिक एवं विकृत व्यवहार से स्मिता अनभिज्ञ थी। लेकिन उस दिन से लेकर आजतकउसमें प्रतिशोध की ज्वालाएँ भड़कती रही हैं। आज भी स्मिता कोठीक वैसी स्थिति काही सामना करना पड़ा और

वह भी पति से। आज तक उसके मन में जो गुबार था अपने पति से बदला लेकर संतुष्ट हुई थी।

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि आज की नारी पतिके हर दुष्ट व्यवहार को सहन नहीं कर रही है। अब उसकी मानसिकताबदलगयीहै। पति ही क्यों न हो बदला चुकाने में कोई कसर नहीं छोड़ रहीहै।

जिम जारविस ने ही स्मिता को अर्थशास्त्र के बजाय समाज कल्याण में एम.एस. करने पर नौकरी के साथ तरक्की पाने का सुझाव दिया था। आज उसी की बदौलत वह 'रिलीफ फॉर एब्यूज्ड विमेन - रॉ' संस्था में नौकरी करने पहुँच गयी थी। अन्य औरतों को राहत पहुँचाते, आज खुद स्मिता को भी इसी संस्था में शरण लेना पड़ा है। लेकिन स्मिता अपने को अन्यों से अलग महसूस करने लगी कि –"मैंने चुपचाप मार नहीं खाई थी, पलटकर जिम की खासी ठुकाई कर दी थी।"[180]

'रॉ' में ऐसी कई औरतें हैं सबका अपना-अपना दु:ख-दर्द है। इस 'रॉ' संस्था में तीन तरह की औरतें हैं। पहली वे, जिन्हें हम एब्यूज्ड विमेन कहते थे। लांछित, प्रताड़ित बलात्कृत और पिटी हुई औरतें। जख्म देने वाले अजनबी हो सकते थे या खुद उनके पति, प्रेमी, माँ या बाप। उन औरतों में अपार सहनशक्ति थी। बरसों तक सहते रहकर उन्हें पीड़ा की आदत पड़ चुकी थी। आदत के शिकंजे में वे इस तरह कस चुकी थीं कि अपनी पीडक खुद बन गई थीं। फिर भी, पानी सिर पर से गुजर जानेकेपहले किसी चमत्कारिक पल में, उन्होंने बरसों से सोई पड़ी आत्मशक्ति को झँझोड़कर जगाया था, और अपने घर से रॉ के दफ्तर तक की मैराथॉन दौड़ लगा ली थी। वे मदद की माँग करने आई थीं पर हम जानते थे कि उससे पहले वे खुद अपनी मदद करने की चुनौती उठा चुकी थीं।"[181]

"दूसरी, वे औरतें थीं जो काफी कुछ मेरी तरह थीं। कोई न कोई कहर उन पर टूट चुका था, पर वे, रॉ के दफ्तर मदद् माँगने नहीं, संवेदना और करुणा, मदद् देने आई थीं। और इस देने में खुद भी मदद पा रही थीं।"[182]

"तीसरी वे थीं जिनमें करुणा कम दंभ ज्यादा था। उन्हें अपनी शिक्षा, व्यक्तित्व और पद-पदवी का गर्व था। वे खुद कभी शोषित-दलित नहीं रही थीं, उनके साथी पुरुष हमेशा उनसे दब-दबे से आक्रांत रहे थे। फिर भी, वे पुरुष-मात्र को हिकारत की नजर से देखती थीं। क्योंकि उनका ज्ञान या अध्ययन उन्हें बतलाता था कि पुरुष स्त्री का शोषक है।"[183]

स्मिता जिस 'रा' संस्था में काम करती है, वहाँ उसका पाला दु:खी महिलाओं के साथ ही पड़ा है। 'घायल की गति घायल ही जाने' उक्ति की तरह स्मिता दूसरों की सहायता करते हुए अपना गुजारा करने लगी।

लेखिका मृदुला गर्ग का विचार है कि स्मिता जैसी औरतें अपने दु:ख के साथ-साथ दूसरों के दु:खों को भी दूर करने की कोशिश में जुटी रहती हैं। यहाँ परसमाज कल्याण के लिए स्मिता जैसी स्त्रियों की आवश्यकता को सूचित किया गया है।

'रा' संस्था की शरण में जो भी स्त्रियाँ आती हैं उन सबका दु:ख एक जैसा है लेकिन उन पर जो शोषण होता था उनके अलग रूप हैं। परन्तु पुरुषों के प्रति उन सब का विचार एक ही है कि –"मर्द नाम का प्राणी, खुदगर्ज और जालिम होता ही होता है।"[184]

मारियान

मारियान 'कठगुलाब' उपन्यास की दूसरीऔरत है जिसका रॉ संस्था में स्मिता से परिचय होता है। मारियान ने व्हीटन कॉलेज में सोशियॉलजी में मास्टर्स की थी। उसी कॉलेज में लेक्चरर पद पर नौकरी भी करती थी। मारियान सभी मर्दों को एक खाँचे में डालने को तैयार नहीं थी। मारियान के अनुसार - " 'रॉ' संस्था में दो तरह की औरतें काम करती थीं। एक वे, जो पुरुष के हाथों विकराल मर्माघात सह चुकी थीं और उससे उबरने के बाद, बाकी औरतों की मरहमपट्टी में लग गई थीं। और दूसरी वे, जिन्होंने खुद कभी कोई चोट नहीं खाई थी पर दूसरों की कहानियाँ सुनकर, पुरुष मात्र को उत्तरदायी घोषित कर चुकी थीं। अब वे हर किसी पर स्वभावगत हुकूमत

करती हुई, भोली और बेवकूफ औरत जात को कपटी और अत्याचारी मर्दजाल से निजात दिलाने में जुटी हुई थीं। यानी, कुछ औरतें रॉ जख्मों की मारी हुई थीं तो बाकी खुद एकदम 'रॉ' थीं। दोनों सूरतों में, पुरुष के बारे में उनकी राय एक थी। यही कि मर्द नाम का प्राणी, खुदगर्ज और जालिम होता ही होता है।"[185]

मारियान ने अपने पिता के रूप में दो लोगों को देखा था। वे दोनोंउसकी माँ वरजीनिया द्वारा आक्रांत तथा पीड़ित थे। मारियान की माँ का दूसरा पति जार्ज रिचर्डसन। सौतेला बाप होते हुए भी उसने सौतेले बाप की तरह व्यवहार नहीं किया। "उसने मुझे घर की सुरक्षा और बाप का स्नेह दिया था पर कानूनन गोद लेकर अपना नाम और जायदाद में हिस्सेदारी के सिवा, वह सब दिया था, जो एक उदार और स्नेहिल बाप अपनी इकलौती, लाडली बेटी को दे सकता था।"[186]

मारियान के उपरोक्त कथन के अनुसार मालूम होता है कि जार्ज रिचर्डसन भलमानस आदमी है। ज्यादातर मर्द दूसरी शादी तो जरूर करता है पर उसकी बेटी को अपनाने में पीछे हटते हैं या तो मजबूरी के कारण अपनाने पर भी बेटी के प्रति उतना प्यार या लगाव नहीं दिखा सकते हैं। लेकिन यहाँ जार्ज रिचर्डसन कुछ विशेष स्वाभाव का रहा है। मारियान के जीवन का तीसरा आदमी है -इर्विंग ह्विटमेन पहले प्रेमी था फिर पति बना।दस साल तक इविंग ने मारियान को महान उपन्यासकार बनाने का सपना दिखाता रहा। मारियन को शादी होने के बाद पता चला कि वह नाम से ही नहीं पेशे से भी लेखक था। इर्विंग आधुनिक उपन्यासकार होने के नाते, ठोस तथ्यों की तलाश पूरी किए बगैर, उसका सूत्रपात नहीं करना चाहता था। जाहिर है कि एक महान उपन्यास के इनपुट्स जमा करने का काम टैंड एकडमिक का था, रचनाकार का नहीं। मुझसे समझदार और वफादार एकडमिक कौन हो सकता था? तो समझिए कि पूरे दस साल तक, मुझ नाचीज़ को भावी महान् उपन्यासकार इर्विंग ह्विटमेन के सौजन्य से, एक-से-एक धाकड़ विषय पर शोध करने का मौका मिलता रहा। कितनी खुशकिस्मत थी मैं।"[187]

इर्विंग ने कोलंबस की डिस्कवरी ऑफ अमेरिका पर, कभी रेड इंडियन्स के व्यवहार और दुर्व्यवहार पर, कभी रूट्स की तर्ज पर अमेरीकी यहूदियों पर, कभी शेक्सपियर के शायलॉक से व्हिटमेन के गोल्डमेन तक, कभी नीग्रो गुलामों पर विषय को बदलते-बदलते पता नहीं कितने विषयों पर सामग्री को इकट्ठा करने में मैंने भी पूरे दस साल लगा दिये क्यों? इर्विंग का कहना था कि –"जब भी उसका महान उपन्यास पूरा होगा, उसके लिखे जाने का आधा श्रेय मुझे मिलेगा। मुझसे वह मोह छोड़े नहीं छूटता था।"[188]

लेखिका मृदुला गर्ग का कहना है कि औरत कितनी ही पढ़ी लिखी क्यों न हो, लेकिन कहीं न कहीं जाकर धोखा खाती है। यही मारियान के साथ हुआ खुद मारियान के शब्दों में –"थीसिस कभी भी लिखी जा सकती थी पर उपन्यास? उसका आधा मिस्टिक और गौरव उसकी अनिश्चितता और आकस्मिकता में था।"[189]

मारियान का कहना है कि अपने मन में कहीं न कहीं स्वार्थ या आकांक्षा होती है। पहले उस आकांक्षा को पूरा होने का सपना देखते हैं। हम समझते हैं कि अपने पास जो क्षमता है उसे कभी भी किसी भी समय में इस्तेमाल कर सकते हैं। इस दौरान हम अपने आप को भूल जाते हैं। प्यार क्या होता है धीरे-धीरे समझ में आने लगता है। इसी को मारियान अपने शब्दों में कहती है –"लेखक के लिए कितना कुछ करना जरूरी नहीं होता, इसका सही अंदाजा मुझे शादी करते ही हो गया था। खाना पकाने, घर सँभालने, गाड़ी चलाने, नियमित कमाई और मंडेन शोध करने के लिए, उसे सिर्फ एक अदद बीबी की जरूरत होती है। उसे पाते ही उसे उस दूसरी दुनिया में विचरण करने की छूट मिल जाती है, जहाँ भूख-प्यास, काम-धंधे, फैक्टर्स और डॉलर्स का कोई अस्तित्व नहीं होता।"[190]

आज के समय में स्त्री पर दुहरा बोझ पड़ गया है। चौका-चूल्हा भी चलाओ और नौकरी भी करो। इसमें पुरुष की अधिकता पहले से बढ़ गयी है।

शादी के करीब चार साल बाद जब मैं प्रेगनेंट हुई थी तब पहली बार मेरा विश्वास हिला था और मेरी खुशी में दरार आई थी। इर्विंग तो पहले से ही बच्चे पैदा

करने के खिलाफ था। इर्विंग के अनुसार –“एक महान साहित्यिक रचना के सामने, बच्चा क्या चीज़ है, एकदम तुच्छ, नगण्य, डिस्पेंसबल।बच्चा पैदा करके तुम्हें कुछ हासिल नहीं होगा। तुम अच्छी तरह जानती हो कि आदिम समाज, स्त्री को शिशु में व्यस्त रखकर, उसे पुरुष की सुरक्षा पर निर्भर बनाना चाहता था।”[191]

इर्विंग समझाने लगा कि –“औरत को बच्चे की सृष्टि करके इतनी परिपूर्णता मिल जाती है कि उसमें वाक्य या कलाकृति की सृष्टि करने की भूख बची नहीं रहती।”[192]“बच्चे की सृष्टि में तुम्हारी देह भले ही समर्पित हो, तुम्हारी कल्पना शक्ति या प्रतिभा को अभिव्यक्ति का मौका कहाँ मिलता है? आज, जब औरत हर क्षेत्र में काम कर रही है, सुबह से शाम तक व्यस्त रहती है, तो उसे इस आदिम प्रवृत्ति और मान्यता से मुक्त होना चाहिए, वरना किसी महान कलाकृति की रचना नहीं हो पाएगी।”[193]

आज भी पुरुष अपनी सोच के मुताबिक औरत को मुट्ठी में बाँधकर लट्टू की तरह घुमाने में अपने आप को माहिर साबित किया था औरऔरत सूझ-बूझ के बावजूद बुद्धू बनती जा रही है। पढ़ी-लिखी मारियान का पति के प्रति प्यार कहो या निष्ठा कहो उसकी हर बात को मानते हुए तन-मन-धन के साथ समर्पित होकर अंत में धोखा खाती है। तो इस पुरुष सत्तात्मक दुनिया के चलन का अंत कैसे संभव होगा?

मारियान अपने आपसे कहने लगी कि –“क्या!मैं उसकी कल्पित महानता को अपनी प्रतिभा मान बैठी थी?उसकी रचनात्मक उड़ानों के पंख अपने कंधों पर महसूस करने लगी थी? या प्यार में इस तरह सेलैक्टिव बधिर हो गई थी कि उसकी बातों में यह दावा सुन बैठी थी, कि जो उपन्यास लिखा जाएगा वह हम दोनों का होगा, दोनों के नाम से छपेगा।”[194]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती है कि – स्त्री का पुरुष पर संदेह न होना, यदि संदेह हो तो भी उसे अपनी गलतफहमी मानकर समझना, यह तो औरत की बेवकूफी, काफी सदियों से चली आ रही है। खुद अपने पारिवारिक सागर में डुबकियाँ लगाना ही पसंद करती रहती है।

मारियान को अपने साथ घटी हुई चाल को समझने में देर हुई तब तक बहुत कुछ हाथ से फिसल गया था। मारियान खुद बताने लगी कि –"आज यह कहने में जरा संकोच नहीं है कि जितना मैं उस चाहत को ग्रन्थों के इमारती बोझ तले दबाती चली गई, उतना ही वह जमीन के भीतर फूलती-फलती गई। चूल-चूल पोली हुई इमारत को एक दिन गिरना ही था। वह गिरी और मुझे चाहत से सरोबार, अकेला छोड़ गई।"[195]

मारियान का माँ बनने का सपना अधूरा ही रह गया। 'वुमेन ऑफ द अर्थ' उपन्यास केवल इर्विंग के नाम पर ही प्रकाशित होकर निकला है। इसे देखते ही मारियान का गुस्सा तेज ताव पर चढ़ जाता है और उसी रॉ में चिल्लाने लगी कि – "वह झूठ था। मेरा इस्तेमाल कर रहे थे तुम।""सारी सामग्री मैंने जमा की......" इर्विंग ने व्यंग्य करते हुए कहा –"तथ्य जुटा लेने से उपन्यास नहीं लिखा जाता, माई डियर। समाज शास्त्रीय अध्ययन और रचनात्मक लेखन में फर्क होता है। मैंने तुम्हें अपनी थीसिस लिखने से तो नहीं रोका।"[196]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती है कि उपरोक्त कथन में मर्द केचालाकीपन का सबूत मिलता है। पढ़ी-लिखी मारियान की ही हालत ऐसी है तो अनपढ़ स्त्री की क्या दशा होगी ?

मारियान कह रही है कि –"पूरी किताब में, आगे-पीछे कहीं भी मेरे योगदान के लिए आभार प्रकट नहीं किया गया था। समर्पण तक मेरे नाम नहीं था। था हर औरत के नाम। याद आया, मैंने ही एक दिन कहा था हम अपने उपन्यास को हर औरत के नाम समर्पित करेंगे। पर...... तब मैं यही जानती थी कि वह हमारा हम दोनों का सांझा उपन्यास है।"[197]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि मारियान की दस साल की भाग दौड़, हर दूसरे -तीसरे दिन बदलते विषय के अनुसार सामग्री जुटाते रहना, गर्भ-स्राव कराना, उपन्यास के छपने तक गर्भ धारण न करने का ठान लेना, इतना सब कुछ होने के बाद कूड़े-कचरे से बदतर रूप में एक नारी फेंक दी गयी थी। दस साल की जिंदगी के

महत्वपूर्ण समय के समर्पण के बाद जो प्रतिफल मिला है वह बहुत ही शोचनीय है। ऐसी नारी अपनी इस दु:खद कहानी को किसको सुना सकती है?

मन में विद्रोह से भड़कती चिनगारियों को रोक न पाकर पति को गाली देने लगी कि –"यू सन आफ एबिच। यू इंपोटेंट बास्टर्ड" इर्विंग की कमीज का कॉलर पकड़कर पैने नाखूनों से और दाँतों से कंधों और छाती को लहूलुहान करती हुई चिल्लाने लगी –"समझते हो क्या तुम! जेल्डा की तरह मुझे पागलखाने भिजवा दोगे। वह जमाना और था, आज और है। मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। प्लेजियरिज्म के चार्ज पर जेल भिजवाकर रहूँगी। इस उपन्यास की बिक्री तभी होगी जब इस पर मेरा नाम रहेगा, समझे।"[198]

इस संदर्भ में मारियान को जेल्डा फिटजैरल्ड के शब्द कानों में बजने लगे कि –"हर औरत में जुल्म उठाने की ऐसी महारत देखी जा सकती है कि सोफिस्टिकेटेड-से-सोफिस्टिकेटेड औरत भी, कहीं से कहीं, एक मामूली किसान औरत की तरह कलपती पाई जाती है।"[199]

मारियान अपने आपके बारे में महसूस करने लगी कि –"प्रलाप से रोदन और रोदन से प्रलाप के बीच झूलती, धोखेबाजी से पार पाने में नाकाम, फेमिनिन वाइल्स से मुक्त, एक तुच्छ स्त्री।"[200]

मारियान इर्विंग पर दावा करना चाहती है लेकिन वकील ने उसे यह कहते हुए मना किया कि मारियान का ही ज्यादा नुकसान होगा। आऊट ऑफ कोर्ट सेटलमेंट करके वह अपने फ्लैट को पाकर अकेली रह गयी।

हालांकि उपन्यास की हर प्रति की बिक्री में मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता था। इसी विषय को स्मिता पहचानकर इर्विंग के प्रति मेरी प्रतिशोध की भावना को कमजोर करने की कोशिश की थी कि –"तुम यह क्यों नहीं सोचतीं, तुम्हारे साथ चाहे जितना अन्याय हुआ हो, 'वुमेन ऑफ द अर्थ' के छपने से तुम्हारी अस्मिता की अभिव्यक्ति मिली है। नाम उस पर भले इर्विंग का लिखा हो, है तो वह तुम्हारी रूह की आवाज। इर्विंग तो मात्र माध्यम है। इर्विंग से चाहे जितनी नफरत करो पर उपन्यास

पर ममत्व बनाए रखो। वह तुम्हारा है, तुम्हारा ही रहेगा। किसी और नाम का ठप्पा लगने से तुम्हारे सृजन का महत्व और उससे मिलने वाला आनंद कम नहीं हो जाता।"[201]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती है कि – स्मिता जैसी लड़कियाँ मारियान जैसी लड़कियों में प्रतिशोध की भावनाओं पर मरहम पट्टी लगाकर उसे शांत करने में कामयाब होती हैं।

मारियान ने इर्विंग से तलाक लेकर तीन साल बाद गैरी कपूर - एक सफल कास्ट एकाउन्टेंट से दुबारा शादी कर लेती है। इस समय में ऑस्कार वाइल्ड की कही गयी बातों को याद करती है कि – पुरुष तुरत-फुरत दूसरी शादी तब करता है, जब पहली में सुखी रहा हो और स्त्री तब, वह पहली में दुःखी रही हो। नाउम्मीदी में उम्मीदी करते चले जाने की लत होती है, औरतों को।"[202]

मारियान गैरी कपूर के बारे में कहती है कि –"इस बार प्यार-मोहब्बत जैसी वायवीय चीज़ों के बजाए, विश्वास, समझदारी और सहयोग को प्राथमिकता देकर, वह एक डाउन टू अर्थ आदमी या उसके सहारे मैं धरती पर पाँव टिकाए रखकर सृजन के आकाश की तरफ बाँहें फैला सकती थी।"[203]

मारियान यही उम्मीद करती है कि इस बार की जिंदगी सफल होने की है और अपने को निश्चिंत महसूस करने की संभावनाएँ अधिक दिख रही हैं। वह अपने अंदर छिपी हुई सृजनात्मकता को उपन्यास का रूप देना चाह रही है।

'कठगुलाब' की तीसरी नायिका है–नर्मदा, जो अनपढ़, अनाथ, गँवार, झोपड़पट्टी वाली जिंदगी से जुड़ी हुई लड़की निम्नवर्ग एवं गरीबी के कारण जीवन के हर पग पर यातानाओं को झेलने के लिए मजबूर हो जाती है।

बचपन में ही माँ, बाप मर जाने के कारण उनका घर दीदी गंगा, नर्मदा और छोटा भाई बावला के नाम पर हो गया। जिस कारण नर्मदा और भाई बावला को दीदी गंगा और गणपत के साथ रहने की मजबूरी हो गयी। जीजा गणपत बड़ा ही चालाक

है। दीदी के घर में रहने की वजह से साली नर्मदा और साला बावले से खूब काम करवाकर उनके रुपयों को भी हड़प लेता था।

बचपन से ही नर्मदा चूड़ियों के कारखाने में काम करती थी। भट्टी के पास काम करते समय बदन पर जगह-जगह फफोलों की पीड़ा के साथ-साथ मालिक की मार को भी सहना पड़ता था। नर्मदा की अक्सर बेहोशी और बीमारी के कारण ठाकुर काम से निकला देता है तो कभी दीदी की डाँट तो कभी जीजा की डाँट और मार को भी सहना पड़ता था। काम से निकाल देने के कारण जीजा गणपत का गुस्सा तेज ताव पर चढ़ जाता है। क्योंकि महीने की कमाई में घाटा हो जाता है, जो बरदाशत के बाहर है। अपना पूरा गुस्सा पत्नी गंगा पर गालियों की फुलझड़ी की तरह बरसाता है कि –"हरामजादी को इत्ता तेज-तेज दौड़ने की क्या जरूरत थी। अक्ल से काम लो तो काम करके भी रंग जमा सके है। पर इस बदजात को तो घनी फुर्ती दिखलानी थी ना। ऊपर से जिसतिस से जुबान चलाकर ठाकुर को नाराज कर दिया अब ले, चाट अपनी माँ जाई की सूखी चमड़ी।"[204]

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि घर और बाहर, पढ़े या अनपढ, बेवजह औरत को गालियाँ और मार भी सहनी पड़ती है। जिंदगी भर यही सिलसिला जारी है। कहाँ है इसका अंत?गणपत जैसे लोगों को जिंदगी का मतलब केवल पैसा ही है। व्यक्ति या स्थिति का कोई मायना नहीं है। खासकर निम्नवर्ग में ऐसे लोगों का बोलबाला है। कितना विचित्र है यह समाज!

गंगा के दो और लड़के पैदा हो जाते हैं। जीजा छाती ठोक-ठोक कर डींग हाँकते हुए दीदी से कहता है –"देख, सारे मरदजात पैदा किए। तेरे बाप की तरह नहीं कि एक पागल और एक राँड करके फेंक आया दूसरों के दरवाजे पर, कि ले पाल। चल कोई नहीं, एक लड़की होनी चाहिए बालकों की देखभाल को।"[205]

पत्नी और उसके माँ-बाप को नीचा दिखाने में ज्यादा पुरुष अपने अहंकार को दिखाता है।कभी दीदी और जीजा गणपत में घर के मामले को लेकर बात चिढ़ जाती थी। दीदी कहती है कि इस घर में "मेरे भाई-बहन का बराबर का हिस्सा हुआ।" इसे

सुनते ही गणपत के सिर पर भूत सवार हो जाता। आँखें लाल करके बावले को पकड़कर कहने लगा कि –"मार के गेर दूँगा साले हराम के पिल्लों को। बड़े आए हिस्सेवाले। जित्ते का मकान है, उसके दुगुने का मकोस कर मुटा रहे हैं दोनों। अभी उठाकर फेंकता हूँ सड़क पर।"[206]बावले को बचाने नर्मदा आगे बढ़ी तो - "जीजा का घूँसा ऐन कनपटी पर पड़ा और वह हलाल होते बकरे की तरह घैं-घैं करके धरती पर लोट गई।"[207]

गणपत चूड़ी कारखाने से, हर हफ्ते, बावले की पगार वसूल कर ले लेता था। नए मुंशी ने गलती से पैसे बावले के हाथ में दे दिये थे और बावले ने उसे मजे से खर्च कर दिए थे। पगार को न पाकर गणपत गुस्से में दाँत पीसते हुए घर में घुसा और आते ही बावले पर टूट पड़ा। वह पिटाई इतनी निर्मम थी कि नर्मदा मुँह बाएं जड़ रह गई और गंगा न चाहते हुए भी भाई का बचाव करने बीच में आ गई। गणपत ने उसे धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया और उसकी पीठ पर सवार हो गया। फिर जूते की नोक से उसकी यूँ ठुकाई की, जैसे घोड़ी के पैर में नाल जड़ रहा हो। कमर से खून का परनाल बह निकला। नर्मदा बेहोश होकर गिर पड़ी।"[208]

गणपत की हरकतों का कोई अंत नहीं। पत्नी हो, साली हो या बावला हो सब पर हाथ-पैर चलाना उसकी दैनिक पैशाचिक प्रवृत्ति हो गयी। गणपत का क्रूर व्यवहार पुरुषसत्ता को सूचित करता है।

इस पर मार-पीट के कारण गंगा और नर्मदा दोनों को बुखार चढ़ जाताहै। फिर भी गंगा कहने लगी कि –"अरे हरामजादी, मार खाई मैंने, तू किस बात का ताप चढ़ा बैठी। अब दोनों में से एक भी काम पर न पहुँची तो पैसे काटने को दौड़ेगी हरामी बीबियाँ। ऊपर से मार गट्ठर भर कपड़े जमा होंगे धोने को। मेरी किस्मत में ही लिखे थे, ये पागल भाई और रोगन बहन।"[209]

निम्नवर्ग की स्त्रियों की दु:स्थिति इस प्रकार होती है कि पुरुष की डाँट-मार भी सहो और बदन में दर्द होते हुए भी काम पर भी जाओ। न जाए तो पैसों की तंगी

होती है। इस गरीबी को भी सहना पड़ता है। कभी अंत न होने वाली स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण हुआ है।

लेखिका मृदुलागर्ग कहती है कि इस पुरुषसत्तात्मक समाज में पुरुष तो स्त्री के साथ अन्याय करता ही रहा है औरत भी औरत को धोखा दे रही है, तो ये स्त्रियाँ कैसे बच पायेंगी और इन्हें बचाएगा कौन?

दीदी गंगा और जीजा गणपत घर को हड़पने की साजिश रचते हैं। नर्मदा को धोखे में रखकर जीजा गणपत से नर्मदा की शादी कर दी जाती है। इस मामले में आस-पड़ोस की स्त्रियाँ भी गंगा का साथ देती हैं।

मौका पाकर नर्मदा असीमा के घर वापस आ जाती है। तो असीमा उसके लिए प्रौढ़ शिक्षा योजना के अंतर्गत एक साल की पढ़ाई, फिर स्कूल में नौकरी, रहने के लिए हास्टल में इंतजाम करवाती है।

काफी समय बाद अचानक जीजा गणपत नर्मदा को वापस घर ले जाने आता है तो नाखून से जमीन कुरेदती डरपोक, खामोश नर्मदा आज चाकू खोलकर खड़ी हो गई और शेरनी की तरह दहाड़ने लगी कि –"फिर कभी इस घर में आने की हिम्मत की तो दोनों टाँगे तोड़ के सड़क पर फेंक दूँगी। भडुवे, जा अपनी बीबी के पल्लू में जाके सो। मैं तेरी रखैल न थी, तू मेरी रखैल था। कमा-कमा के तुझे खिलाया मुस्टुंडे, इसलिए कि तू और तेरी बीबी मिल के मेरा हक मारो। वह मेरी बहन न दुसमन है, पहले जान लेती तो तुम दोनों की बोटी-बोटी काट के चील-कौवों को खिला देती। हिम्मत हो तो आ मेरे सामने।"[210]

लेखिका मृदुलागर्ग कहती है कि नर्मदा जैसी अनाथ, अनपढ़ औरत भी आर्थिक स्वावलम्बी होने के कारण जीजा गणपत का सामना करने में पूर्ण रूप से समर्थ हो गयी है। अब तक दबी हुई औरत के अंदर की शक्ति लावा की तरह फूटने लगी। समय और स्थिति के अनुसार किसी में भी बदलाव आना सहज है। नर्मदा ने यही साबित किया कि वह भी अबला से सबला हो गयी।

नर्मदा में पहले तो बदले की भावना नाम मात्र भी नहीं थी। उसके जीवन में सुख और खुशी के पल तब आये जब वह अपना घर छोड़कर, सिलाई, कढ़ाई सीखकर पढ़े लिखे परिवारों में शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी हो गयी लेकिन इस स्थिति में आने तक तब तक उसकी आधी जिंदगी बीत चुकी थी। भले ही नर्मदा को जीवन का सही अर्थ समझने में देर हुई लेकिन जिंदगी के आखिरी पड़ाव में वह सक्षम और आत्म निर्भर बनी। कम से कम इस अनुभव से वह आगे की जिंदगी सुख-शांति से बिताने और औरों को राह दिखाने के काबिल हो गयी।

असीमा की माँ एक भारतीय स्त्री का प्रतीक है। वह पति के अत्याचार को सह लेती है लेकिन अपने आत्म-गौरव को नहीं छोड़ती है। इसमें विद्रोही भावना नहीं है। अपने बलबूते पर जीविका चलाने वाली स्त्री है। असीमा अपने माता-पिता का परिचय इन शब्दों में करती है कि –"सबसे बड़ा हरामी था मेरा बाप। लंबा, तगड़ा खूबसूरत हरामी। उसके सामने मेरी माँ, न पिद्दी का शोरबा। हर सीमा में बंधी, एक अड़ियल, जिद्दी औरत। सिर पर पल्लू, मेकअपहीन चेहरा, त्योहारों में आस्था, माँ-बाप की आज्ञाकारिणी पुत्री, तयशुदा विवाह की पात्रा, खाना-बना खिलाकर तृप्त, बच्चे पैदा करके खुश, आदर्श गृहिणी, कर्तव्यपरायण माँ, अपनी सीमाओं में आबद्ध, सतयुग से चली आ रही संतोषी भारतीय नारी।"[211]

असीमा की माँ के इन गुणों से तंग आकर उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली थी और साथ-साथ वह देह भोग के भी भूखे थे। ऐसे पति से पैसे लेना असीमा की माँ नहीं चाहती है। माँ का स्वाभिमान इन शब्दों में व्यक्त होता है –" मेरे सिद्धांत ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते, जो किसी और का पति बन चुका हो।"[212]विवाहित स्त्री को अपने माँ-बाप से पैसे लेते रहना भी उसके सिद्धांत के खिलाफ था। इस कारण वह अपनी सिलाई मशीन पर निर्भर होकर दोनों बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया। असीमा का भाई असीम बालिग हो जाने के बाद पिता के पास जाता है तो पिता की शान-शौकत को देखकर प्रभावित हो जाता है। घर आकर ऐसी नरकीय जिंदगी में पालन के लिए माँ को कसूरवार ठहराकर, खरी-खोटी सुनाकर पिता के साथ रहने का निर्णय कर लेता है। माँ असीमा को भी बुलाकर उसे

भी पिता के पास रहने के लिए कहती है। लेकिन असीमा पिता के पास जाने के लिए नहीं मानती है। इस संदर्भ में बच्चों से माँ अपने मन की बातें व्यक्त करती है कि – “मैंने नहीं चाहा था कि तुम अपने बाप से नफरत करो। मैं तो सिर्फ तुम्हें स्वाभिमान की जिंदगी जीना सिखाना चाहती थी। खैर अब तुम सयानी हो गई हो, अपना रास्ता खुद चुनो।”[213]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि जो स्त्री स्वाभिमानी है वह पुरुष के हर नीची हरकत के सामने सर नहीं झुका सकती। भले ही इस स्वाभिमान को बचाने के लिए कुछ भी दाँव पर लग जाए। इस कारण असीमा की माँ को पति से अलग रहना पड़ा है। फिर भी उसे इसका अफसोस नहीं है। इसी में वह अपना गौरव और खुशी मान रही है।

असीमा का पिता अपनी पत्नी को सबके सामने एक आकर्षक युवती के रूप में पेश करना चाहता है।इसीविषयकोअसीमा बतातीहै कि–“मेरा बाप चाहता था कि मेरी माँ ऐसे कपड़े पहने, जिनमें उसकी देह का सौंदर्य और सौष्ठववही नहीं, उसके दोस्त-अहबाब भी देखें। और वह गर्व से सिर ऊँचा करके मूक कटाक्ष फेंक सके कि, देखो क्या बाकी औरत ब्याह कर लाए हैं हम, तुम लाख लार गिराते रहो, हाथ नहीं आएगी। पर माँ पर उसका कोई बस नहीं चलता था।”[214]पर माँ इस देह प्रदर्शन के खिलाफ थी। माँ ने इतना कह दिया कि –“मैं अपनी सीमा नहीं लाघूँगी। न घर को बाजार बनाऊँगी, न बाजार को ख्वाबगाह।”[215]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि असीमा की माँ की तरह बहुत कम औरतें होती हैं जो अपने स्वाभिमान को बचाकर रख पाती हैं। किसी भी कीमत पर अपने स्वाभिमान को झुकने नहीं देती हैं। अगर स्वाभिमानी स्त्रियाँ ऐसे डटकर रहें, चुनौती का सामना कर सके तो समाज व देश की स्थिति सुधरने में देर नहीं लगेगी।

असीमा की माँ ने अपनी संस्कृति, नारीत्व, देह धर्म को बचाने के लिए पति के सामने न सिर झुकाया न किसी और विषय के लिए मोहताज बनी। अपनी मेहनत से

बच्चों को पाल पोसकर बड़ा किया। वह एक सामान्य दर्जिन से विख्यात ब्यूटिक सलीका की मालकिन बनती है।

असीमा

असीमा एक धाकड़ लड़की है जिसमें अन्याय के खिलाफ लड़ने की हिम्मत है। असीमा स्मिता को पहले से ही समझाने लगी थी कि –"किसी की दया मत स्वीकारो, अपने पर भरोसा रखो, केवल अपने पर। बेवकूफ मुझे देख, मैंने अपनी नौकरी के पहले चार महीनों की तनख्वाह कराटे सीखने में खर्च की है। मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साइंस नहीं, कराटे की जरूरत है।"[216]

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि असीमा उम्र में छोटे होते हुए भी कितनी समझदार एवं व्यावहारिक है। आज केजमाने में समाज का सामना करने में लड़की के लिए अति आवश्यक विषय को सूचित किया गया है।

स्मिता की खबर लेने असीमा नमिता के घर पहुँचती है तो वहाँ स्मिता का जीजा नमिता के साथ बुरा बरताव करते हुए मुँह पर लात जमाने ही वाला था तो असीमा इसे सहन न कर पायी और उसी समय जीजा के बदन पर कराटे किक मारती हुई चेतावनी देतीहै कि –"अगर तूने स्मिता को ढूँढने की कोशिश की या फिर कभी अपनी बीबी पर हाथ उठाया तो समझ ले, पीट-पीटकर तूझे अपाहिज बना दूँगी। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है और मुझे मारने-पीटने में तुमसे ज्यादा मजा आता है।"[217]

असीमा अन्याय को देखकर चुप नही रह सकती। कोई भी हो उसे ठिकाने लगाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। इसी संदर्भ में जब नर्मदा की शादी धोखे से जीजा गणपत के साथ ही होने वाली खबरआसीमा को मालूम होती है तो वह आग बबूला हो कर सीधे पुलिस स्टेशन के वुमेन सेल पर जाती है।असीमा की शिकायत है कि – "नर्मदा नाबालिग है और उसकी शादी जोर-जबरदस्ती से करा दी गयी।"[218]वहाँ से सब-इन्स्पेक्टर को लेकर गंगा के घर पहुँचती है। सब-इंस्पेक्टर से पूछ-ताछ करातीहै तो नर्मदा, गणपत, पड़ोसी, बूढ़े और बच्चे सबने साफ इनकार कर दिया कि नर्मदा की शादी गणपत से हुई। जाँच के बाद डॉक्टर का कथन –"उसकी उम्र अठारह से

ऊपर बतलाई। मर्जी से संभोग करने को कानून की दृष्टि से निरापद बतलाया। जाति मामलों में दखल न देने की पुलिस की नीति को सराहा और मुझे बेवकूफ, सिली और फेमिनिष्ट कहा।"[219]

उपरोक्त कथनों से मालूम होता है कि निम्नजाति के लोग सामूहिकता पर ज्यादा जोर देते हैं। सब लोग मिलकर एक बात पर अड़े रहते हैं, खासकर गैरकानूनी कामों में। वे सब मिलकर सच्चाई को दफना देते हैं। ऐसे मामलों में कोई मदद करना चाहे तो भी असीमा जैसी साहसी एवं समाज सेविकाओं को पराजय को हीचखना पड़ता है।असीमा हर मर्द से नफरत करती है यहाँ तक कि अपने पिता और भाई को भी उसी दृष्टि से देखती है। हर आदमी को 'हरामी' कहती है।पुरुषकेप्रतिअसीमाकीसोचहै कि –"मैंने तय कर लिया है कि उन दोनों के लिए हमेशा इसी लफ़्ज का इस्तेमाल करूँगी। हरामी नम्बर एक- मेरा बाप। हरामी नंबर दो - मेरा भाई। माँ चाहे तो पूजा करे उनकी। मैं किसी साले मर्द से वास्ता नहीं रखना चाहती।"[220]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि बचपन से किसी लड़की के अंदर ऐसी विद्रोही या विरोधी भावना का कारण - घर या आसपास का वातावरण या अंतरंगिक ग्रन्थियाँ हो सकती हैं।

असीमा में विद्रोह की भावना अंदर ही अंदर खौलती रहती है। शुरू से आखिर तक पुरुषों का विरोध करती आई थी और शोषण करने वाले पुरुषों को सजा देती थी। इस तरह से असीमा में आत्मनिर्भरता व उग्र स्वभाव अधिक देखने को मिलता है।

इस उपन्यास में एक पुरुष पात्र विपिन मजूमदार है जो नारी के प्रति सम्मान की भावना रखता है। वह अपनी विधवा माँ की यातनाओं से भरी जिंदगी को देखने के कारण विवाह और प्रेम से डरता था। उसका मानना है कि यदि दोनों में से कारणवश किसी एक के न होने पर दूसरे को भयानक स्थिति से गुजरना पड़ता है, ऐसी स्थिति उसकी माँ पर बीती थी।

असीमा के प्रति वह आकर्षित था लेकिन असीमा किसी भी पुरुष से शादी करना नहीं चाहती है। नमिता की बेटी नीरजा के प्रति आकर्षित होता है। नीरजा बिल्कुल आधुनिक शिक्षित जागरूक महिला है। वह विवाह बंधन में बंधना नहीं चाहती है। क्योंकि उसके लिए विवाह का अर्थ रहा, 'युद्ध स्थल'। वह बताती है –"मेरे माँ-बाप एक दूसरे को दु:ख पहुँचाने में नए-नए तरीके ईजाद करने में माहिर थे। माँ को पापा ने कितनी तकलीफें दी थीं, उनकी मैं चश्मदीद गवाह नहीं थी। बहुत कुछ मेरे जन्म से पहले या फौरन बाद घट चुका था।"[221]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि बचपन की घटनाओं का प्रभाव कितना भयानक होता है – इसका एक उदाहरण उपरोक्त घटना है। जिस कारण नीरजा को विवाह से भय होने लगता है।

नीरजा शादी न करते हुए भी बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार है। वह कहती है कि –"दिक्कत यह है कि अभी दो साल मुझे पढ़ाई पूरी करने में लगेंगे। बच्चा पैदा करने का समय नहीं होगा। उसके बाद पैदा तो कर लूँगी लेकिन पालने के लिए समय नहीं होगा....।"[222]

लेखिका मृदुला गर्ग कहती हैं कि बिना शादी के बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार होना भारतीय संस्कृति में क्रांतिकारी परिवर्तन है। नीरजा बच्चे को जन्म देना चाहती है कि लेकिन वह बाँझ होने के कारण विपिन को बच्चा नहीं दे पाती।

अंतत: इस उपन्यास में आधुनिक नारी की परिस्थिति से अवगत कराया गया है। आज की नारी पर भी शोषण, बलात्कार, पति पीड़न या धोखा सबकुछ हो रहा है, लेकिन उसका यह क्रांतिकारी कदम भारतीय संस्कृति पर बड़ा तमाचा है।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका ने तमाम महिलाओं के संगत और असंगत परिवेशों को अभिव्यक्त किया है। ये कभी व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक या नकारात्मक प्रक्रियाओं के माध्यम से समाज की सृष्टि करते हैं। इनमें स्त्री स्वेच्छा ने अपनी अहमं भूमिका निभाई है।

2.8 नारी और पुरुष की संघर्ष गाथा, संतुलित बुद्धि की माँग : ‘कलि - कथा : वाया बाइपास’

अलका सरावगी रचित उपन्यास है –‘कलि-कथा : वाया बाइपास’ इस उपन्यास के नायक किशोर बाबू हैं। किशोर बाबू के दादा-परदादा, कुल मिलाकर चार भाई थे। रामविलास, डूंगर, नरसिंह और नौरंग। इन चारों भाइयों की माँ रामविलास को बताती है कि जब वह तीन साल का था, सन् 1863 में दिल्ली और कलकत्ते के बीच रेलवे लाइन लायी गयी थी तब उसके पिता की हेमिल्टन नामक एक अंग्रेज से मैत्री हो गयी थी। उसने उसके पिता को कलकत्ता साथ ले गया था। रामविलास के पिता ने हेमिल्टन के प्राण को ‘गदर’ की लड़ाई में बचाया था। इसीलिए उन दोनों में अच्छी दोस्ती हो गयी थी।

इस उपन्यास के नायक किशोरबाबू वह व्यक्ति थे जिनमें पूर्व संस्कार कूट-कूट कर भरे थे। लेकिन एक के बाद एक घटनाएँ उनकी नजरों के सामने से होती गयी जिनकी उन्होंने कोई कल्पना तक नहीं की थीऔर वे मूक दर्शककी तरह आवाक् रह गये थे जिसका अर्थ है –“ऐसा भी होता है क्या!”

इसी ऑपरेशन के दौरान सिर के पिछले भाग में लोहे की चोट लगती है जिसमें से रक्तस्राव होता रहता है। किन्तु बाइपास सर्जरी की सफलता की खुशी में सभी इस बात को भूल गये। किन्तु यदा-कदा वह चोट एक गुठली-सी बनकर उन्हें टीसती रहती है, किन्तु ‘बाई-पास’ यह शब्द उनके लिए उपयोगी रहा। क्योंकि दिल दहला देने वाली एक के बाद एक घटना होती जाती है। उसे वे बाइ-पास अर्थात् नजर अंदाज कर देते हैं क्योंकि इसके सिवा उन घटनाओं को हादसे में लेना या सोचना व्यर्थ था।

किशोर बाबू का परिवार एक मारवाड़ी परिवार है। अपने मारवाड़ीपन से उसे खिन्नता हुई जब उन्हें पता चला कि अंग्रेजों को कलकत्ते में पनाह देने का काम मारवाड़ी सेठ, जगत ने किया था। बंगाल के शासक सिराजुद्दौला के खिलाफ अंग्रेजों

से मिलकर षड्यंत्र रचा था। यदि वे वैसा न करते तो अंग्रेज भारत में टिक नहीं सकते थे। वे लाइब्रेरी में सतपाल महोदय से मिलकर सारा इतिहास जान पाये थे कि किस तरह अंग्रेजों ने झूठे वादे कर सिराजुद्दौला के सेनापति मीरजाफर को प्लासी युद्ध से हटाया था।

छोटा हैमिल्टन अपना परिचय देते हुए कहता है कि- मैं हैमिल्टन साहब का बेटा हूँ। वह रामविलास से पूछता है कि "क्या तुम कालीघाट हो आए हो?"अंग्रेज साहब के मुँह से कालीघाट के बारे में सुनकर रामविलास दंग रह जाता है?"[223]

यह काली काता है मेरे दोस्त! काली का देश। यहाँ आने वालों को पहले काली की पूजा करनी पडती है। तुम्हारे पिता ने नहीं बताया तुम्हें? तुम्हारे पिता ही मेरे पिता की ओर से हर साल काली घाट में पूजा करके आते थे।"[224]

पानवाले से उस मंदिर के बारे में पूछने परवह कहता है कि –"श्रीमंत डोम यहाँ के लोगों का छोटी माता होने पर इलाज किया करता था। उसके इलाज से ठीक होने वाली बहु बाजार की आधी क्रिस्तानी, आधी हिंदुस्तानी औरतें यहाँ माँ काली को भेंट भेजती रहती थी। उन फिरंगी औरतों के कारण ही इस काली का नाम पड गया 'फिरंगी काली'[225]यहाँ मारवाड़ी लोगों की परंपरा के प्रति लगाव को यहाँ दर्शाया गया है।

मेरे पिताजी की पहली पत्नी की कोई संतान न होने के कारण पिताजी के मनाने पर एक शर्त पर मुझे इंग्लैण्ड ले जाकर मेरी परवरिश की गई। शर्त यह थी कि मैं और मेरे पिताजी मेरी माँ से कभी न मिलेंगे। यहाँ मेरी माँ की देखभाल घमंडीलाल करते थे।

रामविलास के पिता ने मरने से पहले उससे कहते थे कि "यदि अपना देस छोड़ना ही हो, तो बेटा कलकत्ता ही जाना। वहाँ गंगा नदी है। कलकत्ता जैसा देश और कहीं नहीं है।"[226]लेकिन रामविलास सोचता है कि वे - "पत्नी,दस साल के इकलौते पुत्र, बाल विधवा बहन चुनिया और इस देश की मिट्टी को छोड़कर? पता नहीं लोग कैसे परदेस चले जाते हैं?"[227]1943 में हुए अकाल के कारण माता और

पिता की मृत्यु हो जाना, किराने दुकान का कारोबार का ठप हो जाना, पत्नी का विदेशी वस्तुओं से आकर्षण आदि के कारण रामविलास को कलकत्ता जाना पड़ा।

जब से बाइपास सर्जरी हुई तब से किशोरबाबू भरी ट्रेफिक के बीच सड़कों पर घूमते रहते तथा जहाँ कोई खास बात दिखी उसे जानने की कोशिश करते। किंतु घर परिवार वालों के लिए यह चिंता का विषय बन गया था। वे मानते थे कि चोट लगने के बाद किशोर बाबू पागल हो गये हैं। उन्होंने कई चिकित्सकों को बतलाया किंतु कोई फायदा नहीं हुआ। वे रोज सड़कों पर घूमने निकल जाते। किन्तु किशोरबाबू को अपनी माँ को देखकर ममता भर जाती है क्योंकि उनकी माँ ने अपने एक बड़े पुत्र ललितबाबू को खोया तथा किशोर बाबू को खोने के भय से संत्रस्त रहती। किन्तु उनकी माँ अपने दु:ख को व्यक्त नहीं करती।

लेखिका अलका सरावगी ने इस भावना को बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है –"माँ की बड़ी-बड़ी आँखों में घबराहट का समुंदर फैला है। जिंदगी का डर छिपाए नहीं छिपता। पर उनके आँसू कभी उमड़ते भी हैं तो उसी समुंदर के अंदर खो जाते हैं।"[228]किशोर बाबू हमेशा यह सोचता है कि मारवाड़ी परिवारों में औरतों की स्थिति कितनी दयनीय है। दिनभर घर में ही रहना अगर बाहर जाना पडे तो घूँघट ओढ़ कर, जरीदार ओढ़नी ओढ़ कर, बाहर निकलना पडता है। मारवाड़ियों के घरों में जितने स्वतंत्र पुरुष होते थे उतनी ही पाबंदी स्त्रियों पर होती थी। "बंगाल में रहते हुए भी मारवाड़ी औरतें कितनी पिछड़ी हुई है।"[229] किशोर सोचता है कि मारवाड़ी समाज में जागृति कब आयेगी?

किशोर बाबू सभी की बातें सुनते थे। चाहे अमोलक की हो या शांतनु की हो। देश, समाज और जिन्दगी के बारे में अमोलक और शांतनु के विचारों में हमेशा टकराहट होती थी। लेकिन किशोर बाबू की जिन्दगी सेंट्रल एवेन्यु में स्थित अपने दो कमरों के बीच ही सीमित हो जाती थी। उन्हें देश समाज, मारवाड़ी स्त्रियों की पिछड़ेपन आदि बातों से टकराने के लिए आजादी चाहिए। पिता और भैया की मृत्यु के उपरांत वे माँ का सहारा बनते हैं। अपनी माँ के बिना एक पल भी नहीं रह सकते

थे। अपने आस-पास के लोग पुरानी धारणाओं के कारण छटपटाते रहते हैं तो किशोर बाबू की जिंदगी वही पुरानी धारणाओं में उलझ गई। यहाँ किशोर बाबू का अन्तर्द्वन्द्व खुलकर सामने आता है।

छोटी लड़की किशोर बाबू की इस अनुशासन प्रियता के कारणअपनी दादी और ताई से हमेशा यह पूछती है किआपने पिताजी को ऐसा क्यों बनने दिया - "ऐसा लगता है जैसे हम किसी मिलिट्री रूल में रह रहे हैं। उनकी ही मर्जी से हम सोये, जागे, पढ़े, हंसे और कभी जिद्द न करें।"[230]

पिता और मैय्या की मृत्यु के बाद नानाजी किशोर बाबू और उनकी माँ को अपने घर ले जाने बार-बार किशोर बाबू के घर आते थे। लेकिन किशोर बाबू की माँ जाने से मना कर देती थी। माँ नानाजी से कहती है कि "मैं चलती तो हूँ बाबूजी ! लेकिन लौट आऊँगी। यह मेरा घर है बाबूजी। मैंने आपके जंवाई के चले जाने के बाद भी आपसे यही कहा था। इन दोनों बच्चों – ललित और किशोर को मैं कम-से-कम एक अपना घर तो दे ही सकती हूँ। नहीं तो वे जब बड़े होंगे, मुझसे पूछेंगे - माँ, हमारा घर क्यों नही है? हम नाना के घर में क्यों रहते हैं? अब ललित भी नहीं रहा। पर ललित की बहू ने चिट्ठी लिखी है – वह अपनी माँ के पास कानपुर नहीं रहना चाहती। वह पराई लड़की इस घर के अलावा और कहाँ रहेगी? आप चिंता मत कीजिए, यह समय भी कट जाएगा।"[231]मारवाड़ी समाज में विधवा औरत की स्थिति का वर्णन करते हुए उसकी आत्मनिर्भरता पर भी जोर दिया गया है।

समूचा जीवन माँ के इर्द-गिर्द ही घूमता है। माँ ही तो दुनिया है, सब कुछ है। किंतु अनपढ़, अज्ञानता और स्वार्थ ने माँ की ममता को भी रौंद डाला। जैसे माता-पिता हैं वैसे बच्चों के स्वभाव भी। माता-पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा-दीक्षा सत्य, धर्म सिखाते हैं तो वे भी वैसे ही बनते हैं। स्वार्थ-स्वार्थी अर्थ-लोलुप हैं तो बच्चे भी वैसे ही बनते हैं।

किशोर बाबू कलकत्ते के दक्षिण में भिवानी नामक बस्ती में एक बड़ी हवेलीनुमा घर में रहते हैं जिस भवन को उन्होंने पूर्ण रूपेण आधुनिक रूप दे दिया था।

सड़कवाले छोर के बरामदे में बैठकर आते-जाते लोग, गंगा से घुली सड़कें तथा पास-पड़ोस के लोगों को देखते रहने में उनको आनंद आता है।

किशोर बाबू की बाइ-पास सर्जरी तथा सिर के पीछे भाग में लगी चोट के कारण कोई विशेष दिक्कत तो नहीं हुई। किन्तु उनके घरवालोंने, भूल-चूक जैसी बातों को भी उसी चोट का परिणाम समझा।

यह कहना कठिन है कि कौन अच्छा है कौन बुरा है। लुटेरों में भी कुछ भले मानुस मिल जाते हैं तथा भले मानुसों में भी लुटेरे मिल जाते हैं। रामविलास के पिता कहते थे - "उसका खून भी हमारे जैसा लाल है।"[232]मारवाड़ी गुणों के अनुसार उनके पिता उनकी माँ से कहते थे - "रुपये हो वे रोकड़ो, सोरो आवै सांस। संपत होथ तो घर भलो, नहीं भलों परदेस।"[233]

रामविलास के पिताजी कुछ दिन सेठ नाथूराम की गद्दी में मुंशीगिरी करते थे बाद में विलायत से हेमिल्टन साहब के आने पर जूट-दलाली के कार्य में लग गये थे। उनके पिताजी की एक ख्वाइश थी कि भिवानी में एक हवेली बनायी जाय। उन्होंने आगे चलकर अफीम और चाँदी के फाटके का कार्य शुरू कर दिया था। किन्तु सब कुछ गंवाकर हेमिल्टन के लाख समझाने पर भी भिवानी लौट आए, घर आकर पूजा-पाठ में अपना पूरा समय बिताने लगे। किन्तु रोजी-रोटी के लिए भिवानी में किराने की दूकान खोल ली। जब कोई कलकत्ता जाता तो उससे वे गंगाजल मंगवाते।

मनुष्य के जीवन में जो संस्कार पड़ जाते हैं वे जीवन पर्यंत चलते हैं। अत: आने वाली पीढ़ियों के लिए हमें एक सुसंस्कृत बने रहने की आवश्यकता को लेखिका अलका सरावगी ने सूचित किया।

राम विलास जब चालीस वर्ष के हुए तब उन्होंने पत्नी की प्रेरणा से कलकत्ते में प्रवेश किया। किन्तु तब तक उनके माता-पिता चल बसे थे। रामविलास के मन में पिताजी का एक सपना था। उसके अनुरूप भिवानी में एक महल बनवाने की इच्छा हुई। उनकी पत्नी ने प्रोत्साहन किया।

लेखिका अलका सरावगी का कहना है कि वास्तव में स्त्री की प्रेरणा से ही पुरुष कुछ प्राप्त कर पाता है। अपनी स्त्री या प्रिया की प्रेरणा हो तो अपने काम में चार चाँद लग जाते हैं, कभी-कभी नष्ट भी होता है। अत: हमारे समाज में संस्कारों की रक्षा में स्त्रियों को सुरक्षित तथा संतुलित बुद्धिवाली होना अत्यंत आवश्यकहै।

रामविलास की मैत्री बसंतलाल नामक व्यक्ति से होती है। उस वर्ष कलकत्ते में अकाल पड़ता है जिससे पैसे होते हुए भी लोग धान नहीं मिलने के कारण मर रहे थे। पशु-पक्षियाँ इधर-उधर मरे बिखरे पड़े थे। पुन: अगले वर्ष तूफान भी आया था।

लेखिका अलका कहती है कि अकाल सरकार की अदूरदर्शिता तथा निकम्मेपन को बयान करता है। यह आवश्यक है कि नये-नये फसलों का आविष्कार तथा उनकी उपज बारह महीने होनी चाहिए।

रामविलास और छोटे हेमिल्टन में मैत्री से आगे बढ़कर एक रिश्ता-सा बन गया था किन्तु रामविलास को इस बात का पता नहीं कि ऐसा क्यों हो रहा है?

हेमिल्टन एक दिन इस रहस्य का भेद खोलते हुए कहता है कि –"मैं आधा हिन्दू ही हूँ। मेरी माँ एक हिन्दू औरत थी। जिन दोनों के बीच की कड़ी रामविलास के पिता थे। क्योंकि अंग्रेज-हिन्दू से उत्पन्न संतान को कोई इज्जत नहीं देता। इसीलिए इंग्लैंडवाली माँ को मनाकर दार्जिलिंग लाकर गर्भ ठहरजाने का नाटक कर यूरोपियन अंग्रेज होने की बात को साबित किया गया।

आज का आधुनिक जीवन इन्हीं सब बातों से भरा पड़ा है। लोग केवल रूप-रेखा को ही देखकर विवाह कर रहे हैं। भगवद्‌गीता के अनुसार कहा गया है कि – "संक्रमण-विवाह लड़के-लड़की समेत दोनों के आगे पीछे की पीढ़ियों को नरक में गिरा देता है।" यही कारण है कि भारत में वंश परंपरा को काफी महत्व दिया जाता है। किन्तु अपने ही गोत्र या प्रेम विवाह कर लेने वालों की जिस तरह की हत्या की जाती है वह उससे भी भयंकर होता है। सभी के लिए मानवता की भावना ही श्रेयस्कर है।

उत्तर कलकत्ते को काला शहर और दक्षिण कलकत्ते को गोरा शहर कहा जाता था क्योंकि दक्षिण में अंग्रेज रहते थे। अत: वहाँ पर बसना उनकी अपनी आर्थिक सक्षमता को बतलाता है, इन दोनों शहरों के बीच बहूबाजार है जहाँ मिश्रित लोग रहते थे। रामविलास मुस्कुराते हुए हेमिल्टन से कहते हैं –"देखिए ! लालाजी ! आप हिन्दुस्तानियों से भी प्रेम कीजिए।"[234]इस बात से पता चलता है कि हिन्दुस्तानी को अपने हिन्दुस्तानियों से कितना लगाव रहता है।

केदार रामविलास का पुत्र था जिसे अंग्रेजों से नफरत थी। एकबार पिताजी के साथ यात्रा करते समय अंग्रेजों ने (10-12 जनवरी, 1902 ई. में) रामविलास और केदार को बुरी तरह से मारा था क्योंकि गलती से केदार अंग्रेजों के कंपार्टमेंट जो खाली था, उसमें चढ़ गये थे, अन्य कंपार्टमेंट्स में भीड़ थी।

रामविलास का टैगर्ट के साथ दोस्ती करना केदार को पसंद नहीं था। एक बार क्रिस्मस की पार्टी में जाने के लिए तैयार हुए रूआबदार रामविलास के सामने अपने हाथों से बुने स्वेदशी कपड़ों में खड़े होकर केदार कहता है कि –"क्या आपने अपनी आत्मा को बिलकुल बेच डाला है? आपको याद नहीं कि जब मैं पहली बार बारह साल की उम्र में आपके साथ रेल में दिल्ली से कलकत्ता आया था, तो इन अंग्रेजों ने हमारे साथ कैसे जानवरों-सा बरताव किया था?आप भूल गए वह अपमान? यह जो टैगर्ट है न आपका दोस्त, आदमी नहीं है, इंसान का खून पीने वाला राक्षस है, राक्षस। आपको मुझमें और टैगर्ट में एक को चुनना होगा।"[235]

केदार को अपने पिताजी की अंग्रेजों से दोस्ती पर सख्त एतराज था। केदार अपने पिता को पत्र लिखते थे।उसके अंत में 'वन्देमातरम्' लिखते थे जिसे रामविलास फाड़देते थे।

किशोर बाबू के परदादा और उनके पिता रामविलास के बीच भी यह अंतरद्वंद्व मिलता है। कारण, वजह, अभिप्राय, मान्यताएँ जो कुछ भी हो पिता और पुत्र के बीच जमा नहीं । इसका उदाहरण यह है कि रामविलास के बेटे केदार बाबू को रामविलास का अंग्रेजों के साथ मिलकर काम करना पसंद नहीं था। एक बार झगड़ा करतेसमय

रामविलास अपने लड़के से कहता है कि –"अब तुम भी दो लड़कों के बाप हो गए हो। जब वे तुमसे इस तरह बात करेंगे तब तुम्हें तमीज़ आएगी अपने बाप से किस तरह बात की जाती है।"[236]

केदार की मृत्यु होजाने केकारण रामविलास में वैराग्य जनित हुआ। केदार के रूख मोड़ने के लिए उसने काफी धन दिया था ताकि वह समाज सेवा करे। फिर भी केदार को अपने पिता से नफरत थी।

स्पष्ट है कि भारत की आजादी को लेकर बच्चा-बच्चा उत्साहित था। अपने देश की आजादी तथा उसकी खुशहाली के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमजोर रामविलास जैसे व्यक्ति भी भारतीयों की आजादी चाहते थे। उन्हें अपने धर्म से प्रेम था। आज के जनमानस तथा नेतागण का यह दायित्व है कि उन कमजोर लोगों के बलिदान को ध्यान में रख केवल अपना पारिश्रमिक ही ले जिससे उनका निजी दायित्व पूरा हो।

किशोरीबाबू अपने दादा-परदादा की जीवनी जानने के बाद अपनी भाभी की डायरी आदि देखने लगे। उनकी भाभी विधवा हो गयी थी। किशोरबाबू ने भाभी का बहुत साथ दिया। सदा उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों ने भाभी के विवाह कर लेने की बात भी कही किन्तु पवित्र रिश्ता मानकर उन्होंने उसे अनसुनी कर दी। कहता है कि–"यह बीसवीं शताब्दी है माईडियर। 1940 में तुम्हारे मारवाड़ियों में भी पहला विधवा विवाह हुए तेरह साल हो गए हैं। तुम क्या चाहते हो - तुम्हारी भाभी का जीवन कैसा हो? तिल-तिल कर जलते वह सती हो?"[237] औरत की करुण स्थिति का वर्णन करते हुए विधवा पुनर्विवाह की ओर संकेत किया गया है।

मामीजी की मृत्यु के बाद, माँ कुंती नानीजी को बहुत हिकारत से देखती थी। माँ नानीजी से यह कहती थी कि –"तुमसे मैंने कितनी बार कहा था माँ, कि उस बेचारी के मन की तकलीफ को समझने की चेष्टा करो। पर तुमने कभी नहीं सुनी

मेरी। कभी बड़े भैया को रोकने की कोशिश नहीं की। तुम्हें भाभी से यही शिकायत थी न कि वह अपने को बहुत बड़े बाप की बेटी समझती है? देखलो उसका बड़प्पन - उसने अपनी जान देकर भैया को बहु बाजार जाने से रोक लिया है। जीत भाभी की हुई है।"[238]

किशोर बाबू की माँ कुंती अपनी माँ से कहती है कि भाभी के बारे में कुछकहना, मुझसे सुना नहीं जाता। किशोर बाबू इन दोनों के बीच के संवाद को सुनकर अपने आप से सवाल करता है कि मामीजी की वह कैसी जीत है?जब जीतने वाला ही जिन्दा न हो, उस जीत का अर्थ क्या है? मामी की मृत्यु के बाद बड़े मामाजी दूसरी शादी कर लेते हैं। वह खुद बड़े मामाजी को बहु बाजार भेजती है। यहाँ पर मारवाड़ी स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार और उनकी मजबूरी को लेखिका ने बड़ी ईमानदारी के साथ स्पष्ट किया है।

लेखिका अलका का कहना है कि आज आवश्यकता है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से न जले। उसकी बुराई न करे। उनकी अच्छाइयों को उजागर करें। क्योंकि स्त्रियों के आपसी वैमनस्य से ही घर खण्डहर हो जाता है।

बड़े होने पर ललित भैय्या का विवाह हुआ, किंतु दो महीने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी । अत: अब घर का सारा भार अकेले किशोर बाबू पर पड़ा। आज ऐसे हर वर्ग में हजारों परिवार हैं जो विवाहित होकर वितंतु बन जाते हैं या किसी न किसी कारण छूट जाते हैं। किंतु जीवन चलता रहता है। रोटी, कपड़ा, मकान की जरूरत सबको है। अत: वे किसी न किसी तरह अपने तथा घरवालों के प्रति दायित्व निभाते हैं। यह एक कश्मकश भरी जिंदगी है ।

किशोरबाबू के बचपन के मित्र शांतनु जो सुभाषचंद्र बोस काऔर दूसरा मित्र अमोलक जो गाँधी जी का समर्थक था। विद्यालय में पढ़ते समय आजादी के संघर्ष के चलते, वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ होती थीं जिसमें अपने-अपने विचार गर्मजोश से प्रस्तुत करते थे। किशोर बाबू को केवल सभी की जिंदगी तथा उनके कार्यों को देखने में आनंद आता था। वे नास्तिक नहीं थे। उनको भगवान के नाम पर धन आदि माँगने

वालों तथा भविष्य बतलाने वालों से चिढ़ थी। किशोरबाबू कहते हैं कि –"कितनी सीमित दुनिया है इन लोगों की जो इन बातों में पड़े रहते हैं। कितनी चीज़ों को देख पाने, महसूस कर पाने से वंचित रह जाते हैं।"[239]

एक बड़े परिवार में बहुत-सी जिम्मेदारियाँ निभाते हुए यह समझना कठिन हो जाता है कि उसी के भरोसे कैसे कार्य करें।किशोरबाबू को विश्वास है कि –"वे ठीक है न तो उन्हें पंडितों की जरूरत है न तो डॉक्टरों की।"[240]किन्तु उनकी पत्नी को विश्वास नहीं है कि वे ठीक हैं। एकाएक जब किशोरबाबू कोई बात कहते तो उन पर पागलपन का शक करती।

भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय किशोर और उनका परिवार अपनी आँखों से हैवानियत का नंगा नाच देखा था। स्वयं भी घेरे में पड़ गये थे। माँ की सूझ-बूझ ने सबकी जान बचायी थी।अंग्रेज-अमेरिकन सैनिकों के हाथों कई मासूम लड़कियाँँ हवस का शिकार हुई थीं। लड़ाई के कारण खाने-पीने की वस्तुएँ काला बाजारी में फँस गयी थी। बच्चे, बूढ़े, जवान भूख से मर रहे थे। सैकड़ों बच्चे भीख माँगते फिरते थे। लाशों के ढेर पड़े थे। एक माँ ने भूख से तिल-मिलाते बच्चे को मार ही डाला था।संपत चाचा लावारिस बच्चों को उठाते तथा दाह संस्कार करते थे।

लेखिका अलक सरावगी कहती है–"भूख आदमी को क्या बना सकती है । यह देखते हुए कुछ देने वाले धन दे रहे थे। लंगर में रोटी आदि यथा संभव बनायी जा रही थी। किंतु सरकार कई महीनों के बाद स्टेटमेंट देती है कि बंगाल में अभूतपूर्व अकाल पड़ा है।जो लोग मध्यम दर्जे के थे वे न माँग सकत थे न कुछ कह सकते थे। चुपचाप भूख द्वारा निगले जाने लगे थे।"[241]

किशोर बाबू का लड़का उनसे पूछे बगैर फैनान्स में छह लाख की गाड़ी किस्तों पर खरीदता है।किशोरको समझ में नहींआताहैकि बेटे के पास इतने पैसे कहाँ से आए? उनसे पूछे बिना गाड़ी खरीदने से उन्हें बहुत खराब लगा था। बेटा अपने पिता से कहता है कि "आजकल किसी भी चीज को खरीदने के लिए सौ प्रतिशत फॉइनेन्स मिल रहा है। बाद में किस्तों में चुका सकते हैं।"

किशोर बाबू बेटे को समझाना चाहता है कि- "भविष्य के रुपए तुम आज ही खर्च कर दे रहे हो। पुराना कर्ज चुकाने के लिए नया कर्ज लेना पड़ता है। अगर किस्ते नहीं चुका पाते तो फिर से कर्ज लेना पड़ता है। "[242]

"मारवाड़ियों ने इतना पैसा इसलिए कमाया कि-"उन्होंने कभी मौज-मस्ती में पैसे उड़ाने के लिए कर्ज नहीं लिया। कभी दूसरे के पैसे मारने की नीयत नहीं रखी। बाप मर गया तो बेटे ने कर्ज चुकाया। बेटा नहीं चुका पाया तो पोते ने चुकाया। और तिल-तिल करकेपैसा जोड़ा। माचिस कीतिल्लियों तक का हिसाब रखते थे मेरे पिताजी।"[243]

किशोर बाबू के डाँटने पर बेटा कहता है कि –"एक बात सुन लजिए पापा पहले जमाने में इस तरह आदमी शांति से रह सकता था। पहले इतनी चीजें कहाँ थीं?टी.वी. कहाँ था?जो इतनी चीजों का पता चलता? अब आदमी भी तो पहले की तरह नहीं जी सकता।"[244]

आज की पीढ़ी छोटी-सी छोटी चीजों के लिए और अपनी माँगों की पूर्ति के लिए तनाव उत्पन्न कर देते हैं और मामला आत्महत्या तक आ जाता है। उनकी नजर में जीवन का कोई मूल्य नहीं, गहने फर्नीचर, गाड़ी के बिना जीवन को व्यर्थ समझते हैं। उपन्यास में जिस तरह किशोर बाबू का लडका कहता हकि –" मेरे दोस्त अरूण की पत्नी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि अरुण उसे अपनी शादी की सालगिराह पर 'ताज बंग्ला' नहीं ले गया था सेलब्रेट करने। और कांता भाभी का तो सब को मालूम ही है –"नए - फर्निचर और गहनों के सेट का दाम दिया नहीं भय्या जी ने। इसलिए ऐन दीवाली के पहले ज़हर खा लिया उन्होंने।"[245]

इसी प्रकार कलि-कथा वाया बाइपास कई घटनाओं और दुर्घटनाओं को झेलती, उपेक्षित करती, देखा-अनदेखा करती चली जा रही है।किशोरबाबू जैसे व्यक्तियों के लिए जो हर किसी के लिए संवेदनशील है, उस संवेदनशील हृदय को पत्थर बनाकर जीवन की कला को सिखाता हर हृदय से गुजर रहा है।

इसी को अलका सरावागी ने उपन्यास के माध्यम से कहलवाती है –‘कलि-कथा : वाया बाइपास’ उपन्यास की कथा भी संयुक्त परिवार के आस-पास घूमती है।किशोर के रूप में मारवाड़ी समाज का प्रतिबिंब साथ ही पिछली पीढ़ी और नयी पीढ़ी की टकराहट, परिवार में बनते बिगड़ते रिश्ते और उनके इर्द-गिर्द घूमते सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, परिस्थितियाँ अकाल का प्रभाव इन सब को लेखिका ने किशोर बाबू के छह पीढ़ियों के माध्यम से अंकित किया है।

2.9 आर्थिक स्वतंत्रता बनाम मानवीय मूल्यों की माँग : ‘अपनी सलीबे ं’

सुश्री नमिता सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। समकालीन कथाकारों में आपका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ये अपने उपन्यासों में संघर्षरत नारपात्रों को ही उकेरने का प्रयास करती हैं। आप, प्रत्येक उपन्यास में स्त्री को आत्म निर्भर और स्वावलम्बी दिखाने में विश्वास रखती है औरस्त्री की आत्मशक्ति का परिचय अपने उपन्यासों में साबित करती हैं। आपने हमेशा पुरुष-प्रधान समाज की रूढ़िगत रस्मों को तोड़ने का प्रयास किया है। अत: कहा जा सकता है कि नमिता सिंह आज की आधुनिक नारी की प्रेरणात्मक शक्ति के रूप में उपहार स्वरूप हमें प्राप्त हुई है।

नारी समस्या के अतिरिक्त नमिता जी नेसमाज में चल रही विभिन्न विषमताओं को भी उजागर करने का प्रयास किया है। ऊँच-नीच की समस्या के साथ-साथ आर्थिक वैषम्य, सामाजिक वैषम्य, धार्मिक वैषम्य आज के समाज को नासूर बनकर त्रस्त करते जा रहे हैं। नमिता जी ने हमेशा इस रोग का उपचार अपनी लेखनी से करने का प्रयास किया है।

विवेचित उपन्यास ‘अपनी सलीबें’, जो1995 ई.में लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक जीवन की समस्याओं पर यथार्थ दृष्टिकोण डालने का प्रयास किया गया है। विवेच्य कृति नारीवादी चेतना पर आधारित है। इसमें समाज की प्रत्येक स्तर की नारी का दृष्टिकोण अंकित करने का प्रयास किया गया है।

उपन्यास की कथावस्तु नीलिमा के एकाकी जीवन को लेकर रोचकतापूर्ण ढंग से प्रारम्भ होती है। नीलिमा एक कॉलेज में अध्यापन का कार्य करती है। वहीं वह टीचर्स क्वाटर्स में रहती है और इसके पीछे श्मशान भूमि है। पहले वह इस बात से काफी भयभीत रहती थी, पर समय इस भय को कठोरता में बदल देता है। धीरे-धीरे वह बाह्य संसार से तो संघर्ष करती रहती है पर उसका भीतरी संसार कई बार उस पर हावी होता दिखाई देता है। यही कारण था कि उसकी सहकर्मियों को उसके विवाहित होने का बोध तो था परन्तु इससे आगे उन्हें जानने का अधिकार नीलिमा ने कभी नहीं दिया था। उसकी खास हम उम्र सहेली रत्ना भी यह अधिकार नहीं रखती थी। गर्मी की छुट्टियों के बाद दोनों का वार्तालाप इस बात की पुष्टि कर देता है –

"अच्छा बताओ छुट्टियाँ कैसी कटी। नीलिमा तुम कहाँ रही?"

"कहीं नहीं गये अब की।"

"ताज्जुब !गाँव क्यों नहीं गई माँ के पास?"[246]

नीलिमा, रत्ना, मिसेज अग्रवाल, मिसेज भटनागर, मिथ्थल, शोभना आदि सभी सामाजिक सेवा समिति "जागरण" की सदस्या थी। इसमें से कुछ बहुत ही गंभीर रूप से समाज सेवा भी किया करती थी।

जैसे ही नीलिमा को कुछ खाली समय मिलता था फिर अपने अतीत से संबंधित स्मृतियों में खो जाती थी, ईशू, उसका पति जैसे सामने आ जाता। इसी प्रकार कथा का विकास निरंतर होता रहता है। लेखिका ने पाठक की जिज्ञासा बनाये रखने में सफलता प्राप्त की है। जब चाचा के घर पार्टी में उसकी मुलाकात अभिजीत से होती है तो वह अतीत में बह जाती है। तब उसका मन हाहाकार कर उठता है।.... "क्या किया था ईशू ने..... ईशू अभिजीत जैसा खुला और खिलन्दड़ा नहीं था।"[247]

ईशू और नीलिमा सहपाठी थे। ईशू की महत्वाकांक्षा बुलंद थी। वह एक अछूत परिवार से था जो आई.ए.एस. बनना चाहता था। मास्टर जी के सहयोग से, बिना किसी आरक्षण के वह आई.ए.एस. बन गया। "यही भरोसा उस पुण्यात्मा ने उसे

दिलाया था जिसके सहारे चलकर बचपन का वह ईसुरी आज ईश्वरचंद्र बनकर उस मुकाम पर पहुँचा था।"[248]

नीलिमा की माँ सुमित्रा देवी ने सोचा कि बेटी के लिए ईशू जैसा खूबसूरत, तमीजवाला, बुद्धिमान, गंभीर और जवान से बढ़कर अच्छा लड़का कहाँ से मिलेगा?

दोनों का वैवाहिक जीवन खुशी से चल रहा था। एक स्त्री का जीवन खुशहाल रहने के लिए जिसकी आवश्यकता होती है वह सब कुछ आज नीलिमा के पास था, परन्तु मनुष्य की यह नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि वह प्राप्य से संतुष्ट नहीं होता वह अप्राप्य की ओर भागता रहता है।

राह चलते रिक्शेवाले ने जैसे उसके जीवन का सारा सुख और भविष्य छीन लिया। रिक्शे वाले के मुख से एक ही वाक्य निकला कि –"मेरे मामा जी हैं वह मेम साहब!..."[249]

सुनते ही होश-हवाश खो बैठी। घर पहुँचकर उसने जैसे भूचाल मचा दिया। अपने ही जीवन में नहीं बल्कि ईशू के जीवन को भी जैसे उसने तहस-नहस कर दिया था। नीलिमा कहती है –"झूठे हो तुम ! तुमने धोखा दिया है मुझे। तुम .... तुमने अपनी जाति छिपाई। हमेशा छिपाते रहे। तुम भी रिज़र्व कोटा वाले ही। छोटे लोगों में से थे। तुमने सब को धोखा दिया।"[250]

इसके जवाब में ईशू ने कहा –"मैंने कुछ भी धोखा नहीं दिया। जो था, जैसा था, तुम्हारे सामने था मैं... फिर जितना तुमने जानना चाहा मैंने तुम्हें बताया।"[251]

इस मोड़ पर आकर नीलिमा को अपने खानदान की चिंता हो रही थी। अब वो माँ से क्या कहेगी? समाज से अपना मुँह कैसे छिपायेगी? इस पर ईशू ने अपना आपा खो दिया। जिस सोच को, जिस अभिशाप को नीलिमा के प्रेम के कारण वह काफी पीछे छोड़ आया था वह अचानक इतने नाशकारी रूप में उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने भी नीलिमा से कह दिया –"तुम्हारी हवेलियों की ऊँची दीवारों के पीछे और रेशमी पर्दों के भीतर खून में क्या-क्या मिलावटें होती हैं, ये कौन जानें।"[252]

इस घटना के बाद वह अपनी माँ के पास चली आती है। माँ के लाख पूछने पर उसने झूठ बोल दिया कि वह सरकारी काम से विदेश चला गया है। तब से लेकर वह महिला कॉलेज में अध्यापन का कार्य करने लगी।

धीरे-धीरे वह जन-जागरण समिति के काम में रुचि लेने लगी। काफी समय बाद सुमित्रा देवी को बेटी से मिलने की इच्छा प्रबल हो गई। वह अपने आपको रोक नहीं पायी। ट्रेन में अचानक उसकी मुलाकात ईशू से हुई। अब ईशू एम.एल.ए. बन चुका था। उसने पूछने पर बताया पिछले दस वर्षों से नीलिमा ने उससे मिलने की कोशिश तक नहीं की। उसने ईशू के पत्रों का भी जवाब नहीं दिया। माँ ने नीलिमा के पास जाकर ईशू की बात छेड़ी, तो नीलिमा ने पहले की ही तरह गोलमटोल जवाब दिया।

कुछ समय बाद नीलिमा को शोधकार्य के संबंध में बनारस जाना था और इसी बीच माँ ने वहीं पर ईशू के होने की खबर दी जो अस्पताल में भर्ती था। माँ ने कहा – "नाजुक हालत है उसकी !"[253]

माँ की लाख कोशिशों के बाद दोनों वहाँ अस्पताल पहुँची। नीलिमा उसी पुराने संयमी, सहृदयी ईशू को देखकर हत्प्रभ रह गयी। लेखिका ने उसे इस प्रकार वर्णित किया –"तनाव मुक्त, ... नज़र में कहीं कोई गिलाशिकवा नहीं.... कोई शिकायत, कटुता नहीं। ... नीलिमा दौड़कर उससे लिपट जाना चाहती थी। ... जमी हुई ठोस चट्टान जलधारा-सी टूटकर, बिखर कर बह जायेगी। .... लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह मूक खड़ी देखती रही।"[254]

ईशू को किसी हमले में दो गोलियाँ लगी, लेकिन वह अब खतरे से बाहर था। नीलिमा के मूक व्यवहार को देखकर वह माँ से कह उठा –"अम्मा जी लगता है - आपकी बेटी को डर है कि कहीं उसे छूत फिर से न लाग जाये।"[255]

बाद में माँ ने ईशू की जात का पता होने की बात बताई तो नीलिमा के पैरों तले ज़मीन खिसक गयी। परन्तु जब दोनों दोबारा ईशू से मिलने अस्पताल पहुँचे तो बहुत देर हो चुकी थी।

लेखिका के शब्दों में “नीलिमा के कंधों पर पड़ी सलीब भारी होती गयी। उसके कंधे झुकते गये.... झुकते गये और अंत में सिजदे के लिए वह घुटनों के बल गिर पड़ी।”[256]

ईशू को बहुत ज़ोर का दिल का दौरा पड़ा था।

नीलिमा ने ईशू को गहरी खाई में धकेल दिया था। जो खाई बहुत ही डरावनी होती है, जिसमें से कोई वापस नहीं आ पाता। शिक्षित, समझदार परंतु समाज की आडम्बरपूर्ण रीतियों से प्रभावित नीलिमा की नासमझी ने स्वयं के जीवन को ही बर्बाद कर दिया। उसके अहंकार ने ही उसे गर्त में धकेल दिया। ऊँची जाति का अहंकार बूढ़ी माँ को भी कभी न समाप्त होने वाला दु:ख दे दिया। वह स्वयं भी उसी आग में जीवन भर जलती रहेगी। उसकी यह बेमतलब केजिद्द ने तीन जिंदगियों को बर्बाद कर दिया।

विवेच्य उपन्यास के माध्यम से लेखिका हमें यह संदेश देना चाहती है कि मानवीय संवेदनाओं का आदर करना हमें सीखना होगा। आधुनिक स्वतंत्र नारी को भी पुरानी, रूढ़ीवादी मान्यताओं एवं विचार-धाराओं से ऊपर उठकर स्वतंत्र, पवित्र, मानवीय विचारधारों को समझना होगा, केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्रता की ओर मोहित होकर भागना न्यायसंगत नहीं है। उपन्यास में लेखिका नमिता सिंह ने अपनी सशक्त कथा-वस्तु के माध्यम से जीवन को यथार्थ रूप से सार्थक बनाने का प्रयास किया है। कथा में एक ओर रूढ़िगत विचारधारा है, तो दूसरी ओर आधुनिक स्वतंत्रता और समता की विचारधारा अपना नया अस्तित्व खोजने का प्रयास करती है। इस प्रकार ये दोनों विचारधारएँ जीवन से जूझती हुई दर्शित होती हैं।

2.10परंपरागत मूल्य और नारी का अन्त:संघर्ष, अस्तित्व की लड़ाई : ‘दिलो-दानिश’

‘दिलो दानिश’ उपन्यास में कृष्णा सोबती स्त्रीवादी मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है। ‘दिलो दानिश’ मेंअलग-अलग जीवन स्तरों के मध्य होने वाले अन्त:बाह्य संघर्षों पर चर्चा की गई है। इसमें बीसवीं सदी की सामंती व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

स्त्री-चेतना की हुँकार भी इसमें व्यक्त हुई है। हाँ! यह अवश्य है कि स्त्री का आक्रोश अपनी चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाया है। स्त्री की विद्रोही भावना का बीजवपन प्रस्तुत उपन्यास में अवश्य किया गया है।

उपन्यास के सार को समझने के लिये कात्यायनी के निम्न शब्द विवेचित किये जा सकते हैं –'दिलो-दानिश'19वीं-20वीं सदी के दरमियान एक खानदानी रईस और वकील कृपानारायण के हवेली के भीतर की दुनिया (उसकी माँ, पत्नी, बेटे, बहन आदि) और हवेली के बाहर की दुनिया (दूसरी औरत-महक बानो, उसका बेटा और बेटी) के रिश्तों और टकरावों के माध्यम से तत्कालीन सामंती समाज में औरत की सामाजिक स्थिति और चेतना को समझने की एक जोखिम-भरी रचनात्मक कृति है।"[257]

प्रस्तुत उपन्यास की कथा में कुटुम्ब प्यारी जो कि कृपानारायण की विधिवत् पत्नी है और महकबानो अवैध पत्नी परन्तु दोनों ही किसी ना किसी रुप से पुरुष की सामाजिक सत्ता की शिकार बनी हुई है। प्रस्तुत कथा थोड़ी-बहुत पुरानी अवश्य है परन्तु इसमें जिन प्रश्नों को उजागर किया गया है वे अब भी हमारे समाज में सिर उठाये खड़े हैं। आज भी वे युगीन नारी के जीवन की समस्या बने हुए हैं।

'दिलो-दानिश' की कथा दानिशमंदी के शिकार व्यक्ति के चारों तरफ घूमती हुई दर्शायी गयी है।कृपानारायण पेशे से वकील है जो स्वयं को दिल और दानिश के मध्य बँटा हुआ पाते हैं। वकील साहब का संसार परिवार और 'दूसरी औरत' के प्रेम में फंसा हुआ है। महक बानो अर्थात् दूसरी औरत को वे वकालत की फीस के रुप में प्राप्त करते हैं अतः इसे निस्वार्थ प्रेम की संज्ञा देना समीचीन नहीं होगा। महक के रिश्ते को ठीक तरह से समझने के लिए निम्न संदर्भ की सूक्ष्मता को जानना होगा – मुंशी से नियाज कहते हैं कि -" मुंशीजी आपके वकील साहिब का भी जवाब नहीं। मुकदमें के बहाने लाखों का कीमती हीरा मार लिया।"[258]

कृपानारायण पत्नी और रखैल में हमेशा अंतर पाते, दोनों के गुण या चरित्र में काफी अलगाव है, अतः अक्सर वे दोनों की तुलना करके स्वयं पर खुश होते हैं।कृष्णा

सोबती के शब्दों में - " हर सड़क, पटरी या पगडंडी आखिर अपनी मंजिल पा घर तक पहुँचती है। पर वकील साहब कहाँ?" कभी कुटुम्ब के किनारे और कभी महक के। क्या समझाएँ जिस्म की राहत चाहिए होती है पर दिलो-दिमाग भी कुछ माँगते हैं।"[259]घर-परिवार में हमेशा महकबानों को लेकर कहा-सुनी होती रहती है। विशेषकर कृपानारायण का जायज पुत्र रज्जो के जन्मदिन के मौके पर वकील साहब का महक और उनके नाजायज बेटे को दुलारना पत्नी को कतई गंवारा नहीं था। वह चिढ़ती हुई तैश में आकर कहती है – "उस कोठे की इल्लत से आप अपनी गृहस्थी को कुचल रहे हैं।"[260]

परन्तु वकील साहब सोचते हैं कि ईश्वर जो जोड़े बना देता है वह विवाहित हो अथवा अविवाहित -एक दूसरे के बीच तो अवश्य ही आयेंगे। ये दोनों रिश्ते अपने-अपने स्थान पर सही है। इस संदर्भ में महक की सोच कथा के प्रारम्भ में एकदम निस्वार्थ, भोली, मासूम-सी लगती है। महक के पास कृपा को न वायदों के पुल बाँधनें पड़ते हैं न कस्मों की लड़ी, उन्हें वहाँ झूठी-सच्ची बातों को तोल-तोल कर कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु कुटुम्ब अपना अधिकार कदम-कदम पर जतलाती रहती है। वह पति को किसी दूसरी औरत के साथ बाँटने के लिए तैयार नहीं है, ना ही आर्थिक रूप से और ना ही और किसी रूप से। वह तो अपने पति पर सर्वांगीण अधिकार चाहती है।

कृपा की पत्नी की लगातार यही कोशिश रहती है कि वह अपने पति को किसी भी प्रकार उस ओर से अपनी तरफ खींच लाये परन्तु वह ऐसा नहीं कर पाती। हमेशा उसे विवश होना पड़ता है।

कृपानारायण के परिवार की एक अहम सदस्य उनकी विधवा बहन छुन्ना जिसे महकबानो से लगाव है। वह महक को भी अपनी भाभी मानने से इनकार नहीं करती। महक के दोनों बच्चों से भी वह बहुत प्यार करती है। कृपानारायण की माँ बउआजी है जो बदरू के जन्म पर महक को खानदानी कंगन शगुन के रूप में दे देती है। यह कुटुम्ब को कतई गवांरा नहीं । वह महक के पास जाकर उसे वापस लेने में कामयाब हो जाती है। इस घटना से महक के बच्चों पर बहुत प्रभाव पड़ता है और महक की

बेटी मासूमा बाप कृपा के विरुद्ध बोलती है। परन्तु महक का लड़का बदरू बाप की तरफदारी करता है। वह कहता है –"आप देखती जाइये, अब्बू इसके बदले में अम्मी को दोनों हाथों के कंगन दिलाएँगे।"[261]परन्तु मासूमा बदरू से सहमत नहीं होती। वह हमेशा वकील साहब की हवेली की तुलना अपने छोटे से घर से करती है।

उधर बउआजी कुटुम्ब को समझाती हुई कहती है –"…. छोड़ो बहू, जितनी बची है उतनी को तो हाथ में थामे रहो। तुम्हें इस गृहस्थी से भला कौन उखाड़ने वाला है। …. कुछ साल और निकल जाने दो। हमेशा भरे हुस्न के चक्कर नहीं रहते। रोग-बीमारी में पलटकर आयेंगे तुम्हारे पास।"[262]

कुटुम्ब के पीहर वाले भी उसे संयम से काम लेने की सलाह दे देते हैं। वे कहते हैं दामाद कृपा को वापस लाने का कोई रास्ता नज़र नहीं आता। अतः अधिक हल्ला करने से कोई फायदा नहीं होगा। और इस तरफ कुटुम्ब की भाभी उसे कोई साधु-महात्मा से मिलने की सलाह देती है। कुटुम्ब अपने अहं को शांत करने के लिए गलत मार्ग अपना लेती है, वह महक की बराबरी करके कृपा को अहसास दिलाना चाहती है। इसके लिए वह नैतिकता और मर्यादा की सारी हदें पार कर देती है। इस प्रकार वह भैरा बाबा के वश में आ जाती है।

बउआजी के निम्न संदर्भ से समाज का एक वास्तविक कड़ुवा सच सामने आता है – वे कहती है –"…..हमसे पूछो तो मर्द को गुमराह करने वाले फक्त हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है जो इसे खुदमुख्बारी देती है।"[263]

छुन्ना के ससुराल वाले उसकी जायदाद हथियाने का बहुत प्रयत्न करते हैं पर छुन्ना पढ़ाई के बहाने अपने भाई के पास रह जाती है।

लम्बे अन्तराल के बाद वकील साहिब महक से मिलने का मन बनाकर उसके घर पहुँचते हैं। महक वहाँ पर नहीं होती। सारा घर खाली पड़ा हुआ होता है और वकील साहिब को पहली बार उस घर की बेहाली पर ध्यान जाता है।

बच्चों से पता चलता है कि महक अनवर खाँ साहब के साथ उनकी अम्मी भी अजमेर शरीफ गई है। उन्हें इस तरह महक का बिना बताये जाना खटकता है और इसीलिए वे उनका पीछा करते हुए दरगाह जा पहुँचते हैं परन्तु महक के लौटने से पहले वे जल्दी-जल्दी वापस आकर महक के घर कुछ सामान लाकर सजाने का प्रयास करते हैं। परन्तु दरगाह से लौटी महक पर इसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता बल्कि उसके मिज़ाज बहुत बदले-बदले से नज़र आते हैं। वह एकदम पराई लगने लगती है। इस प्रकार महक और वकील के रिश्ते में खाई बनती दिखाई देती है। दोनों को इस का अहसास होता है।

उधर कुटुम्ब भैरा बाबा के वशीकरण में पूरी तरह फँस जाती है और अपनी सफाई में कहती है –"क्या करें!हमारी मजबूरी! हमारा दर्द इन तक नहीं पहुँचता!"[264]

कुटुम्ब एक बच्चे को जन्म देती है तथा पति पर लगभग पूर्ण अधिकार कर लेती है। अब स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि कुटुम्ब कृपा का महक के पास जाना एकदम खारिज कर देती है। वह कहती है –"चौबीसों घंटे महबूब बने फिरते है, औलाद कंधों तक पहुँच गई, अब भी आशिक बने फिरते हैं।"[265]कृपा जल्दी लौटने का वादा कर जब महक के पास जाते है तो वहाँ भी उन्हें दुत्कार ही मिलती है –"इतना ही कि एक शख्स एक ही वक्त दो बिछौनों के फर्ज़ कैसे निभा सकता है।"[266] अब उन्हें यह सोचना पड़ जाता है कि –"क्या सच में उनकी दानिशवरी से महक का यकीन उठ गया।"[267]

छुन्ना की ससुराल वालों की तरफ से मासूमा के लिए रिश्ता आता है। रिश्ता सभी की रज़ामन्दी से तय भी हो जाता है और जब महक स्वयं सब कुछ देखने की ख्वाइश बताती है तो वकील साहिब अपनी मजबूरी का पिटारा खोल कर मना कर देते हैं। वकील साहिब के इस बर्ताव से महक में बरसों से छिपी चिंगारी आग बनने का प्रयास करती है।

इसी आग के दहकते वह वकील साहिब से कुटुम्ब की बेवफाई का जिक्र कर देती है। इस पर कृपा की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार होती है ..."जो कुछ भी है, वह

हमारी बीवी है। हमें उन्हें संभालना पड़ता है। हमारा फर्ज बनता है।"[268] कृपा ये भी खुलासा कर देते हैं कि मासूमा का रिश्ता कृपा और कुटुम्ब की बेटी के रूप में हुआ है। महक यह भी देखती है कि उसके अपने बच्चे भी बाप की तरफदारी कर रहे हैं। इसी कारण वह स्वयं को बहुत अकेला महसूस करने लगती है। इस दु:ख के कारण वह पहली बार आक्रोश से भर उठती है और अपनी माँ द्वारा दिये गये जेवरों की माँग करती है। इन्हीं जेवरों को पहनकर नवाबी शान से वह मासूमा की शादी में जाती है, उसे देखकर सब हक्के-बक्के रह जाते हैं।

थोड़े समय पश्चात् जब वकील साहब की बीमारी की खबर सुनकर वह उनसे मिलने जाती है और वहीं वह अपने दामाद और दो जुड़वाँ नवासों को देखती है। छुन्ना भी किसी भँवर नाम के व्यक्ति से विवाह कर लेती है। कृपा भी इस बात का समर्थन करते हैं।

अंत में कृपा इस संसार को छोड़ देते है। वे सभी को कुछ-ना-कुछ विरासत में देते है। महक अब अनवर खाँ साहिब की दानिशी में रहने लगती है।

प्रस्तुत उपन्यास में कृपानारायण के जीवन की धुरी दो स्त्रियों के बीच घूमती है। इस उपन्यास में लगभग सभी स्त्री पात्र किसी-न-किसी रूप से विद्रोह करती हुई दिखाई देती हैं। उपन्यास में चर्चित सभी स्त्रियाँ किसी ना किसी रूप से खानदानी ढाँचे में ढली होती है।

कृपानारायण को लगता है कि बीवी को गहने, कपड़े, नौकर-चाकर, बच्चे आदि से प्रसन्न कर देने से उसे पति की हर गुस्ताखी माफ कर देनी चाहिए।

उपन्यास में महक को समझदार और सरल बताया गया है। परन्तु अन्त में वह भी अपने अहं पर वकील साहब द्वारा दी गई ठेस को सहन नहीं कर पाती और उसका विद्रोही रूप बखूबी वर्णित किया गया है।

महक नसीम बानो और सूरजभान की पुत्री है। नसीम बानो अपने खानदानी ज़ेवरों को हासिल करने के लिए नवाब की हत्या भी कर देती है। इसी सिलसिले में

वह वकील कृपानारायण से मिलती है और महक को वकील को सौंप कर चली जाती है। इस प्रकार महक वकील के दो बच्चों की माँ बनती है परन्तु वह कभी वकील से किसी प्रकार की माँग नहीं करती। वह कहती है –"दुनिया में दो ही नेमते है, साहिब, बेटा और बेटी। आपने हमें दोनों दिये।"[269]

बच्चों के मना करने पर भी बदरू के जन्म पर दिये गये शगुन के कंगन भी वह कुटुम्ब के माँगने पर उसे वापस कर देती है। महक और पडोसी खाँ साहब की केवल पहचान को भी जब वकील साहिब गलत नज़रों से देखते है तो उसका मन छलनी हो उठता है। उसकी सोई हुई सरल आत्मा फुँफकार उठती है। इस हादसे के बाद दोनों में दुराव आ जाता है। अतः बहुत दिनों बाद वकील साहब के दीदार नहीं होने पर वह बेचैन और फिक्रमंद होने लगती है। एक दिन अचानक पत्नी से छिपकर एक रात की राहत पाने के लिए वे महक के पास आते हैं। इस दौरान लंबी अकेली शामों में उसका दिल घबराने लगता है, उसे लगता है करूँ भी तो क्या करूँ। जब उस रात वह वकील को रोकने में नाकाम होती है तो उसका आक्रोश उठने लगता है और वह वकील साहिब से निम्न कठोर लब्ज़ कहती है –"....आप किसे खिला रहे है? बीवी को कि, हमें।"[270]

महक बानो जब अपने और वकील साहिब के पुराने दिन याद करती है तो यह सोचने पर मजबूर हो जाती है.... उनके बहाने जिंदगी में कुछ बरकत तो आयी। नहीं तो उस माँ की बेटी की कौन सुध लेता। वकील साहब ने ही तो साथ दिया था।

महक में ईर्ष्या का विरोधी भाव भी नज़र आता है जब वह वकील साहब से कहती है –"हम तो दुल्हन की बेवफाई पर कई रातें न सो सके। चाहा किसी तरह आप तक पहुँच जाएँ पर यह सोचकर कि गलत समझ जायेंगे, चुप हो रहे।"[271]

महक को जब वकील साहब अपनी बेटी मासूमा की शादी में आने से मना करते हैं तो उसके मन में इस प्रकार के भाव उठने लगते हैं। कृष्णा जी के शब्दों में – "महक के अंदर छिपी पड़ी राख में से चिनगारियाँ-सी उठने लगी। हमारी बेटी की शादी है और उसके ज़ेवर-कपड़े बनते देखने को हमारी खुशी हमी से छीनी जा रही

है।"[272]अब आगे यह सुनकर महक को सदमा ही लगता है कि मासूमा के ससुरालवालों को महक के बारे में कुछ भी बताया नहीं गया है। मासूमा कुटुम्ब और कृपा की बेटी है। वे दोनों दुनिया को दिखाने के लिए उसे गोद ले लेंगे और शादी के बाद वही उसका पीहर होगा। मासूमा को अपनी सगी माँ के घर जाने और उससे मिलने तक की इजाजत नहीं होगी। जब बच्चे भी किसी प्रकार का विरोध किये बिना चुपचाप वकील साहिब की सारी शर्तें मान जाते हैं तो वह सोचती है –"सुईयों की चुभन ! बच्चे तो वहीं के हैं। हमें किनारे पर छोड़ इन्हें समेट लिया... ऊपर वाले का खेल। रेत में पाँव धँसे जाते हैं। तपती धूप और रेगिस्तान। दिख रही है यही दो झाड़ियाँ और वह भी वकील साहिब के हुई।"[273] वह आहत भरे भारी मन से पूछती है –"साहब हमारे बच्चों को इस बेदरोगा से छीन लेने का भला क्या हक है आपको।"[274]आगे बहुत तेज़ आवाज में कहती है –"हमारे जेवर तो हम तक पहुँचाइए। अब हम और इंतजार नहीं करेंगे।"[275] वह फिर कहती है –"बेटा हमेशा से आप का है, अब बेटी को भी गोद लिया जा रहा है। वकील साहब इन बिचारे लावारिसों को खानदानी जामा पहनाना तो जरूरी है। इन दोनों के बिना हमारे पास आपका क्या धरा पड़ा है।"[276]और आगे वह कहती चली जाती है –"हमारी बच्ची को हमसे छी लेने के बाद भी उसकी शादी नहीं होती तो हम भी भला क्या कर लेंगे? हमी कौन शादी करके पाये थे।"[277]

दूसरी ओर कुटुम्ब के चरित्र को लेकर राकेश कुमार लिखते हैं कि –"कुटुम्ब का व्यक्तित्व वहाँ विभाजित होता है जब वह अपने स्व को महक में बदलने को ललक से भरी नज़र आती है, वहाँ वकील साहब पर अपने अधिकार की चिंता अपने अस्तित्व को लेकर सचेतनता से अधिक महक से प्रतियोगिता की है। वह वकील साहब के साथ महक के यहाँ कँगन माँगने जाती है पर जो महक के पास उसका अपना है उसे कौन छीन सकता है? कुटुम्ब जहाँ वह वकील साहब की निरंकुश स्वतंत्रता के गौरव से लड़ती हुई सवाल करती है - जहाँ तक आप लोगों का सवाल है उन्हें तो बदलने की जरूरत ही नहीं। पर ऐसे स्थल थोड़े ही हैं जहाँ कुटुम्ब अपनी स्त्री होने का संरक्षित रखती नज़र आती है।"[278]

प्रस्तुत उपन्यास में और एक नारी का रूप निखर कर आता है वह है छुन्ना बीबी जो कृपा की विधवा बहन है, जो अपनी जायदाद को बचाने के लिए पढ़ने का बहाना करके भाई के पास रहने लगती है। वह बिन्दास किस्म की फुहड़, फैशन और खुले विचारों वाली नारी है। कृपा की करतूतों के लिए कहीं न कहीं वह भी जिम्मेदार है। हमेशा वह अपने भाई को बढ़ावा देती है और महकबानो की तरफदारी करती है।

हमेशा वह सोचती है –"अपने से उम्मीद यही की जाती है कि पूजा-ध्यान में दिल लगाए। व्रत करें। तीर्थों को जाएँ। अपने अंदर-बाहर की तरंगों को शांत कर भक्ति भाव से विधवा बन जाये।"[279]

पीहर और ससुराल दोनों ही घरों में उसे हमेशा सीख दी जाती है –"बेवा की पिटारी, सबकी दुलारी, ... जो अच्छा हो सो उनके भाग का और जो बुरा सा हमारे कपाल का।"[280]

प्रस्तुत उपन्यास में मूल्यों से अन्त: संघर्ष करते हुए नारी पात्रों को देखा गया है। महक कुटुम्ब, मासूमा आदि को अपने संघर्ष में कुछ पाने की इच्छा में कुछ न कुछ खोते हुए ही देखा गया है।

जीवन मूल्य की दृष्टि से यदि हम महक को देखते हैं तो वह एक सशक्त स्त्री दिखाई देती है। वह अपने अस्तित्व के लिए जद्दोजहद करती दिखती है। वह अपना सब-कुछ खोकर अपनी संतान की खुशहाली की चाहत रखती है और अपने इस उद्देश्य में सफल भी होती है। उसके इस कदम में समाज द्वारा सतायी हुई नारी का उदात्त रूप दृष्टिगोचर होता है।

कुटुम्ब को एक आम पाखंडी नारी के रूप में अवतरित किया गया है। उसे झूठी शान की परवाह है। वह एक अवयस्क मानसिकता वाली स्त्री के रूप में उभरती है। अपनी इसी मानसिकता के कारण वह बाबा के नियंत्रण में आ जाती है और अपना सतीत्व गँवा बैठती है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि इस बात का उसे कोई अफसोस भी नहीं होता।

कृति की विकास यात्रा में स्त्री लगातार अपनी पहचान, अधिकार, अस्मिता, अहं आदि पर कुठाराघात सहते-सहते, हताश हो उठती है। अंत में वह विद्रोह कर बैठती है। नारी का यही विद्रोह उपन्यास के समापन का भी महत्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है।

अंत में कहा जा सकता है कि दिलो-दानिश एक नारी अस्तित्व पर गठित उपन्यास है। इसमें नारी को विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। चाहे नारी का कोई भी रूप हो माता, पुत्री, बहन, पत्नी या फिर रखैल, प्रस्तुत सभी रूपों में उसे पुरुष समाज निचोड़ना ही चाहता है। अतः यह उपन्यास नारी दशा या फिर नारी दिशा के पहलू को लेकर क्रमिक रूप से अपनी परिणिति पाता है।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्यों के अध्ययन के बल पर यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत मूल्यों पर नारी का अंतःसंघर्ष और नारी के अस्तित्व की लड़ाई अभी भी जारी है (दिला-दानिश)। नारी अपनी आर्थिक स्वतंत्रता एवं जाति वाद के अहं के बल पर नये मानवीय मूल्यों की माँग कर रही है (अपनी सलीबें)। बाजारवादी राजनैतिक परिस्थितियों में जनतांत्रिक संबंधों के आलोक में नारी मान-सम्मान की माँग चाहती है (इदन्नमम) और उसका वर्तमान संघर्ष प्राचीन जीवन की परंपराओं को तोड़ते हुए नये विकास की ओर संकेत करता है (अपने-अपने कोणार्क)। नारी अपने व्यक्तित्व के विकास में भारतीय मूल्यों की समीक्षा करती है और परिवार की नयी भूमिका को रेखांकित करती है (निष्कवच)। वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के नये मानदण्ड – स्वेच्छा प्रतिमान की ओर संकेत करता है (मुझे चाँद चाहिए)। समय और मनोविज्ञान के आलोक में नारी के स्वाभिमान का नारा और सुरक्षा की माँग अंतिम दशक के उपन्यासों की वास्तविकता है (कठगुलाब)। भारतीय रूढ़ियों से टकराती हुई अपने अस्तित्व के लिए स्वेच्छा की माँग करती है (छिन्नमस्ता)। इस संघर्ष के दौरान वह संतुलित बुद्धि की माँग भी करती है (कलि-कथाः वाया बाइपास)। इस प्रक्रिया में नारी मुक्ति चेतना संघठनात्मक विद्रोह का रूप धारण भी कर लेती है (आवां)। अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्य भारतीय समाज में विकसित होने वाली नारी चेतना के बहुमुखी आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ :-

1 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.21
2 अपने-आपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.38
3 अपने-आपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.46
4 अपने-आपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.81
5 अपने-आपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.109
6 अपने-अपने कोणार्क- चंद्रकांता, पृ.15
7अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.85
8अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.68
9अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.69
10 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.15
11अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.85
12तद्भव – 3 अप्रैल – 3 अप्रैल, 2001, पृ.240
13तागार्थ – नवम्बर, 2000 – पृ.101
14इन्दु प्रकाश पाण्डेय : हिन्दी के अद्यनातन नारी उपन्यास, पृ.216
15मधुमति जून 2000, आवां – हिन्दी उपन्यास में श्रम, शिल्प और आँच का संकल्प – रमेश दुबे, पृ.71
16आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.135
17आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.137
18आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.236
19आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.249
20आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.249
21आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.259
22आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.431
23आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.430
24आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.429
25आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.64
26आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.201
27आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.201
28आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.414
29आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.414
30आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.412
31आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.538,539
32आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.539
33आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.539
34आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.540
35आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.540
36आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.541
37आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.112
38आवां – चित्रा मुद्गल,पृ.112, 113
39आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.113
40आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.97
41आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.97
42आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.105
43आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.105
44आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.105
45आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.105

46आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.112
47 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.23
48 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.23
49 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.106
50आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.129
51आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.137
52आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.253
53आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.293
54आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.295
55आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.299
56आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.299
57आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.300
58आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.305
59आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.278
60आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.162
61आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.159
62आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.159
63आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.184
64आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.253
65आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.269
66आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.274
67इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.20
68इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.39
69इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.38
70इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.37
71इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.37
72इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.63
73इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.105-106
74इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.107
75इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.40
76इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.110
77इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.119
78इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.123
79इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.142
80इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.163
81इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.198
82निष्कवच – राजी सेठ, पृ.5
83निष्कवच – राजी सेठ, पृ.9
84निष्कवच – राजी सेठ, पृ.13
85निष्कवच – राजी सेठ, पृ.19
86 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.25
87 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.16
88निष्कवच – राजी सेठ, पृ.26
89 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.147
90निष्कवच – राजी सेठ, पृ.183
91 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.47
92 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.75
93छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ..26

94छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ..35
95छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ..18
96छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ..119
97छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ..121
98छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.121
99छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.122
100छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.91
101छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.120
102छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.127
103छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.132
104छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.132
105छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.133
106छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.133
107छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.133
108छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.134
109छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.167
110छिन्नमस्ता –प्रभा खेतान, पृ.11
111छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.12,13
112छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.13
113छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.13
114छिन्नमस्ता– प्रभा खेतान, पृ.13
115छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.164
116छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.171
117छिन्नमस्ता –, प्रभा खेतान पृ.191
118छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.191
119छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.208
120छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.208
121छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.210
122छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.210
123छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.210
124मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.19
125मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.20
126मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.77
127मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.77
128मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.77
129मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.45
130मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48
131मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.26
132मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.34
133मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, मुख पृष्ठ से उद्धृत
134मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.213
135मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.237
136मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.192
137मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.541
138मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.421
139मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.546
140मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.133
141मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.163
142मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.121

143मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.121
144मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.302
145मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.345
146मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.397
147मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.398
148मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.403
149मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.408
150मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.169
151मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.354
152मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.530
153मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.374
154मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.374
155मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.142
156मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.524
157मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.527
158मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.557
159हंस-जुलाई – 1994, पृ.40
160 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.21
161श्रृंखला की कड़ियाँ – पृ.17
162मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.455
163मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.547
164कठगुलाब के मुख पृष्ठ से उद्धृत वाक्य
165डॉ. मधुसंधु – महिला उपन्यासकार, पृ.102
166 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.14
167 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.14
168कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.18
169 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.19
170 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.16
171 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.17
172कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.19
173 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.20
174 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.20
175कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.34
176 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.49
177 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.50
178कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.51
179 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.52
180 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.52
181 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.52
182 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.52
183 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.53
184 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.62
185कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.62
186 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.61
187 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.69
188 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.71
189 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.71
190 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.75
191 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.73

192 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.73
193 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.74
194 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.74
195 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.74
196 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.89
197 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.90
198 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.90
199 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.91
200कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.93
201कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.94
202 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.95
203 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.95
204 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.127
205 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.130
206 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.130
207 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.130
208कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.131
209 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.133
210कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.143
211कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.236
212 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.155
213 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.160
214 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.156
215कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.172
216 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.19
217 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.167
218 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.174
219 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.175
220 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.159
221 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.214
222 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.211
223कलि-कथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.38
224कलि-कथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.37
225कलि-कथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.38
226कलि-कथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.37
227कलि-कथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.32
228कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.46
229कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.70
230कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.59
231कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.16
232कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.24
233कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.29
234कलिकथा-वया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.36
235कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.51
236कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.51
237कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.17
238कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.69
239कलिकथा-वया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.121
240कलिकथा-वया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.136

241कलिकथा-वया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.157
242कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.199
243कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.199
244कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.199
245कलिकथा-वाया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.199
246अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.29
247अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.31
248अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.49
249 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.174
250अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.189
251अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.182
252अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.183
253अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.203
254अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.209
255अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.299
256अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.227
257उत्तर प्रदेश – साहित्यिक वार्षिकी 1997, पृ.25
258दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.8
259दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.12
260दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.35
261दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.42
262दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.72
263दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.83
264दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.132
265दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.132
266दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.134
267दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.134
268दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.157
269दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.13
270दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.134
271दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.153
272दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.155
273दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.163
274दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.170
275दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.170
276दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.171
277दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.171
278हंस- जनवरी, 1994, पृ.95
279दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.56
280दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.121

तृतीय अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के कथ्य

तृतीय अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के कथ्य

तेलुगु उपन्यासों के कथ्य आंध्र समाज से ग्रसित विभिन्न स्थितियों के बल पर निर्मित होते हैं। भारतीय जीवन धारा से तेलुगु समाज भिन्न नहीं है। फिर भी तेलुगु उपन्यासकारों ने उपन्यास सृजन की जिन परिस्थितियों को स्वीकार किया है उनमें विविधता दिखाई देती है। आंध्र समाज विशेष रूप से अमेरिका और यूरोपीय समाज से अंतिम दशक तक आते-आते प्रभावित हुआ। मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग के कई परिवारों की संतान बेहतर धनोपार्जन के लिए विदेशों में रहती हैं। इससे पारिवारिक स्तर पर कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो नारी जीवन को भी प्रभावित करती हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों के परिवर्तन के नये आयामों के साथ, नारी स्वेच्छा, जनतांत्रिक आन्दोलनों का प्रभाव, प्रेम सेक्स के प्रति नया दृष्टिकोण, वैवाहिक जीवन के समझौते और नारी जीवन की वास्तविकताएँ तेलुगु उपन्यासों के कथ्यों का निर्माण करती हैं।

3.1 पाश्चात्य सभ्यता के मोह में बेटे के द्वारा माँ की उपेक्षा :

'मुझे जाने दो'[నన్ను వెళ్ళి పోనీరా]

आन्ध्र प्रदेश की सुविख्यात लेखिका श्रीमती के.रामलक्ष्मी द्वारा लिखित उपन्यास है- **'मुझे जाने दो'**। इस उपन्यास में भारतवासियों पर अमेरीकी जीवन पद्धति के गहरे प्रभाव देखकर अपने अनुभव को चित्रित किया है। भिन्न-भिन्न देशों के लोगों की भाषाएँ अलग होने पर भी विश्व में मानवता का अर्थ एक ही है जिसमें वर्ण, वर्ग, लिंग एवं जाति का भेद नहीं होता है।

इस उपन्यास में जीवन की सार्थकता को अभिव्यक्त किया गया है। मातृत्व और ममता को श्रीमती के. रामलक्ष्मी ने बड़े ही सहज एवं स्वाभाविक ढंग से दर्शाया है। जब रोती हुई सुंदरम्म काली औरत से पत्र पढ़वाकर विषय को समझती है तब

स्पष्ट होता है कि उसके भाई की मृत्यु हो गयी है । यह घटना दिल को दहला देती है। बस चालक और अनजान लड़का दोनों मिलकर सुंदरम्मा को हवाई अड्डे तक पहुँचा देते हैं। काले हो या गोरे दिल को समझने में भाषा दीवार नहीं बनती है। मदद् करने की मानवता को देखकर हम आवाक् रह जाते हैं। उपन्यास के शीर्षक से मालूम होता है कि बेटे के शिकंजे से अपने को छुड़ाने वाली एक बूढ़ी माँ की विवशता व्यक्त होती है। इस शीर्षक में, उम्र में बड़ी और माँ की निस्सहायता, वेदना, आह, बेबसी, घृणा, दृढ़ता जैसी काफी भावनाएँ छिपी हुई हैं।

श्रीमती रामलक्ष्मी ने अमेरीका में स्थित आंध्रावासियों की बदली हुई मानसिकता का अनुसंधान कर इस उपन्यास को चित्रित किया है। पाश्चात्य सभ्यता का मोह, डालरों की कमाई में अपने को भूले-बिसुरना, माता-पिता और सगे-संबंधियों को नज़र अंदाज करना, आत्मीयता, स्नेह, ममता, दया आदि मूल्यों को अनदेखा करना –'जिंदगी यही है', समझते हुए जीने वालों के नमूने इस उपन्यास में रोमांचक ढंग से प्रस्तुत हुए है।

आज के समय में कुछ लोग अपने व्यवहार द्वारा भारत की संस्कृति को क्षति पहुँचा रहे हैं। ढहते मूल्यों के प्रति संवेदना की अभिव्यक्ति श्रीमती के रामलक्ष्मी जी की रचना 'मुझे जाने दो' में हुई है। यह उपन्यास इस बात पर सोचने के लिए विवश करता है कि जिंदगी की राह में कितने मोड़ उपस्थित हो सकते हैं।

मानवीय मूल्यों को ही भारतीयता मानने वाली श्रीमती रामलक्ष्मी ने इस उपन्यास में दो प्रकार के लोगों की मानसिकता को दर्शाया है। समाज बड़ा ही विचित्र होता है। अकसर समाज में दो तरह के लोग होते हैं। कुछ लोग संस्कारयुक्त अर्थात् कहीं भी वास करें, दूसरों के प्रति आदरभाव, प्रेम एवं स्नेह दिखाने वाले होते हैं। और कुछ लोग संस्कारहीन होते हैं जो अपनी स्वार्थ पूर्ति में एवं धन जुटाने में लगे रहते हैं, यहाँ तक कि अपने माँ-बाप को भी धोखा देने से चूकते नहीं हैं।

इस उपन्यास में माता सुंदरम्मा और पिता शास्त्री जी का इकलौता बेटा रवि अपनी पत्नी और बच्चे के साथ अमेरीका में रहता है। वह 25 एकड़ की जमीन का

मालिक और सभ्रांत परिवार का है। पोता होने की खबर सुनकर माता-पिता न्यूयार्क जाने की तैयारियाँ करने लगते हैं। इतने में अचानक शास्त्री, लकवे के शिकार हो जाते हैं। सुंदरम्मा का छोटा भाई गणपति जीजा जी की बीमारी की खबर सुनते ही तुरन्त दीदी के पास पहुँच जाते हैं और स्थिति को संभालने लगते हैं। गणपति, सुंदरम्मा और शास्त्री जी के बीच आपसी प्यार एवं गहरी समझ है।

गणपति ने पिता की बीमारी की गंभीरता की खबर रवि को फोन पर सुनाता है तो उसे सुनकर रवि बड़ी निष्ठुरता के साथ कहता है कि–"मामा! यहाँ तो कोई खेती-बाड़ी का काम नहीं, जब जरूरत पड़े, छोड़-छाड़ कर चले दें। बात-बात पर फोन करने के लिए, पत्र नहीं लिखने के लिए हमें दोषी मत ठहराओ। हमारे लिए ये सब एयाशीहै। सब कुछ होने के बाद तो आना ही पड़ता है न! तुम्हें तो पता है कि लकवे की बीमारी तो एक दिन या हफ्ते में ठीक होने वाली नहीं है। अब मेरे आने पर भी क्या होगा ! मैं वहाँ क्या कर सकता हूँ...... एक ही बार आ जाऊँगा।"[1]

उपर्युक्त कथन के बल पर लेखिका श्रीमती रामलक्ष्मी यही सूचित करती हैं कि विदेश का चकाचौंध वातावरण और पैसों की दुनिया में इतने मशगूल हो जाते हैं कि रिश्ते-नाते सब कुछ मिट्टी में मिल जाते हैं। पिताजी की लकवे की बीमारी की बात सुनकर भी बेटे रवि पर किसी प्रकार के दु:ख का असर नहीं होता, बजाय कुछ भी हो मरने के बाद तो आना ही है। यह समझते हुए टिकट का खर्चा बचाने की सोच में लग जाता है।

रवि के उपेक्षित व्यवहार से गणपति बहुत खिन्न हो जाता है लेकिन इसे चेहरे पर दिखने नहीं देता है। शास्त्री जी गणपति को देखते ही बेटे के व्यवहार का अनुमान लगा लेता है और दीदी भी भाई के मन को ताड़ लेती है।

शास्त्रीजी की तबीयत बिगड़ती गयी। उन्होंने वकील को बुलाकर वसीयतनामा लिखवा दिया। लगभग सारी जायदाद सुंदरम्मा के नाम पर कर दिया। यदि पोता भारत में आकर बसे तो पाँच एकड़ जमीन पर आयी फसल की रकम का केवल उपभोग कर सकता है न कि उसे बेचने का अधिकार है। रवि के नाम पर कुछ नहीं

लिखा है। कुछ ही दिनों में शास्त्री जी चल बसे। गणपति के हाथों ही अंतिम क्रिया पूरी हुई थी। सातवें दिन रवि अकेला ही गुड्लवलेरू गाँव पहुँचता है। परिवार के बारे में पूछा तो टिकट न मिलने का बहाना बना लेता है।

लेखिका रामलक्ष्मी जी का कहना है कि भारतीय संस्कृति में घर के मालिक की मृत्यु के समय परिवार के सभी सदस्यों का इकट्ठा होना अनिवार्य हैं। कम से कम ऐसे समय में लोग एक दूसरे का साथ देते हैं। लेकिन रवि टिकट का खर्च फिजूल मानकर अपने परिवार को नहीं लाता है। आजकल भारत में बच्चों में श्राद्ध एवं सांप्रदायिकता के प्रति श्रद्धा का न होना सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन को सूचित करता है। रवि माँ से खेती-बाड़ी, घर-बार आदि बेचकर न्यूयार्क में बसने का आग्रह करता है। सुंदरम्मा भी यहाँ का व्यवहार पूरा निपटाकर न्यूयार्क जाना चाहती है। पारपत्रों का इंतजार करती रहती है लेकिन कई महीनों तक कागज़ात नहीं पहुँचते हैं।

रवि की पत्नी रानी पैसा कमाकर घर खरीदना चाहती है। इसलिए पैसे बचाने के उद्देश्य से बच्चे की देखभाल के लिए सासूमाँ को बुलाने के लिए कहती है। रवि तुरंत कागज़ात भेजता है।

सुंदरम्मा पोते को देखने की उत्सुकता के कारण जल्दी ही न्यूयार्क जाने की तैयारियाँ कर लेती है। मद्रास के हवाई अड्डे पर ही न्यूयार्क की डॉक्टरनी से परिचय होता है।बेटा, बहू और पोतों के साथ खुशी से समय बिताने की आशा के साथ वह न्यूयार्क आती है। असमय प्रसव के कारण माँ के आने के पहले रवि का दूसरा बेटा पैदा हो जाता है। सुंदरम्मा की उम्मीद है कि अपने संप्रदाय के अनुसार दूसरे पोते का नाम दादा जी के नाम पर रखेंगे। लेकिन ऐसा नहीं होता है। सुंदरम्मा के सारे सपनों पर पानी फिर जाता है।

"बड़ा पोता सुंदरम्मा को कभी भी दादीमाँ कहकर नहीं पुकारता। रवि और रानी भी दादी नामक रिश्ते को नहीं सिखाते, न ही वे समझाने की कोशिश करते हैं। पोता दादी को डैमिट, बूढ़ी, ऐसे विश्लेषणों से बुलाकर अपमान भी करने लगता है। पोते के द्वारा किये गये अपमान को देखकर बेटा, बहू भी मजा लेने लगते है। पोते पर

किसी प्रकार का नियंत्रण या अनुशासन नहीं करते हैं। पोता हर मामले में अपनी मनमानी करता रहता है।"[2]

उक्त कथन से रामलक्ष्मी जी कहती है कि बच्चों को अनुशासन में नहीं रखे तो उम्र बढ़ने के बाद समझौता नहीं कर पाते हैं और विध्वंसक कार्य के लिए बाध्य हो सकते हैं। तेलुगु भाषा में एक कहावत है जो इसी की याद दिलाता है –"पौधा जब छोटा होता है तभी सँवार न पाये तो बड़े वृक्ष को कैसे सँवार पाएँगे।" आज की दुनिया में कई विध्वसंक कृत्य हो रहे हैं, इन कार्यों के पीछे जो भी लोग हैं, वे शिक्षित जरूर हैं, लेकिन उनमें संस्कार नहीं है। संस्कारहीन शिक्षा नाश की ओर ले जाती है।

न्यूयार्क के निवासी श्रीमान और श्रीमती मूर्तिजी सुंदरम्मा की उम्र का लिहाज़ करते हुए, अनुराग एवं आत्मीयता से हर जगह दिखाने ले जाते हैं। आसपास के ह्वाइट हाउस, इस्कान मंदिर, बालाजी मंदिर नयागरा फॉल्स आदि दिखाते हुए उन इमारतों का वर्णन भी बताते हैं। सगे बेटे से भी बढ़कर स्नेह एवं सहनशीलता के साथ व्यवहार करते हैं।

उक्त कथन द्वारा लेखिका रामलक्ष्मी जी कहती हैं कि दुनिया में लोग किसी भी प्रदेश में रहने पर भी व्यवहार में उनके संस्कार व्यक्त होते हैं।

गणपति की चार चिट्ठियाँ आने पर भी बेटा रवि और बहू रानी उन्हें सुंदरम्मा के हाथ लगने नहीं देते हैं। उनका डर है कि चिट्ठियों को देखते ही सुंदरम्मा भारत जाने का बवाल खड़ा कर देगी। सुंदरम्मा को गणपति से फोन पर बात करने का बहुत मन करता है लेकिन रवि यह कहकर टाल देता है कि फोन की लाइन मिलना बहुत मुश्किल है। दूसरे गाँव से गणपति को बुलाकर बात करने में ज्यादा खर्च होता है। गणपति को याद करते ही सुंदरम्मा का मन उदास हो जाता है। लेकिन असहाय औरत क्या कर सकती है?

लेखिका रामलक्ष्मी कहती है कि –"रवि जेसे लोगों को रिश्तों की समझ एवं कदर नहीं है, रस्मों का पालन नहीं करते हैं। वे किसी और का दु:ख-दर्द को क्या

समझ पायेंगे। उस बूढ़ी औरत की निस्सहाय एवं दयनीय स्थिति का वर्णन क्या करें।”[3]

एक दिन अचानक गलती से रवि के मुँह से चिट्ठियों की बात निकल जाती है। माँ उसे जान लेती है। बेटे का धोखा समझ लेती है और निश्चेष्ट रह जाती है।

“एक दिन तार के द्वारा संदेश पहुँचता है। बेटा और बहू अंग्रेजी में कुछ बातें कहकर चुप हो जाते हैं। उनकी बातों से ताड़ लेती है कि गणपति के बारे में कुछ हो सकता है। उनकी बातों में ‘डेड’ शब्द को सुनती है मगर उस शब्द के अर्थ को समझ नहीं पाती है।”[4]

उक्त कथन में रामलक्ष्मी जी कहती है कि सगे मामा के मर जाने पर भी भतीजा रवि पर किसी प्रकार का दु:ख का असर न होने के कारण उस शोक समाचार को वह माँ से भी छिपा सका। माँ का एक मात्र भाई, प्राणों से भी प्यारा रिश्ता जो इस दुनिया से हमेशा के लिए टूट गया। दीदी और जीजा जी के हर सुख-दु:ख में गणपति ने हमेशा साथ दिया था। ऐसे सगे मामा के साथ रवि का निर्मम व्यवहार अनुचित एवं अमानुष से भी बदतर ठहरा था। गणपति शायद एकाकीपन के कारण बे-मौत मारा गया होगा।

रवि शिक्षित है और अमेरिका में ऊँचे पद पर होते हुए भी कुपुत्र ठहरा, जो हर माँ-बाप के लिए शर्मिंदगी की बात है।यहाँ पर कबीर की उक्ति ठीक बैठती है –

“*ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे गुण ऊँचे न होई।*”

“तार में ‘डेड’ शब्द को सुनकर सुंदरम्मा बेचैन होती है। रवि और रानी के नौकरी पर जाते ही उस टेलिग्राम को ढूँढ निकालती है। उसे पड़ोसी से पढ़वाकर भाषा न समझते हुए भी चेष्टाओं से गणपति की मृत्यु को समझकर निश्चेष्ट हो जाती है।”[5]

इतने बड़े दु:खद समाचार को बेटा और बहू ने छिपाने की कोशिश की, इस घटना ने माँ के दिल को झकझोर दिया। बेटे के नाम पर लानत है।

सुंदरम्मा ने कुछ ही समय में स्थिति को समझ लिया। वह होश संभालकर मद्रास की हवाई जहाज में बैठते समय गणपति की बातों को याद किया –"पाँच सौ डालर्स की रकम वापसी की टिकट और लेडी डाक्टर की बातें –"इसे संभाल कर रखिए। पेटी के नीचे इस लिफाफे को सुरक्षित रख दीजिए। जब आपका बेटा भेजना चाहता है तो इस पर दिनांक लिख सकते हैं। सावधानी से इसे छिपाकर रखिए।"[6] सुंदरम्मा इन बातों को यादकर, पड़ोसी की मदद से हवाई अड्डे पर पहुँच जाती है।

लेखिका रामलक्ष्मी कहती है कि पराये देश में अजनबी ही बड़ों या बूढों की मदद करते हैं। लेकिन सगे बेटे के घर में सुंदरम्मा गैर, परायी और नौकरानी की तरह बना दी गयी है। यहाँ अमेरीकी लोग पराये होते हुए भी सामाजिक एवं नैतिक जिम्मेदारी को निभाया था। अपने लोग स्वार्थ एवं लालची के कारण पराये बन गये हैं।

सुंदरम्मा को घर में न पाकर रवि और रानी बहुत बेचैन होते हैं। समझ जाते हैं कि शायद सुंदरम्मा को गणपति की मृत्यु की खबर मालूम हो गयी है। रानी रवि से कहती है कि –"जल्दी से सासूमाँ को ढूँढ लाइए, नहीं तो मूर्ति जी के सामने नाक कट जाएगी।"[7]

लेखिका रामलक्ष्मी कहती है कि बहू रानी इस समय में भी बूढ़ी औरत के दिल और हालात के बारे में न सोचकर समाज की परवाह कर रही है। ऐसे लोग दिखावे के लिए जीवित रहते हैं। यह भी आधुनिक सभ्यता का एक पैमाना है।

पड़ोसी से माँ के बारे में मालूम करता है, तुरंत ही रवि हवाई अड्डे पर माँ से मिलकर घर वापस लाने की कोशिश करता है। दु:खी सुंदरम्मा दोनों हाथ जोड़कर रोती हुई कहती है कि –"रवि ! मुझे किसी से गुस्सा नहीं। मुझे अपने पर गुस्सा, दया, घृणा हो रहे हैं, मुझे नहीं बुलाना...... मुझे वापस आने को मत कहो ......। कृपा करके मुझे जाने दो।"[8]

सुंदरम्मा इतना कहकर आगे बढ़ जाती है कहती है –"रवि ! मैंने कभी नहीं सोचा कि तुम्हारे पिता के बिना मैं जी पाऊँगी। लेकिन अब जी रही हूँ। उसी तरह गणपति के बिना भी जीने की आदत डालूँगी। मेरी धरती माँ है, मुझ पर अपार स्नेह

बरसाती है......रवि कल ही मैंने महसूस किया कि बिना किसी के सहारे मैं जी सकती हूँ। तुम्हारे विचार अलग हैं। मेरी भावनाएँ अलग हैं। तुम अपने को सँवारो। मुझे अपनी राह पर जीने दो। तुम लोग रुपयों का कदर करते हो और मैं इनसान का कदर करती हूँ।"[9]

सुंदरम्मा की बातों से रवि का मन विकल हो जाता है। भयंकर बाढ़ की तरह दु:ख फूट रहा है। मन ही मन सोचने लगा –"हम पति-पत्नी की ओछी बुद्धि के कारण माँ की बलि हो गयी।"[10]

विवेच्य उपन्यास के माध्यम से यह व्यक्त करने का प्रयास किया गया है कि इस संसार में जाति, लिंग, ऊँच-नीच आदि कुछ भी भेद नहीं है। सबकी अपनी अलग विशेषता होती है। इस समाज में केवल एक ही तरह के लोग हैं और वे हैं मानवतावादी।

3.2 स्त्री-पुरुष संबंधों के परिवर्तन के विभिन्न नये आयाम:

'फिर से आई बहार'[మళ్ళీ వచ్చిన వసంతం]

डॉ. मुक्तेवी भारती जी का **'फिर से आई बहार'** उपन्यास 1997 में प्रकाशित हुआ। डिग्री के अंतिम वर्ष की परीक्षाओं के बाद चार सहेलियाँ – भवानी, ललिता, जया और शारदा होटल में बैठकर भविष्य की कल्पनाएँ करने लगती हैं। ललिता और जया शादी करने की, भवानी एम.ए. पढ़कर सिविल सर्विसेस परीक्षा की तैयारी करने की बातें बताती हैं। लेकिन शारदा इन सब के खिलाफ कुछ अजीब बातें कहने लगती है कि –"मैं बिल्कुल शादी नहीं करूँगी।" "सब लोगों को शादी करना जरूरी है, क्या?" "शादी के बिना नहीं जी सकते हैं ?..... जरूरत पड़े तो भी लड़की को बिल्कुल ही पैदा नहीं करूँगी।"[11]

भवानी पूछती है कि –"ओह! तो हम सब कौन हैं -लड़कियाँ नहीं?"[12]

शारदा–"वह तो मेरे माता-पिता की मर्जी है। आप सब कान खोलकर सुन लो। अगर मुझे लड़की पैदा हुई तो मैं उसे गला घोंटकर मार डालूँगी।"[13]

ललिता सुनकर गुस्से में कहने लगती है कि –"पैदा होने के बाद क्यों मार डालना? पैदा होने के पहले ही मार डालो।" "तुम लड़की होते हुई भी ऐसी बेतुकी बातें कह रही हो।"[14]

शारदा के मन के गुबार को देखकर तीनों सहेलियों के मन में, उसके प्रति घृणा बढ़ जाती है।

उपरोक्त संवाद से लेखिका मुक्तेवी भारती कहती हैं कि ज्यादातर लड़कियाँ शादी की बातें सुनकर प्रसन्नता, लज्जा, संकोच, शर्म एवं खुशी को प्रकट करती हैं। लेकिन यहाँ शारदा घृणा भरित आक्रोश व्यक्त कर रही है। इस आक्रोश के पीछे शारदा के परिवार की कुछ भयानक परिस्थितियाँ कारक हो सकती हैं। ऐसी प्रतिघटित भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किसी के लिए साहस की जरूरत होती है। वह साहस शारदा में दिखाई दे रहा है और आज की नारी के रूप में अपने को प्रस्तुत कर रही है।

शारदा की तीन बहनें और दो भाई हैं। बड़े परिवार के कारण तंगी भी है। दीदियों का ससुराल से आना-जाना लगा रहता है। हर बार ससुराल जाते समय उनके ससुराल वालों की माँगें पूरी करने में माता-पिता की निस्सहायता व्यक्त होती है।

दूसरी दीदी विजया के ससुराल की हरकतें देखकर शारदा के मन में विद्रोही भावनाएँ प्रबल होने लगती हैं। विजया के ससुराल में दहेज न दिये कहते हुए सास के ताने, विजया और पति के बीच आपसी प्यार एवं समझ का अभाव, पति के खिलाफ न जा पाने की असमर्थता, समझौता न कर पाने की विजया की बेबसी, माता-पिता को दु:खी न करने की व्यथा – ये सभी कारण विजया को टैंक बण्ड में कूदकर आत्महत्या करने के लिए विवश किये थे। अक्सर ये परिस्थितियाँ और यह घटना शारदा को विह्वल बना देती हैं। इस कारण शारदा की भावनाएँ और भी भड़कने लगी। इस संदर्भ में शारदा कहती है कि –"लड़कियाँ पैदा नहीं होना है। यह समाज लड़कियों

को संतोष से जीने नहीं देता।"[15]समाचार-पत्रों में छपने वाली खबरें शारदा के विचारों को आग को हवा देने का काम करती हैं। केरोसिन से जलानेवाली सासें, यातनाओं को न झेलपाने वाली बहुओं की आत्महत्याएँ।"[16]

शारदा की सोच बचपन से ही कुछ अलग सी रही। कॉलेज के ग्रंथालय में स्त्री-स्वेच्छा, पातिव्रत्य, स्त्रियों के मतदान की स्वेच्छा, स्त्री-पुरुष की समानता आदि कई किताबें पढ़ती थी। मनुधर्म शास्त्र में स्त्रियों के साथ कई रूपों में हुए अन्याय एवं अत्याचार को गौर किया। इन्हें पढ़ने के बाद शारदा में क्रोध की ज्वालाएँ और भी प्रज्ज्वलित होने लगी । हमेशा यही सोचती थी कि –"स्त्री-पुरुष के बीच इतना ज्यादा अंतर रहे तो स्त्री को सम्मान कैसे मिलेगा। पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्री से शादी करने वाले पुरुष को समाज में आदर मिलता है। ऐसे कई विषयों में स्त्री-पुरुष की असमानता के बारे में सोचने लगी, लेकिन शारदा की सूझ तह तक पहुँच नहीं पाती।"[17]

शारदा के चौदह-पंद्रह साल के समय की घटना है कि –"उसके जान-पहचानवाला रंगय्या की पत्नी होते हुए भी उसको अस्पताल की नर्स से प्यार हो जाता और विवाह भी कर लेता। सब लोग रंगय्या के पीछे उसकी बुराई करते थे लेकिन उसके सामने कोई मुँह नहीं खोलते थे। उसके सामने झुक-झुककर सलाम भी करते थे। ऐसा क्यों? अग्नि-साक्षी मानकर विवाह करने वाली पत्नी के प्रति यह अन्याय है कि नहीं?किसी ने प्रश्न क्यों नहीं किया?"[18]

शारदा के मन में उपरोक्त घटना हमेशा के लिए एक प्रश्न चिन्ह था कि पुरुष के सामने समाज क्यों झुकता है?

शारदा बचपन से ही जिद्दी एवं साहसी होने के कारण घर और बाहर हर जगह अपनी मनमानी करती थी। अपने स्वतंत्र एवं स्वेच्छापूर्ण विचार व्यक्त करने में कभी संकोच नहीं करती थी। शारदा नौकरी करने लगी लेकिन शादी नहीं करना चाहती थी। रामम से परिचय प्रेम में बदलकर शादी में परिणत हुआ था। कुछ ही महीनों में गर्भवती भी हुई थी। रामम ने उसे गर्भस्राव न कराने के लिए, मनाने की बहुत कोशिश

की लेकिन वह अपनी जिद पर अडिग रही। राम्म पर चिल्लाने लगी कि –"मेरा निर्णय नहीं बदलेगा, मर जाय तो भी नहीं बदलेगा। अपने निर्णय को क्यों बदलना है? कई बार आपको मैंने अपने निर्णय के बारे में बतायी थी। मेरा निर्णय नहीं बदलेगा।"[19] शारदा फिर से बोलने लगी कि –"यदि स्कॉनिंग के बाद लड़की ही मालूम हुई तो, मेरा निर्णय बिल्कुल नहीं बदलेगा। तुम्हें नहीं मालूम है कि मैं कितनी जिद्दी हूँ।"[20] "यदि लड़की हो तो निस्संदेह कोख से निकलवाकर फेंक दूँगी।"[21]

शारदा के मन में पहले से घर कर गयी भावनाएँ अब भयानक रूप धारण करने लगी। इन बातों को सुनते ही राम्म की मति मारी गयी।इससे मालूम होता है कि शारदा को पुनरुत्पादन के निर्णयाधिकार में ही जानकारी है न कि लैंगिक निर्धारण एवं गर्भस्रव से जुड़े कानूनन अपराध के बारे में।किसी कारणवश मन में जम गयी बातें कब कौन-सा रूप धारण करती हैं, इसका नतीजा क्या होगा - कहना मुश्किल है। आवेग एवं आक्रोश में लिये गये निर्णय से की गयी हरकतों के कारण जिंदगी भर पछताना पड़ता है। लेखिका भारती जी ने समयानुसार विवेक के साथ व्यवहार करने की आवश्यकता को सूचित किया है।

शारदा अकेली क्लिनिक को जाकर गर्भस्राव करा लेती है। इस घटना के बाद राम्म और शारदा के बीच बातें बहुत कम हो जाती हैं। यदि जरा-सी बात भी हुई तो तूल पकड़ लेती थी। शारदा के मन में राम्म और ललिता को भी लेकर कुछ गलत फहमी है। शारदा ने इसी विषय का जिक्र राम्म के सामने किया तो राम्म का पारा चढ़ जाता है और उसी क्षण शारदा के गाल पर कसकर तमाचा मारता है। राम्म का इस तरह मारना, शारदा अपमान महसूस करती है। क्रुद्ध होकर राम्म पर चिल्लाने लगती है कि –"अब आपकी समझ में आया होगा कि मैंने गर्भस्राव क्यों करायी थी? ऐसे मार खाते रहना ही स्त्री की जिंदगी है? बस ! मैंने एक बार गलती की थी। उसे दुबारा नहीं करूँगी।"[22]

लेखिका भारती जी कहती हैं कि जब घर की स्थिति ठीक नहीं रहती हैं तो पति-पत्नी में एक को संयम से व्यवहार करना चाहिए, नहीं तो स्थिति बिगड़ जाती है।

बेमतलब ही जिंदगी गलत मुकाम पर पहुँचने की संभावनाएँ होती हैं जिसे सँवारना मुश्किल हो जाता है।

रामम का यह बुरा बर्ताव शारदा को विचलित कर देता है। दुविधा में पड़कर सोचने लगती है कि –"मैंने जिन आदर्शों को लेकर वैवाहिक जिंदगी में कदम रखी थी, आज वे सब मेरी आँखों के सामने चकनाचूर हो गया है। मेरा दुर्भाग्य है कि ये सब इतनी जल्दी ढह गया हैं। 'विवाह सौ साल की फसल है' मानने वाली इस सूक्ति के रहस्य को मैं समझ नहीं पायी थी। विवाह का मतलब है – सहनशीलता आत्मीयता एवं अनुबंध से जिम्मेदारियाँ एवं अधिकार बढ़ते हैं। दोनों को इसे बाँटना है। मैंने समझा कि शादी का मतलब दो लोगों को जोड़ना न कि दो हृदयों का जुड़ना है। मुझसे बड़ी भूल हुई थी। क्या! रामम अच्छा व्यक्ति नहीं है? मुझसे एक रुपये की आस न रखकर, प्यार से शादी करने वाला व्यक्ति इतना बुरा कैसे हो सकता है? आदर्शों से या आवेग में उनकी जिंदगी में कदम रखनेवाली मैं क्या! उतनी अच्छी नहीं जितना मैं समझती हूँ? कहाँ है यह संघर्ष? कहाँ भूल हुई? क्या सत्य है - क्या असत्य है? मुझे क्या चाहिए? क्या नहीं चाहिए? न सुलझपाने की उलझन में मैं हाथ-पाँव मार रही हूँ।"[23] ।

शारदा आहें भरती हुई सोच में डूब जाती है कि –"इस शादी को कायम रखना है या तोड़ना है। मैंने शादी से क्या पाने को सोचा था। क्या पाया था? शादी होते हुए तीन साल भी नहीं हुए।"[24]

रामम का गुस्सा तेज ताव पर चढ़ जाता है। रामम के पूछने पर शारदा जवाब देती है कि –"सच माने तो इस शादी के प्रति मेरा विश्वास ही उठा गया है।"[25]

शारदा का जवाब सुनकर रामम निश्चेष्ठ हो जाता है। फिर भी अपने को नियंत्रित कर लेता है। तबादले के बारे में बताकर शारदा को अपने साथ गाँव चलने को कहता है। शारदा अपना दृढ़ निर्णय सुनाती है कि –"मैंने आपसे जुदा होने का निर्णय ले लिया।""दिलों का मिलन न होकर साथ जीना निरर्थक है।"[26]शारदा मन ही मन में कह रही है कि –"रामम से शादी करने में धोखा खा गयी थी। इससे मिलकर जीवन बिताना दुष्कर है।"[27]

शारदा का निर्णय सुनकर रामम का मन विकल हो जाता है। रामम दो दिन में ही वापस जाकर डयूटी में जॉइन हो जाता है।

दिनेश ने शारदा को नीरजा का बिजनेस के सिलसिले में बम्बई जाने की, शेयर बाजार के व्यापार में मुनाफा पाने की बात बताता है। साथ-साथ शारदा को भी नीरजा की तरह व्यापार में लाखों कमाने की तरकीब सिखाने का सपना दिखाता है।

लेखिका सुजाता कहती है कि इस प्रकार का अनुचित व्यवहार स्त्री के लिए अनर्थ एवं खतरनाक साबित हो सकता है। स्त्री का यह व्यवहार तो अपने आपको आग के हवाले करने के बराबर है। इस स्थिति में स्त्री की सुरक्षा का सवाल ही नहीं उठता है। स्त्री का यह साहसी कदम हाशिए पर है। अब पुरुष की स्वतंत्रता की आग में घी डालने के बराबर है। यह मामला पुरुष-सत्ता को बढ़ावा देने का है। आखिर स्त्री की स्वतंत्रता या स्वेच्छा गलत रास्ते पर चल रही है।

भगवद्गीता में हर व्यक्ति को अपना उद्धार स्वयं करने की बात कही गयी है। ‘उद्धरेदात्मनात्मानां’, जो स्वयं अपना उद्धार नहीं करना चाहता है तो भगवान भी उसकी मदद् नहीं करता है। यह भगवान का दूसरा रूप कानून है। ‘विवाह किये बिना साथ जीना’ समस्या में कानून दखल नहीं दे सकता है। ऐसे सवाल उठाकर लेखिका स्त्री जाति को सचेत कर रही है।

रामम 15 दिनों के बाद अपने गाँव से लौटकर आता है तो घर पर ताला लगा हुआ रहता है। शारदा को रामम का वापस आना मालूम होते हुए भी वह घर पर नहीं रहती है। शारदा शाम के चार बजे घर पहुँचती है। “शारदा के गले में मंगलसूत्र को न पाकर रामम स्थिति को पहचानने की कोशिश करता है। शारदा ने कॉलेज में इसी विषय का प्रचार भी किया था कि और पुनरूत्पादन (बच्चों को पैदा करना) के संदर्भ में भी स्त्री को स्वेच्छा होनी चाहिए। अपनी पसंद हो तो बच्चों को जन्म देना है। पसंद नहीं है तो जन्म देने की जरूरत नहीं है।”[28]इतनी स्वतंत्र प्रवृत्तिवाली शारदा को आज अपने अंतरंग के मुताबिक रहनेवाली नीरजा दोस्त के रूप में मिली थी।

लेखिका सुजाता कहती है कि हर व्यक्ति को अपनी स्वेच्छा या स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन विवेक के साथ ही इसकी सार्थकता सिद्ध होती है, नहीं तो भयानक रूप धारण कर सकता है। शारदा अब अंधा-धुंध होकर ताश खेलना, दारू पीना, मंगल-सूत्र निकालना आदि कर रही है। पैसे रहने तक लोग साथ देते हैं। बाद में क्या होगा खुदा जाने।

नीरजा स्वयं अपनी शादी के बारे में शारदा को बताती है कि–"तुम्हें मालूम है न !मैं और दिनेश, हम दोनों ने शादी नहीं किये थे। हम दोनों मिलकर साथ रह रहे हैं।"[29] शारदा –"हाँ! शादी कर लेंगे न।"

नीरजा –"वही गलत है। कुछ दिन साथ बिताएगे। 'लिविंग टुगेदर' का मतलब है कि बिना शादी किये साथ बिताना। जिस दिन शादी की जरूरत महसूस करेगे, तब सोचेंगे कि शादी करनी है या नहीं। जरूरत नहीं है तो ऐसे ही साथ रहेंगे। क्या! तुम्हें ठीक नहीं लगा?"[30]

नीरजा शारदा से प्रश्न करती है कि –"हाँ! तुम्हारी शादी हुई करके इतने निशान हैं। पुरुष की शादी होने के कौन से निशान हैं? स्त्री के लिए शादी इतना महत्वपूर्ण हो तो पुरुषों के लिए क्यों नहीं?"[31]

उपरोक्त कथन द्वारा लेखिका कहती है कि आज की नारी शादी को लेकर प्रश्न कर रही है। सही रास्ता अपनाने में कई सदियाँ लग जाती हैं लेकिन गलत रास्ता अपनाने में पलभर का समय काफी है। 'जैसी चाह- वैसी राह'।

विवाह-बंधन के साथ समाज एवं कानून दोनों जुड़े हैं। विवाह-बंधन में बंधे बिना स्त्री-पुरुष का साथ मिलकर जीना आज के युग की परिवर्तित संस्कृति है। यही संस्कृति स्त्री से सवाल कर रही है कि शादी-शुदा स्त्री पर ही कई अत्याचार हो रहे हैं। जो स्त्री विवाह बंधन में बंधे हुए बिना स्वेच्छा या स्वंतत्रता के नाम पर पुरुष के साथ रहने लगती है। जब तक जिंदगी अच्छे से गुजरती है तब तक किसी कानून एवं समाज की जरूरत नहीं है। जब रिश्ता चटकने लगता है, तब कौन-सा समाज उसका साथ देता है? कौन-सा कानून उसकी रक्षा कर सकता है?

उपरोक्त कथन से लेखिका सुजाता कहती हैं कि शारदा को वैवाहिक बंधन एवं मूल्यों को मालूम होते हुए भी वह अपनी जिद्द एवं घमंड के कारण अंधी बन गयी है।लेखिका सुजाता रेड्डी यहाँ भगवद्गीता में कही गयी बातों को याद दिलाती हैं–

"क्रोधाद्भवति सम्मोह : सम्मोह स्मृतिभ्रंश :

स्मृतिभ्रंशः बुद्धिनाशः बुद्धिनाश विनश्यति // (भगवद्गीता –सांख्ययोगः- श्लोक सं.56)

शारदा का अहंकार क्रोध में बदलता है। सही-गलत को ठीक से नहीं समझ पाती है। जिस वजह से मूल्य दब जाते हैं। गलती को मालूम करने पर भी स्वीकारने में अहंकार की दीवार खडी हो जाती है और सोचने के स्तर का पतन होने लगता है। अब शारदा के साथ यही हो रहा है।

शारदा इस क्रोध से बाहर आना चाहती है। ऐसे समय में अपना मन बहलाने के लिए दिनेश और नीरजा से दोस्ती को बढ़ाती है। उनकी रंगीन दुनिया में बसने लगती है। रामम से जुदा होने का निर्णय कर अदालत में मामला दर्ज करती है।

शारदा के बचपन की दोस्त ललिता भी घर के पास ही रहती है। तीन महीने बाद रामम और शारदा से मिलने आती है पर नीरजा और दिनेश के साथ शारदा ताश खेलती हुई दिखाई देती है। इस दृश्य को देखकर ललिता स्तब्ध रह जाती है।

शारदा के गले में मंगलसूत्र को न पाकर अप्रतिभ होकर पूछती है कि मामला क्या है? शारदा–"ओह! उसे निकाल दिया" कहकर फिर से ताश खेलने में जुट जाती है।

इसे सुनकर नीरजा कहने लगती है कि –"मंगलसूत्र गले में न रहने मात्र पति, पति नहीं माना जाता?"[32]

लेखिका सुजाता कहती है कि –वर्तमान समय में फैशन के मारे स्त्रियाँ मंगलसूत्र निकालकर अपने को आधुनिक मानने लगी हैं।

कॉलेज के समय में भी नीरजा के प्रति ललिता का उतना अच्छा नजरिया नहीं था। शारदा काफी प्रगतिवादी विचारवाली थी। कॉलेज के समय से ही शारदा का शादी के बारे में काफी दृढ़ विचार थे। शारदा के अनुसार –“विवाह के कारण स्त्री की स्वेच्छा या व्यक्तित्व कुंठित नहीं होनी चाहिए। पुनरुत्पादन (बच्चों का पैदा होना) के संदर्भ में भी स्त्री को स्वेच्छा होनी चाहिए। पसंद हो तो बच्चों को जन्म देना, पसंद नहीं हो तो नही जनना है।”[33] इस विषय का प्रचार भी किया था।

दिनेश के साथ शारदा अपने गाँव नरसापुर पहुँचती है। दिनेश मन ही मन खुश हो रहा है कि अपना व्यपार बढ़ाने का एक नुस्का हाथ में लग गया है। नरसापुर के लोग नारियल के खेतों से लदे हुए हैं। सभी गाँववाले एकत्रित होकर दिनेश से शेयरबाजार के बारे में काफी जानकारी प्राप्त करते हैं। दिनेश ने गाँववालों को बम्बई में अपनी मौसी की कम्पनी के बारे में बताकर सब को शेयरहोल्डर बनने को उत्सुक करता है।”[34] यह भी कहता है कि –“मैं आप सबकी भलाई चाहता हूँ । आपकी जिम्मेदारी को अपने सर पर उठा लूँगा। फायदेवाली बातें आपको कोई नहीं बताता है। देश-विदेश घूमनेवाला मैं यहाँ क्यों आता हूँ। चंद लोगों का भला करे तो भगवान खुश होते हैं न।”[35]दिनेश की बातों से लोग भ्रमित हो गए।

हैदराबाद में शारदा के साथ दिनेश को देखते ही ललिता ने इस धोखेबाज को पहचान लिया था। ललिता को देखते ही दिनेश ने मुँह मोड़ लिया और शारदा से ललिता की बुराई करते हुए उसे गलत ठहराया। इस समय शारदा दिनेश की रंगीन दुनिया में बसने लगी। दिनेश की हर बात को यकीन करने लगी। पहले से ही ललिता और रामम को लेकर शारदा बहुत गुमसुम थी और अब दिनेश से सुनकर वह यकीन में बदल गया।

शारदा बचपन से जिद्दी एवं साहसी होने के कारण किसी की बात को सुनना पसंद नहीं करती थी। शारदा के पिता का तीन लाख तथा अपने भाइयों के और गाँववालों के पैसे लेकर दिनेश भाग गया था।

एक दिन समाचार पत्रों के सुर्खियों में दिनेश फोटो के साथ दिखा कि –"बड़े व्यापारी शेयर बाजार के कंपनियों के नाम पर भोली-भाली जनता को ठग रहा है। शेयर्स के नाम पर लाखों रुपये कमाकर भागने के समय में दिनेश नामक धोखेबाज पकड़े गये थे। इससे पहले भी यह व्यक्ति बम्बई के पुलिस थाने में रह चुके। मद्रास, कलकत्ता, हैदराबाद और विजयवाड़ा के आसपास के छोटे-छोटे गाँवों में कई लोगों को धोखा दिया था। हर जगह पर सुंदर पढ़े-लिखे स्त्रियों के साथ दोस्ती करके, उन्हें कई रूपों में प्रलोभन दिखाकर अपने मायाजाल में फंसाकर उनसे पैसे हड़प लेते थे।"[36]

लेखिका सुजाता का कहना है कि दिनेश जैसे हजारों लोग देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। धोखा करने के लिए कई तरकीब है। उसमें शेयर बाजार एक है। रातों-रात लखपति या करोड़पति होने के लालच में पड़कर लोग अंधा-धुंध हो जाते हैं। जब तक मानव लालची होता है तब तक वह धोखा खाता रहता है। किसी एक को गुनहगार ठहराना उचित नहीं है। गलतियाँ और मजबूरियाँ दो तरफा होती हैं।

समाचार देखकर गाँव के लोग शारदा पर टूट पड़ते हैं तो शारदा उन लोगों से पूछती है कि –"वह आप लोगों को कितना धोखा दिया यह तो मुझे मालूम नहीं है। मैं और अपने परिवार वाले छः लाख रुपये खो बैठे हैं। पिताजी ने जमीन के लिए तीन लाख दिये थे। वह भी शेयर्स में लगा दिया है। दिनेश ने मुझे एक रुपया तक नहीं दिया था। आप लोगों को मैं एक रुपया भी लौटा नहीं सकती। यदि उसे इस शहर में लाना मेरी गलती हो तो उसे विश्वास कर अनजान व्यक्ति के हाथ में इतने रुपये थमा देना, क्या ! आपकी गलती नहीं है ?"[37]

शारदा अपना सिर पीटने लगी कि –"क्या सोचा, क्या हुआ, छि:छि: आखिर मेरी जिंदगी ऐसी क्यों बरबाद हो गयी? अभी क्या करना है? बम्बई में बसेरा,करोड़पति बनना, दस साल तक किसी का मुँह न देखने को सोचना। सब कुछ काँच के टुकड़ों की तरह बिखर गये। सब कुछ मिट्टी में मिल गये। भविष्य अंधकारमय होकर डरा रहा है।"[38]

लेखिका भारती जी का मानना है कि शारदा की स्थिति अब 'चिड़िया चुग गयी खेत' सी हुई। अब पछताने पर भी फायदा क्या?

शारदा का अहंकार धीरे-धीरे ढहने लगा। समझने की कोशिश करने लगी कि –"पानी बरसाने वाला बादल आग बरसाये, फूलों की वर्षा समझकर सर उठाये तो पत्थरों की वर्षा हुई, अमृत समझकर पिये तो हलक के नीचे हालाहल के रूप में उतरे।"[39]शारदा की आँसुओं से तकिया भीग गयी। लेकिन विचित्र बात है कि–"और कितने आँसुओं को निगलना और कितने आँसुओं को अपने में समाना हो।"[40]

लेखिका भारती जी का कहना है कि बिना किसी का सलाह-मशैवरा किये कदम बढ़ाये तो शारदा जैसी स्त्रियों के लिए यह घटना एक कडुवा सबक है। स्त्री हो या पुरुष हो, कितनी भी शिक्षित, काम-काजी, समझदार होते हुए भी सोचे-समझे बिना अहंकार के साथ कदम उठाये तो गर्त में पड़ना निश्चित है। यह उपन्यास ऐसे घमंडी एवं असूझ वालों पर एक कड़ा तमाचा है।

शारदा की आँखों में भविष्य की खाई दिखाई दे रही है। याद कर रही है कि "पिताजी जब हैदराबाद आये थे तो मैंने उसकी उपेक्षा की थी। वही पिता जी आज मेरी तरफदारी करते हुए भाइयों से जूझ रहे हैं। उसे देखकर मुझे पछतावा होने लगा।"[41]

शारदा अपनी की हुई गलती को सुधारने की कोशिश में पिताजी से कह रही है कि –"पिताजी आप विरासत में इस घर को वेंकडि के नाम पर लिख दीजिए। लेकिन आपके क्रिया-करम करने का अधिकार मुझे दीजिए। कम-से-कम इस तरह आपका ऋण चुकाने दीजिए। यदि बेटों से न करवाकर बेटी से चिता जलाने का पाप आपको मिले तो उस दोष का भागीदार मैं बनूँगी, आखिर मैं आपकी बेटी हूँ।"[42]

लेखिका मुक्तेवी भारती जी कहती है कि स्त्रियों के लिए कानून में निर्धारित अधिकारों के संबंध में जायदाद में हिस्से के साथ-साथ, चिता को जलाने की जिम्मेदारी निभाने की विचारधारा समाज में विचित्र रूप से जागरूकता लायी। इसी

प्रतिक्रिया के रूप में पिता के सामने शारदा के मुख से जो शब्द निकले हैं, सब को आवाक् कर देते हैं कि –"आपकी क्रिया -करम मैं करूँगी।"[43]

लेखिका भारती जी शारदा के द्वारा आज की नारी में जिम्मेदारी के संदर्भ में आये परिवर्तन को प्रकाश में लाती है। यह संदेह भी व्यक्त करती है कि भले ही शारदा अपनी जिम्मेदारी को पहचाना लेकिन वह कहाँ तक पितृसत्तात्मक विचार धारा से पुरुष को बाहर कर सकती है?

शारदा कहने लगी कि –"आज तक मैंने अपने लिए जिया। आज से मैं आपके लिए जीवित रहूँगी, जिंदगी की सार्थकता मुझे मालूम हुई। जिंदगी का मतलब- पैसे नहीं सुख नहीं, यश नहीं, प्रेम एवं मानवता – ये दो ही मूल्य हैं। जाने-अनजाने में मुझसे की हुई गलतियों को माफ कीजिए। आप किसी भी वृद्धाश्रम में मत जाइए। आप जहाँ रहेंगे वही आश्रम होगा।"[44]

लेखिका भारती जी का कहना है कि जीवन का समय बहुत कम है। उसमें खोने के लिए समय कहॉ है? शारदा जैसे लोग जीवन को दाँव पर लगाकर हर आकर्षण को फूलों का रास्ता समझकर निश्चित रहते हैं लेकिन आगे की जिंदगी को काँटों के रास्ते पर से गुजारना पड़ता है। जो व्यक्ति न किसी को सुनना या न समझना चाहता है, उन लोगों की ही नहीं उनके साथ रहने वालों के लिए भी जिंदगी समस्या बन जाती है। बहुत मुश्किल हो जाता है जिंदगी को काटना।

शारदा की आँखों के सामने अतीत की जिंदगी चित्र की तरह घूम रही है अभी सोचने लगी कि – "किसी भी दो लोगों के बीच विचारों का अंतर नहीं होगा?अहं, आवेग, आक्रोश हमेशा व्यक्ति को सही दिशा दिखाता, क्या?"[45]

एक प्रश्न का भी समाधान न मालूम होते हुए सालों साल बीत गये। पिताजी अक्सर कहा करते थे कि – "नये लोगों को यकीन नही करना और लालच बहुत बुरा है । इन बातों में कितना सच है, समझने में जिंदगी गुजर गयी।"[46]

अनायास ही शारदा की आँखों में आँसू बहने लगे।

"दिनेश, नीरजा कौन है? उसके साथ मेरा क्या काम है?कौन-सा अहंकार मुझे रामम से दूर किया। कौन-सा अविवेक एवं असूझ, बेमतलब सिद्धांतों का हलचल उसे अलग रास्ते पर ले गया?रामम हिमालय की तरह महोन्नत व्यक्तित्व वाले हैं।" रामम का पुनर्विवाह विधवा गायत्री (बेटे सहित) के साथ होता है। इस पुनर्विवाह की बात सुनकर शारदा का अहं घायल होता है और मन में हलचल मचने लगती है।

बूढ़े पिता रामचंद्रम के साथ भाइयों का उपेक्षित व्यवहार देखकर शारदा खिन्न होती है। उसी समय पिताजी को आश्वस्त करती है। बेटी विशेष होती है कहते हुए जिम्मेदारी निभाने की चाह प्रकट करती है।

शारदा ने स्केनिंग में 'लड़की' होने कापता चलते ही गर्भस्राव करा लिया था। शारदा ने जिस भ्रूण हत्या की गलती की थी, आज अनाथ बच्ची को पालकर उस गलती को सुधारना चाहती है। जैसे ही उस अनाथ बच्ची को गोद में लेती है तो उसके अंदर छिपी मातृत्व भावना उमड़ पड़ती है। इस खुशी को पिताजी के साथ बाँटती हुई कहती है कि –"पिताजी सचमुच अपने घर में 'फिर से आई बहार'।"[47]

प्रस्तुत उपन्यास युवा पीढ़ी की सोच को अभिव्यक्त किया है। इसमें नारी की विचित्र परन्तु आक्रामक विचारधारा का नवीन प्रदर्शन हुआ है। उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात् हमारे मन में यह उत्सुकता बन जाती है कि क्या ऐसा सम्भव हो सकता है?

3.3 विवाह व्यवस्था बनाम व्यक्ति की स्वेच्छा का प्रश्न :'मरीचिका'[ఎండమావులు]

श्रीमती डी. कामेश्वरी जी द्वारा लिखित उपन्यास 'मरीचिका' सन् में 1996 में

प्रकाशित हुआ था।यह एक कटु सत्य है कि इस दुनिया में 'विवाह के बिना स्त्री-पुरुष का संबंध कई दिनों तक नहीं टिकता है'। वर्तमान समय में भी विवाह व्यवस्था महत्वपूर्ण है। सामाजिक प्रतिष्ठा हो या बच्चों को जन्म देने की दृष्टि हो - वैवाहिक बंधन को महत्वपूर्ण माना जाता है। वैवाहिक बंधन में बंधे बिना स्त्री-पुरुष के संबंध का

कोई गौरव नहीं है। सामान्य व्यवहार की दृष्टि से प्यार.... उतना महत्वपूर्ण नहीं है। मर्द कोकुछ समय बाद उस प्यार की कदर नहीं होता है, इस वास्तविकता को पाठकों के सामने रखने के लिए ही लेखिका डी. कामेश्वरी ने इस उपन्यास का सृजन किया है।पत्नी और बच्चों के होते हुए भी पुरुष पर स्त्री के साथ अवैध संबंध स्थापित कर सकता है। समाज इस विषय को अनदेखा करता है। पत्नी मालूम होते हुए भी अनजान बनकर चुप रह जाती है। आखिर क्यों? स्त्री भी तो मानवमात्र है, उस के मन में भी कई इच्छाएँ हो सकती हैं। कारणवश पुरुष के बहकावे में आकर किसी कमजोर पल में धोखा खा सकती है।

जिस समाज में पुरुष की गलती को अनदेखा कर दिया जाता है, उसी समाज में स्त्री की गलती पर लांछन क्यों लगता है? समाज ऐसा दोहरा रवैया क्यों अपनाता है? आखिर बच्चे भी उस माँ को ठुकराते हैं। सदियों से स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग नीति क्यों अपनायी जाती है? ऐसी दोहरी नीति कहाँ तक समुचित है? यह कहाँ का इनसाफ है?

आज की नारी इस रीति-नीति एवं कानून-नियम में दोनों के लिए बराबर की माँग कर रही है। मोह परस्त स्त्री की जिंदगी टूट-बिखर कर झूठी प्याली की तरह बन जाती है। इसी मुद्दे पर सवाल करता है डी.कामेश्वरी का लिखित उपन्यास ‘मरीचिका’। इस उपन्यास में आदि से अंत तक स्त्री पुरुष के संबंध, टकराव से जूझते हुए दिखाई देते हैं।

इस उपन्यास की मुख्य पात्रा कविता है जिसके इर्द-गिर्द सभी पात्र घूमते हुए नज़र आते हैं। बेटी नित्या और बेटा रवि कविता और मुरारी के बच्चे हैं। मुरारी नरम दिल का, सीधा-सादा एवं तटस्थ स्वभाव का आदमी है। उन्हें किसी भी विषय में ज्यादा दिलचस्पी नहीं होती है। परिवार रूपी सागर में सुख-दु:ख की लहरों को समान रूप से झेलते हुए जीवन रूपी नौका को आगे बढ़ाना ही उसको मालूम है। लोगों के प्रति बेमतलब का प्यार जताना उन्हें मालूम नहीं है। लेकिन कविता इसके बिलकुल विपरीत स्वभाव की है। सुंदरता एवं इच्छाओं के प्रति उसका झुकाव है। वह हर नयेपन

का आस्वादन करने की लालची है। वह दूसरों से अपनी तारीफ सुनने की अभिलाषी है। वह इन तारीफों की उधेड़-बुन में पड़कर अपने अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न लगा देती है। वह जीवन से बढ़कर सुंदरता और अपनी इच्छाओं को प्राथमिकता देती है।

विजय नामक व्यक्ति चित्र लेखन में पहुँचा हुआ कलाकार और मौके का फायदा उठाने में माहिर है। उसमें दूसरों की अभिरुचियों पर जाल बिछाकर अपनी चाहतों को पूरा करने का चालाकीपन है। अपनी चाहतों को पूरा करने के लिए दूसरों की जिंदगी को भी दाँव पर लगा सकने वाला भोग-लोलुप है। चित्रलेखन करने वाली औरतों को अपनेवश में करने की 'है-टेक' कला में चतुर है।

कला-भवन में प्रदर्शिनी देखने कविता अपने परिवार के साथ जाती है। प्रदर्शनी में विजय का चित्र सब को भा गया, जिस में चित्रित किया है कि–"नदी के किनारे नहाकर, साड़ी को अपनी कंधों पर डालकर, पानी के घड़े को एक पैर पर टिकाकर, झुककर, फिरभुजाओं पर उठाते हुए एक ग्रामीण तरुणी।"[48] इस प्रदर्शनी में विजयेन्दर और कविता की भेंट होती है। विजयेन्दर कविता की सुंदरता से,कविता विजयेन्दर की कला से परस्पर मुग्ध होते हैं।

लेखिका डी.कामेश्वरी स्पष्ट करती है कि –"बेमतलब और अवैध संबंध परिवार के लिए अनर्थदायक साबित होता है।"[49]

कविता अपने चित्र लेखन की कला को विकसित करने के लिए विजय के घर जाती रहती है। बातों-बातों में कविता से विजय कहता है कि –"हमें हर चीज़ को सुंदरता की नज़र से देखना चाहिए। उड़ते पंछी में, पेड़ के हिलने में, चलते बादल में, बहते पानी में, खिलते फूलों में, नील-गगन में, हरे-भरे लहलहाते खेतों में और जहाँ नज़र पड़ती है वहाँ सुंदरता दिखाई देती है। बस ! उसे पहचानने का दिल होना चाहिए।"[50]

विजय के उपर्युक्त कथन को कहाँ तक कविता समझ सकी यह तो किसी को मालूम नहीं है। लेकिन विजय के अंतरंग की भावनाओं को पहचानने के पहले ही कविता अपनी सीमाओं को पार कर लेती है। "कविता की मानसिक स्थिति ऐसी हो

जाती है कि जिस दिन फोन पर विजय की आवाज़ सुनाई नहीं देती, उस दिन कविता की जिंदगी थम जाती है।[51]"

स्त्री-पुरुष की जिंदगी में कुछ हादसे हो सकते हैं। इन कमजोर पलों में वे इसका विवेचन नहीं कर पाते कि क्या सही और क्या गलत है–समझने के पहले ही सब कुछ..... हो जाता है। यह परिणाम, यौन आकर्षण में बदल जाता है, जिससे कुछ दिनों तक खुश रहते हैं।

कविता को लग रहा है कि-"विजय के प्रति आकर्षण,अब अपने पति के प्रति घृणा में बदल देता है। अब उस को पति, परिवार सब बंधन एवं कारागार लगने लगे। वह इससे छुटकारा पाना चाहती है।"[52]

इस बीच में विजय का तबादला हैदराबाद से विशाखापट्टणम होता है। बच्चों की पढ़ाई के लिए विजयेन्दर की पत्नी शांता हैदराबाद में रह जाती है। इस मौके को पाकर कविता पति के नाम पर चिट्ठी लिखकर, विजय के पास विशाखापट्टणम पहुँच जाती है। विजय के साथ विलासिता के जीवन में कविता पूरी तरह डूब जाती है। नया वातावरण, नयी अनुभूतियों के माहौल में कविता को साँस लेने की फुरसत भी नहीं रही।

किन्तु ये सब 'चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात' की तरह हो गया। धीरे-धीरे यह आकर्षण कमज़ोर पड़ने लगा। अब विजय कविता से बचने की कोशिश कर रहा है। वह आफ़िस के नाम पर अधिक समय बाहर ही बिताने लगा। कविता अब धीरे-धीरे विजय को समझने लगी, तब तक काफी देर हो चुकी।

लेखिका डी. कामेश्वरी का कहना है कि अगर स्त्री लकीर को पार करती तो, सदियों से जो होता आ रहा आज भी वही हुआ –'चिड़िया चुग गई खेत'-वाली उक्ति साबित हुई।

त्रेतायुग में ही नहीं आज भी स्त्री की स्थिति वही है। शादी के पहले हो या बाद में, सामाजिक मर्यादा की श्रृंखलाओं को तोड़कर बाहर कदम रखे तो वापस आने का रास्ता अपने आप बंद हो जाता है।

एक दिन विजय को अपने परिवार से मिलने हैदराबाद जाना पड़ता है। कविता इस बात पर अपना क्रोध दिखाती है। अपनी तरह विजय को भी परिवार को छोड़ने पर मजबूर करती है। इसके बावजूद विजय पत्नी के पास जाता है। इस घटना से कविता के सारे सपनों पर पानी फिर जाता है। "तन की प्यास बुझाने के चक्कर में कविता अपनी असली जगह (घर) छोड़कर मरीचिका के पीछे दौड़ पड़ी। किन्तु वह प्यास बुझाने लायक नहीं है। इसे समझने के लिए उसे छ: महीने लग गये। आगे की जिंदगी अंधकारमय दिखने लगी। दोनों के बीच मानसिक तनाव बढ़ गया। इस तनाव की वजह से विजय घर छोड़कर चला गया।"[53]

लेखिका डी. कामेश्वरी कहती हैं कि कविता की जिंदगी ऐसी बन गयी है कि 'आगे खाई, पीछे कुआँ'। "इस दुनिया में विवाहबंधन के बिना स्त्री-पुरुष का संबंध चंद दिनों से ज्यादा टिकतानहीं हैं।"[54] इस नग्न सत्य को कई किताबों में, चित्रों में, जिंदगियों को देखने के बावजूद भी लोग आज भी मूर्ख बनते हुए अपनी जिंदगी को सूली पर चढ़ा देते हैं। समय-समय पर इतिहास की, घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रहती है लेकिन लोग नासमझ बन बैठते हैं। लोग यही सोचते हैं कि यह मुसीबत मुझ पर नहीं पड़ेगी केवल दूसरों तक ही सीमित रहती है।

लेखिका डी. कामेश्वरी स्त्री की जिंदगी के सबसे कटु सत्य की ओर सूचित करती हैं –"मर्द का मोह परस्त्री के प्रति जरूर होता है। किन्तु हमदर्दी पत्नी के प्रति होती है। प्यार का नशा उतरते ही पर स्त्री के प्रति आकर्षण मिट जाता है। कविता इस कटु सत्य को समझ गई।"[55]

कविता के लिए सारे रास्ते बंद पड़े हैं। विशाखापट्टणम में अकेली रहने के कारण वह एकाकीपन से जूझने लगी। विजय की सहायता से मिली अध्यापिका की नौकरी से वह बड़ी मुश्किल से अपना बसर कर रही है।

कविता के घर छोड़ने के बाद मुरारी घर की जरूरतों को समझकर अपने बच्चों के भविष्य को दृष्टि में रखकर, उनकी देखभाल के लिए दूर के रिश्तेदार एक बूढ़ी औरत कामाक्षम्मा को घर में रखता है।

कविता की वर्तमान स्थिति को जानने के बाद मुरारी उसे वापस घर बुला लेता है। भले ही मुरारी कविता को स्वीकार कर लेता है लेकिन बच्चे माँ को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। बच्चों का उपेक्षित व्यवहार कविता को खटकने लगता है और बरदाश्त न कर पाकर वह घर छोड़कर चली जाती है। लेखिका डी.कामेश्वरी कहती हैं कि –"स्त्री के एक अनुचित व्यवहार से कितना अनर्थ हो सकता है। पति और अपनी संतान दोनों से वह दूर हो गयी। युग-युगों से पुरुष सत्तात्मक समाज में घर कर गयी भावनाओं की सच्ची समझ कविता को नहीं हो पायी।"[56]

अपने ही घर में हुए उपेक्षित व्यवहार से कविता के मन में विजय के प्रति प्रतिशोध की भावनाएँ भड़कने लगीं। कविता विजय के घर जाकर, पत्नी शांता से रिश्ता बढ़ाकर, उसी घर में दूसरी पत्नी के रूप में रहने लगती है। कविता और शांता दोनों विजय की सेवाएँ करने लगी। इन दोनों के व्यवहार से विजय सचमुच पगला जाता। तब से विजय कविता की बुराई करना, अपमान करने लगता है। यहाँ तक कि कविता को सोने के कमरे में से भी बाहर निकाल कर घर से बाहर धकेल देता है। इतना अपमानित होने पर भी कविता घर नहीं छोड़ती है, शांता के व्यवहार में बदलाव आ जाता है। शांता पत्नी के रूप में न रहकर, बच्चों के माँ की हैसियत से रहने की इच्छा प्रकट करती है और पति से किसी भी प्रकार का शारीरिक संबंध रखना नहीं चाहती है।

कुछ समय बाद विजय और शांता के अनबन को कविता समझकर, घर छोड़कर चली जाती है। इस घटना से विजय के हृदय में अंतर्मथन होने लगा। विजय के मन में पछतावा होने के कारण भविष्य में गलती से भी परस्त्री की ओर न ताकने का निर्णय कर लेता है।

कविता महसूस करने लगी कि-"विजय के इस मानसिक परिवर्तन में कुछ हद तक कविता अपने प्रयास में सफल हुई। विजय और मुरारी के दोनों के घरों को छोड़कर चले जाने के बाद कविता अपनी जिंदगी में सूनापन महसूस करने लगती है। शांता और मुरारी को इसी मानसिक संघर्ष का विवरण चिट्ठी में लिखती है।"[57]

लेखिका डी.कामेश्वरी पति-पत्नी के संबंध में अपने अनुभव को जोड़ते हुए कहती हैं–"पति के घर के अलमारी में पैसे रहने मात्र से पत्नी को सुख प्राप्त नहीं हो जाता है। उसे समयानुसार या जरूरत के मुताबिक खर्च करने में ही उस का प्रयोजन**,** आनंद और अनुभव सिद्ध होते हैं। उसी प्रकार पति के मन में पत्नी के प्रति प्यार होने मात्र से काम नहीं बनता। समय पर प्रेम व्यक्त करने की और प्रेम का एहसास दिलाने की आवश्यकता है।"[58]

"हर पत्नी चाहती है कि पति अपनी तारीफ करें, छोटी-छोटी बातों में या चेष्टाओं में प्यार जताये, दिल जीतने की कोशिश करे। पति अपने प्यार को दिल में छिपाकर रखे तो पत्नी को कैसे मालूम होता है। कितने पतियों को मालूम है कि छोटी-छोटी बातों से ही पत्नी खुश हो जाती है। अगर यही बात सभी पतियों को मालूम हो तो हर घर स्वर्ग बन जाता है। मीठी बातों से भड़काने की कला सौ मर्दों में से एक मर्द को भी मालूम नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि दिन भर पत्नी की तारीफ़ करते रहे, युगल गीत गाते रहें। छोटी-मोटी खुशियाँ ही जीवन में रास लाती हैं। सुबह दोनों मिलकर चाय पिये तो भी आगे की जिंदगी की आस बंधी रहती है। लेखिका ने पुरुष को भारतीय नारी के कामल अंतरंग को समझने की आवश्यकता को व्यक्त किया है। इन सभी बातों को कविता मुरारी को पत्र में लिखती है ।"[59]

लेखिका डी.कामेश्वरी पति-पत्नी के संबंधों को महत्व देती है। वह चाहती है कि हर पति-पत्नी अपनी निजी जिंदगी में इन सभी नियमों का पालन करे। इन के अनुसार जिंदगी में बहार लाने के लिए ये सब सहायक सूत्र बन सकते हैं।

कविता को जिंदगी रूपी रेगिस्तान को पार करने का रास्ता न सूझता है। जिंदगी की हर राह पर उसे निराशा ही निराशा ही दिखाई देती है। इसलिए वह

आत्महत्या करना चाहती है कि-"वह अपना दाह संस्कार कार्य बेटे रवि के हाथों करवाने की अंतिम इच्छा प्रकट करती है।"[60] मुरारी कुछ ही पलों में स्थिति को सं समझकर बच्चों के साथ कविता के अंतिम दाह-कांड के लिए निकल पड़ता है।

'मरीचिका'उपन्यास में लेखिका डी.कामेश्वरी कहती है कि पुरुष सत्तात्मक समाज में मंगल-सूत्र के बंधन से ही स्त्री-पुरुष का संबंध सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित बनता है। वैवाहिक व्यवस्था के अभाव में स्त्री पुरुष के संबंध क्षणिक होकर किसी भी समय टूट सकता है। अवैध संबंधों में स्थिरता अंत तक टिकनहीं पाएगी। नैतिक एवं धार्मिक जिम्मेदारी से वैवाहिक व्यवस्था जुड़ी रहती है। इसीलिए स्त्री और पुरुष दोनों को यह नैतिक-धार्मिक बंधन बाँधकर रखती है।"[61]

नारी को पुरुष के मोह में पड़कर जिंदगी को नरक तुल्य नहीं बनाना है। इससे स्त्री को ही घर-बाहर अपमान सहना पड़ता है और अंत में 'मरण की शरण' में जाना पड़ता है।

डी.कामेश्वरी जी इस उपन्यास में बार-बार यही सवाल उठाती हैं कि –"समाज में पुरुष की जो स्वेच्छा या स्वतंत्रता है वह आज भी स्त्री के लिए नहीं है। सदियों से स्त्री इस झूठ से त्रस्त है। ये बंधन, कुंठा और घुटन–स्त्री के लिए ही क्यों ?[62]"

उपन्यास के अंत में कविता का मर जाना पाठकों को निराश कर देता है। ऐसा लगता है कि लेखिका डी.कामेश्वरी जी का झुकाव पुरुष के प्रति है। स्त्री को मारना कानून के तौर पर घोर अपराध है। इसे पढ़ने के बाद हर स्त्री के मन में निराशा छा जाएगी।

डी. कामेश्वरी जी का कहना है कि स्त्री और पुरुष की मानसिकता में एवं व्यवहार में काफी अंतर है। यही कारण है कि उनके जीने के ढंग में भेद दिखाई देते हैं। पुरुष सख्त स्वभाव के होते हैं। हर विषय को आसानी से अपनाते हैं और बिसुरा देते हैं। लेकिन स्त्री का स्वभाव कोमल होने के कारण हर विषय को दिल पर लेकर भावुक हो जाती है। घरवालों की उपेक्षा कविता के लिए असहनीय हो जाती है। कमजोर दिल होने के कारण अपनी जिंदगी को समाप्त कर लेती है।

डी. कामेश्वरी जी ने ‘मरीचिका’ उपन्यास में आधुनिक नारी और विजय जैसे पुरुषों के लिए, इस समस्या को एक चेतावनी के रूप में पाठकों के सामने रखती हैं। पहले की तरह आज नारी चुपचाप रहने वाली नहीं है। वह प्रश्न करने लगी – इसीलिए पुरुष के लिए भी जिंदगी शीशे की तरह बहुत नाजुक है।

जिंदगी को ‘जितना अच्छा संभाले-उतनी ही स्वस्थता, सुस्थिरता, सुरक्षा एवं शांति बनी रहती है।

3.4 नारी स्वेच्छा और बिना विवाह के ही संतान को जन्म देने की समस्या : कुंती पुत्रिका [కుంతీ పుత్రిక]

तेलुगु उपन्यासों के विकासमें योगदान देने वाली लेखिका शारदा अशोकवर्धन समाज सेविका भी हैं। इसलिए उनकी हर रचना की तह में मूल्यों की प्रमुखता दिखाई देती है। नारी प्रगति को दृष्टि में रखकर लिखी गयी उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की रक्षा करने की इच्छा प्रबल रूप में दिखाई देती है। शारदा जी की नायिकाएँ आदर्श विचार रखती हैं। वे धैर्य एवं साहस के साथ निर्देशों का पालन करती हैं। अपने विश्वासों को स्वेच्छापूर्वक अभिव्यक्त करती हैं।

कुंती पुत्रिका की नायिका नीलिमा ऐसे ही कुछ दृढ़ विश्वास रखती है। वह जो भी कार्य करती है, उसकी जिम्मेदारी का वहन करने में अपनी क्षमता का परिचय देती है।

जवान लड़कियाँ का अक्सर पुरुष के मोह में पड़ना, उनके जाल में फँसना, गलतियाँ करना, फिर होने वाले दुष्परिणामों का सामना न कर पाने के कारण आत्महत्या कर लेना या समाज में घृणास्पद या उपेक्षित या निकृष्ट जीवन बिताते रहना – यह तो साधारण विषय है। लेकिन नीलिमा ऐसी कमजोर लड़की नहीं है। उपन्यास के आरम्भ में ही नीलिमा का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है – “जिंदगी को सफल तब माना जाता है जब हम अपनी मर्जी के मुताबिक जी सके।”[63]

पुरुष सत्तात्मक समाज जिस विषय पर स्त्री पर लांछन लगाता था आज वही स्त्री सबला बनकर पुरुष जाति को सवाल कर रही है। समय एवं स्थिति बदल गयी है। पहले की तरह अब नहीं होगा और आज बाजी पलटने लगी।

महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में नाटक करते समय कुंती के बारे में नीलिमा कहती है–"समाज से डरकर अपने ही गर्भ से जन्म लेने वाले बच्चे को निर्ममता से पानी में बहा दिया। फिर बाद में क्यों पछताने लगी? डरपोक होकर कदम पीछे क्यों हटायी थी? यदि उसने गलती की तो उस मामले में सूर्य का हिस्सा कुछ भी नहीं था क्या? उसको भी सामने बुलाकर पूछना चाहिए? क्यों नहीं?"[64]

मीना कुंती की वाग्धारा को रोकती हुई कहती है –"छोड़ो, ये सब बातें करना आसान है लेकिन समाज का दस्तूर अलग है। अनुभव के बल पर कुछ विषय मालूम होते हैं। ऐसी स्थिति का सामना करना है तो तुम भी उसी तरह का व्यवहार ही करोगी। जन्म देने तक कहाँ, उसके पहले ही गर्भपात करवा लोगी।"[65] तो नीलिमा ने डटकर जवाब दिया था कि अगर मेरे साथ ऐसा हुआ हो तो - "यह नीलिमा कुंती की तरह डरपोक नहीं है। समाज के डर से नवजात बच्चे को फेंकनेवाली इतनी डरपोक मैं नहीं हूँ। कुंती की जगह अगर मैं होती तो उस बच्चे को पालकर समाज के सामने सर उठाकर जिऊँगी। सबके सामने सूर्य को खड़ा करके यह कहलवाती कि मैं ही उस बच्चे का पिता हूँ। मैं यह साबित करूँगी कि स्त्री-पुरुषों के बीच गलती हुई तो दोनों समान रूप से जिम्मेदार हैं। उस गलती की सज़ा केवल औरत को ही क्यों भुगतना है? यह तो बिल्कुल अन्याय है।"[66]

महाविद्यालय में नीलिमा और नवीन दोनों के नामों को लेकर बोर्ड पर लिखा हुआ था कि 'होने वाले पति-पत्नी हैं'। इस बदतमीजी के पीछे किरण और उसके गुण्डें साथियों का हाथ था।

नवीन और किरण दोनों छात्रावास में नीलिमा के कमरे में घुसकर शादी करने के लिए मजबूर करने की कोशिश करते हैं तो कुंती नवीन की बात को ताड़कर समयानुसार व्यवहार करती है।

पुरुष सत्तात्मक समाज में किसी भी लड़की की फुर्ती या धैर्य को तोड़कर, अपने काबू में कर, उसे कमजोर बनाने के लिए उलझने पैदा करने लगते हैं। ऐसी परिस्थितियों में नीलिमा की तरह हर लड़की को होशियारी से स्थिति को संभालने की आवश्यकता को लेखिका शारदा जी सूचित कर रही हैं।

नीलिमा अपने रास्ते के काँटे को बड़ी समर्थता से निकाल देती है। वह इस तरह से समझने वालों के मुँह पर ताला लगा देती हैं कि –“नीलिमा में आवेश ज्यादा है और सूझ-बूझ कम है।”[67]

इस घटना से सबकी शंकाएँ दूर हो गयीं। और नीलिमा ने यह प्रमाणित किया कि समयानुसार व्यवहार करना बाएँ हाथ का खेल है।

एक बार किशन नीलिमा को नवीन से शादी करने पर जोर देता है यदि शादी न करे तो मार डालने की धमकी देता है। नीलिमा इसका मुँहतोड़ जवाब देती है कि – “यह मेरा निजी मामला है। इस मामले में बाहर वालों का दखल मैं बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकती। शादी के मामले में निर्णय करने का अधिकार मैं अपने परिवार के बड़ों को भी देना नहीं चाहती हूँ।”[68]

इस उपन्यास में लेखिका शारदा ने आधुनिक नारी के व्यक्तित्व एवं चाह को अभिव्यक्त किया है। आज की लड़की के शादी के बारे में कुछ नये विचार हैं। नीलिमा कहती है कि –“शादी मेरी निजी जिंदगी का अहं मुद्दा है। मैं पढ़ाई पूरीकर और नौकरी पाने के बाद ही शादी के बारे में निर्णय लूँगी।”[69]

आज की नारी सामाजिक सुरक्षा के साथ आर्थिक स्वावलंबन पर जोर दे रही है।

नीलिमा श्रीधर नामक व्यक्ति को पसंद करती है। शादी भी पक्की हो जाती है। श्रीधर का अपने परिवार के साथ मंगनी के लिए आते समय रास्ते में कार दुर्घटना हो जाती है। अस्पताल पहुँचने से पहले ही रास्तें में जीजाजी की मृत्यु हो जाती है। दीदी विधवा हो जाने के कारण मानसिक तौर से घायल हो जाती हैं। श्रीधर की स्थिति गंभीर है। इस दुस्थिति का कारण नीलिमा को अपशगुन मानते हुए रिश्ते को तोड़ देते हैं।

लेखिका शारदा कहती हैं कि जब कभी अच्छा होता है तब लोग उसका श्रेय लड़की को नहीं देते हैं। लेकिन जब कभी कुछ गलत या बुरा होता है तब उस घटना को लड़की से जोड़कर, उसे अपशगुन मानने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। उसको बदनाम करते हैं और रिश्ते को बिना सोचे-समझे चटक देते हैं। समाज कितना भी आधुनिक बने, लेकिन मानसिकता एवं प्रथाएँ पुरानी घिसी-पिटी ही चलती रहती हैं।

ऐसी गंभीर स्थिति में नीलिमा अपने साहस एवं धैर्य का परिचय देते हुए पिताजी को मनाती है –"पिताजी! यह नीलिमा इतनी कमजोर नहीं है। जब परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं तो निराश होकर किसी प्रकार की अनहोनी करनेवाली डरपोक नहीं है। आपको मालूम है कि स्थिति का सामना कर डटकर लड़ने का साहस मुझमें है। आपके मन में मेरे लिए वही प्रतिष्ठा रहने दीजिए। दीदी की तरह मेरी जिंदगी भी तबाह नहीं होनी चाहिए। धीरज धरकर जा रही हूँ। श्रीधर को मनाकर आऊँगी। यह शादी जरूर होगी। मुझे मत रोकिए।"[70]

उपरोक्त कथन से आधुनिक स्त्री के आत्म-स्तैर्य्य एवं मनोबल, पिताजी को मनाने की समर्थता, प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता और अन्याय के प्रति आवाज उठाने का धैर्य आदि गुण नीलिमा में दिखाई देते हैं।

नीलिमा को अनब्याही गर्भिणी होते देखकर पिताजी के मन में समाज का डर होने लगता है। इसी आपत्ति को जताकर पिताजी नीलिमा को गर्भस्राव के लिए मजबूर करते हैं। इस का प्रतिरोध करती हुई नीलिमा अपना निर्णय दृढ़पूर्वक सुनाती है – "औरत अपना दिल एक ही व्यक्ति को समर्पित करती है। साड़ियों की तरह हर बार जीवन साथी को नहीं बदल सकती है। आत्मा को धोखा देना मुझे मालूम नहीं है। भ्रूण हत्या करके, भोली कन्या हूँ कहकर दूसरों को धोखा देना मुझे समुचित नहीं लगता है। पर पुरुष को धोखा देना मुझे पसंद नहीं है। इससे बढ़कर घटिया और नीच हरकत और कुछ नहीं हो सकती। ऐसा गलत व्यवहार करना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।"[71]

उपरोक्त कथन से नीलिमा की एक असाधारण भूमिका पाठक जगत् के सामने प्रस्तुत होती है। नीलिमा की बातों में भ्रूण हत्या का विरोध दिखाई देता है। वह परपुरुष को धोखा देना नहीं चाहती है। इन बातों में प्रेम के प्रति निष्ठा, पतिव्रता, माँ की ममता, वात्सल्य एवं मातृत्व की मधुरिमा में भारतीय सांस्कृतिक स्त्रीत्व के तत्व और आधुनिक नारी का साहस इन दोनों का संगम दिखाई देता है। नीलिमा कहती है कि – "पिताजी! मैं गर्भपात नहीं करवा सकती। मेरे पेट में पलते हुए भ्रूण का निर्दयता से गल घोंट नहीं सकती। यह तो पैशाचिक प्रवृत्ति है। अमानुष है। औरत होने के नाते मैं इस काम को उचित नहीं मानती हूँ।"[72]

लेखिका शारदा जी का कहना है कि कितना ही आधुनिक क्यों न हो स्त्री आखिर स्त्री ही होती है। उसमें वही ममता, प्यार, स्नेह, आत्मीयता एवं वात्सल्य आदि सब कुछ जैसी की वैसी सुरक्षित है। आज की नारियाँ पहले की तरह कायरता न दिखाकर चुनौती का सामना करने लगी हैं। आज वह सबल होने लगी है। इस तरह से धर्म का पालन करने के लिए तैयार हो रही है। गलती को न छिपाकर उससे जूझने के लिए तैयार हो रही है। उसे मालूम है कि 'भ्रूण-हत्या कानूनन अपराध है'। इसीलिए वह धार्मिक अनुष्ठान का पालन करने में लग गयी। इस प्रकार आधुनिक स्त्री अपने नये साहस का परिचय देने में एक कदम आगे बढ़ गयी। दीदी और पिताजी नीलिमा को मनाने की कोशिश करते हैं कि –"अगर भ्रूण हत्या को पाप माने तो बच्चे को जन्म देने के बाद अनाथ शरणालय में सौंप सकती हो।"[73] नीलिमा इस विचार का भी प्रतिरोध करती है।

कुंती का नाम सुनते ही महाभारत का याद आना स्वाभाविक है। महाभारत की कुंती अपने को दिये हुए वरदान का फल पाने की इच्छुक होकर, उस उत्सुकता में सूरज भगवान को आमंत्रित करती है लेकिन बच्चे को जन्म देते ही महाभारत की कुंती धीरज खो बैठती है। कुंती गौरवपूर्ण, मर्यादित कुल, ऊँचे खानदान में पैदा होने के कारण, समाज की रीति-रिवाजों से डरने के कारण, दैवी कृपा से प्राप्त बेटे को भी, कुंती अपनी इज्जत बचाने हेतु, नवजात शिशु कर्ण को निर्दयता से टोकरी में रखकर पानी में बहा देती है।

नीलिमा की शादी श्रीधर से कुछ ही महीनों में होने की है। लेकिन यौनाकर्षण के कारण शादी से पहले ही वे दोनों एक हो जाते हैं। नीलिमा की सामाजिक परिस्थितियाँ कुछ अलग न होते हुए भी कारणवश श्रीधर का नीलिमा से शादी के लिए इनकार करने पर भी, बच्चे को जन्म देकर नीलिमा ने आधुनिक नारी के साहस को प्रमाणित किया। सामाजिक रिवाजों के सामने नीलिमा सिर नहीं झुकायी। बल्कि निर्भीकता के साथ गर्भधारण करके बड़ी शान से बेटी को जन्म देती है।

नीलिमा की समझदारी इन शब्दों में व्यक्त होती है कि –"उस समय महाभारत की कुंती ने समाज की परवाह करके कर्ण को पानी में बहा दिया। बाद में हृदयविदारक रूदन किया। अनाथ की तरह कर्ण की परवरिश हुई। उसको कई अपमानों का भाजन बनना पड़ा। ऐसी दुस्थिति अपनी बेटी को नहीं होने दूँगी। कुंती की तरह मैं डरपोक नहीं हूँ। बच्चे को जन्म दूँगी। 'यह मेरी माँ है' कहने की हिम्मत उसे दिलाकर, सर उठाकर जीने का साहस जुटाऊँगी। समाज का सामना करके मैं अपनी बच्ची को पालूँगी।"[74]

नीलिमा का व्यवहार हर स्त्री को साहस के साथ जीने का रास्ता दिखाता है। एक गलती को छिपाने के लिए हजारों गलतियाँ करनी पड़ती हैं। इसके बजाय एक सच्चाई का सामना करना बेहतर है जिससे जीने का मार्ग सुगम होता है और कई लोगों के लिए मार्गदर्शन बन सकता है।

नीलिमा की बेटी श्रीलक्ष्मी कोई उस बच्ची को 'कुंती पुत्रिका' कहे तो उसे बरदाशत नहीं करती थी और डटकर उसका विरोध करती थी। बेटी को समझाती थी कि –"तुम कुंती पुत्रिका कैसी कहलायी जाओगी? तुम्हें कर्ण से तुलना करके कुंती पुत्रिका कहना अनुचित है। कृष्ण की भाँति तुम दो पिताओं की लाडली हो।"[75]

कई सालों बाद श्रीलक्ष्मी से उसको असली पिताजी श्रीधर से परिचय होता है। तब से श्रीधर भी लक्ष्मी के प्रति आत्मीयता दिखाने लगता है। लेकिन बचपन से लाड़-प्यार एवं दुलारकर पालनेवाला पिता पवन है। पवन को नीलिमा के बारे में सब कुछ

मालूम होता है लेकिन फिर भी नीलिमा के व्यवहार से प्रभावित होकर उससे शादी करता है।

आधुनिक समाज में शारदा जी नायिका के साथ नायक **के भी** आदर्श **रूप प्रस्तुत करने में अपनी विशेष पहचान बनायी है। इस से पुरुष की मानसिकता में आयी बदलाव को व्यक्त किया है। जिस से कल के समय में समरस जीवन की संभावना की आशा की निकटता को व्यक्त किया है।**

3.5 मध्यवर्गीय नारी जीवन की वास्तविकताएँ :

'दिखता हुआ अतीत'[కనిపించిన గతం]

इंद्रगंटि जानकीबाला जी ने इस उपन्यास में कई पीढ़ियों से आने वाले पुरुष अहंकार और उसकी स्वेच्छाचारिता के कारण स्त्री पर होने वाले सामाजिक, मानसिक, दैहिक अत्याचार को विभिन्न रूपों में दर्शाया है। इस उपन्यास में नायिका देवकी अपने जीवन के अनुभवों को आँखों के सामने घटित या जीवंत रूप में विस्तारपूर्वक गौतम के सामने प्रस्तुत करती है। तीन साल की उम्र से लेकर अपने जीवन की विगत स्मृतियों का वर्णन करती है।

माँ कमलाम्बा स्कूल में संगीत की अध्यापिका और बाहरसंगीत के ट्यूशन्स भी करती थी। 'तंगिराला' के घर में जन्म दिन के अवसर पर नाश्ता करने के बाद देवकी से गाने का अनुरोध करते हैं। देवकी इस छोटी-सी उम्र में भी दूसरों की भावनाओं को समझकर उसका कदर करना जानती है। देवकी इतनी समझदार है कि –"जिन्होंने मेरी भूख मिटाई है, उनके लिए बदले में कुछ करना अपना कर्तव्य समझती हैं।"[76]

तंगिराला के घर से वापस आने के बाद पिताजी रामचंद्रम चिढ़ते हुए बोलते हैं –"घर में चावल नहीं है न! उनसे दो रुपये माँगकर लाना था।"[77] माँ ने जवाब दियाकि –"वे लोग अपनी पार्टी में व्यस्त हैं। इसीलिए मैंने नहीं पूछा।" जवाब सुनते ही पिता जी

माँ को गालियाँ देने लगे कि–"स्साली, बाहर जाने के बाद तुम्हें घर की याद नहीं रहती।"[78]

लेखिका जानकीबाला कहती है कि एक कौड़ी भी न कमाते हुए, मौका मिलते ही पुरुष अपना अहं दिखाने लगता है।

पाँच साल की उम्र में देवकी के हाथों से काँच का गिलास फिसलकर टूट जाता है। फिर भी पिता जी नहीं डाँटते, कहते हैं –"जाने दो !"

पिताजी की ऐसी प्रतिक्रिया की उम्मीद नहीं रही, मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कई सालों बाद मुझे न डाँटने का कारण मालूम हुआ। "सगे मामा ने माँ को काँच के गिलास भेंट किया था जिसे देखते ही पिताजी चिढने लगते हैं। उसके टूटते ही पिताजी ने सुकून महसूस किया।"[79]

पता नहीं क्यों पुरुष में अहंकार, द्वेष, ससुराल के प्रति नीची नज़र आदि काफी गलत विचार रहते हैं। इन गुणों को बात-बेबात पर व्यक्त करते हुए पुरुष अपने अहंकार को दिखाने की कोशिश करता है। यह पिताजी की पाशविक सोच का एक उदाहरण है।

देवकी के पाँच साल की उम्र में अन्य बच्चों के साथ मिलकर खेलते समय बच्चे अपने घर से कुछ न कुछ खाने की चीज़े लाते थे। उसके घर में कुछ नहीं रहता था। "खेलते समय थाली परोसना, झूठे पत्तल उठाना, झाड़ू लगाना - ऊब जाने पर भी ये सब काम मुझे ही करना पड़ता था।" सब बच्चे बोलते थे - "तुम तो कुछ भी खाने के लिए नहीं लाहो न !"[80]

देवकी को हाथ दुखने पर भी काम करना पड़ता था। इससे देवकी की आर्थिक दयनीय स्थिति मालूम होती है। छः साल की उम्र में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर गाने के लिए देवकी का नाम लिया जाता है। देवकी के शब्दों में –"गाने के लिए मैं तैयार हूँ, लेकिन मेरे पास पहनने के लिए अच्छा सा फ्रॉक नहीं है। मेरी दोस्त पिचुका ने गौन दी थी लेकिन सिर्फ उस अवसर पर पहनने के लिए ही।"[81]

खास समय के लिए औरों का कपड़ा पहनना पड़ता था। बचपन में आर्थिक तंगी होती थी। 'स्वतंत्रता दिवस' के दिन अच्छे से गाने के कारण कलेक्टर साहब ने रु.25/- का इनाम दिया था। घर आने पर पता चला कि माँ अस्पताल में है। हमेशा की तरह घर में एक कौड़ी भी नहीं थी। इन 25 रुपयों को लेकर पिताजी ने माँ और घर के लिए आवश्यक किराना सामग्री और अपने लिएतंबाकू की बीड़ियाँ कुछ ज्यादा ही खरीद कर लाये थे।"[82] पैसों की तंगी कितनी भी क्यों न हो लेकिन पिताजी अपनी विलासिताओं में कमी नहीं होने देते थे। पैसों को पाते ही उस पर गिद्ध की तरह टूट पड़ते थे।

लेखिका जानकीबाला ने पहले अपनी जरूरतों को पूरा कर लेने वाले पुरुषों की मानसिकता को व्यक्त किया है। उस दिन देवकी के मन में ऐसा महसूस हुआ था कि "कोई भी मुझसे गाने के लिए कहकर पैसे दिए तो कितना अच्छा लगता है।"[83]छोटी सी उम्र में ही समझने लगी कि घर चलाने के लिए रुपयों की अत्यंत आवश्यकता है।

देवकी की माँ जब अस्पताल में थी तो भैय्या रमणा पूछता है कि –"तुम्हें कौन चाहिए, भैय्या या बहन?"तो मैं झट से बोलने ही वाली थी –"कोई नहीं।"[84]लेकिन बड़ी मुश्किल से अपने पर अंकुश लगा सकी। इसका भी कारण है कि पहले से ही बड़ी मुश्किल से घर का गुजारा चल रहा था। "एक और प्राणी के घर में आने से उसके पोषण का भार बढ़ने की आशंका से वह डरने लगी।"[85]

इतनी कम उम्र में ही स्थिति को समझना, मन में आये विचार औरों के सामने न कहकर नियंत्रित कर पाना, किसी का दिल दु:खी न होने की सोच, आदि देवकी की मानसिकता की परिपक्वता को व्यक्त करता है।

माँ को दो या तीन महीने में एक बार वेतन मिलता था। वह भी एक साथ नहीं, बड़ी मुश्किल से माँ घर चलाती थी। सभी दूकानदार चीज़ें पहले दे देते थे, बाद में पैसे लेते थे। उस दिन दहीवाली माणिक्याम्मा घर आयी थी। पिताजी कुछ रुपये दे रहे थे। लेकिन वह नहीं ले रही थी। उन दोनों के बीच कुछ कहा-सुनी हो गयी। इतने में माँ

बाहर आयी तो पिताजी अंदर चले गये थे। माँ को देखते ही मणिक्यम्मा धीमी आवाज में कहने लगी कि –“दिन भर बीड़ी पीते हुए पति को घर में बैठे पाकर तुम चुपचाप कैसी सहन कर पा रही हो? कुछ तो छोटा-मोटा काम करने के लिए तो कहो। अकेले की कमाई पर घर कैसे चलाओगी।”[86]फिर से मणिक्यम्मा ही बोलने लगी कि –“मैं भी मेहनत-मजदूरी करती हूँ। लेकिन तुम्हारी तकलीफ देखकर मेरा दिल पसीजने लगता है। न कमाना, ना पालन-पोषण करने वाला पति किसलिए।”[87]

मर्द न कमाते हुए भी सिगरेट पीने की आदतों को भी छोड़ना पसंद नहीं करता है। अगर पत्नी कुछ बोले तो उसे मारना, पीटना, कोसना या गालियाँ देते हुए अपने पुरुषाधिकता को दिखाता है। नौकरी-पेशा होते हुए भी स्त्री को चुपचाप सब कुछ सहन करना पड़ता है। स्त्री को आर्थिक बोझ के साथ-साथ पुरुष अहंकार के बोझ के नीचे कुचलना पड़ता है।

संगीत के विद्वान होते हुए भी पिताजी हाथ में आयी कमाई के मौके को ठुकरा देते थे। पिताजी से लोल्ला शास्त्री जी संगीत सीखने आते थे। उसकी आवाज में मिठास न होने पर भी उसमें सीखने की लालसा और गाने की इच्छा थी। चार दिनों में ही पिताजी उससे ऊब गये थे। अब शास्त्री जी को सिखाने का उनका मन नहीं है और कहने लगे कि –“विद्या को बेचने की लालसा बढ़ जाने के कारण असली विद्या मर गयी। विद्या को निःशुल्क सिखाना है। बदले में कुछ पाने की आशा नहीं करनी चाहिए।”[88]इन बातों को सुनने के बादमाँ चुप न रह सकी और बोली कि - “विद्या को बेचे बिना हमारा गुजारा कैसे होगा? किसी और के बारे में हम क्यों सोचें? जरूरत में जो काम न आये, ऐसे नैतिक सूत्रों का कहना निरर्थक है।”[89]

पुरुष होकर घर का गुजारा न सोचकर अपने मन की खुशी के बारे में सोच रहा है। शादी से लेकर आज तक औरत कमाती हुई घर चला रही है। आर्थिक तंगी होते हुए भी इस का असर पुरुष पर नहीं हो रहा है। घर में आराम से बैठकर बातें करते हुए मनमानी करें तो घर का निर्वाह कैसे होगा? लेखिका ऐसी स्थिति में भी

पुरुष में परिवर्तन नहीं आने की बात को सूचित करते हुए पुरुष की गैर-जिम्मेदारी को अभिव्यक्त करती है।

काकरपरु नामक गाँव के जमींदार की बेटियों को संगीत सिखाना था। तो वे घर की आवश्यक वस्तुएँ और आने-जाने के लिए गाड़ी का इंतजाम भी किये थे। लेकिन पिताजी रामचंद्रन घर में बैठे बीड़ियाँ पीते थे। पिता के आलसीपन को देखकर देवकी को बहुत दु:ख होता था।

जमींदार लोग बोरे भर के चावल घर भेजते थे। पिताजी तीन सेर चावलदूकान में बेचकर बीड़ियाँ खरीदकर पीते थे। पिताजी ने जमींदार की बेटियों को संगीत सिखाना भी छोड़ दिया। कमाई की बात को लेकर माँ-बाप के बीच कहा-सुनी हो जाती थी। माँ ने व्यंग्य भरे स्वर में एक दिन पिताजी को सुना दिया कि –"हाँ, सच है। मेरी कमाई से घर कहाँ चल रहा है? सब कुछ आप ही की कमाई है न!"[90]

माँ का ताना सुनते ही झट से उचककर - "माँ का जूड़ा कस के पकड़कर खींच लिया। हवा में हिल-डुल जाने वाली करिया पत्ते के पेड़-सा झूल गयी। गले को कसके पकड़ते हुए, सर झुकाकर पीठ पर जोर-जोर से धुनाई की।"[91] माँ की आँखों में बदले की भावना तीव्रत्तर होने के कारण रोष भरे स्वर में कह दिया कि –"खिलाने-पिलाने में समर्थ न होते हुए भी पीटने में समर्थ हो।"[92]

लेखिका जानकीबाला कहती है कि पुरुषहंकार रूपी पैशचिक प्रवृत्ति सदियों से घर कर जाने के कारण वह आज भी कमाने में असमर्थ होने पर भी पत्नी को पीटने में कोई कसर नहीं छोड़ता है। इस उदाहरण से पुरुषहंकार की प्रबलता दिखाई देती है। स्त्री पढ़-लिखकर आर्थिक स्वावलंबी होते हुए भी आज शोषित एवं पीड़ित है।

देवकी की माँ कमलाम्बा देखने में सुंदर और वीणा बजाने में भी प्रवीण थी। कमलाम्बा केपिता नरसिंहम एक अपाहिज एवं कुरूप, पैसेवाले श्रवणकुमार से कमलाम्बा की शादी का निर्णय कर देते हैं। माँ के साथ बाकी घरवाले सब मिलकर इस शादी को रोकने के लिए काफी प्रयास करते हैं जिसे पिता नरसिंहम न मानकर धमकी देने लगता है कि –"मेरी मान-मर्यादा को मिट्टी में मत मिलाओ। चुपचाप पड़े

रहो। अच्छा हो या बुरा हो, जो होना है, वही होगा। उसकी तकदीर में जो लिखा, वही होगा।"[93]

दोनों दामाद मिलकर पुलिस को शिकायत कर ससुरजी को गिरफ्तार करवाने की धमकी देते हैं तो पिता नरसिंहम जहर पीकर मरने की धमकी देते हुए उद्वेगभरित होकर कहते हैं कि- "मेरी इज्जत मिटने के पहले मेरे प्राण गये तो भी कोई आपत्ति नहीं है।"[94]

इस घटना से पुरुषसत्तात्मक समाज का एक और प्रबल उदाहरण मिलता है। पत्नी, बेटी या घरवालों की राय का कदर या वर की रूप रेखा या मानसिकता के बारे में समझने की कोशिश नहीं करते हुए, यदि लड़का धनवान है तो बेटी ससुराल में खुशी से रह सकती है, समझकर शादी करने के लिए पिता तैयार हो जाता है।

पुरुष घर का मालिक होने के कारण अपनी मनमानी करता है। यह घटना पूर्णरूपेण पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था का प्रतीक होते हुए साथ-साथ स्त्री पर होने वाले अत्याचार को भी साबित करती है। यहाँ लेखिका कहती है कि पिता होने के नाते अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी को जरूर निभाया था परन्तु साथ-साथ बेटी को शादी के नाम पर बलिवेदी की सूली पर चढ़ाकर घोर अपराध किया था। ऐसा बेमेल विवाह किस रूप में परिणत होता है और पारिवारिक व्यवस्था कैसे छिन्न-भिन्न हो जाती है, कितनी ज़िन्दगियाँ बरबाद हो जाती हैं यह कहना मुश्किल है।

कमलाम्बा के पति श्रवणकुमार को शारीरिक सुख के अलावा पत्नी के प्रति प्यार, आत्मीयता एवं स्नेह जैसी भावनाएँ नहीं थी। - "कमरे में घुसते ही पत्नी पर एक जड़-सा टूट पड़ता है। पत्नी की पसंद-नापसंद से कोई मतलब नहीं रखता है। वह कामुकता को अपनी इच्छानुसार भोग लेता है। कोमल कमलाम्बा उसके इस विचित्र व्यवहार से भय कंपित होने लगती है। कभी-कभी कमलाम्बा का मन घृणित होकर इस मिलन से बिल्कुल खिलाफ होने लगता है तो वह श्रवणकुमार को दूर फेंकना चाहती है। लेकिन पति के पशुबल के सामने कमलाम्बा निस्सहाय हो जाती थी। कामेच्छा पूरी होते ही सो जाना श्रवणकुमार की आदत है।"[95]

इस अनैच्छिक यौन-भोग से दु:खी कमलाम्बा, रो-रोकर घुटती हुई कब सो जाती है उसे पता ही नहीं चलता। ‘‘इतने में श्रवणकुमार का आधी रात को जागकर फिर से कमालम्बा को भोग लेना एक आम बात है। परिस्थितियाँ कैसी भी हों एक दिन भी वह शारीरिक सुख खोना नहीं चाहता है।’’[96]

श्रवण कुमार की जिंदगी में तीन मुख्य मुद्दे हैं। ‘‘वे हैं –1.खाना,2.सोना 3. कामुकता। साथ ही दूसरों की मानसिकता को समझने की उसमें सूझ-बूझ का न होना।’’[97]

इन कथनों से मालूम होता है कि पुरुष के लिए स्त्री एक भोग्य मात्र है। स्त्री के दिल की कोमल भावनाओं को समझने का या कदर न करने के कारण ही ये भावनाएँ विद्रोह में बदलकर संबंध-विच्छेद में परिणत होती हैं। इसे व्यक्तिगत दोष के बजाय पारिवारिक दोष मानना अधिक समुचित है।

‘‘श्रवणकुमार के दूर के रिश्तेदार रामचंद्रम जो संगीत में प्रवीण और देखने में सुंदर है, घर आता है । उसे देखते ही कमलाम्बा के मन में हलचल होने लगी, उत्साह एवं उद्विग्नता बढ़ने लगी। ‘‘रामचंद्रम की मौजूदगी में पति की न्यूनताओं को कमलाम्बा अधिक महसूस करने लगी। उसका मन मयूर की तरह थिरकने लगा। रात के समय पति के साथ बिताने में चिड़चिड़ाहट और अनिच्छा बाधित करने लगी।’’[98]

कमलाम्बा के मन की स्थिति ऐसी होने लगी कि - ‘‘रामचंद्रम के पास रहते समय चाँदनी रात का विहार सा और उसके जाते ही बुझता-सा गैस लाइट की तरह लगने लगा।’’[99]

लेखिका जानकीबाला कहती है कि एक लोकोक्ति के अनुसार –‘जब अपने घर में भूख नहीं मिटती तो लोग दूसरे घर में भूख मिटाने की कोशिश करते हैं। यह सिद्धांत भौतिक सुख के लिए ही नहीं, दैहिक सुख के लिए भी लागू होता है।’

रामचंद्रम और कमलाम्बा के बीच का आकर्षण इतना बढ़ गया कि घर में ही चोरी-छिपे मिलने लगे। सासूमा रत्तायम्मा (अपनी गलती) मालूम होते हुए भी हालात को समझकर चुप रह जाती थी कि –‘‘बेटे का विकृत रूप किस से सहा जाता है और

बहू खूबसूरत एवं जवान औरत है। जवानी के जोश को रोकपाना किसके बस में है?"[100]

उपर्युक्त कथन में रत्तायम्मा सास होकर भी अपनी जवान बहू की जरूरतों को समझ सकी। उसके मन में बहू के प्रति सहृदयता व्यक्त होती है।

माता रामलक्ष्मी गर्भिणी कमलाम्बा को मायके ले जाने आती है। कुछ ही दिनों में कमलाम्बा की अंतरंगिक स्थिति को ताड़ लेती है। फिर भी ससुराल में रहने के कारण अपना मुँह बंद कर। मायके जाने के बाद समझाना चाहती है लेकिन लक्ष्मी-सरस्वती-सी रूपवती बेटी की दु:स्थिति पर फूट-फूटकर रोने लगती है।

प्रसव के बाद कमलाम्बा बेटी के साथ दुगुनी सुंदरता के साथ ससुराल में कदम रखती है। लेकिन उसके मन में बड़ी बेचैनी होने लगी थी कि –"घर एक नरक बन गया। बेटी एक बड़ा बंधन बन गयी और पति तो महा मांत्रिक लगने लगा। इसलिए वह खुशी से नहीं रह पाती है।"[101]अब उसका मन इस परिस्थिति से विद्रोह करने लगा कि –"इस प्रकार के प्रतिबंधित परिवार में हर साल एक-एक बच्चे को पैदा करते हुए गर्भ धारण कर और उल्टियों से चीखते-चिल्लाते कराहते हुए चीत्कार और घृणा के बीच जड़-सा नापसंद पति को शरीर सौंपकर बिना किसी सुख के घृणा भरित जीवन जी नही सकती। तो क्या करना है? 'मर जाय तो'– यह विचार आरंभ में ही रुक जाता है - क्यों मरना है?जान गँवाने वाली डरपोक मैं नहीं हूँ। मैंने कोई गलती नहीं की है? नाही मैं कोई गलती कर रही हूँ। सब लोगों ने मुझे धोखा दिया है। मैं तो नादान होने के कारण धोखा खा गई हूँ। इस धोखे से उभरने की कोशिश कर रही हूँ।"[102]

इस उपन्यास में आज की नारी में होने वाले घुटन एवं अंर्तमंन से उभरने की कोशिश व्यक्त हो रही है। लेखिका का कहना है कि पहले की तरह आज की नारी जो भी हो उसको चुप-चाप सहन नहीं कर रही है। वहअपने सपने को साकार करने के प्रयास में लग गयी। अपनी जरूरतों को समझ रही है। उसे प्राप्त करने की पूरी लालसा है। उसे यह भी मालूम है कि क्या पाना है और किसे छोड़ना है? जिंदगी का

मकसद क्या है?इस मामले में कमलाम्बा अपवाद नहीं है। उसमें आधुनिकता का रंग चढ़ रहा है। इस उपन्यास में नारी का साहस विद्रोह में बदलता हुआ दिखाई देता है।

कमलाम्बा के मन में यह विचार उठा कि वह मद्रास में दीदी के पास जाकर कुछ महीने के लिए संगीत सीखे। वह सास को भी मना लेती है। अगले दिन वह मद्रास जाने की पूरी तैयारियाँ कर लेती है। उसी रात को एक सुमधुर एवं अनहोनी घटना घटती है कि-"रामचंद्रम और कमलाम्बा दोनों का शारीरिक मिलन हो जाता है। ऐसा प्रणय समागम और ऐसी मधुरानुभूति को कमलाम्बा ने जिंदगी में पहली बार अनुभव किया। उसका शरीर रूई की तरह हल्का हो जाता है।"[103]इसी कारण मद्रास जाने के बाद घरवालों के खिलाफ जाकर रामचंद्रम से शादी कर लेती है। रामचंद्रम अपनी पहली पत्नी सीता महालक्ष्मी को मनाकर दोनों के साथ रहने लगता है।

रामचंद्रम कमलाम्बा के साथ अपनी वीरोचित प्रणय गाथा दोस्त दामराजू वेंकटराव को सुनाता है। दोस्त वेंकटराव को रामचंद्र पर गुस्सा आता है और वह कमलाम्बा से घृणा करने लगता है।

वैवाहिक प्रथा और स्त्री के प्रति दामराजू के कुछ अपने विचार हैं - जैसे स्त्री का मतलब है दिन में चौका-चूल्हा चलाए और रात में शयन कक्ष में समर्पण भाव से रहे। उनको प्रेम-गीत, नाटक आदि कतई ठीक नहीं लगते हैं। स्त्री में आदर्श, मर्यादा, नम्रता, भक्ति-प्रेम आदि गुण होने चाहिए। व्रत-पूजा, पाठ करना, पति के सौभाग्य के लिए उपवास रखना, बेमतलब मारे तो भी पत्नी चुपचाप सहन कर लेना - ऐसे लक्षण स्त्री में होने चाहिए।"[104] दामराजू यह भी मानता है कि –"कमलाम्बा ने अपनी खूबसूरती से, चिकनी-चुपड़ी बातों से, गानों से रामचंद्रम को अपने जाल में फँसा लिया। स्त्री हमेशा पुरुष को आकर्षित कर, अपने वश में करके पुरुष का सर्वनाश करने पर तुली रहती है।"[105]

दामराजू कमलाम्बा के खिलाफ कहते हुए सबके कान भरने लगते हैं "वही (कमलाम्बा) करुणा भरी दृष्टि से, आँसुओं से पुरुष को अपने वश में कर लेती है। वह तो सयानी है। बेचारे लड़के को कुछ मालूम नहीं है, ।"[106]

वेंकटराव को यह नहीं सूझता है कि –"औरत के नाश के लिए पुरुष किस रफ्तार से आगे बढ़ रहा है। जबकि रामचंद्रम की भी शादी हो गयी।"[107]

रामचंद्रम कमलाम्बा से शादी करने के बाद वेंकटराव से पैसे भेजेने के लिए कहता है। जमीन को टुकड़ों में बेचते हुए - रामचंद्रम की 100 बीघा जमीन बेचकर थोड़ा-थोड़ा जमीन को बेचते हुए रु.1500/- की कीमती जमीन को रु. 500/- में बेचकर रुपयों का इंतजाम करता था। वह पूरी जमीन को सस्ते दरा में धीरे-धीरे हड़प लेता है। फिर भी रामचंद्रम के मन में वेंकटराव के प्रति कृतज्ञता थी, क्योंकि मुश्किल हालात में समय-समय पर पैसे भेजकर उसने सहायता की।

नौकरी के सिलसिले में रामचंद्रम बेटे रमणा को मद्रास भेजकर वेंकटराव के यहाँ ठहराता है। वेंकटराव मद्रास में वकील है। माँ रमणा को मद्रास भेजने का विरोध करती है। फिर भी रामचंद्रम नहीं मानता है।

वेंकटराव ने माँ कमलाम्बा के खिलाफ रमणा के कान भर कर जहर घोल देता है और पिता के बारे में एक भी अपशब्द नहीं कहता है। माँ को ही कसूरवार ठहराकर रमणा के मन में माँ के प्रति द्वेष, घृणा आदि बढ़ा देता है। रमणा घर आने के बाद माँ की हर बात-बेबात पर गुस्सा दिखाने लगता। कहता है कि –" माँ की सी विलासिता और घमंड किसी भी स्त्री में नहीं रहता है। स्त्री के लिए शील ही प्रधान होना चाहिए। पति कैसे भी हो, उसकी पूजा और सेवा करना ही हमारा संप्रदाय है। माँ मर्यादाहीन बाजारू औरत है। माँ, पति, बच्चे, परिवार और मर्यादा का ख्याल न रखने वाली कामुक औरत है। जो भी हो स्त्री के लिए चार दीवारों के अंदर रहना ही श्रेयस्कर है। चौखट लांघकर बाहर आयी औरत का कहीं भी आदर नहीं होता है।"[108]

इस कथन द्वारा पुरुष का अहं एवं घृणा सूचित होता है। बचपन से माँ के साथ रहते हुए, माँ का व्यवहार मालूम होते हुए भी पराये मर्द की बातों को अहमियत देते हुए और माँ को दोषी ठहराता है। बचपन से भाई-बहन के साथ मिल-जुलकर पलने पर भी बढ़ती हुई उम्र के साथ पुरुष का अहं बदल जाता है और अपना अहं हर रूप में दिखाकर स्त्री को दबाने की कोशिश करता है।

उम्र में लड़का छोटा ही क्यों न हो लेकिन बचपन से ही पुरुषहंकार बढ़ने लगता है। माँ के प्रति किसी भी तरह की मर्यादा और गौरव न दिखाकर, उसी को नीचा दिखाने में तुले हुए रहता है। यही है पुरुष की असली मानसिकता।

भैया रमणा देवकी के साथ भी घृणित व्यवहार करते हुए कहता है –"मुझे स्त्री जाति के प्रति घृणा है। इसीलिए तुम्हारे प्रति भी नफरत है। तुम्हें कुछ बताने पर भी फायदा नहीं है। क्योंकि तुम भी उसी माँ की बेटी हो।"[109] रमणा धमकी देते हुए देवकी से कहता है –"देवकी अभी ही बता रहा हूँ। तुमसे मुझे सख्त नफ़रत है। यह मत पूछो कि तुम्हारे प्रति मुझे घृणा क्यों है? मौका मिले तो तुम्हें भी बरबाद कर दूँगा।"[110] रमणा का गुस्सा देखकर मैं थरथर काँपने लगी और इस नफ़रत का कारण अगर "मेरा एक औरत होना ही है तो यह कितना अन्याय है।"[111]

बचपन से अपने परिवार के साथ रहकर माँ का घर चलाने की जिम्मेदारियों को और पिता की गैर जिम्मेदारी और दो पत्नियों का होना, देवकी के स्वभाव को, सब कुछ जानते हुए आज पराया वेंकटराव की बातों में बहकर एकदम बदल जाना, माँ और परिवार के प्रति विष उगलना, किसी के बहकावे में आकर अपनी सूझ-बूझ खो बैठना अपने लोगों के खिलाफ हो जाना, ये सब पुरुष के अहं और उसकी कमजोर मानसिकता को सूचित करता है।

देवकी के दोस्तों को देखने पर भी आक्रोश के कारण भैय्या रमणा का मन काट खाने को दौड़ने लगा। उनके चले जाने के बाद अपने मन का गुबार निकालता था कि –"इन सालियों को एक-एक लड़की को अलग-अलग भोगकर फेंक देना चाहिए।"[112] रमणा के मुँह से ऐसे घिनौने शब्द सुनकर मेरी धड़कनें घबराने लगी। हाय !पुरुष में ऐसी पाशविक प्रवृत्ति कहाँ से आयी है? यह पुरुषहंकार नहीं है तो और क्या है?

घर के बाहर बड़ा शिवुडू और छोटा शिवुडू दोनों राक्षसों की तरह देवकी का पीछा करते रहते हैं और घर में हर बात पर रमणा चिढता रहता है। इसे देखकर

देवकी समझने लगी कि पुरुषहंकार के कारण घर और बाहर कहीं भी स्त्री के लिए सुरक्षा एवं शांति नहीं है।

एक दिन बड़ा शिवुडू अपशब्दों से, बुरी चेष्टाओं से देवकी को तंग करते हुए सुनाने लगा कि –"तुझसे कोई शादी नहीं करेगा। सब लोग तुम्हें रखैल बनाऐंगे। वह काम मैं भी कर सकता हूँ।"[113] उसके अहं भरी बातों से मुझमें जुगुत्सा पैदा होने लगी और गुस्से में उसका कत्ल करने का भी मन करने लगा।

उपर्युक्त घटना से मालूम होता है कि पुरुष कितना ही कुरूप, विकृत क्यों न हो, किसी गरीब सुंदर जवान लड़की को देखने पर उसके मन में शादी करने के बजाय रखैल बनाने की बलवती इच्छा होती है। पुरुष की दृष्टि में स्त्री नीच मानी जाने वाली और यों ही भोगने लायक वस्तु है।

देवकी को मेरी रत्नम अध्यापिका के प्रति कृतज्ञता है कि - "मैं तो गणित में कमजोर थी। मेरी रत्नम नामक अध्यापिका मुझे गणित सिखाने के साथ-साथ खाना भी खिलाती थी। उसकी उदारता को देखकर मेरी आँखों में आँसू बह जाते थे। भले ही दोनों के अलग संप्रदाय क्यों न हो लेकिन उसकी सहृदयता के सामने बाकी लोग तुच्छ माने जाते हैं।"[114]

देवकी अपने दोस्त गौतम से कहती है कि –"शादी के बिना सुखपूर्वक जीवन बिता सकते हैं न! इतना देखने के बाद भी मेरे मन में क्रोध या द्वेष जैसी भावनाएँ पैदा नहीं हुई है। मुझे अपना समझकर प्यार करने वाला व्यक्ति मिल जाए तो शादी के लिए सोचूँगी।"[115]

इंद्रगंटि जानकी बाला ने 'दिखता हुआ अतीत' उपन्यास में सदियों से चले आ रहे पुरुष सत्तात्मक व्यवहार ने समाज में जड़े जमा लिया है।इस का बाखूबी चित्रण किया है। हर पल पुरुषाधिकता की भावों से दमित तीनों पीढ़ियों वाली स्त्रियों की जिंदगियों में घटित अनुभवों को देखने के बाद भी पुरुष के प्रति द्वेष भावना पैदा नहीं

हुई। बदलती दुनिया में अनुभव को पाते हुए भी विवाह के प्रति विमुखता दिखा नहीं सकी।

उपन्यास के अंतर्गत सभी विषयों का मुख चित्र व्यक्त कर पाने में चित्रकार की असाधारण प्रतिभा व्यक्त हो रही है। मुख चित्र को देखते ही विषय को समझ जाना पाठकगण के लिए सुलभ बना दिया है। इसमें गर्भिणी स्त्री का एक ओर संगीत की साधना, दूसरी ओर **अध्यापन,** तीसरी ओर खाना-पकाना, **चौथी** ओर बच्चों की देखभाल– ये सभी कार्य बड़ी कुशलता से संभालना। इन सबसे बढ़कर पत्नी के सिर पर बीड़ी पीते निश्चिंत बैठकर, गैर जिम्मेदार पति को झेलना। इसमें स्त्री की सहनशीलता, बहुमुखी प्रज्ञा, पुरुष की विलासिता और निकम्मेपन को सूचित किया गया है। स्त्री का घर-बाहर की जिम्मेदारियों के बोझ को सहनशीलता से निभाना, पारिवारिक प्रथा के प्रति निष्ठा आदि सभी गुण एक साथ दर्शाना अत्यंत प्रभावोत्पादक है।

3.6 नारीवाद के द्वारा नहीं, जनतांत्रिक आंदोलनों के द्वारा नारी मुक्ति संभव है: 'जंगल की पुत्री'[అడవి పుత్రిక]

'जंगल की पुत्री' वनजा का आत्मकथात्मक तेलुगु उपन्यास है। जंगल में रहते हुए आंदोलन करने वाले एक दल के जीवन के बारे में बताने वाला यह एक प्रमुख उपन्यास है।'माडिया दल की महिला के क्रांतिकारी आंदोलन' के दौरान विकसित एक गिरिजन महिला की कहानी को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास की नायिका पद्मा वरंगल जिले के नागारम ग्राम के दर्जी की बेटी है। जो अशिक्षित होते हुए भी अपने साहसिक कार्यों द्वारा अपने व्यक्तित्व की पहचान निर्मित करती है। नायिका पद्मा का क्रांतिकारी आंदोलन से अटूट संबंध था। इस उपन्यास के द्वारा मालूम होता है कि क्रांति कितनी शक्तिशाली होती है।

दल की जिन महिलाओं को गिरफ्तार किया था, उन महिलाओं से पुलिस ने झूठे बयान कहलवाये कि–"दल में रहते समय दल के नायक ने हमारे साथ बलात्कार

एवं असभ्य व्यवहार किया था। दल में हमें समानता नहीं मिली थी पुरुषों को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी कारण महिलाएँ दल की नेता नहीं बन पा रही हैं।"[116] इस तथ्य का दुष्प्रचार पुलिस ने ही करवाया था। लोग इन बातों को सच मान रहे हैं। लेकिन लेखिका वनजा उपरोक्त कथनों का खण्डन करती हुई कहती है कि- "आज की पीपुल्स पार्टी में 38% से अधिक महिलाएँ सदस्या कैसे बन पायी हैं? दल में सदस्यता से लेकर, जिला संस्था के नेतृत्व तक कैसे विकसित हो सकी। कोई भी सदस्या रातों-रात दल की नायिका के स्तर तक कैसे पहुँच सकती है? कुछ समय पहले तक दल में एक महिला भी नहीं थी। लेकिन आज दल के नेतृत्व के स्तर तक पहुँचना विकास नहीं तो और क्या है?"[117]

लेखिका का कहना है कि केवल फेमिनिज्म या नारीवाद के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। इस विषय को भी गौर करना चाहिए। सही क्रांति के बिना व्यवस्था को बदलना संभव नहीं है। आज का नारीवाद शहरों में उच्चवर्ग की महिलाओं एवं मध्यवर्ग की शिक्षित महिलाओं तक ही सीमित हो गया है। परन्तु करोड़ों निम्नवर्ग एवं अशिक्षित महिलाओं की समस्याओं का क्या होगा?

इस समाज में कई 'रागो' एवं 'पद्माएँ' नहीं है? नारीवाद उन तक क्यों नहीं पहुँच पाया? ऐसे कुछ प्रश्नों ने सोचने के लिए मजबूर किया।

इस उपन्यास में पद्मा की स्थिति का अनुशीलन करने से पता चलता है कि वास्तविकता क्या है? उसने दल में किस प्रकार प्रवेश किया? दल ने किन विकट परिस्थितियों से उसे बचाकर आश्रय दिया?

पद्मा के घर में आर्थिक तंगी इतनी ज्यादा है जिसके कारण परिवार में केवल लड़के को ही शिक्षा दिलाकर लड़कियों को घर में बिठा दिया गया । एक बीघा जमीन बेचकर बड़ी दीदी की शादी कर दी गयी। अंतिम क्रिया-कर्म के लिए पिता के यादगार के रूप में घर में बची सिलाई-मशीन को बेचना पड़ा। भाई की अस्वस्थ्ता के कारण उनकी कमाई दवा-दारू में ही खर्च हो जाती थी। पद्मा और माँ को ही काम करके गुजारा करना पड़ता था।

पद्मा कहती है कि–"बचपने से ही भूस्वामियों की चाल को मैं तो समझने लगी थी कि-"पूरा काम करवाने के बाद माँ को उन्होंने पूरी मजदूरी दी लेकिन मुझे एक पैसा भी नहीं दिया।"[118]

भूस्वामी का कहना है कि–"तुम तो छोटी हो न! बड़ों के समान तुम काम नहीं कर सकती हो। इसीलिए कुछ दिनों तक तुमको पैसे नहीं देंगे । काम करना सीख लो। तुम्हे कुछ दिनों तक मुफ्त में काम करना है।"[119]

लेखिका वनजा का कहना है कि बच्चों का मन बहुत कोमल होता है। श्रम को चूसने वालों के प्रति ही घृणा, आक्रोश, द्वेष, बदले की भावनाएँ आदि उत्पन्न हो जाते हैं और इन्हीं की वजह से प्रतिशोध की भावनाएँ पनपने लगती हैं। पद्मा जैसी गरीब एवं मेहनती लड़की में ये गुण प्रबल हो गये थे। वह कहती है कि –"उस दिन से मेहनत की सही मजदूरी न मिलने पर और 'आ रे - जा रे' जैसे अपशब्दों को सुनते ही, उसके मुँह पर पानी फेंककर मैं आ जाती थी।"[120]

साल भर का सारा खेती-बाड़ी का काम, कुँआ खोदना, मकान या सड़क बनाना, हर किस्म का काम करना पद्मा ने सीख लिया। 80-85% घर का गुजारा पद्मा की कमाई से चलता था। घर के पोषण का भार अब पद्मा के कंधों पर था। मर्द और औरत का दोनों का काम पद्मा करती थी।

गर्मियों में कुँआ खुदवाना और मकान बनाने के अलावा कोई अन्य काम नहीं मिलता था। इसीलिए ठेकेदार और मिस्त्री समय और स्थिति का फायदा उठाकर जरूरत से ज्यादा काम करवाकर दिनभर की मजूरी केवल 6 रुपये मात्र देते थे। "आदमी को जीने के लिए अन्न ग्रहण करना पड़ेगा, इसलिए 6 रुपये से संतुष्ट होकर जिंदगी से समझौता करना पड़ता था। उसके खिलाफ जाने पर फिर से काम पर आने नहीं देते थे।"[121]

लेखिका वनजा कहती है कि मालूम होते हुए भी, चुपचाप अन्याय को सहना पड़ता था।

पद्मा के शब्दों में –"बड़ी दीदी के देवर के साथ मेरी शादी तय हुई जो पहले से ही तलाकशुदा था। इस बात को बड़ी दीदी और जीजाजी छिपा दिया। घर की बदहालत के कारण मैंने भी इसे चुपचाप स्वीकार कर लिया। ठीक शादी के एक महीने बाद से मेरी समस्याएँ शुरू हो गयीं। पद्मा सोचती है -"लड़कियों की जिंदगियों से खेलना कुछ मूर्खों के लिए संतोषजनक है। कुत्ते की दुम कितना भी बाँधे फिर भी टेढ़ी हो जाती है।"[122]

लेखिका वनजा के शब्दों में–"सगे लोग ही अपने छोटों के साथ ऐसे गलत व्यवहार करते हुए गर्त में धकेल दें तो कौन इस समाज को सुधार सकता है?"

कुछ समय बाद मुझे भी पहली बीबी की तरह वह सताने लगा। उनके माँ-बाप से अलग होकर उसने दूसरा घर लिया। परिवार के बीच में रहने से पति को समझने का मौका मिलता था। परन्तु हर दिन कुछ नयी उलझनें पैदा करता था। "शादी में अच्छे कपड़े न देने की बात को लेकर सताता था। दहेज नहीं तो कम से कम घर के सामान तो दे सकते थे। जब तक सामान नहीं लाओगी तब तक तुम अपने घर पर ही रहो। जब तुम्हार भाई सामान दिलाएगा तब ही मेरे पास आना। वह उसे रोज पीटता था।"[123]

उपरोक्त कथन के आधार पर लेखिका वनजा का कहना है कि खासकर निम्नवर्ग में आज भी पुरुष का अहं जैसे का वैसा है। दिन-दुगुनी, रात-चौगुनी होने वाली पद्मा की वैवाहिक जिंदगी नरक बनने लगी थी।

ये सब झेलने के बाद पद्मा को मालूम हो गया है कि यह व्यक्ति मेरा पीछा छुड़ाना चाहता है। तब से उसके मन में आक्रोश प्रज्वलित होने लगा कि –"कुछ भी मुझ पर बीत जाए लेकिन मरना नहीं, मुझे जीना है।" मुझ पर हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़कर सीना तानकर उनकी आँखों के सामने ही जीना है। मुझे हर काम करना आता है।"[124]

पद्मा के धैर्य को देखकर उसका रोष बढ़ गया। इसलिए पद्मा पर झूठे इलजाम लगाकर, किसी लड़के से नाजायज संबंध जोड़कर, उसने भाई को झूठा पत्र लिखवाकर कहा कि–"तुम्हारी बहन, मेरे घर में एक पल भी नहीं रह सकती है। अगर तुम आकर इसे नहीं ले जाओगे तो बाद में कुछ अनर्थ होने पर, मैं कतई जिम्मेदार नहीं हूँ।"[125]

लेखिका वनजा का कहना है कि निम्नकुल के पुरुष अपनी पत्नी पर अमानुषिक अत्याचार करते हुए, उसकी इज्जत को बाजार में उछालने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

वह पहली बीबी की तरह पद्मा को पेड़ से बाँधकर बेंत से मारने लगा। अड़ोस-पड़ोस वाले मदद करने नहीं आये। सी.पी.नक्सल्स को बताने पर भी कुछ फायदा नहीं हुआ। वे भी धनी किसान को ही दल के नायक के रूप में चुनते थे। पद्मा के पति भी दल के नायक थे। बाद में दल के लोग समझकर, पंचायत के सामने पद्मा को निर्दोष साबित कर घर भेज दिये थे।

दल के 'अन्ना' लोग कभी-कभी घर पर आकर समाज में न्याय की स्थापना के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को मिलकर लड़ने की बात को समझाते थे तो पद्मा के मन में ये विचार उठने लगे। "दल के 'अन्ना' लोगों की बातें मन में हलचल और बेचैनी मचाने लगी। हाँ! अन्ना लोगों की बातें सही हैं। "चंद दिन भी जिये तो जनता के लिए जीना अच्छा है न! कभी न कभी तो मरना ही है! न्याय के लिए मरना अच्छा है। मेरी तकलीफें, व्यथा, अत्याचार आदि किसी दूसरी लड़की के साथ न होने की भावना मेरे कण-कण में फैल गयी।"[126]

लेखिका का कहना है कि खुद दु:खों को झेलने पर भकुत्ते की दुम ी दूसरों के दु:खों को दूर करने की जो भावना है - यही इनसानियत है, सच्ची समाज सेवा है।

माँ और भाई के विरोध के बावजूद पद्मा ने दल में प्रवेश कर लिया। दाखिला होने के बाद पहले-पहल दल के बाहर के काम करना पड़ा। दल ने पद्मा को पंद्रह दिनों के लिए पान के पत्तों का दर बढ़ाने के प्रचार का काम सौंपा। वह गाँव वालों को

ठेकेदारों की चाल समझाने लगी। "कहीं-कहीं ठेकेदार दर का निर्णय करने के लिए हमें आमंत्रित करते थे। कहीं-कहीं हम ही पत्तों का दर निर्णय करते थे। एक जमाना था कि ये ठेकेदार हमें शासित करते थे। उनकी मनमानी और अपराधों को चुपचाप सहते हम अपने रास्ते पर चल देते थे। कितनी विचित्र बात है न ! आज हम लोग इन ठेकेदारों का सर झुकाकर दर का निर्णय कर रहे हैं। इनके धोखे पर सवाल कर रहे हैं? यह सच है या सपना? क्या सचमुच राड़िकल दल की इतनी ताकत है? हमें राडिकल की तरह जीना है। चंद दिन ही सही हमें जनता के लिए जीना है।"[127] पंद्रह दिनों के प्रचार का समय इतनी जल्दी खत्म हुआ कि पता ही नहीं चला।

कुछ महीनों बाद मुझे पहनने के लिए दल वालों ने हरे रंग की पोशाक के साथ-साथ राइफल भी हाथ में थमा दी। तब से मेरे मन में उद्विग्नता बढ़ने लगी। तब की और आज की जिंदगी में काफी फर्क दिखने लगा। "जाने अनजाने में उस मूर्ख व्यक्ति के साथ मेरी शादी हो जाना, उनके अत्याचारों को सहना, पहनने के लिए ठीक से चोली के न होते हुए, अधनंगी, घूँघट डालकर मायके पहुँचना, इन परिस्थितियों में पार्टी वालों से मिली आत्मीयता, ये सब यादें आँखों के सामने दिखाई दे रही हैं।"[128] समय का तकाजा समझते हुए बैठक में शामिल हाने के लिए मैं तो आगे बढ़ गयी।

दल में स्त्रियों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर उनकी शारीरिक समर्थता के आधार पर हल्का काम दिया जाता था। दल के सदस्यों की आत्मीयता देखकर ऐसा लगने लगा- "मुझे बाहरी समाज में हर मामले में हीन समझा जाता था। अपमान सहना पड़ता था, लेकिन दल में आने के बाद जिसकी मैंने उम्मीद नहीं की उससे ज्यादा गौरव और स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस स्वेच्छा पूर्ण जिंदगी ने माँ, भाई, दीदी सबकी यादों को भुला दिया। उनके बारे में सोचने के लिए मुझे समय ही नहीं मिलता था। मेरी भाषा भी बहुत जल्दी बदल गयी। मैं तो अपने आपको पहचान नहीं पा रही थी। दल के नियमों के अनुसार विवाह हो जाने पर भी सिद्धांतों के अनुरूप ही उन पर प्रतिबद्ध होना, सबके लिए आदर्श बनना, पति-पत्नी-सा न रहकर केवल सदस्यों के रूप में ही व्यवहार करना, एक-दूसरे को समान मानना, आदर एवं पवित्र प्रेम के साथ

जीवन व्यतीत करना है। यहाँ और बाहरी समाज में पति-पत्नी के रिश्ते में जमीन-आसमान का सा अंतर रहा।"[129]

लेखिका वनजा उपर्युक्त कथन में दल के सदस्यों के वैवाहिक जीवन में, पति-पत्नी की समानता और आदर्श का उल्लेख करती है। सामाजिक परिवार में पुरुष की प्रधानता रहती है लेकिन दल के परिवारों में पति-पत्नी की समानता एक विशेष बात है। लेखिका वनजा संगठन (सामूहिक आंदोलन) द्वारा कामयाबी हासिल करने की बात पर जोर देती है।

दल की स्त्रियाँ 'अक्का' (दीदी) के नाम से जानी जाती हैं। वे सब मिलकर माडिया गिरिजनोस्त्रियों के पास जाकर महिला संघ की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करती हैं। जब स्त्रियाँ कहती हैं कि हमें भोजन बनाने के अलावा कुछ भी नहीं आता। तब दल की स्त्रियाँ समझाती हैं कि "पकाकर खाना इतना आसान नहीं है? खाये बिना हम कुछ नहीं कर सकती। आज के दिन इन संस्थाओं की स्थापना से सरकार के खिलाफ लड़ने का मतलब तो रोटी-कपड़ा हासिल करना ही तो है।"[130] दल की शामक्का गाँव की स्त्रियों को महिला संघ की विशेषताओं को समझाती है –"आप समझती हैं कि आप कुछ नहीं कर सकतीं। लेकिन यह गलत बात है। आप सब कुछ कर सकती हैं। एक समय था हम भी आप की तरह सोचती थीं। लेकिन आज कितना ही कष्ट क्यों न हो, हम सब सहकर दल में काम कर रही हैं। इस जंगल में घूम सकती हैं। सबकी बाधाएँ दूर करने के लिए अपने माता-पिता, भाई बहन सबको छोड़कर, आप लोगों को ही सब कुछ समझकर दल में प्रवेश किया। आप लोग भी हमारा साथ दें तभी हम जीत हासिल कर सकती हैं। तुम्हारा एक मात्र गाँव ही पिछड़ा है। 'काल्वे पल्ले' गाँव को देखो, उस गाँव की महिला ही संघ की प्रमुख पंचायत शाखाओं की देख-रेख करती है। आसपास के गाँवों की बड़ी-बड़ी समस्याओं को ये ही सुलझाती हैं।"[131]

माडिया गिरिजन स्त्रियों के साथ हमारे दल के महिला कामरेड उनकी कुप्रथाओं को समझाने लगी। अधनंगे रहने की मजबूरी, पल-पल अपमान सहना, बड़ों

को न समझाने की असमर्थता, अनचाहे ब्याह कर जीवन भर घुट-घुटकर मरना, पति के जीवित रहते भी स्त्री को विधवा की तरह रहना। दोनों में वैचारिक अंतर, प्रथाओं के नाम पर स्त्री पर हो रहे अत्याचार आदि के बारे में उन्हें समझाती थी।

तब उन्हें अपने दल की जिंदगी के बारे में भी समझाती है। "दल में स्त्री-पुरुष दोनों समान मानते हैं। दल में पुरुषों के पोशाक की तरह स्त्रियाँ भी पहनती हैं। हमारे दल में भी विवाह होता है पर हमारे बदन पर पूरी तरह से कपड़े होते हैं। हर मामले में समान व्यवहार करते हैं। जब तक स्त्रियाँ दबी रहती हैं तब तक पुरुष अपनी मनमानी करते रहेंगे। किसी एक को तो इसके विरोध में कदम उठाना है तब तक समस्या हल नहीं होती। सभी स्त्रियाँ को मिल-जुलकर महिला-संघ की स्थापना करनी है। संघ के नेतृत्व में कुप्रथाओं के, पूजारियों के खिलाफ लड़ने तक आपकी समस्याएँ सुलझेंगी नहीं। इसलिए साहस जुटाकर लड़ने की जिम्मेदारी आपकी है।"[132]

माडिया गिरिजन लोगों में मूर्खता एवं मूढ़ता इतनी प्रबल है कि "प्रसव के समय में भी कुछ दवा-दारू नहीं देते। पूजारी पर निर्भर होते हैं। पूजारी पीढ़ा पर अनाज के दो-दो दाने अलग-अलग करते हुए मंत्र-जाप करते रहते हैं। इनका विश्वास है कि दवा-दारू लिए तो भगवान कुपित होता है। भ्रूण गिरने तक नाभी से नस को काटकर बच्चे को न माँ से अलग करते हैं न ही माँ को पानी तक पिलाते हैं।"[133]

दल के जीवन में सदस्यों को अन्य कामों के साथ प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी भी आवश्यक है। इसमें 'इन्जेक्शन' देना भी सीखना जरूरी है। यही जानकारी एक माडिया औरत को बचाने में काम आती है।

"एक बार माडिया औरत का प्रसव तो हुआ लेकिन अंदर का माँस नहीं गिरा। इसीलिए नाभी से जुड़े नस काटकर बच्चे को न अलग किया और न साफ किया। भ्रूण के न गिरने के कारण उस औरत को बैठे ही रहना पड़ा और उसे पानी तक नहीं पिलाया। रिवाजों के कारण माँ और बच्चा दोनों यातनाएँ सह रहे हैं। ऐसे समय में उस औरत को इंजेक्शन देने के कारण आधे घंटे के पहले ही अंदर का माँस बाहर आ गया।"[134]

मैं तो इस कामयाबी से फूली न समा सकी। मेरी जिंदगी में पहली बार एक नयी अनुभूति और उद्वेग होने लगा। यह जिंदगी की सबसे अधिक सुखद घटना रही। इसी कारण वे (माडिया लोग) हम पर विश्वास करने लगे।

यह घटना गाँव वालों में चेतना लायी। गाँव वाले निस्संदेह हमसे मिलने-जुलने लगे तब से हम उन्हें सामूहिक आंदोलन के बारे में समझाने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि - "पुलिस विभागों के कामों से लेकर ठेकेदारों के कामों तक, कागज मिल के पास भी – मंजूरी को बढ़ाने में कामयाब हुए। गाँव के दूकानदारों के उच्छृंखल शोषण के खिलाफ बड़े पैमाने पर विद्रोह हुआ। घरेलू उपयोगी चीज़ों पर केवल 10-15% के मुनाफा देने का निर्णय लिया गया। पंचायत की कई समस्याओं को दल के द्वारा सुलझाया गया।"[135]

संघ के विकास, पार्टी की ताकत जंगलों में दलों की संख्या एवं जरूरतें बढ़ने के कारण, पार्टी की ओर से सुधीर और मुझे गाँव से शहर जाने का आदेश मिला। पाँच साल से शरीर से अभिन्न बंदूक को न पाकर अजीब-सा लगने लगा।

बच्चों के जन्म को लेकर दल में कोई पाबंदी नहीं है। लेकिन बच्चों की वजह से होने वाली उलझनें या कष्ट-नष्ट के बारे में पार्टी अवगाहन कराती है। मेरी इच्छा को सुनकर सुधीर ने मुझे समझाया–"अगर तुम चाहती हो तो कल से बच्चे को कहीं और किसी के पास भी रखने के लिए तैयार रहना है। लेकिन बच्चे की वजह से पार्टी को कोई समस्या नहीं होनी चाहिए।"[136]

कारागार में बच्चे के लिए कोई सुविधा न होने के कारण जेठ-जेठानी के हाथों सौंपना पड़ा। बच्चे को दूर होते पाकर बहुत दु:ख सहना पड़ा।

रिहा होने के बाद कुछ महीने ससुराल में रही। बेटा भी मुझे नहीं पहचान रहा है। घरवालों के और मेरे विचारों में अंतर होने के कारण, इतना स्वतंत्र आंदोलन चलाकर फिर से घर में बंदी न बनने के उद्देश्य को लेकर पुन: आंदोलन में जुड़ गयी।

श्री एन.टी.रामाराव के नेतृत्व में तेलुगु देशम पार्टी सत्ता में आयी। सदियों से बंदी बने 43 कैदियों की रिहाई एवं 11 राजकीय माँगों के लिए बहिरंग पत्र लिखकर अनशन करने हम सब सन्नद्ध हुए थे।

इस आंदोलन के दौरान मुझे कई नये विषयों की जानकारी मिली। इसमें कई महिलाओं का भाग लेना विशेष बात है। दिसम्बर 26वीं से जनवरी 5 वीं तक हुए इस आंदोलन में 20 महिलाओं ने मुख्य मंत्री के घर जाकर ज्ञापन प्रस्तुत किया। आखिर सरकार को हमारी माँगें स्वीकार करनी पड़ी।

"मेरी जिंदगी भी दल के आंदोलन की तरह ज्वार-भाटा-सा आगे बढ़ रही थी।

वह तो राष्ट्र से प्रश्न नहीं करती, जड़ सहित उखाड़ रही है।

पुरुषाधिकता से प्रश्न नहीं करी, समूल नाश कर रही है

अक्षरों से काव्य माला बना रही है

केवल गाना गाना ही नहीं, मुखड़ा अंतरा भी बना रही है,

वह आकाश में आधे के प्रतिनिधि

जंगल की माँ और आंदोलन के प्रतिनिधि।।"[137]

3.7 समलैंगिकता और प्रकृति विरुद्ध व्यवहार का विरोध,स्त्री-पुरुष के सहयोग पर बल: 'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' [ఆకాశంలో విభజన రేఖల్లేవు]

मुदिगोंड सुजाता रेड्डी का उपन्यास 'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' 1995 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास में तीन प्रकार की विचारधाराओं को व्यक्त किया गया है।

नवता के चरित्र के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि- नारी का विकास न हो पाने का कारण – पुरुषाधिकता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था है।

रागिणी पात्र द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि -स्त्री और पुरुष की परस्पर समझ एवं सहयोग से ही पारिवारिक खुशहाली की संभावना होती है। स्त्रियों में धैर्य, साहस, स्वावलम्बन और आत्म गौरव को बढ़ाने की आवश्यकता है।

मीज इंद्रा पात्र के बल पर इस ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि पुरुष के बिना भी स्त्री अपनी जिंदगी जी सकती है ।

चार्लेट बेच (1981), टी ग्रेस अरकिन्सन, आड्रियन रिच, द प्यूरीस (समूह) के अनुसार –"पुरुषाधिक सत्ता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उत्पन्न पारिवारिक अधिकार को दबाना है तो 'लेस्बियनिज़्म' (स्त्री समलैंगिक संपर्क) ही एक मात्र विकल्प है। इस विचार का मजबूती से समर्थन रैडिकल फेमिनिज़्म में होता है।"[138]

ग्रेस टकिन्सन के अनुसार –"स्त्रीवाद सिद्धांत है तो लेस्बियनिज़्म उसके आचरण का मार्ग है। उसने 'क्वेस्ट' नामक पत्रिका की स्थापना की थी और उसके द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया था।"[139]

क्वेस्ट के सिद्धांत के अनुसार –"स्त्री पुरुषों का संपर्क ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। फलस्वरूप स्त्रियों में दबकर रहने की प्रवृत्ति बढ़ती है। स्त्री के दबने के पीछे और पतिव्रत्य और कन्या की धारणाओं के पीछे हमारी व्यवस्था की भावनाएँ ही सक्रिय होती हैं। पुरुष की सत्ता को समाप्त करना है तो नारी को नारी के प्रति ही आकर्षित होना चाहिए।

इस वाद के अनुसार यही सही रास्ता है। ऐतिहासिक तौर पर हमारा अपना सुदीर्घ इतिहास है। समाज में इस इतिहास को गौरव मिलना चाहिए।"[140]

हमारी अपनी जीवन संस्कृति, कलाभिव्यंजना और साहित्य की अपनी अलग विशेषताएँ हैं – इसकी पहचान होनी चाहिए।

व्यक्ति के आंतरंगिक मामलों पर समाज का नियंत्रण नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह उसका अपना निजी मामला होता है। इससे 'लेस्बियन फेमिनिज़्म' नामक एक धारा स्त्रीवाद में उत्पन्न हुई। इस सिद्धांत ने सामाजिक बदलाव और लैंगिक स्वेच्छा के लिए ही इसी रास्ते को सही माना है।

विशेषरूप से स्त्रियों ने अपनी अलग संस्थाएँ खोलकर, सभी स्त्रियों को एकमत होने की आवश्यकता को समझाया। ऐसी विचारधारा के कारण स्त्रियाँ अपने को पुरुषों से अलग करके दिखा रही हैं और साथ-साथ पुरुष जाति की अनावश्यकता को भी सूचित कर रही हैं। पाश्चात्य देशों में लैंगिक राजनीति विपरीत दिशा में बह रही है।

इस उपन्यास में 'योषिता' संस्था की स्त्रियों ने - स्त्रियों के लिए चलाने वाली संस्थाओं में नौकरी करने वाली स्त्रियों के द्वंद्व प्रमाणों को भी दर्शाया था। स्त्री-पुरुष के बीच आपसी प्यार और दोस्ती का होना और स्वाभाविक लैंगिक संबंधों का होना, सहज जीवन के लिए आवश्यक माना है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक रुग्मताओं का मूलकारण- समलैंगिक संपर्क है। समलैंगिकवाद से समाज में विध्वंस और अराजकता की सृष्टि होती है। हमारी सोच ऐसी है कि एक ओर पर्यावरण के प्रति संवेदना दिखाते हैं और दूसरी ओर अस्वाभाविक प्रकृति विरुद्ध विचारधाराओं के बारे में सोचते हैं।

स्त्री की प्रगति और स्वेच्छा और समानता के लिए पुरुष के सहयोग की आवश्यकता है। मतलब यह है कि पुरुष में स्त्री के प्रति गौरव होना चाहिए। स्त्री की स्वतंत्रता हो लेकिन वह कभी भी पुरुष में न्यूनता की भावना बढ़ाने का कारक नहीं बने। पुरुष में और प्रजातांत्रिक मूल्यों में बदलाव आना चाहिए। सेग्रिगेशन (Segregation) के नाम पर स्त्रियों की अलग संस्थाएँ स्थापित होने पर भी या सभाएँ और आंदोलन करने पर भी सकारात्मक नतीजा नहीं निकलता है। लेस्बियन संबंधों को प्रतीकात्मक रूप में लेकर इस उपन्यास में स्त्री, पुरुष के बीच सहज स्वाभाविक, प्रजातांत्रिक संबंधों पर बल दिया गया है।

वकील रामाराव और पत्नी नीरजा दोनों प्रगतिशील विचारवाले हैं। कॉलेज में वे दोनों साथ पढ़ते थे। वे प्रेम विवाह कर लेते हैं। दोनों के बीच आपसी प्रेम एवं सहयोग था। घर का काम नीरजा और बाहर का काम रामाराव सुचारू ढंग से किया करते थे। उनकी बेटी नीरजा और बेटा रवि दोनों माता-पिता की देख-रेख में सुसंस्कारों के साथ पल रहे थे।

कॉलेज में पढ़ते समय हर मामले में बड़े उत्साह के साथ भाग लेने वाली नीरजा, शादी के बाद घर के कामों तक सीमित रह जाती । इसे देखकर रामाराव नीरजा से कम से कम रवि के स्कूल फीस भरने के बहाने बाहर निकलने की बात कहते हैं। अगर ऐसा न करे तो नीरजा के व्यक्तित्व का कुंठित होने की बात भी कहते हैं। नीरज इस के उत्तर में कहती है कि –"अगर कोई मेरा घर में रहने की बात को लेकर यह कहे कि –"मेरा व्यक्तित्व नहीं, आत्म-विश्वास नहीं, आत्म-स्थैर्ध्य नहीं, स्वतंत्रता नहीं, बच्चे पालने वाली मशीन, बिना आत्मा के शरीर, फिजूल काम करने वाली मशीन, नौकरानी, कोई कुछ भी कह दे, मैं तो बिल्कुल बुरा नहीं मानूँगी। शादी से केवल स्त्री की स्वेच्छा या स्वतंत्रता पर ही बेड़ियाँ पड़ जाती हैं? आपकी यह नौकरी करना, ज्यादा कमाने की सोचना, आपका ये सब किसके लिए? बीबी, बच्चों के लिए ही है न ! तो मेरा यह काम बोझ या फालतू क्यों हो जाता है?"[141]

उपर्युक्त संवाद में रामाराव और नीरजा के बीच आपसी समझ एवं प्यारदिख रहा है, वह तो स्वस्थ परिवार का संकेत है, जो समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है।

रामाराव को आफिस के सिलसिले में जमीन के दाँव-पेंच के संदर्भ में गाँव जाना पड़ा। लौटते समय सामने की ओर से लॉरी तेजी से आकर कार से टकराती है। रामाराव का आकस्मिक मरण नीरजा को हताश कर देता है। परिवार को आर्थिक तंगी का सामना करना पडता है।

रामाराव की बहन विजया, बुआ होने के नाते रागिणी की शादी के संदर्भ में अपनी जिम्मेदारी निभाना चाहती है। बुआ की बात को सुनते ही रागिणी बेझिझक

अपना निर्णय सुनाती है कि –"बुआ ! माँ अकेली हो जाती है। मैं नौकरी करना चाहती हूँ। भैय्या छोटा है, उसकी पढ़ाई के बाद ही मैं अपनी शादी के बारे में सोचूँगी।"[142]

इन परिस्थितियों में लड़कियाँ आत्म-विश्वास के साथ कदम उठाये तो परिवार की आर्थिक, मानसिक स्थिति **को** सुधरने के साथ-साथ दहेज-प्रथा का जोर भी कमजोर पड़ जाएगा।

रागिणी द्वारा अपना दृढ़ निर्णय सुनाने के बावजूद भी विजया बुआ अमेरीकी रिश्ता लाती है। दुल्हा दिनकर और उसकी माँ मिसेस राव विजया को बताते हैं कि – "हमें लड़की पसंद है। इसीलिए पहले ही लेन-देन की बातें पूरी हो जाएँ तो बाद में कोई उलझनें नहीं होंगी। दिनकर होटल बिजनेस करना चाहता है। आप तीन लाख रकम दिये बैंक से भी तीन लाख मिलता है। इससे होटल शुरू कर सकता है। उस होटल की तरक्की हुई तो कल कौन सुख एवं सुविधापूर्वक रह पायेंगे? वे ही हैं न!"[143]

लेखिका सुजाता रेड्डी का कहना है कि भारत में हो या अमेरीका में हो, दहेज लेने की मानसिकता तो हर जगह अपनी जड़ें जमा ली।

मिसेस राव की रवैय्या से रागिणी गुस्से में आकर दिनकर को सुझाव देती है कि –"तो पैसों के लिए यह शादी है? पैसों के लिए शादी होना मुझे कतई पसंद नहीं है। **पहले** आप उस होटल को शुरू **करके चलाइ**ए।उसके बाद **ही** शादी के बारे में सोचिए।"[144]

दिनकर भी चुप न रहकर रागिणी को सुनाता है कि –"तुम कौन होती हो मुझे सुझाव देने वाली? तुम्हारे नाम पर लाखों की रकम होने की बात तुम्हारी बुआ ने ही बताई थी। तभी तो हम लोगों ने इस रिश्ते के लिए हाँ किया था। पिता के न होते इस गरीब रिश्ते को माँ पहले से ही न कह रही थी।"[145]

तो रागिणी भी मुँह-तोड़ जवाब देती है कि –"शादी को पैसों से तोलकर सौदा करने वाला लड़का मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।"[146]

शादी और दहेज के प्रति वर और वर के माता की विचारधारा को व्यक्त करती हुई लेखिका सुजाता रेड्डी कहती है कि लड़कियों को रागिणी की तरह दहेज-प्रथा का सामना करने के साहस को जुटाने की आवश्यकता है।

रागिणी और नवता दोनों अच्छे दोस्त हैं। दोनों स्वतंत्र विचार वाले होते हुए भी उनकी सोच-विचार में काफी भिन्नता दिखाई देती है। रागिणी में सोच-समझ, सूझ-बूझ एवं व्यावहारिकता अधिक है और अनुसरणीय एवं आचरण योग्य विधान को ही प्राथमिकता देती है। आचरण में लागू न कर पाने वाला उग्रवादी सिद्धांत उसे पसंद नहीं। जरूरत पड़ने पर किसी भी काम को निडरता के साथ करने का आत्मविश्वास है।"[147]

नवता का स्वभाव आवेशभरित है। सभी समावेशों में अपने विचार निस्संकोच व्यक्त करने की क्षमता उसमें है। नवता 'योषिता' संस्था से जुड़ी है। योषिता संस्था के कार्यक्रम इस तरह के हैं कि –"स्त्रियों की समस्याओं के प्रति प्रतिक्रिया दिखाना, मुसीबतों में पड़ी स्त्रियों की मदद् करना, उन्हें जागरूक करना, स्त्री के प्रति हुए अन्याय को जनता, सरकार और कानून की दृष्टि में लाना, स्त्रियों को सुरक्षा प्रदान करना, पुरुषों के अत्याचार और शोषण से स्त्रियों को बचाना आदि।"[148]

रागिणी और नवता दोनों मिलकर दहेज संबंधित समस्याओं की चर्चा करती हैं।

" 'याोषिता' संस्था द्वारा दहेज प्रथा के निर्मूलन की संभावनाएँ भी हैं। आधुनिकता बढ़ी, साथ-साथ दहेज संबंधित हत्याएँ, आत्महत्याएँ भी बढ़ रहीं हैं।"[149]

"दहेज समस्या का समाधान होना है तो पहले समाज में सामाजिक, आर्थिक और मानसिक तौर पर बदलाव आना चाहिए। हर युवा को स्वावलम्बी बनने के बाद ही शादी करनी चाहिए।"[150]

हमारे देश में पहली समस्या है –"अधिक जनसंख्या और कम आमदनी। इस देश में नौकरी की सुविधाएँ भी कम हैं।"[151] दूसरी समस्या है - आज के युवाओं को घर, टी.वी. फ्रिज, स्कूटर और अच्छे कपड़े...... आदि चीज़ों को बहुत जल्द जुटाना

चाहते हैं। उनमें इंतजार करने की सहनशीलता नहीं है। पड़ोस में ये सब हैं – हमारे पास नहीं है – इसलिए बेचैनी हो रही है।"[152]

"लड़कियाँ के दहेज न लेने वाला वर आने तक शादी न करने की प्रतिज्ञा करने पर भी समस्या खत्म नहीं होती। कामकाजी लड़की हो तो धैर्य के साथ वर के लिए इंतजार कर सकती है। लेकिन जिस लड़की को नौकरी नहीं है, वह लड़की कैसे इंतजार कर सकती है?"[153]

जिसकी आमदनी अधिक है, वे अपनी बेटियों की शादी बड़े धूम-धाम से कर सकते हैं। जिसकी आमदनी कम है वे इस होड़ में पीछे रह जाते हैं। यह तो एक व्यापार-सा हो गया। आजकल लोग लाखों, करोड़ों रुपए खर्च कर हजारों लोगों को बुलाकर अपनी ठाठ-बाट की प्रदर्शनी कर रहे हैं। यह तो आम जनता की बैठक की तरह हो गयी।"[154]

उपर्युक्त रागिणी और नवता के संवादों के द्वारा लेखिका सुजाता कहती हैं कि शादी को परिवार के सदस्यों तक सीमित करे। आडम्बर न होकर, आवश्यकतानुसार खर्च करे तो धन के साथ-साथ दहेज संबंधित समस्याएँ भी कम होंगी।

"लड़कियों को दहेज दिया इसीलिए लड़के की शादी में दहेज लेना है या लड़के की दहेज से लड़की की शादी करनी है - ऐसा दहेज रूपी व्यापार का जाल विष की बेली की तरह फैल रहा है न कि कमज़ोर पड़ रहा है।"[155]

"दहेज-प्रथा की समस्या के बारे में पहले-पहल माता-पिता की मानसिकता में परिवर्तन आना है। जायदाद में लड़की को भी समान रूप से वारिस बनाना है।"[156]

दहेज समस्या का हल करने के उद्देश्य को लेकर आजकल आधुनिकता के नाम पर युवा लोग बिना शादी किए स्वेच्छापूर्वक सहज जीवन बिताना चाहते हैं लेकिन रागिणी बताती है कि –"कारणवश वे जुदा होना चाहते हैं तो ऐसे गैर-कानूनी बंधन से औरत की ही जिंदगी बरबाद होती है और साथ-साथ कुछ सामाजिक समस्याएँ ही पनपने लगेंगी।"[157]

दहेज संबंधित हत्याओं के खिलाफ खुले आम नारे लगाये तो दुनिया के सामने हमारे ही देश की बेइज्जती होगी। इससे अपनी असभ्य स्थिति का पता चलता है लेकिन समस्या का समाधान नहीं होता है। इसीलिए सामाजिक, आर्थिक और मानसिक तौर पर इस दहेज समस्या को सुलझाना है।"[158]

नवता का विचार है कि –"ज्यादातर मर्द लोग औरतों का सताने वाले ही हैं।"[159]

रागिणी नवता के विचार का खण्डन करते हुए समझाती है कि –"पुरुष और स्त्रियाँ मानकर बीच में रेखाएँ खींचना सही नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनों ही सहज स्वाभाविक गुणों से युक्त होते हैं। अच्छे-बुरे गुण उनमें हो सकते हैं। वास्तव में संसार में ही हिंसा, शोषण, अत्याचार आदि हैं जिनको मिटाना चाहिए। कुछ मर्द स्त्रियों पर जरूर अत्याचार कर रहे हैं। यह सच है। न नहीं कहूँगी। लेकिन स्त्रियों को अपने पर अत्याचार नहीं होने देना है। इसका मतलब है स्त्रियों में चेतना आनी चाहिए। वही चेतनता अपने अंतर्मन से प्रस्फुटित होना चाहिए।"[160]

लेखिका सुजाता का कहना है कि यदि किसी घर में मालिक न रहे और शादी लायक लड़की हो तो सबकी नज़रें उस पर ही होती हैं। घर के मामलों में समाज के तरह-तरह के लोग दखलअंदाजी करते हैं। इसके पीछे उसका स्वार्थ-स्वभाव ही होता है। लड़की को देखते ही हर एक के सर पर शादी का भूत सवार हो जाता है। समझते हैं कि शादी कर दिये तो समस्या सुलझ जाएगी। - ऐसे खोटे विचार आज भी समाज में दिखाई देते हैं।

रागिणी बताती है कि –"यहाँ तक कि मेरी नौकरानी ने भी मुझे शादी करने की सलाह दी थी।"[161] रागिणी पी.ए. कोर्स करके नौकरी की तलाश में लग जाती है। पड़ोसी सुमती अपनी मौसी के बेटे का रिश्ता रागिणी के लिए लाती है। उस लड़के ने डिग्री तक भी पढ़ा नहीं। उसकी अपनी दारू की दूकान है। सुमती का कहना है कि दो लाख के दहेज में शादी पक्की हो जाएगी। रागिणी इस शादी के प्रस्ताव को इनकार करती है तो सुमती कहती है कि –"रागिणी! सब सोचकर ही मैं यहाँ आयी हूँ। आप

अपने घर को मेरे भैय्या के हाथों सौंप दो। आपकी पूरी जिम्मेदारियों का वहन करेगा। आपके घर में कोई न कोई मर्द होगा। यही सोचकर मैंने इस रिश्ते की बात चलायी। मर्द की मदद के बिना आप कितने दिन ऐसा गुजारा करेंगे।"[162]

सुमती की बातों से रागिणी को मालूम होता है कि अपनी सारी जायदाद लड़के के हाथ सौंप दो तब वह हमारी देखभाल करेगा और हमारे घर में भी मर्द होगा।

लेखिका सुजाता कहती है कि लड़की को देखते ही शादी की याद आ जाती है। लड़की के पैदा होते ही शादी की समस्या शुरू हो जाती है। यदि किसी कारण से लड़की की शादी नहीं हुई तो शादी नहीं करने वाली लड़की पर समाज वाले कोई न कोई लांछने लगाते हैं। ऐसे समाज का डटकर सामना करने का साहस लड़कियों में होना चाहिए।

लेखिका सुजाता रेड्डी कहती हैं कि अक्सर लोग समझते हैं कि शादी का अर्थ दो लोगों को जोड़ना है, लेकिन दो जिंदगियों को मिलाने के लिए उन दोनों का और खासकर उस लड़की का स्वास्थ्य, लैंगिक संबंध स्थापित करने की स्वीकृति, सांप्रदायिक बंधन आदि की जानकारी की भी आवश्यकता है।

नवता थोषिता संस्था के कार्यक्रम के जरिए लेडी डॉक्टर्स से कुछ जानकारी प्राप्त कर लेती है कि बारह-चौदह साल की कई लड़कियाँ या तो खुद लैंगिक संबंध के प्रति आकर्षित होती हैं या बलात्कार के शिकार के कारण गर्भधारण कर लेती हैं। उन्हें यह मालूम नहीं होता है कि कान्ट्रासेप्टिव्स का इस्तेमाल करे तो ऐसा खतरा नहीं होगा। हम उन्हें इस दिशा में शिक्षित करना चाहते हैं। तब कई लड़कियाँ गर्भपात के खतरे से बच सकती हैं।"[163]

रागिणी भी भारत देश की लड़कियों की अज्ञानता के बारे में अपने विचार व्यक्त करती है कि कई बच्चों को जन्म देने वाली माताओं को भी लैंगिक संबंध के बारे में या बच्चों को जन्म देने की प्रक्रिया के बारे में मालूम नहीं है। मुझे आश्चर्य होगा

कि समाज के नब्बे प्रतिशत लोग ऐसे ही हैं। इन परिस्थितियों में स्त्रियों को शिक्षित करने वालों की जरूरत है। हर मामले में स्त्रियों को कोसने से समस्या नहीं सुलझेगी। यह तो पुरुषाधिकता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बुना हुआ जाल है।

उपर्युक्त कथनों के बल पर लेखिका सुजाता बताना चाहती है कि लड़के-लड़कियों के लैंगिक संबंध के बारेमें सही समझ न होने पर, उससे होने वाले अनर्थ को नहीं जानते हैं। स्वाभाविक और लैंगिक आकर्षण के कारण कुछ गलतियाँ कर बैठते हैं। इससे होने वाले नुकसान को लड़कियों को ही भुगतना पड़ता है। लड़के को लड़कियों के गर्भधारण या गर्भपात के बारे में न जानकारी होती, न ही लड़के को इस भयानक स्थिति से गुजरना पड़ता है। इसीलिए वह जल्दी भूल सकता है। लेकिन जिस गर्भपात की दौर से लड़की को गुजरना पड़ता है, उसका बुरा असर स्वास्थ्य पर पड़ता है जिस कारण से वह लड़की मानसिक तनाव से भी ग्रसित होती है। जिंदगी भर यह घटना बुरा सपना बनकर पीछा करती है। इसलिए लड़कियों को ज्यादा सावधान होने की जरूरत होती है। स्त्री-पुरुष की समानता चाहने पर भी कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ दोनों को असमान बनाती हैं। 'योषिता' संस्था द्वारा नवता औरतों की कई समस्याओं को दूर करने की कोशिश करती है। इतनी मदद करने पर भी कभी-कभी ये औरतें संस्था का साथ नहीं देती हैं और बिना बताये संस्था से भागकर चली जाती हैं। इस संदर्भ में नवता का कहना है कि –"पति को परमेश्वर मानने वाली इन औरतों की स्थिति ऐसी ही रहेगी। कभी नहीं बदलेगी। अरे रे रे - ये स्त्रियाँ मानती हैं कि पति को पत्नी के शरीर पर, आत्मा पर पूरा अधिकार है। मंगलसूत्र के बाँधते ही पति उनका सर्वस्व हो जाता है। मारे, पीटे या गालियाँ दें फिर सर झुकाकर रहती हैं और कहती हैं कि कुछ हुआ तो मरने के लिए भी तैयार हो जाती हैं। उनके लिए मरना ही एक मात्र आसान रास्ता है। इसके अलावा स्वतंत्रतापूर्वक कुछ सोचकर करने का साहस उनमें नहीं होता है।"[164]

नवता के अनुसार आंदोलन द्वारा स्त्रियों में जागरूकता आएगी तो रागिणी का समाधान है कि –"आर्थिक और सांस्कृतिक रूप में समाज में आये हुए परिवर्तन के साथ स्त्रियों में भी परिवर्तन आना है। स्त्री-पुरुष दोनों की प्रकृति-प्रवृत्ति भी अलग है।

स्त्री-पुरुष की सोच को निर्धारित करने वाली ग्रंथियाँ अलग हैं। इन ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन्स (Harmones) भी अलग होने के कारण इनमें भिन्न मानसिकताएँ उत्पन्न होती हैं। स्त्री में और पुरुष में अलग-अलग कमजोरियाँ होती हैं। स्त्रियों पर अधिकार और आधिपत्य नहीं चलाना चाहिए - इस तरह से समझना गलतफहमी है या समानता के नाम पर स्त्री पुरुष की तरह व्यवहार करना भी प्रकृति विरुद्ध है। स्त्री को अपने व्यवहार कुशलता से अपनी महानता की पहचान बनाना चाहिए न कि माँगों के द्वारा। पुरुष को दबाकर उसके व्यक्तित्व को कुचलकर आधिपत्य जमाने में कोई मतलब नहीं है।"[165]

रागिणी यह भी कहती है कि –"(1) सदियों से चली आ रही प्रथाएँ, संप्रदाय, व्यवस्था, संस्कृति संबंधित भावनाएँ अपने खून में बह रही हैं। हम आसानी से इनसे छुटकारा नहीं पा सकते। (2) पति की छत्र-छाया में, बिना कोई जिम्मेदारी के कई स्त्रियाँ आराम की जिंदगी जीना चाहती हैं। उन लोगों में आत्म-विश्वास धैर्य को बढ़ाने की आवश्यकता है। हर मामले में समाज और पुरुष को दोष देना ठीक नहीं। हमें खुद को सँवारना है।"[166] नवता के अनुसार पाश्चात्य देशों में स्त्री के लिए स्वेच्छा और स्वतंत्रता अधिक है। तो रागिणी उसे समझाती है कि –"पाश्चात्य देशों में भी औरतों की अपनी मुश्किलें हैं। वहाँ स्त्री के लिए कोई सुरक्षा नहीं है। पति किसी परायी स्त्री से प्यार कर तलाक दे दिया तो पत्नी को बच्चों के साथ दुर्भर परिस्थितियों को झेलना पड़ता है। इतना ही नहीं कभी कोई स्त्री सुंदर और जवान हो तो पत्नी को बताये बिना उसके साथ चला जाता है। तब भी पत्नी को तलाक के अलावा कोई चारा नहीं रहता है। अकेली ही उस मानसिक तनाव और आर्थिक तंगी से जूझना पड़ता है।"[167]

लेखिका सुजाता ने नवता और रागिणी के विचारों से भारतीय स्त्रियों की तुलना में विदेशी स्त्रियों के लिए सुरक्षा के अभाव को व्यक्त किया है।

नवता के मन में स्त्रियों की जागरूकता को लेकर कुछ निराशा है तो रागिणी उसे बताती है कि –"इतना निराश मत होना। समाज के खिलाफ न जा पाकर पति के चिता पर जलने वाली स्त्रियाँ आज वीरेशलिंगम जी जैसे समाज सुधारकों के प्रयास से

बहुत दूर चलकर आज प्रगति को साध लिया। आगे भी साधेंगे। बदलते आर्थिक मूल्यों के बाजारीकरण के युग में स्त्रियाँ अपनी समस्याओं को पहचानकर नयी राह निकाल लेंगी। मुझे उन पर पूरा विश्वास है।"[168]

नवता में शादी को लेकर कई गलतफहमियाँ हैं। वहसमझती है कि शादी करे तो स्त्री को ही समझौता करना पड़ता है। स्त्री को अपनी स्वेच्छा और स्वतंत्रता को खोना पड़ता है। इस संदर्भ में रागिणी अपनी सूझ-बूझ के साथ नवता को समझाती है कि –"शादी करने के बाद केवल तुम्हें ही नहीं, उसे भी समझौता करना पड़ता है। तुम्हें और उसे भी एक दूसरे के लिए बदलना पड़ता है। उसे भी अपनी पहले की स्वेच्छा और स्वतंत्रता को छोड़कर तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। तुम्हारी पसंद के मुताबिक उसे चलना पड़ता है। वैवाहिक बंधन में स्त्री और पुरुष दोनों को त्यागना पड़ता है। तभी दाम्पत्य बनता है। यही वैवाहिक व्यवस्था है।"[169] समझौते का मतलब एक दूसरे की कमजोरियों को समझ पाना। इस दुनिया में कमजोरियों के बिना कोई व्यक्ति नहीं रहता। इसे समझकर सहजीवन बिताना है। विवाह में मेरा व्यक्तित्व, अस्तित्व दोनों नहीं रहते। फासले मिट जाते हैं। विवाह को 'पुरुषाधिकार के अधीन' समझना तो गलतफहमी है। अपना व्यक्तित्व और अस्तित्व के होते हुए सहजीवन बिताना ही शादी है। हर प्राणी को अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व और अस्मिता के लिए लड़ना पड़ता है। जिस प्रकार स्त्री को लड़ना पड़ता है उसी प्रकार मर्द को भी।"[170]

लेखिका सुजाता व्यक्त करती है कि विवाह का मतलब सुख-दु:ख को बाँटकर परस्पर समझौता कर सहजीवन बिताना है। समाज में पारिवारिक प्रथा को कायम रखना है तो स्त्री पुरुष को कुछ आचार-व्यवहार, विधि-निषेध का पालन करना ही है।

रागिणी के विचारों से सहमत होकर नवता अपने मामा के बेटे नरेश से शादी कर अमेरीका में सुखमय जीवन बिताने लगती है। रागिणी सोच रही है कि "तो हर मामले में नवता से नरेश में अधिकता है। इसलिए नवता आसानी से नरेश के अनुकूल

बन गयी है। अगर नरेश में किसी भी मामले में **कमी** या कमजोरी हो तो नवता शादी के लिए सहमत होती क्या?

इस संदर्भ में लेखिका सुजाता लड़कियों के अंतरंगिक मन को व्यक्त कर रही है अक्सर लड़कियाँ अपने होने वाले लड़के में - उम्र, कद, पढ़ाई, होशियारी, नौकरी, आय आदि हर मामले में अपने से बढ़कर चाहती हैं। किसी भी मामले में पुरुष की कमी हो तो लड़कियाँ संतुष्ट नहीं होतीं। अगर पति में कुछ कमी हो तो पत्नी न्यून भावना से ग्रसित हो जाती है। और उसी प्रकार पति अपनी पत्नी में अपने से अधिकता हो तो बरदाश्त नहीं कर पाता है। शायद स्त्री पुरुष के बीच के संघर्ष का यही कारण हो सकता है।

मीज इंद्रा डाटा प्रोसेसिंग सेंटर की डायरेक्टर है। विलायत में पढ़कर आती है। अपनी संस्था को काफी अनुशासन में चलाती है। रागिणी मीज इंद्रा की पी.ए. बनकर नौकरी करने लगती है। मीज इंद्राकी व्यावहारिकता से रागिणी काफी प्रभावित होती है। रागिणी नवता को मीज इंद्रा के बारे में बताती है –"इंद्रा की तरह व्यक्तित्व और आत्मविश्वास को बढ़ाये तो ही स्त्री की पहचान होती है। इस दुनिया में कोई भी चीज़ बनी-बनायी चीज़ थाली में परोसकर नहीं मिलती है। उसे पाना है। बस! स्त्री हो या पुरुष हो अपने अस्तित्व की पहचान के लिए लड़ना पड़ता है। अगर स्त्री का मामला हो तो, सदियों से घर कर गये विचारों को भूलकर उसे अधिक प्रयास करना पड़ता है। हर क्षेत्र में नारे मात्र न लगाकर प्रयास जारी रखकर आगे बढ़े तो ही स्त्री के लिए मुक्ति साध्य होती है।

एक बार इंद्रा के बुलाने पर रागिणी उसके घर जाती है। घर में अत्याधुनिक सजावट को देखकर चकित हो जाती है। ऑफिस में काफी अनुशासन से रहने वाली इंद्रा घर पर उसका व्यवहार कुछ अलग सा लगता है। इंद्रा रागिणी से काफी उत्तेजनाभरित बातें करनी लगती है कि –"हमें प्रमाणित करना चाहिए कि पुरुषाधिक समाज को जीतना है तो पुरुषों की ही जरूरत नहीं है। सब को बताना है कि अपनी जिंदगियों और मन पर ही नहीं शरीर पर भी उसका अधिकार और आधिपत्य नहीं

होना चाहिए। हमें प्रमाणित करना है कि पुरुषाधिपत्य को नष्ट करना है तो हमें उनकी जरूरत नहीं है रागी। आखिर हमारी शारीरिक जरूरतों और सुख भोग के लिए भी उनकी जरूरत नहीं है। यह दिखाना है कि भली-भाँति हम अपनी देख-भाल कर पाएँगे। तभी पुरुष का अहंकार दमित होता है। आओ ! रागी ! आ !" कहते हुए रागिणी की भुजाओं को कसकर अपनी ओर खींच लेती है।"[171] रागिणी मीज इंद्रा के इस अप्रत्याशित एवं असभ्य व्यवहार से भय कंपित होकर भागने लगती है। इतने में मीज इंद्रा का रिश्तेदार राजेन्द्र रागिणी को सँभालकर उसे घर तक पहुँचा देता है। रागिणी को राजेन्द्र के साथ जाते हुए मीज इंद्रा देखती है।

दूसरे दिन के अखबार में इंद्रा की आत्महत्या की खबर छपती है। इंद्रा के बारे में राजेन्द्र रागिणी को बताता है कि –"आज तक उसकी पसंद के खिलाफ कोई नहीं गया। 'तिरस्कार' शब्द उसे मालूम नहीं। केवल तुम्हारा उससे दूर भागना ही नहीं, तुमको मेरी बाहों में होते हुए भी देखी थी। इसका मतलब एक पुरुष के बाहों में होना देखी थी। शायद यह दृश्य उसे बरदाश्त नहीं हुआ होगा। कई दिनों से साइक्रियाटिस्ट से इलाज करवा रही भी। किसी साथी-संगी का न होकर जीवन यात्रा में एकल बनकर थक चुकी होगी और अपने आपको खत्म कर ली।"[172]

लेखिका सुजाता रेड्डी कहती है कि प्रकृति के खिलाफ जाकर अपने चारों ओर कृत्रित जाल को बिछाकर रहने वाली मीज इंद्रा का अंत काफी शोचनीय है। उसकी पूरी विद्वता, होशियारी, अनुशासन सब कुछ मिट्टी में मिल गया। पराजय को स्वीकार करने का साहस न होने के कारण मीज इंद्रा आत्महत्या के लिए सन्नद्द हो गयी। उसकी यह चेष्टा, नारी की कमजोरी को ही साबित करती है। वह अपनी सामर्थ्य को सकरात्मक व्यवहार में उपयोग की होती, तो समाज के लिए काफी लाभदायक सिद्ध होता।

इस उपन्यास में तीन विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई है।

रागिणी :- माता-पिता के अच्छे संस्कारों को ग्रहण कर जिंदगी की यथार्थता को समझते हुए, कदम बढ़ाने वाली, स्त्री-पुरुष के आपसी समझ एवं सहयोग से समरस जीवन को संभव मानने वाली रागिणी जीवन को आनंदमय बना सकी।

नवता :- नारी दबाव या शोषण का कारण पुरुष को मानना, शादी से स्त्री की स्वेच्छा और स्वतंत्रता छिन जाएगी, शादी के बाद स्त्री को ही समझौता करने की सोच से, शादी न करना चाहते हुए भी रागिणी के स्वस्थ विचारों से नरेश के साथ शादी कर जीवन को सुखमय बनाती है।

मीज इंद्रा :- प्रकृति विरुद्ध विचारधारा वाली मीज इंद्रा पुरुष के बिना जीवन जीना चाहती है, समलैंगिकता को प्रोत्साहन करने वाली, एकल जिंदगी न जी पाकर, जीवन से समझौता न कर पाकर आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है।

“प्रकृति के खिलाफ जाए तो विनाश ही तथ्य है।”

3.8 युवा पीढ़ी का मनो-जगत् – प्रेम, सेक्स और शादी के प्रति

विभिन्न दृष्टिकोण : नज़रिए [దృక్కోణాలు]

आँध्र-प्रदेश के करीमनगर शहर की एक घटना को लेकर हर आदमी की अपनी सोच पर अपने अनुभव को जोड़कर अंपशय्या नवीनका नज़रिया‘नजरिए’(दृक्कोणालु) उपन्यास में चित्रित हुआ है।

हर आदमी अपनी सोच के अनुसार विषय को समझने की कोशिश करता है। उदाहरण झगड़ा, हत्या, चोरी या बलात्कार आदि घटनाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई लोग इस घटना से जुड़ते हैं लेकिन असलियत के बारे में बहुत कम लोगों को ही मालूम होता है। लेकिन दूसरे लोग अपनी इच्छानुसार, आवश्यकतानुसार, मनोनुकूल इस विषय को गढ़ते हैं। कभी-कभी इस बीच में असली विषय गुम हो जाता है और नया विषय जगह बना लेता है।

डॉ. साम्बमूर्ति को कैद करने के लिए आनंदराव नामक व्यक्ति ने अनशन करने के लिए ठान लिया था। उसका कहना है कि पुलिस और सांम्बमूर्ति दोनों एक हो गये। पुलिस ने ही साम्बमूर्ति को कहीं छिपा दिया। इस तरह की खबरें बस्ती में फैल गयी। जिसकी वजह से लोगों में ईर्ष्या, द्वेष, लूट-पाट, मार-काट आदि भड़कने लगे।इस घटना की जाँच-पड़ताल के लिए बैठक बुलाई गयी। इसके लिए स्वच्छंद संस्था के मुख्य सदस्य और सच्चाई को निर्धारित करने, समिति के सदस्य खम्मम आ रहे हैं। उन सदस्यों के आने के पहले ही डा. साम्बमूर्ति अपने आप को पुलिस के हवाले कर दिया।

इस घटना से संबंधित 8 लोगें से बयान लेते हैं - वे हैं।

1. शोधन - खम्मम टाइम्स का पत्रकार
2. राजम्मा – खुद पर बलात्कार का आरोप करने वाली
3. दंत चिकित्सक – डॉ. साम्बमूर्ति – जिस पर बलात्कार का इलजाम लगाया गया।
4. इन्सपेक्टर अशोक राव – इस मुद्दे की जाँच-पड़ताल करने वाला
5. पोचम्मा –दंत चिकित्सा केन्द्र में राजम्मा के साथ आई हुई बूढ़ी औरत
6. दंत चिकित्सक – वेंकटेश्वर राव - उसी गली का दूसरा दंत चिकित्सक
7. भारती देवी – प्रमुख नारीवादी वकील
8. सोमलिंगम – राजनैतिक नेता

समिति के सामने 'शोधन' का बयान :

साम्बमूर्ति के दंत-चिकित्सक होने का कोई प्रमाण-पत्र उनके पास नहीं है। किसी दंतचिकित्सक के पास, नुस्खे सीखकर, गाँव की बोली में सबका मन लुभाकर रिश्ता जोड़ते हुए, वह पैसा कमा रहा था। बाकी डाक्टरों के पास लोग कम जाते थे क्योंकि उन्हें ज्यादा पैसा देना पड़ता था। जवान लड़कियाँ डॉ.साम्बमूर्ति के यहाँ ज्यादा जाती थीं।

शोधन के अनुसार–"डॉ. साम्बमूर्ति सुंदर, जवान, हँसमुख, चुलबुल और विशेषकर स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करने में चतुर है। वह स्त्रियों को अपने चुंगल में फँसाता था। अगर कोई स्त्री उसको नहीं मानती है तो उसे चाय या काफी में क्लोरोफारम मिलाकर पिलाकर बेहोश करके अपनी कामवासना का शिकार बनाता था। इस तरह से उन्हें अपना गुलाम बनाता था। यदि कोई लड़की नहीं मानती है तो उन्हें धमकी देकर अपेन वश में कर लेता था।"[173]

उसने राधा नामक एक सुंदर लड़की को सिनेमा में अभिनेत्री बनाने का प्रलोभन देकर, यौन शोषण किया था। इसी वजह से राधा ने आत्महत्या कर ली थी। डॉ. वेंकटेश्वर से मुझे यह जानकारी मिली। असल में डा.साम्बमूर्ति एक विकृत यौन मनोव्यथा से पीड़ित है। शायद राजम्मा के साथ भी उसने ऐसा कुछ करने के लिए सोचा होगा। लेकिन बाजी पलटकर सबके सामने पोल खुल गयी।

राजम्मा नेक दिल वाली है। "लेडी डाक्टर से राजम्मा की जॉच करवायी गयी जिसमें राजम्मा के अंगों पर शुक्राणु पाये गये। इस बलात्कार के पीछे "डा.साम्बमूर्ति का हाथ है। इस बारे में कोई संदेह नहीं। यह मेरा विश्वास है।"[174]

दंत चिकित्सक साम्बमूर्ति का बयान -

"राजम्मा का बलात्कार होना यह बिल्कुल झूठ है। सड़े दाँत निकालने के लिए इंजेक्शन देते समय डर के मारे बेहोश होकर कुर्सी से खिसक गयी। दो तीन मिनटों में फिर से होश में आयी। ठीक इसी समय में मैं उसके फिसले हुए पल्लू को ठीक कर रहा था। इस **देखकर** जोर से चिल्लाने लगी कि मैंने उसके साथ कुछ छेड़-छाड़ की। बाहर बैठी हुई बूढ़ी औरत पोचम्मा भी बिना कुछ समझे, देखे, पागल की तरह जोर-जोर से चिल्लाने लगी। इस चीख चिल्लाहट को सुनकर बाहर वालों ने **भी** खलबली मचा दी। मैं तो निर्दोष हूँ कहने पर भी गाँव वाले नहीं मानेंगे और मुझे जिंदा मार डालेंगे। डर के मारे अपनी सुरक्षा हेतु पिछवाड़े की दीवार लांघकर मैंने अपने दोस्त

वेणुगोपाल के घर में सिर छुपा लिया था। स्थिति के संभलते ही मैंने खुद को पुलिस के हवाले कर लिया।"[175]

शोधन जैसे पत्रकार अफवाएँ फैलाकर लोगों का दिल जीतते हैं। उसी तरह मेरे पास-पड़ोस डाक्टर्स भी मेरी प्रेक्टीस को नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

मैं एक गरीब किसान परिवार का हूँ। अपने बलबूते पर आज मैं खड़ा हूँ। बड़ा आदमी बनने का मेरा एक सपना था। अपने दोस्त के भाई दंतचिकित्सक के पास नौकरी करते समय चिकित्सा संबंधित कई नुस्खे मैंने सीख लिया था। मेरे दोस्त के भाई डा. केशव रेड्डी के तबादले के कारण उसी क्लिनिक में मैं प्रेक्टीस करने लगा। मैंने किसी को धोखा नहीं दिया। मैंने कई लोगों का नि:शुल्क इलाज किया था।

"समाज बड़ा ही विचित्र है। जो व्यक्ति अपने बलबूते पर वि**का**स करने लगता हैं, लोग उसकी प्रशंसा करने के बजाय ईष्यालू बनते हैं, उसपर झूठे इलजाम लगाते हैं। मौके का फायदा उठाकर उसे **नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते** हैं।"[176]

राधा की भी यही हालत है। वह पहले ही शादी-शुदा थी। लेकिन पति शंकर का शिकार बन गयी। सरपंच के बेटे के साथ अवैध संबंध के कारण पति ने राधा को छोड़ दिया। तबसे वह सिनेमा में अभिनय करना चाहती थी। लेकिन आर्थिक अभाव के कारण सिनेमा में प्रवेश नहीं पा सकी थी। राधा स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली है। कुएँ में से पानी निकालते समय राधा पैर फिसलकर गिर गयी थी। उसने आत्महत्या नहीं की थी। राधा की मृत्यु के सिलसिले में किसी भी रूप में मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।

डॉक्टर के प्रमाण पत्र के अनुसार

1. "राजम्मा की साड़ी पर जो शुक्राणु हैं, जिसके लिए लेखक मुझे जिम्मेदार समझ रहे हैं, उसका कारण मैं नहीं हूँ। मैंने उसे छुआ तक नहीं, शायद डॉक्टर भी मुझसे बदला लेना चाहते हैं।"[177]
2. कुर्सी पर पायी गई चूड़ियों के टुकड़े भी इंजेक्शन देते समय डर के मारे राजम्मा के द्वारा किये गये विरोध के कारण ही हैं।"[178]

राजम्मा कोई साधारण औरत नहीं है। वीरेशम नामक मेकनिक के साथ उसका शारीरिक संबंध था। उसके पति भी इस विषय से वाकिफ हैं। वह वीरेशम से पैसे चूसकर दूध का व्यापार करती थी। मुझे बदनाम करने के पीछे भी कुछ ऐसी ही चाल है ताकि बड़े पैमाने पर पैसा कमा सके। वह तो अपनी चाल में कामयाब हुई। व्यापार संस्थाएँ, प्राद्यापक समिति, नारी-चेतना वेदिका, सबने मिलकर नारी पर हुए अन्याय के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए अब तक रु.10,000/- दिये थे। इन पैसों से अपना कारोबार बढ़ाने की एक साजिश है। "पैसे और सहानुभूति पाने के लिए राजम्मा जैसी गँवार ने नौटंकी की तो शोधन और वेंकटेश्वर जैसे ईर्ष्यालु लोगों ने इसे आंदोलन का रूप दिया।"[179]

डा. साम्बमूर्ति ने यह भी कहा है कि –" राधा के मरण पर सांम्बमूर्ति पर किये गये आरोप के खिलाफ बेइज्जती होने का दावा कर सकता हूँ। लेकिन मुझे मालूम है कि जिंदगी गुजर जाती है लेकिन सुनवाई नहीं होती। सालों साल बीत जाते हैं लेकिन कानून कोई नतीजे पर नहीं पहुँचता। कोर्ट-कचहरी के चारों ओर मंडराना पड़ता। समय और पैसों को नष्ट करने के अलावा कुछ नहीं मिलता। इस बेमतलब विषय को तूल देना व्यर्थ मानकर मैं चुप रह गया हूँ।"[180]

राजम्मा का बयान – सबकुछ विचित्र-सा लगा। राधा की मृत्यु का कारण डा. साम्बमूर्ति नहीं है। मैंने विश्वास किया कि दुर्घटनावश राधा पैर फिसलकर कुएँ में गिरकर मर गयी। मेरे पति की मूर्खता के कारण उसके भाइयों ने अच्छे खेत को हडपकर हमें बंजर भूमि सौंप दिये। घर चलाना मुश्किल हो गया। वीरेशम के साथ मेरा संबंध मेरे पति को मालूम है। पति को छोड़ना चाहा। लेकिन उसने आत्महत्या करने की धमकी दी थी। इसलिए मैं उसके साथ रहने लगी। वीरेशन ने खम्मम जाते-जाते मुझे भरपूर पैसे दिये थे, जिससे मेरी आर्थिक स्थिति सुधर गयी और हम सब अच्छी तरह खाने - पीने लगे।

सड़े दाँत के इलाज करवाने के लिए मैं डा. साम्बमूर्ति के पास गयी तो डाक्टर ने दाँत को उखाड़ने की बात **कर रहा था**। मैं तो मना करने लगी तो डाक्टर कहने

लगा कि - "एक दाँत निकालने मात्र तेरी सुंदरता में कोई कमी नहीं आ जाएगी। मान और प्राण दोनों ठीक-ठाक रहेंगे। दाँत निकालने की बात मैं कहता हूँ , तो तुम ऐसी गिड़गिड़ा रही हो कि मैं तुम्हारी इज्जत पर हाथ डाल रहा हूँ। मुँह खोलो......इंजेक्शन करूँगा।"[181]

"बहुत मना करने पर भी इंजेक्शन के साथ पास आने लगा तो डर के मारे कुर्सी में से नीचे खिसक गयी। बाद में क्या हुआ मुझे मालूम नहीं। होश संभलते देखा तो मेरे चेहरे पर उनका चेहरा रखा हुआ है। वह मेरी साड़ी को खींच रहा था। मेरी साड़ी ढीली पड़ी। मैंने समझा कि डाक्टर ने कुछ किया। तब मैं पोचव्वा, पोचव्वा करके चिल्लाने लगी। पोचव्वा के भी जोर से चिल्लाने के कारण भीड़ बढ़ गई।"[182]

डॉ.साम्बमूर्ति के अनुसार उस दिन सुबह न ही मेरा अपने पति या वीरेशम के साथ मेरा शारीरिक संबंध रहा।कई लोगों ने मुझे समझाने-मनाने की कोशिश की थी किउसे जेल भिजवाकर तुम्हें क्या मिलेगा। उससे कुछ पैसे दिला देंगे।"[183]"साम्बमूर्ति बड़ा झूठा-फरेब दगाखोर है। उसने कई स्त्रियों का बलात्कार किया था। खैर जो होना है वह तो हो गया । "उसे जेल भिजवाना ही है। होश संभालकर और किसी लड़की की तरफ ताकेगा नहीं।"[184]

लेखक अंपशय्या नवीन जी का कहना है कि राजम्मा के साथ क्या हुआ खुद को नहीं मालूम है। फिर भी डा. सांम्बमूर्ति को जेल भिजवाने के लिए उसने ठान लिया है। एक स्त्री होने के नाते लोगों की सहानुभूति को **एक** अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करते हुए पुरुष को सलाखों के पीछे भेजना चाहती है। लेखक यहाँ पुरुष को सचेत एवं सतर्कता बरतने की ओर संकेत करता है।

8 साल के अनुभवी वरिष्ठ अधिकारी अशोक के अनुसार –"मैं नहीं मानता हूँ कि दंत चिकित्सक साम्बमूर्ति ने राजम्मा का बलात्कार किया है। कुछ लोग ऐसी अफवाहें फैलाकर लोगों को बेवकूफ बनाने में माहिर हैं। लोग बहुत जल्दी बेवकूफ बन जाते हैं। कुछ लोग अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं। इसका मतलब यह नहीं

है कि साम्बमूर्ति सचमुच नेक इनसान है। वह एक स्त्रीलोलुपु **जरूर** है। मुझे उसके बारे में सबकुछ मालूम है। वह असली दंत चिकित्सक नहीं है। लेकिन वह असली दंत चिकित्सक से बेहतर है। मेरा खुद का अनुभव है कि कई डाक्टरों को उनसे ईर्ष्या होती है। लाखों पैसा देकर दंत चिकित्सा विज्ञान पढ़ने वालों से बढ़कर इनका प्रैक्टिस है। इसके खिलाफ साजिश करने वालों के लिए 'राजम्मा का बलात्कार' की घटना एक सुनहरा मौका बन गयी। हाँ! सच है कि साम्बमूर्ति को स्त्रियों के प्रति मोह है लेकिन घरेलू स्त्रियों की ओर वह ताकता भी नहीं है।"[185]

साम्बमूर्ति के पीछे पागल की तरह पड़ने वाली करोड़ों स्त्रियाँ हैं तो राजम्मा का बलात्कार करके क्या फायदा होगा। बल्कि बदनाम ! साम्बमूर्ति इतना बेवकूफ नहीं है कि राजम्मा का बलात्कार करके अपनी इज्जत और प्रैक्टिस को गँवा बैठे। प्रैक्टिस के अलावा उसका कोई चारा नहीं है। मैं विश्वास नहीं करता हूँ कि साम्बमूर्ति अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारेगा। वह भी खुली सड़क पर। उसने दरवाजा भी बंद नहीं किया। केवल परदे की आड़ में और बाहर एक औरत बैठी हुई थी। ऐसी स्थिति में बलात्कार हो ही नहीं सकता।

"अगर मैं इस केस का निर्णायक हूँ तो पाँच मिनट में इस केस को रफादफा कर देता हूँ। समाचार पत्रों वाले सनसनी मचाकर, अपनी पत्रिका के प्रचार हेतु दिमाग में जो आये हर बात को हवा देकर उसे बलात्कार का नाम देते हैं।"[186]इस संदर्भ में इनस्पेक्टर अशोक भी साम्बमूर्ति की बात का समर्थन करते हैं कि पत्रकारों के खिलाफ बेइज्जती का दावा दर्ज करना बेकार है।

उपरोक्त बयान के अनुसार नवीन जी लेखक नवीन का कहना है कि आज के जमाने में सच्चाई की जीत नहीं बल्कि सत्ता की जीत होती है। इसीलिए आम आदमी का चुप रहना ही बेहतर है। पत्रिकाओं की स्वेच्छा के नाम पर और पैसे होने के कारण किसी आम आदमी परभी कीचड़ उछालकर बाजार में घसीटते हैं। पत्रिकाएँ जो कहती हैं प्रतिपक्ष उसे सुनता है। स्वतंत्रता के नाम पर जो धोखा, छल-कपट, झूठ-फरेब हो रहा है, ऐसे विषयों में कई लोग अनभिज्ञ हैं। लेखक नवीन जी ने इस प्रचार-

प्रसार के अंधा-धुंध व्यवहार को जनता के सामने लाने की कोशिश की है। शोधन एक छोटा सा पत्रकार है अपने को अरुण शोरी या एन.राम की श्रेणी का समझता है। वह पत्रकार के रूप में, समाज में हो रहे अन्याय अत्याचार को प्रचार में लाना ही अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। स्वानुभव पर जीने वालों का सुख-चैन छीनकर, धमकी देकर, उनसे पैसा लूटना पत्रकारों काबाएँ हाथ का खेल है।

एक बार शोधन ने मुझे ही धमकी देने की कोशिश की कि –"इस शहर के आसपास कई लोग चरस व्यापार करते हैं। वे चरस उगाने पर भी शहर में नामी व्यक्ति माने जाते हैं। उस चरस को पकड़ने की कोशिश में हमने छापा मारा तो वहाँ सारे मर्दभाग गये। स्त्रियाँ पकड़ी गयीं। हमने सोचा कि स्त्रियों को गिरफ्तार करे तो मर्द लोग छुड़ाने आयेंगे। उन स्त्रियों में एक औरत बूढ़ी, दूसरी वयस्क और तीसरी बीस साल की युवती थी। स्त्रियों को पुलिस थाने में रखना निषेध है। लेकिन हमारी भी कुछ मजबूरी थी। रात होने के कारण अदालत में उन स्त्रियों को प्रस्तुत नहीं कर सके। उनकी सुरक्षा के लिए सब-इन्सपेक्टर भी कांस्टेबल के साथ थाने में ही रह गये थे। उनके खाने का भी इंतजाम थाने में ही किया था फिर भी मर्द लोग थाने में नहीं आये। बिना हल्ला-गुल्ला रात बीत गयी।"[187]

सुबह होते ही शोधन लम्बाड़ी लोगों के वकील के साथ थाना पहुँचा था उसके बीच बातचीत हुई। अचानक मध्यवयस्क स्त्री जोर-जोर से रोने लगी। केस रजिस्टर करके उन तीनों स्त्रियों को जमानत पर छोड़ दिया। इसी मुद्दे को लेकर शोधन ने दुष्प्रचार करने की कोशिश की थी। संदेहात्मकस्थिति में मैंने पत्रिका कार्यालय पर छापा मारा। देखा सुर्खियों में –"खम्मम पुलिस थाने में तीन लम्बाड़ी स्त्रियों का बलात्कार"। मैंने शोधन से पूछा कि –"इस खबर का सबूत क्या है? लम्बाड़ी स्त्रियाँ या वकील ने या किसी ने तुम्हें इस विषय के बारे में बताया?" तब शोधन का जवाब है कि –"नहीं, नहीं बताया और नहीं बता सकते हैं।"[188]

देश में कोई भी स्त्री अपने पर हुए अत्याचार के बारे में नहीं बता सकती। खासकर लम्बाड़ी स्त्रियाँ नहीं बताएगीं। यदि तुम मेरा कत्ल करना चाहे तो भी मैं इस सच्चाई को उगलवाकर ही रहूँगा।"[189]

तब शोधन पर तरस खाकर मैंने कहा –"शोधन, पत्रिकाएँ, सिनेमा की किताबें पढ़कर तुम्हारी खोपड़ी में दीमक लग गया। ऐसी बेतुकी रिपोर्ट लिखकर नामी पत्रकार बनने के ख्यालों में खो गयेहो। पुलिस थाने में किसी प्रकार का बलात्कार नहीं हुआ। लम्बाड़ी वाले उतने नादान नहीं हैं कि जितना तुम समझते हो। हजारों लोग इस चरस के गुलाम बन रहे हैं। जिंदगी में किसी काम के काबिल नहीं हो पाते हैं। देश को कितना खतरा है– इसका तुम्हें अंदाजा है? आप जैसे काबिल पत्रकार विषय की तहकीकात नहीं करते फिर जो कुछ मन में आया लिख देते हैं। पुलिस अधिकारी होने के नाते मैंने अपनी जिम्मेदारी निभायी। तुम्हारी यह शंका कई लोगों को गुमराह कर देगी। ऐसे समाचार की वजह से पुलिस व्यवस्था पर लोगों का विश्वास उठ जाता है। ऐसा झूठा प्रचार किसी भी देश के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। बलात्कार का गलत प्रचार कर स्त्री जाति के प्रति भी अन्याय कर रहे हो।"[190]

उपरोक्त कथन के बल पर लेखक ने पत्रकारों की और पुलिस व्यवस्था की देश के प्रति निष्ठा, ईमानदारी और कर्तव्यबोध की ओर इशारा किया है। सच्चेरूप से व्यवस्था का पालन ही देश का विकास है। इस विकास में हर एक नागरिक जिम्मेदार होता है। जरा सी गलती देश के लिए नुकसानदायक है।

धमकी देने की आदत डा.साम्बमूर्ति को भी है। उसने मेरे दोस्त की बेटी के साथ ऐसा व्यवहार किया। 90%मर्दों में परस्त्री के प्रति मोह एक आम बात है। 'वृद्ध नारी पतिव्रता' कई लोगों को मौका नहीं मिलने के कारण एक पत्नीव्रत माने जाते हैं।

राजम्मा भी इतनी नादान नहीं है। मेकेनिक वीरेशम से पैसों को चूस लिया। मेरा अनुमान है कि- "यह किस्सा भी साम्बमूर्ति से पैसा लूटने की एक चाल है। अगर साम्बमूर्ति ने दस या बीस हजार राजम्मा को दे दिये। तो राजम्मा खुद भरी अदालत में रिपोर्ट फिरा देती थी और कहती थी कि डा.साम्बमूर्ति ने मुझे छुआ तक नहीं है।

ओर इस बयान को पुलिस की चाल ठहराने पर भी कोई आश्चर्य की बात नहीं होती।"[191]

उपरोक्त कथन से लेखक नवीन जी इस ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहते है कि राजम्मा जैसी स्त्रियाँ मतलबी होने के कारण लोगों और व्यवस्था को भी भटका सकती हैं।

थाने में खबर मिलते ही मैं तो घटना स्थल पर पहुँच गया। लेकिन उसके चेहरे पर या कमरे के आसपास बलात्कार से सबंधित निशान या सलवटें पड़ी हुई साड़ी, कुछ भी नहीं पाया।इंजेक्शन भी लोकल दिया गया था। इससे कोई बेहोश नहीं होते हैं। हाँ, डर के मारे बेहोश हो सकती है। डाक्टर की परीक्षा के अनुसार यह अब तक तय नहीं हुआ कि साम्बमूर्ति ने राजम्मा का बलात्कार किया या नहीं। आज कल नारी कानून के अनुसार सबूत की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बलात्कार अपराध है। उसके अनुसार कोई भी खुद थाने में चलकर शिकायत दर्ज कर सकते हैं कि –"मेरे साथ बलात्कार हुआ" तो बिना सुनवाई के उस अपराधी को 10 साल की सजा दी जाएगी। इस धारा के अनुसार डा. साम्बमूर्ति को कोई बचा नहीं सकता है। लेकिन नैतिकता की दृष्टि से विचार-विमर्श करे तो यह मेरा विश्वास है कि साम्बमूर्ति ने राजम्मा का बलात्कार नहीं किया।"[192]

अपने अनुभव के आधार पर विश्लेषण करें तो हर पागलपन का भी एक तरीका होता है। उसी तरह हर व्यक्ति की अपनी एक आदत होती है। "साम्बमूर्ति के केस में राजम्मा का अंदर जाना - बाहर आने के बीच तीन या चार मिनट के समय से अधिक नहीं लगता है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि बलात्कार नहीं हुआ ।"[193]

लेखक नवीन जी ने सब इन्सपेक्टर के द्वारा जनता की मानसिकता, प्रचार-प्रसार वालों के अंधा-धुंध व्यवहार, तहकीकात ठीक से न करना, अफवाहें फैलाना, आदि समाज को पतन की ओर ले जानेवाली बातों को प्रकाश में लाया है। एक नागरिक जिम्मेदार पद पर आसीन हो तो, स्थिति का अवगाहन कर, निष्पक्ष होकर समर्थता से व्यवहार करने की आवश्यकता को सूचित किया है।

पोचम्मा का बयान :

मुझे इस झमेले से उतना गहरा संबंध नहीं है। डा. साम्बमूर्ति बहुत ही मिलनसार आदमी है। मैं ही राजम्मा को डाक्टर के पास ले गयी थी। इतना मेरी बीड़ी पीने का समय ही राजम्मा क्लिनिक के अंदर रही। राजम्मा अंदर से चिल्लाने लगी - "पोचव्वा, पोचव्वा, ये मुझे छेड़ रहा है।"[194] उसे सुनकर मैं भी हैरान हुई और अंदर जाकर देखे तो वह कुर्सी पर बैठी रही। साड़ी या ब्लाउज ढीली नहीं थी। मुझे यकीन नहीं हुआ कि इतने कम समय में भरे बाजार में कैसे बलात्कार कर सका।"[195]राजम्मा ऐसी कोई नेक या पतिव्रता नहीं है। वीरेशम के साथ उसका नाजायज संबंध है। पैसे पाने की कई तरकीब उसे मालूम है।

"मेरे गाँव में ऐसी कई घटनाएँ घटती हैं। पैसे पाने के लिए लड़कियाँ आदमी को छेड़ती हैं, धमकी देती हैं **और** यूँ फँसाती हैं। आदमी पैसा देकर अपने को छुड़ा पाता है। मेरे ख्याल से राजम्मा की भी यह एक चाल है। मेरे गाँव की औरतें हद करती हैं। हम जैसे गरीब लोगों की मदद करने वाले डाक्टर को राजम्मा ने पूरी तरह से बरबाद कर दिया।"[196]

लेखक नवीन कहता है कि खासकर निम्नवर्ग की औरतें अनपढ़ होने के कारण स्थिति को नहीं समझते हुए चिल्लाने लगती हैं। बाद में पछताने पर भी स्थिति तो संभाल नहीं पाएगी।समाज में गलतफहमी को ज्यादा महत्व दिया जाता है असलीयत को नहीं।

वरिष्ठ क्रिमनल लॉयर और नारीवादी फोरम की सचिव भारती देवी का बयान:

मेरे अनुसार –"यह तो एक साधारण बलात्कार का मुद्दा है। इस पुरुष सत्तात्मक समाज में मौका मिले तो हर मर्द औरत का बलात्कार करने को तैयार रहता है। इस समाज में हर एक पुरुष बलात्कार करने में समर्थ है।"[197] बाप-बेटी को, भाई-बहन को बलात्कार करने वाली घटनाएँ कई हैं। कम से कम अस्सी साल की स्त्रियाँ पतिव्रता बन सकती हैं लेकिन अस्सी साल के पुरुष तो पत्नीव्रत नहीं बन

सकते। कितने भी बूढ़े क्यों न हो जाए लेकिन मर्द लोग परस्त्री मोह से चूकते नहीं।"[198]

लेखक का विचार है कि पुरुष ज्यादातर स्त्री को कामुक नजरिये से ही देखता है। इस संबंध में मानव और पशु में भिन्नता है। पशु जाति में लैंगिक संदर्भ में जानवरके लिए कुछ समय और नियम हैं। मानव जाति में ऐसे कोई समय, नियम नहीं है। यही कारण है कि पुरुष अपनी कामुक भावना को संतुष्ठ करने के अनुकूल ही, पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री को सजाया, सँवाराहै।

लॉयर भारती देवी कहती हैं कि–"आज के जमाने में ब्यूटी पार्लर्स गली, गली में कुकुरमुत्तों की तरह उग रहे हैं जो पुरुष की काम-तृष्णा को बढ़ा रहे हैं। आज की कई पत्रिकाएँ स्त्री की विविध भंगिमाओं में खासकर देह के उभरे अंगों को प्रस्तुत करते हुए करोड़ों रुपये कमा रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में 'बलात्कार' कोई चौंकाने वाला विषय नहीं है।"[199]

मय सभा में दुर्योधन को पानी में गिरते हुए देखकर एक स्त्री का हँसना कुरुक्षेत्र का कारण बन गया था। एक पुरुष हँसता तो शायद उसके अहं को उतनी चोट नहीं लगती। किसी का रोष बढ़ाना है तो हल्दी कुंकुम और चूड़ियाँ भेजना एक रिवाज हो गया। क्यों ऐसा रिवाज था?स्त्री को अपमानित करने के अलावा। स्त्री को निर्वस्त्र कर भरे बाजार में घुमाना, हमारा संप्रदाय था?"[200]

लेखक नवीन का कहना है कि सदियों के बदलते कानून और साहित्य में बदलाव आने पर भी पुरुष की मानसिकता में बदलाव नहीं आया।

गाँधी जी का कहना है कि - आधी रात के समय निर्भीक होकर एक औरत जब विचरण कर सकती है तभी इस देश को सच्चे अर्थों में स्वतंत्र माना जा सकता है।

लॉयर भारती जी का कहना है कि नकली डाक्टर साम्बमूर्ति को वायुरिज्म' नामक बीमारी है (वायुरिज्म – इस तरह के रोगी को दरवाजे या खिड़कियों के छिद्रों में से स्त्री-पुरुष की काम-क्रीड़ाओं को देखकर आनंद प्राप्त होता है) इनके नग्न चित्र

भी निकालकर पत्रिकाओं में छपवाते थे। ये खबर मुझे डा.वेंकटेश्वर द्वारा हमारे फोरम को मिली।

एक और चौंकाने वाली बात है –"आयुर्वेदिक डाक्टर से अपने नपुंसकत्व को दूर करने का इलाज भी उसने करवाया। अपने नपुंसकत्व को छिपाते हुए खुद ही कई स्त्रियों से दैहिक संबंध का प्रचार करवाता था।"[201]

लॉयर भारती कहती है कि-"आई.पी.सी. की धारा 370 के अनुसार साम्बमूर्ति **को** जरूर सजा मिलेगी। राजम्मा के बयान के अनुसार भी इसे सजा जरूर मिलेगी। ऐसा भी हो सकता है कि इस बीच में साम्बमूर्ति राजम्मा को खरीद भी सकता है। वैसे भी फ्यूडल और सेमि बुर्जुआ समाज में सब कुछ बिकाऊ है।"[202]

"जिस ने स्त्री का बलात्कार किया उस समय उस स्त्री को पशु रूपी पुरुष का साथ देना ही पड़ता है। नहीं तो उस स्त्री की ही जान खतरे में पड़ जाती है।"[203]

लेखक नवीन जी का कहना है कि कोई भी औरत यह नहीं मानती है कि उसने बलात्कारी को सहयोग दिया। अगर माने तो समाज वाले पतिता की मुहर लगा देते हैं। समाज में ऐसा व्यवहार कितना अमानवीय है और निकृष्ट है। स्त्री का जो अपराध नहीं, उसके लिए उसे कलंकित ठहराया जाता है।

लॉयर भारती समझाना चाहती है कि–"बलात्कार' एक हादसा है। हादसे में किसी के हाथ-या पैर टूटे तो उसका इलाज करवाने की कोशिश करते हैं। लेकिन औरत के देह पर अत्याचार हुए तो उसे कलंकित मानते हैं। इस बलात्कार के कारण तन से ज्यादा मन पर गहरी चोट लगती है। इस मानसिक और दैहिक अपमान से बाहर आना किसी भी औरत के लिए मुश्किल है। ऐसे अवसर पर समाज की सहानुभूति मिलनी चाहिए। और उस औरत को जीवन में नई राह पर चलने में सहयोग देना चाहिए।"[204]

लेखक नवीन का विचार है कि 'बलात्कार' के अंतर्गत उस स्त्री को कलंकित मानना, बलात्कारी को खुली छुट मिलना पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री के प्रति उपेक्षित व्यवहार को व्यक्त करता है।

लॉयर भारती कहती है कि –"पति होने पर भी पत्नी की सहमति के बिना दैहिक संभोग नहीं हो सकता। पत्नी हो या वेश्या हो यह तो कह **सकती है** कि मैं तुम्हारे साथ संभोग के लिए सहमत नहीं हूँ। ऐसा कहने का स्त्री का अधिकार है।"[205]

दंत चिकित्सक :- –"मुझे साम्बमूर्ति से किसी प्रकार का ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। उसकी अच्छी-खासी प्रॉक्टिस है। उसकी फीस लोग अपनी सुविधानुसार चुकाते हैं। मेरी फीस रु.50/- अनिवार्य है। साम्बमूर्ति अपने तजुर्बे के अनुसार इलाज करता है। मैं तो बीमारी के अनुसार इलाज करता हूँ। An old patient is a good doctor दीर्घकालिक रोगी एक अच्छा डाक्टर कहलात है। शोधन ने कुछ देखा नहीं लेकिन सुने-सुनाये समाचार को सनसनीखेज बनाकर अंतर्जातीय स्तर पर तहकीकात पत्रकार (investigative journalist) के रूप में बन जाने की लालसा में विषय को भड़का दिया।

उसी प्राकर राजम्मा को कई संस्थाओं ने अत्यधिक सहानुभूति के साथ-साथ आर्थिक सहायता भी पहुँचायी। लेकिन पोचव्वा को एक रुपया भी न मिलने के कारण उसने विषय को फिरा दिया। इसका मतलब यह नहीं कि डा. साम्बमूर्ति निर्दोष है। वह एक sex pervert और साथ-साथ नपुंसक भी है। उसे कठिन से कठिन सजा मिलनी चाहिए। राधा की आत्म-हत्या के पीछे का कारण यही है। सरला नामक लड़की अपनी माँ-बाप के खिलाफ जाकर इससे शादी की थी लेकिन साम्बमूर्ति ने पैसों के लिए उसे ब्लू फ़िल्म्स में अभिनय करने के लिए मजबूर किया। इसी कारण सरला साम्बमूर्ति को छोड़कर अपने माँ-बाप के यहाँ जाकर बोली कि –"आप को स्त्री जाति के प्रति गौरव हो तो मुझे साम्बमूर्ति से तलाक दिलवा दीजिए। ब्लू फ़िल्म में अभिनय करने पर मजबूर करने वाले को मैं कभी माफ नहीं करुँगी।"[206] सरला समझदार लड़की थी। आगे पढ़ लिखकर नौकरी करने लगी।

"सरला जैसी लड़की को देखकर मेरे मन में स्त्रियों के प्रति गौरव भावना बढ़ गयी।"[207] भास्कराचार्य जी द्वारा लेखक नवीन लड़कियों के स्वाभिमान के प्रति अपनी गौरव भावना को व्यक्त किया है। साम्बमूर्ति खुद को धोखा देते हुए समाज को भी छलने का प्रयास कर रहा है। भले ही कानून उसे क्षमा करे लेकिन समाज उसे माफ नहीं कर पायेगा।

राजनीतिज्ञ सोमलिंगम का बयान

आज प्रतिपक्षवाले झमेले को खड़ा किया कि साम्बमूर्ति हमारा आदमी है। मैंने ही उसको जमानत पर छुड़ाया। उसने मेरे दल की काफी मदद की। छोटे-छोटे दूकानदारों को, सब्जी-फल, दूधवालों को चुनाव के समय में पैसे बाँटने का काम बड़ी ईमानदारी से निभाया। विपक्ष वाले इस विषय को जानकर अपनी ओर उसे खींचने की बहुत कोशिश की। साम्बमूर्ति ने साफ इनकार कर दिया। तब से उसके खिलाफ बदला लेने के इंतजार में हैं। राजम्मा को विपक्षवालों ने ही भेजा। राजम्मा भी हमारे ही पक्ष की मतदाता है। वीरेशम के साथ राजम्मा भी दल बदल दी। विपक्ष ने इस साजिश में साम्बमूर्ति को मोहरा बनाना चाहा। डा. वेंकटेश्वर राव भी विपक्ष के साथ मिल गया। प्रॉक्टिस न होने के कारण मक्खियाँ मार रहा है। साम्बमूर्ति के प्रति ईर्ष्या के कारण, राधा के बारे में अफवाहें फैलायी। पत्रकार शोधन भी हमारे निम्न जाति के ही हैं। नाम कमाने के लालच में खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिखा। मेरे खिलाफ भी बहुत कुछ गलत लिखा। मेरे दलवालों ने इसे मार डालने को ठान लिया लेकिन मैंने उन्हें मना लिया और शोधन को बचाया। क्योंकि पत्रकारों से उलझना ठीक नहीं। उल्टा वे हमें बदनाम करने के चक्कर में पड़ जायेंगे।

बाद में मैंने शोधन को अपने पास बुलाकर समझाया कि –"मैं और तुम दोनों निम्न जाति के हैं। बेटा! तुम और मुझ में पंचायत क्या? हम सबको मिलकर सवर्णों (Forward caste)के विरोध में लड़ना है न कि आपस में भिड़ना। ऐसा लड़ने से हमारा क्या विकास होगा? तुम्हें कुछ जरूरत हो तो मुझे बताओ। मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"[208]

"मैं इस झमेले को पाँच मिनट में खत्म कर दूँगा। साम्बमूर्ति और राजम्मा के बीच पैसा दिलाकर समझौता करा दूँग। कमेटी, कोर्ट-कचहरी न्यायधीश ये सब बेकार हैं। यह सब राजनीति की चाल है। राजनीति को राजनीति से ही काटना है।'बीमारी एक, इलाज अलग' हो तो समस्या सुलझे कैसे? राजनीति के लिए राजनीति ही इलाज है। इस देश में सब कुछ राजनीति (की ही चाल) ही हैं। राजनीति की चाल के अलावा कुछ है ही नहीं।"[209]

लेखक नवीन का कहना है कि समाज में हर मुद्दा राजनीति के चपेट में आ जाता है तो मुद्दे के हल होने की संभावना कम हो जाती है। अगर हल हुए तो भी गलत नतीजा निकल सकता है। 'आजकल स्त्री चेतना' के नाम पर स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले अपराध के प्रति भी इंगित किया है। वर्तमान समय में स्त्री कानून को अपने हाथों में लेकर पुरुष को नचा रही है। पुरुष को इसके प्रति सजग होने की आवश्यकता को सूचित किया है।

इस उपन्यास के लेखक नवीन ने 8 मुख्य लोगों के बयान को 'सच्चाई निर्धारित करने के लिए गठित समिति' के सामने प्रस्तुत किया। इस उपन्यास के अंत में समिति के निर्णय को नहीं बताया। वास्तव में निर्णय करने का अधिकार (Power) समिति को नहीं है। अंतिम निर्णय अदालत पर निर्भर होता है।

लेखक नवीन ने समाज में स्त्री के विचार को कई बयानों के द्वारा व्यक्त किया। वरिष्ठ क्रिमिनल वकील और फेमिनिस्ट फोरम सचिव भारती देवी के शब्दों में स्त्री केवल उपभोग वस्तु के रूप में इस्तेमाल की जा रही है। जो भी बुरे शब्द होंगे स्त्री को दृष्टि में रखकर ही होते हैं। असल में स्त्री में जो नैतिकता होती है वह पुरुष में नहीं पायी जाती है। स्त्री और पुरुष को अलग कर कानून निर्देशित करना समाज के लिए उचितनहीं है। इस संदर्भ में सामाजिक नजरिये को सही दिशा में बदलने तक संघर्ष करना चाहिए।

3.9 पारिवारिक व्यवस्था बनाम विवाह की प्रक्रिया में स्वेच्छा का प्रश्न :'कुमारी मधुमति'[కుమారి మధుమతి]

गोविन्दराजु सीतादेवी का उपन्यास 'कुमारी मधुमती' का प्रकाशन 1994 में हुआ। इस उपन्यास में सदियों से दहकती हुई प्रमुख समस्या 'लड़की का विवाह और दहेज समस्या' का समाधान बखूबी ढंग से चित्रित हुआ है। आप को सन् 1990 में उत्तम उपन्यासकार के रूप में 'कोका राघवराव पुरस्कार', और सन् 1991 में 'उत्तम कथानक के रूप में श्रीमती. वासिरेड्डी रंगनायकम्मा धर्मनिधि पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

राममूर्ति एवं सरस्वती की इकलौती बेटी है –'मधुमती'। बचपन में उसे सिनेमा में अभिनय करने का शौक रहता है लेकिन माता-पिता उसे लॉयर या डॉक्टर बनाना चाहते थे। राममूर्ति, एल.डी.सी. (LDC) नौकरी करते हुए जीवन यापन करते थे। उसी गली में एक इंजीनीयर और उनकी पत्नी सत्यवती भी रहते थे। मधुमती ज्यादातर उस सत्यवती के साथ समय बिताना पसंद करती थी। सत्यवती अपने बेटे मुरली होते हुए भी मधुमती को ज्यादा प्यार करती थी। मुरली पढ़ाई में अव्वल है तो मधुमती कमजोर थी। इसी बात को लेकर मुरली मधुमती को चिढ़ाता था फिर भी उसे अंग्रेजी **सिखाता था** और अंग्रेजी की कहानियाँ **भी** सुनाता था।

अचानक बस दुर्घटना के कारण मधुमती के पिता की मृत्यु हो जाती है तो सरस्वती को बेटी मधुमती के साथ ननिहाल आना पड़ा। पति के शोक में छ: महीने के अंदर ही सरस्वती भी मर गयी। मामा शंकर राव और मामी सावित्रम्मा दोनों मधुमती का लाड़-प्यार से पालन-पोषण करने लगे। मामा शंकरराव मधुमती की पसंद के मुताबिक निरंजन नाम के लड़के से शादी तय किया था।

निरंजन की माँ मधुमती को देखकर कहती है कि –"मेरी तीन बेटियाँ हैं। वे एक ओर पढ़ाई और दूसरी ओर नाच-गाना भी सीख लेती है। हर काम बड़ी फुर्ती से कर लेती है। सच कहें तो ऐसा कोई काम नहीं जो वे नहीं जानते हैं। इन दिनों में

लड़कियों को हर काम करना आना चाहिए। इस मामले में बड़े लोगों को उन्हें अच्छा-सा प्रशिक्षण देना चाहिए।"[210]

इन बातों को सुनते ही सावित्रम्मा का मुँह काला हो गया और मधुमती भी खिसिया गई।आधुनिक समाज में भी शादी करने योग्य लड़की को मशीन की तरह घर और बाहर की जिम्मेदारियों को सँभालने में चुस्त रहना, साथ-साथ संगीत एवं नाच-गान का भी ज्ञान होना चाहिए। इसका मतलब है कि लड़की आधुनिक होने के साथ-साथ पारंपरिक भी होनी चाहिए। शिक्षित होने मात्र से काम नहीं चलेगा। वर्तमान समाज में कुछ माताओं की ये उपर्युक्त धारणाएँ हैं।

पुरुष ही नहीं स्त्री भी स्त्री का शोषण करने पर तुली हुई दिखाई देती है। पीढ़ियाँ बदलने पर भी मानसिकता में बदलाव न होने के कारण प्रथाएँ जहाँ की वहीं ठहर गईं। आज भी शादी में निर्णय करने का अधिकार रूपी पलड़ा लड़कीवालों की तरफ झुकता है। उनकी सहमति से ही शादी का मामला आगे बढ़ता है।

मामा शंकर राव को मामी अक्सर याद दिलाती हैं कि- "हम लड़की वाले हैं। इसलिए हमें स्थितियों के सामने विनम्र होकर समझौता करने की आवश्यकता है। शंकरराव इस बात पर चिढ़ जाते थे। वे कहते हैं कि –"बार-बार यह नहीं कहना कि हम लड़की वाले हैं। क्या लड़की को पेड़ से तोड़कर लाये थे? पाला नहीं, पढ़ाया नहीं? किस मामले में लड़की कमजोर है?"[211]

लेखिका सीता देवी कहती हैं कि यदि दूल्हे वाले हैं तो कहीं न कहीं अपना गुमान दिखाकर ही छोड़ते हैं। दूल्हेवाले रौब जमाने के इस मौके को हाथ से छूटने नहीं देते। इन परिस्थितियों के सामने दूल्हनवालों को सिर झुकाने के अलावा कोई चारा नहीं रहता है। पुरुष प्रधान आधुनिक युग में भी परिस्थितियों के बदलने के बावजूद भी मानसिकता में वांछित परिवर्तन नहीं हुआ।

निरंजन की छोटी और बड़ी बहन दोनों मधुमती को देखने आती हैं। दुल्हन के रूप में मधुमती खूबसूरत लग रही थी। लेकिन वह अपनी भावी ननदों से कम बोलती है। मधुमती का कम बोलना ननदों को रास नहीं आता है। दोनों जाते वक्त आपस में

फुसफुसाते हुए कुछ बोलने लगी कि –"खूबसूरत है लेकिन बहुत घमंडी भी लग रही है। क्या देखकर इतना गुमान है? उसे अनाथ मानकर, रहम करते हुए शादी के लिए सहमत हुए। फिर भी हमारे प्रति कृतज्ञता नहीं दिखा रही है।"[212] दोनों बहनें मधुमती की कमियों पर उँगली उठाने की कोशिश में लग गयीं।

लेखिका सीतादेवी कहती हैं कि खूबियों को नजर अंदाज करते हुए खामियों पर उँगली उठाना दुनिया का दस्तूर है । मधुमती पढ़ी-लिखी और सुंदर लड़की है फिर भी उसकी कदर न करते हुए, अनाथ होने की बात पर ज्यादा जोर दे रहे हैं।[213] समाज की नकारात्मक मानसिकता में बदलाव कब आएगा? इसका अंत कब होगा? लोग इन छोटी-छोटी बातों से कब उभर पाएँगे?

ननदों की बातें सुनकर मामी सावित्रम्मा गुस्से में कहने लगी कि–"क्या !हमारी मधुमती अनाथ है? अनाथ हो तो इतने वैभव से शादी संपन्न होगी? आपकी जो माँगें हैं उन्हें कौन पूरा कर सकता है? माता-पिता के न होते हुए भी सगी बेटी से भी बढ़कर, लाड़-प्यार से, मधुमती को हमने पाला।"[214]

मामा-मामी के लाड़-प्यार से पालने पर भी तथा **ठाट-बाट** से शादी को संपन्न करने पर भी दूल्हेवालों से ताना सुनना पड़ रहा है। इन बातों में उनकी ममता एवं व्यथा दोनों व्यक्त हो रही हैं।

ननदों ने जाकर **माँ के** कान में क्या भर दिया कि मालूम नहीं होता लेकिन बाराती भोजन पर आने के लिए तैयार नहीं थे। भोजन के बाद ही शादी का मुहूर्त है। सावित्रम्मा और शंकरराव दोनों दुल्हे वालों को मनाने गये। लेकिन वे राजी नहीं हुए। सुबह तक खबर पहुँची कि दुल्हे वाले जनवास खाली करके चले गये। मधुमती को यह अपमान हलक के नीचे नहीं उतर पाया है।

सदियाँ और पीढ़ियाँ बदल रही हैं। लेकिन लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आया। खातिरदारी में जरा सी कमी महसूस करते तो दूल्हेवाले बरदाश्त नहीं कर पाते हैं। आज भी उनकी जिद और अहंकार पहले के जैसा ही है। इस मौके पर

दूल्हेवाले अपनी अधिकता दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। अगर दूल्हेवालों की सोच में थोड़ा सा सकरात्मक परिवर्तन आए तो माहौल स्वास्थ्यवर्धक हो सकता है।

"इस अपमान से मधुमती उदास हो गयी। मनमें व्यथा, शर्मिंदगी, किसी भी लड़की की जिंदगी में न होने वाला अपमान अपनी जिंदगी में हुआ।"[215]अवहेलना मधुमती के मन को बार-बार भेद रही है। वह सोच रही है कि–"हे भगवान! माता-पिता के मर जाने के बाद मामा-मामी ने उदार दिल से मेरा पालन-पोषण किया। शादी को धूम-धाम से वे मनाना चाहते थे लेकिन बदले में उन्हें यह सजा मिली। इसके पीछे किसकी गलती है?"[216]

लेखिका सीता देवी कहती हैं कि गलती किसी की भी हो लेकिन सजा तो लड़की वालों को ही भुगतनी पड़ती है। कारण जाने बिना समाज लड़की पर लांछन लगाता है। लोग कहते हैं कि–"लड़की में कुछ कमी है। लड़की को ही दोषी ठहराते हैं। पति पत्नी को छोड़ दे या पत्नी मर जाय या शादी रुक जाए फिर भी लड़के के लिए रिश्ता तय करने लड़कियों के माँ-बाप का तांता लगा रहता है। लेकिन लड़की के लिए लड़के के माँ-बाप मुँह चुरा लेते हैं। बेवजह लड़की को उपेक्षित जिंदगी जीनी पड़ती है। यही है समाज की रीति-नीति और दोहरा रवैया।

कुछ समय बाद मामा शंकरराव मधुमती के लिए रिश्ता ढूँढना चाहता है। तो मधुमती इस बार साफ इनकार कर देती है कि–"मामा जी ! अभी शादी का प्रयत्न मत कीजिए। मैं नौकरी करूँगी। उसे ढूँढ लीजिए।"[217]

मधुमती को हैदराबाद में परामर्शदाता की नौकरी मिलने के कारण उसे वहाँ पर अकेली रहना पड़ता है। उसे मालूम होता है कि –"जिंदगी एक सिनेमा नहीं है। सोचता कुछ है तो होता कुछ और, वह शादी करके गृहिणी बनना चाहती थी लेकिन उसे नौकरी कर एकल जिंदगी काटना पड़ रहा है। अपनी जान से भी प्यारा मानने वाले मामा-मामी को छोड़कर कहीं दूर रहना पड़ रहा है। कितनी विचित्र है जिंदगी।"[218]

जिंदगी में कई अनहोनी घटनाएँ घटती हैं। विधाता के हाथों हम कठपुलती मात्र हैं।

अमीर नगर की युवजन समिति की ओर से दहेज-निर्मूलन के बारे में युवा वर्ग के विचारों को एकत्रित करने के लिए बैठक की व्यवस्था की गई थी। मधुमती और पत्रिका संपादक शर्मा जी भी इस बैठक में शामिल हो गये थे।

आज भी लोगों में अंध विश्वास दिखाई देता है। इस कारण से शादी के मण्डप में शादियाँ रुक जाती हैं। शादी के सपने देखने वाले दूल्हा-दूल्हन में मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। दहेज-प्रथा आज भी भयानक समस्या बनी हुई है,, जीवन साथी के चुनाव में युवाओं के अभिमत को, सच्चे स्नेह के मूल्यों को महत्व नहीं दिया जा रहा है। लेखिका सीता देवी ने पाठकों के सामने इसी तरह की समस्याओं को अपने उपन्यास के माध्यम से उजागर किया है।

"माता पिता और पति के लिए जिस दिन लड़की बोझ नहीं बनेगी तब से दहेज-प्रथा रूपी दुराचार धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगेगा।"[219] कुमुदनी नामक 18 साल की लड़की का कहना है कि –"स्त्री को विरासत में अधिकार होते हुए भी कितने माँ बाप अपनी बेटियों को बेटों के बराबर जायदाद में हिस्सा दे रहे हैं। मेरा मानना है कि अगर लड़की को भी हिस्सा देने लगे तो दहेज रूपी दुराचार का अंत धीरे-धीरे हो जाएगा। स्त्रियों को अपनी जायदाद के लिए आंदोलन करना बेहतर है।"[220]

18 साल का रंगनाथ का कहना है–"दहेज तो मध्यवर्ग की समस्या है, इसीलिए दुराचार के रूप में परिणत हुआ। मध्यवर्ग का मतलब है आर्थिक तंगी। भरपूर परिवार में भाई, बहनें, माँ-बाप के अलावा विधवा बुआएँ, ऐसी कई जिम्मेदारियाँ भी होती हैं। हर घर में ऐसी परिस्थितियों से गुजरकर बेटा बड़ी मुश्किल से पढ़ाई पूरी करके नौकरी तलाशने लगता है। नौकरी तो आसानी से या जल्दी से मिलने वाली नहीं है। इस बीच में लड़कियों के माँ-बाप के कतार का तांता लग जाता है। लड़के की नौकरी न होते हुए भी, दहेज के साथ लड़की को देने की बातें शुरू करने लगते हैं। उनकी बेटी दसवीं कक्षा पढ़कर माँ बाप के लिए बोझ बन जाती है। उस बोझ को उतारने के

उद्देश्य से दूल्हे को ढूँढने में लग जाते हैं।"[221] लड़के के माँ-बाप कुछ करने के लिए संकोच करते हैं। इस स्थिति का फायदा उठाकर, दहेज का प्रलोभन देकर किसी न किसी तरह लड़के के माँ-बाप को शादी के लिए राजी करवाते हैं। नौकरी का न होना, आर्थिक तंगी, घर में जगह की कमी, छोटे भाई या बहनों की पढ़ाई की याद दिलाने पर भी माँ-बाप को मना लेते हैं।

"भाई की पढ़ाई **पूरे होने तक** हम सब कुछ समय के लिए पढ़ाई को छोड़ दिये थे। क्योंकि भाई की पढ़ाई के बाद नौकरी लग जाएगी, हमारा ख्याल करेगा, हम सबकी पढ़ाई पूरी होगी और धीरे-धीरे घर की आर्थिक स्थिति सुधर जाएगी। लेकिन घर में भाभी का कदम रखते ही हमारी आशाओं पर पानी फिर गया .... आपसी प्यार से अनुबंधित हमा**रे** भरपूर परिवार **को** भाभी ने थोड़े ही समय में दो टुकड़ा कर दिया।"[222]

रंगनाथ और भी बताने लगा कि –"भाइयों, बहनों! मैंने गौर किया कि आज के समय में भाभी जैसी लड़कियाँ हर चौथे घर में मौजूद हैं। इस जमाने की लड़कियों को तमीज नहीं है। शादी होते ही पति अपना हो जाना है समझकर अधिकार जताते हुए अपनी जिम्मेदारी का विस्मरण कर रही है। क्या! पति के रूप में 25 साल का युवक अचानक आसमान से टूट पड़ता है? उसके परवरिश के लिए परिवार के कई आत्मीय जन सहारा बनते हैं। आँख की पुतली मानकर उसकी देखरेख करते हैं। आज की युवती इस विषय पर गौर नहीं करती है। स्वार्थी बनकर अपनी सुख-सुविधाओं के बारे में सोचती है। बहू बनकर आती है लेकिन इस घरको अपनाने की कोशिश नहीं करती है। शायद कुछ लड़कियाँ करती होंगी लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है, आप ही बताइए! क्या! यह दुराचार नहीं है? इस दुराचार को कौन रोक सकते हैं? हमारी भाभी जैसी घमंडी लड़कियाँ होने के कारण कितने माँ बाप दु:खी हो रहे हैं?"[223] 'दहेज-दुराचारहै' कहकर चिल्लाने वाले केवल मध्यवर्ग के लोग ही हैं। लड़केवालों को लड़कीवालों की ब**द्दुआवों** के अलावा एक कौड़ी पैसा भी नहीं बचता है। लड़के की शादी के नाम पर उन्हें दो-तीन हजार रुपए उधार में लेना ही पड़ता है।

लड़की वाले दहेज दिया करके चिल्लाते रहते हैं और दूसरी ओर ठाठ-बाठ के लिए फिजूल खर्च भी करने लगते हैं। क्या! ये सब बोझ नहीं! आदमी को थोड़े में संतुष्ट होकर जी सकना, पैसे इकट्ठे कर सुखों को खरीदने की दुराशा न हो तो दहेज दुराचार है ही नहीं। कई प्रकार के दुराचार अपने आप मिट जाते हैं। अगर समाज में हर परिवार की सुख-शांति की स्थापना होनी है तो पारिवारिक सदस्यों के बीच आपसी प्रेम, आत्मीयता, अनुराग एवं जिम्मेदारी निभाने की निष्ठा हो तो हर घर स्वर्ग के रूप में बदलता जाता है।

लेखिका सीतादेवी कहती हैं कि सभी वक्ताओं के कथनों के अनुसार दहेज-दुराचार है' प्रथा के पीछे लड़कीवालों और लड़केवालों में भी कमजोरियाँ नजर आती हैं।

जीवन-साथी के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु लड़कियों के छात्रावास में मधुमती पहुँचती है। भाग्यलक्ष्मी का विचार है –"मेरे होने वाला पति सुंदर, ओहदे वाला होना है। धनवान होना है। उसके कोई निकट संबंधी या रिश्तेदार का नहीं होना है। बड़ा घर रहना है। गाड़ी होनी चाहिए। मुझे ही उस बड़े घर की मालकिन बनना है। फूल की तरह मेरी देखभाल होनी चाहिए। छुट्टियों में देश-विदेश वैसा घूम आना है। सुख-संतोष ही जिंदगी है न ! इसीलिए ये सब दे सकने वाला पति ही मुझे चाहिए।"

मधु : उसे कौन सी नौकरी करना चाहिए ?

भाग्य : मुझे ये सब दे सकने की जो भी नौकरी हो।

मधु : असंभव है न ! आपके फरमाइश के अनुसार लखपति होना चाहिए था। बहुत बड़ा पद का मतलब छोटे उम्रवाला होना मुश्किल है न ! आप के फरमाइश को जो पूरा कर सकता है अगर वह आदमी उम्र में बड़ा होने पर भी शादी करोगी ?

भाग्य : छि: छि: बिलकुल नहीं करूँगी। वह तो उम्र में 25 साल से बढ़कर नहीं रहना है।[224]

दूसरी लड़की उषा के अनुसार –"मैं तो खूबसूरत नहीं। किसी को आकर्षित नहीं कर सकती। मेरे घर वाले दहेज देकर मुझे ऊँचे ओहदे पर नहीं पहुँचा सकते।

इसीलिए उतनी उच्च आकांक्षाएँ नहीं हैं। बड़े लोग जो रिश्ता लाते हैं उसी से मैं शादी करूँगी। अपने दांपत्य जीवन को स्वर्ग बनाऊँगी। मेरे जीवन साथी से यही उम्मीद रखती हूँ कि वह मुझे दिल से प्यार करे, आत्मीयता दिखाए, यही मुझे चाहिए।"[225]

एक लड़की के अनुसार – "मुझमें जीवन साथी को ढूँढ सकने की क्षमता है। मेरे माता-पिता को ढूँढने की जरूरत नहीं है। अगर मैं खुद ढूँढ सकी तो मेरे माँ-बाप के लिए समय और पैसों की बचत होगी। शादी भी सादगी से करना चाहती हूँ।"[226]

मधुमती : कैसा वर चाहिए?

"कैसे भी हो कोई बात नहीं। अपने लिए अनुकूल रहे तो बस है। बड़ी नौकरी न हो तो भी चलेगा। मैं भी नौकरी करते हुए उसका सहारा बनूँगी। दोनों मिलकर खुशी से दो बच्चों के साथ छोटा सा परिवार के साथ जिंदगी को स्वर्ग में बदलने की कोशिश करूँगी।"[227]

मधुमती : और

"मेरे अलावा उसके कोई और दोस्त नहीं रहना चाहिए। सीधा आफिस जाना है। ठीक छः बजे घर पहुँच जाना है। बाहर जाना है या सिनेमा देखना है तो दोनों मिलकर। मिल -बाँटकर घर का साराकाम करना है। साथ रहना और जीना है। ऐसा आदमी मिले तो ही शादी करूँगी।

मधुमती –"नहीं तो"

"मैं ऐसे ही **कुआँरी** रह जाऊँगी।"

मधु – शादी के पहले हाँ करके बाद में और कुछ करे तो?

"तलाक दे दूँगी। पुराने जमाने की लड़कियों की तरह पसंद हो या नापसंद हो उसी से लटककर नहीं रहती। लड़ते-झगड़ते, सहन करते हुए घर में नहीं रहूँगी। उस समय की लड़कियाँ सचमुच बेवकूफ हैं। औरत की बेइज्जती होने पर भी 'तुम्हारे पैरों के पास रहने दीजिए' कहकर गिड़गिड़ाती थी। ऐसे विचार वाली औरतों से मुझे

नफरत है। हमारे देश में इस स्त्रियों के कारण ही हमारे देश में स्त्री का गौरव नहीं रह पाया है। पीढ़ियों के बीच अंतर आ गया है। आज की स्त्री पुरुष पर निर्भर नहीं हो रही है। रसोई में खपती नहीं। पुरुष के समान व्यवहार कर रही है। पुरुष के बराबर मान रही है। ज्यादा कुछ बोले तो कह देती है कि – तुम्हारा और मेरा रास्ता अलग है। मैं अपना गुजारा कर सकती हूँ।"[228]

मधुमती –"निजी जिंदगी में कितने लोग सामना कर सकते हैं?"

"बहुत लोग हैं। सामना करने का साहस आज भी स्त्री में है। लेकिन ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। बस !इतना ही।"

मधु –"स्त्री को यह साहस कहाँ से मिला?"

"पढ़ाई के कारण। जरूरत पड़े तो पढ़ाई और साहस दोनों उसे जीने की ताकत और मौका प्रदान करते हैं।"

मधु –"क्या! ये सब मुश्किल नहीं है?"

हाँ है। लेकिन आधुनिक स्त्री के लिए सबसे ज्यादा आत्मगौरव चाहिए। आत्म-गौरव को ठेस पहुँचे तो उसके लिए स्त्री को संघर्ष करना ही चाहिए।"

श्यामला का विचार - जीवन साथी को चुनना इतना आसान नहीं है। इस मामले में सच कहना है तो पुराने जमाने की स्त्री ही भाग्यशाली है। उस जमाने में स्त्रियों को शादी के बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। बड़े लोगों के द्वारा निर्णय किया गया वर के सामने सर झुकाकर तीन गाँठ बंधवा लेती थीं। तब से उसी व्यक्ति को ही अपनी जिंदगी मानती थी। जीवन यात्रा में छोटे-मोटे झगड़ा होने पर भी समझौता कर लेती थी। खुशी से जिंदगी बिताती थी। लेकिन आज की स्त्री पढ़ी-लिखी है। अपने निजी आशय एवं विचार हैं। हर मामले में पुरुष के बराबर है। इसीलिए जीवन साथी को चुनने में उथल-पुथल हो रही हैं। वर का निर्णय करने के लिए बैठक में होने वाली प्रदर्शनी में कितना समय मिलता है। इतने कम समय में उसकी रूप-रेखा को ही देखेगी या उसके गुण-गान को ही परखेगी। इसीलिए मेरा विचार है कि बड़े

लोगों के द्वारा निर्णय किया गया वर को ही जीवन साथी के रूप में मानना स्त्री के लिए सुविधा एवं सुरक्षा है।"[229]

सुरेखा के अनुसा –"जीवन साथी के बारे में पहले से ही ज्यादा नहीं सोचना है क्योंकि अपने भाग्य, समय और मौंके के अनुसार वर का निर्णय हो जाता है। लड़की और लड़के को दिखाने वाली प्रदर्शनी के नाम पर होने वाली रस्म को मैंने कई बार देखा। एक लड़का कई लड़कियों को देखकर सुंदर नहीं है कहकर एक साधारण-सी लड़की को पसंद कर लेता है। लोग चकित होते हैं कि वह लड़का उस लड़की को कैसे पसंद किया है? लड़कियों की भी वही स्थिति है। जीवन साथी के बारे में कई सपने होने पर भी वर को देखने का क्षण हो या उस समय की मानसिक स्थिति का प्रभाव हो, उसी समय निर्णय हो जाता है। कई लोगों के जीवन में ऐसे ही घटते हैं। हाँ! प्रेम विवाह में वह लागू नहीं होता। होने वाले पति के बारे में जो सपने देखते हैं उसमें आधा भी वास्तविकता पर नहीं उतरता है। इसीलिए सपने छोड़कर शादी के बाद जीवन साथी को अपने मनोनुरूप उसे बदलने की कोशिश करने में ही समझदारी है।"[230]

शांता के अनुसार –"अपनी अभिरुचि को व्यक्त करना आसान ही है। लेकिन उसे वास्तविकता में बदलना मुश्किल है। जीवन साथी को चुनना जितना संतोष भरित विषय है उतना ही कष्टतर है। क्योंकि आज के सभ्य समाज में लड़के बाह्य तौर से सब सुंदर एवं अच्छे दिख रहे हैं। लड़कियों को पटाने के नुस्खे बड़े पैमाने पर सीख रहे हैं। यह तो खतरनाक साबित हो रहा है। धोखा खाने की संभावनाएँ भी अधिक हैं। शादी होने के बाद कोई मन-मुटाव हो तो लड़के के माता-पिता भी कहने लगते कि – "हाँ, होने दो। जान बूझकर ही शादी किये थे न। अब भुगतने दो। हाँ, इतना मैं समझ सकती हूँ कि लड़के को पसंद करने में लड़कियाँ एक प्रकार का थ्रिल महसूस करती हैं। इस खुशी को शब्दों में कह पाना मुश्किल है।"[231]

मधुमति बाहर आकर सोचने लगती है कि -"स्त्री के लिए इस छात्रावस्था में ही सुख-संतोष एवं स्वेच्छा मिलते हैं। वे दिन सुनहरे **थे** जो कभी वापस नहीं आते हैं। वे

लड़कियाँ साहसी एवं समस्याओं को सामना करने वाली भी हैं और इन सांसारिक बंधनों में तिनके की तरह बहजाने वाली भी हैं।"[232]

उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि लड़की के लिए पढ़ाई का समय ही जिंदगी का सबसे सुनहरा पल है। जिम्मेदारी से मुक्त जीवन बिता सकती है। जी भर के हँस सकती है। शादी के बाद छोटी-छोटी जिम्मेदारियाँ ही चारों ओर से घेरने लगती हैं, जिससे बाहर आना शायद ही असंभव या मुश्किल होता है।

कुटुम्बराव नामक व्यक्ति डाक कार्यालय में नौकरी करते हैं। वे अपने मित्रों से शादी के बारे में कुछ परामर्श करते हैं। सुधीर बी.ए. पढ़कर नौकरी करने लगाता है, जिसका विचार है कि-बैठक में देखकर एक निर्णय पर पहुँचना बेवकूफी है। साधारणतया लड़की उस समय अधिक संकोचशील हो जाती है, कुछ नादानीपन दिखाती है। छात्रा हो, कामकाजी हो या घर में बैठने वाली हो, पसंद करने के बाद लड़की के साथ कुछ दिनों का परिचय बढ़ाना है। एक दूसरे के अभिमतों को जानना जरूरीहै। अगर पसंद हो तो शादी कर सकते हैं नहीं तो दोस्त बन सकते हैं। लेकिन ऐसा व्यवहार बढ़ाने में लड़कियाँ हमारा साथ नहीं देती हैं। शादी करना ही है कहकर लड़कियाँ अधिकार जताने लगती हैं। शादी न हुआ तो उस पर अत्याचार या अन्याय हो गया कहते हुए घुटन महसूस करने लगती हैं, अनशन करने लगती हैं, या सोने की गोलियाँ खा लेती हैं। परिचय बढ़ाने वाले युवक को देखकर धोखेबाजी मानकर शंका करने लगते हैं। ऐसी लड़कियों से मुझे चिढ़ है। इन लड़कियों का मानना है कि पवित्रता केवल स्त्रियों तक ही सीमित है, मर्द में भी ईमानदारी नहीं होती है- ऐसा समझना बिल्कुल गलत है। देश में स्त्री स्वेच्छापूर्वक, साहस के साथ मर्द से परिचय बढ़ाकर, एक दूसरे को समझने के बाद ही जीवन साथी का निर्णय करने में शायद एक और शताब्दी लग जाएगी। तब तक हम युवा के लिए बैठक वाली प्रदर्शिनी ही शरण है।"[233]

प्रसाद का विचार है कि –"सच पूछे तो आज के युवा 'शादी करनी है'विषय में जल्दीबाजी नहीं कर रहे हैं, क्योंकि 'शादी से ही' कतराने लगे। इस जमाने की

लड़कियाँ केवल शीशे की गुड़िया हैं, जिनमें सहनशीलता की कमी है। ससुराल में मासूम-सी दाएँ कदम रखने वाली यह लड़की लड़की नहीं, मुग्धा है। दूसरे दिन से बुदबुदाने लगती है। ससुराल में सुख-सुविधाओं की कमी महसूस कर, चिढ़ते हुए शयनागार को नरक बना देती है। यह नरक पूरे घर में फैल जाता है।"[234]

मधुमति – मैं नहीं मानूँगी कि सभी स्त्रियाँ ऐसी ही हैं।

प्रसाद - अधिकतर प्रतिशत ऐसी ही हैं।

मधुमति –"आप ऐसा मत सोचिए। लड़की भी अपने माता-पिता और पूरे परिवार को छोड़कर पति के साथ बिताने आती है। अपने परिवार को स्वर्ग बनाने का सपना लेकर ससुराल में कदम रखती है। उस स्त्री का गौरव और आदर करने की जिम्मेदारी आप सब पर है न ! पुराने जमाने की स्त्री हो तो ससुराल में यातनाओं को सहती हुई जीती थी। लेकिन आज की स्त्री ऐसी नहीं है। पढ़ी-लिखी संस्कारवान् स्त्री के आत्म-गौरव को ठेस पहुँचती तो वह सह नहीं सकती।"[235]

प्रसाद –"आप कह रही है कि- आज की युवती पढ़ी-लिखी संस्कारवान् है इसीलिए आत्म-गौरव को ठेस पहुँचे तो बरदाश्त नहीं कर पाती। लेकिन आज की स्त्रियाँ आत्म-गौरव के नाम पर अहंकार को प्रदर्शित कर रही हैं। ससुराल में अपनापन दिखाकर घुल-मिल जाने के बजाय अपनी अलग विशेष अस्तित्व की सोच को बढ़ाते हुए, अपने चारों ओर दायरा बनालेती हैं। इसका नतीजा अकेलापन है। इस अकेलापन को बरदाश्त न कर, पति के प्रति चिढ़ते हुए परिवार को नरक बनाने में तुली हुई रहती हैं। उस मर्द को परवरिश किये माता-पिता भी चाहिएऔर विश्वास कर आयी हुई जीवन-साथी भी चाहिए। आपने एक बात कही थी कि - पत्नी के आत्म गौरव को ठेस पहुँचने की स्थिति के बारे में। अगर यही स्थिति पुरुष की भी हो तो वह भी सह नहीं सकता। इसका सुझाव वह भी ढूँढ लेता है।"[236]

मधुमती – तो आप क्या कहना चाहते हैं ?

प्रसाद –"ज्यादातर लड़कियाँ शादी होते ही पति पर अधिकार जताते हुए, स्वार्थी बनकर अलग घर बसाने की सोच करती हैं। इस मामले में मर्द असमर्थ बनता जा रहा है।"[237]

मधुमती - अलग घर बसाने में सुख-संतोष हो सकता है न !

प्रसाद –"हाँ! हो सकता है!लेकिन माता-पिता के लिए बच्चों की आवश्यकता बुढ़ापे में ही है न ! इस समय में शादी की वजह से उसे छोड़ना पड़ रहा है। यह तो हृदय विदारक विषय है न।"[238]

कुमार - एम.कॉम, पढ़ रहा है। उसका अभिमत है कि-"सबका विश्वास है **कि** शादी तो जन्म-जन्मांतर का बंधन है। लेकिन ज्यादातर लोग झूठ बोलते हैं। खासकर लड़की **की** उम्र में कम और लड़के की आमदनी **को** अधिक बताते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। लड़की की आदतें, अभिमतों का जानना चाहे तो कोई भी असलियत को नहीं बताते हैं। बैठक वाली प्रदर्शनी में लड़की की रूप रेखा को देखकर ही निर्णय करना पड़ता है। बाद में इस सुंदर लड़की के अवगुण दिखे तो सहना मुश्किल हो जाता है। लड़कियों के लिए भी इस हालत से गुजरना पड़ता है। सच माने तो बड़े लोग लड़की लड़कियों के लिए जीवन साथी को चुनने में सही मौका नहीं प्रदान कर रहे हैं।"[239]

इस कथनों के साथ लेखिका सीतादेवी मधुमती के माध्यम से व्यक्त करती है कि आज की युवा की चाह के मुताबिक एक दूसरे को समझने के लिए आपस में बातें होनी चाहिए। शादी केवल रूप-रेखा पर आधारित न होकर अंतरंग या मानसिकता पर होना चाहिए। पुराने जमाने में बच्चों के छोटे होने के कारण बड़े लोग निर्णय लेते थे लेकिन आज के समय युवा वर्ग पढ़े-लिखे, नौकरी करते हुए काफी आगे बढ़ चुके हैं। उनके अपने विचार अभिमत, पसंद आदि हैं। इस संदर्भ में बड़ों की सोच की तुलना में युवकों की सोच बेहतर साबित हुई। क्योंकि शादी का मतलब है दो लोगों को जोड़ना नहीं बल्कि दो दिलों का जुड़ना है, जिससे नयी सृष्टि का निर्माण सकारात्मक रूप से संभव होता है।

3.10 विवाह के बाद नारी जीवन में बदलाव और पति के साथ समझौते के रास्ते :‘सहजा’[సహజ]

भारतीय समाज में विवाह के बाद स्त्री के जीवन में कई परिवर्तन आ जाते हैं। पतियों के स्वभाव के अनुरूप पत्नियों को भिन्न-भिन्न जीवन शैलियाँ अपनानी पड़ती है। इसी की आलोचना करते हुए लेखिका वोल्गा द्वारा लिखा गया उपन्यास है – ‘सहजा’।

1991 में भारत सरकार के द्वारा विविध सामाजिक एवं आर्थिक संशोधनों के परिणाम स्वरूप तरह-तरह की नीतियाँ अपनायी गईं। औद्योगीकरण के कारण स्त्री की मानसिकता में बदलावा आया। नारी को नौकरी करने की सुविधा मिलने के कारण नारी की आर्थिक स्थिति बेहतर होने लगी। इस कारण एक ओर स्त्रियों की आत्म-निर्भरता, घर-बाहर की जिम्मेदारियों को निभा पाने की क्षमता, पति-पत्नी की आपसी संवेदनाओं की समझ एवं सूझ-बूझ विकसित होने लगी तो दूसरी ओर इसके विपरीत वैश्वीकरण के इस समय में आज भी स्त्रियों को पति की इच्छानुसार व्यवहार करना पड़ रहा है। इसी व्यथा और एकाकीपन को लेखिका वोल्गा ने बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है।

परिवर्तनशील परिस्थितियों में स्त्री-पुरुष की सहभागिता या समरसता पर बलदिया जा रहा है। आज कल लगभग यह नियम बन गया है कि अगर दोनों बराबर दर्जे के हों तो व्यवहार में भी समानता होनी चाहिए। आज की नारियों में समय एवं स्थिति के अनुसार बदलाव की आकांक्षा व्यक्त हो रही है।

गुंटूर के स्नातक महाविद्यालय में सहजा, रमा, शारदा, तथा उषा नाम की चार सहेलियाँ, जो सहपाठी थीं जिन की रुचियाँ भिन्न-भिन्न थीं। रमा को संगीत में, उषा को साहित्य पठन में और शारदा को चित्र-लेखन में विशेष अभिरुचि रही। इन तीनों

सहेलियों की **क्षमताओं** से प्रेरित होकर नायिका सहजा भी इन कलाओं के प्रति रुचि रखते हुए अपने दोस्तों को प्रोत्साहित करती थी।

पढ़ाई के बाद चारों की शादी हो जाती है और जुदा भी हो जाते हैं। इनमें से सहजा स्वतंत्र विचारवाली होने के कारण **नौकरी करती हुई** अपने मनोनुरूप पति मिलने तक शादी के लिए इंतजार करती है और वैसे ही प्रसाद नामक स्वंतंत्र विचारवाले व्यक्ति उसे पति के रूप में प्राप्त होता है।

सहजा – शारदा

कुछ साल बाद सहजा और उसके पति प्रसाद का तबादला हैदराबाद से गुंटूर हो जाता है। सहजा बहुत खुश होती है कि गुंटूर शहर में फिर से अपनी सहेलियों के साथ मिलकर आनंदमय जीवन बिता सकती है। लेकिन सहजा उनकी वास्तविक स्थिति को देखकर खिन्न हो जाती है। उन तीनों सहेलियों के जीवन में जो नैराश्य, निर्लिप्तता, उदासीनता , निर्जीव एवं नीरस मानसिकता छा गई है, वह उन्हें इस दशा से बाहर लाने की पूरी कोशिश करती है। भविष्य के लिए कार्योन्मुख कर उन्हें अपने अस्तित्व को पहचानने की प्रेरणा बनती है।

शारदा को चित्र लेखन में दिलचस्पी है, तो उसके पति रामाराव को सिनेमा देखने का पागलपन है और वह भी अश्लील फ़िल्म देखना बहुत पसंद करता है। सहजा शारदा से मिलकर अपनी नयी तस्वीरों को दिखाने के लिए पूछती है तो शारदा का जवाब है कि –"अब नया और पुराना कुछ भी नहीं।"[240]उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं।

"मेरे पति को शाम को 5.20 बजे चाय बनाना है। वे5.30 बजे तक घर पहुँचेंगे। उनके पहुँचने तक चाय गरम-गरम बनना है। नहीं तो, उस दिन दोनों के लिए अशांति है।फ्लॉस्क में कॉफी रखे तो उसमें से बू आती है। उन्हें 25 सालों से शाम को 5.30 की कॉफी पीने की आदत पड़ गयी।"

सहजा –"तुम्हारे पति को कॉफी पीने की आदत है लेकिन कॉफी बनाकर पीने की आदत नहीं ?

शारदा–"अरे ! उनकी सारी आदतें निरापद पूरी होने के लिए उनकी माँ के गुजरने के बाद मुझसे शादी की है।"[241]

शारदा का यह कथन सहजा को बिल्कुल भाता नहीं। सहजा को लगता है कि शारदा की जिंदगी तबाह हो गयी। शारदा की रवैय्या को देखकर सहजा पूछती है कि –"बिना चित्र लेखन की जिंदगी तुम कैसे जी पा रही हो ?"

शारदा बताती है कि – "शादी के प्रारंभिक दिनों में मैंने अपने चित्रों को उन्हें दिखाया था। लेकिन उन चित्रों को देखने के बाद उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार का संतोष, आश्चर्य या प्रसन्नता नहीं दिखी। उन्होंने चिढ़ते हुए उन चित्रों को उठाकर दूर रख दिया था। तब से उन चित्रों को लेकर वह बार-बार चिढ़न।ताना कसना, बात बेबात पर कोसना, गुस्सा करने लगा। ऐसा व्यवहार करते हुए अपनी नापसंदगी और घृणा को व्यक्त करने लागे।"[242]वे मुझे चित्र बनाने के लिए जो भी सामग्री की जरूरत होती थी जैसे रंग, ब्रूश, फ्रेम आदि न खरीदते हुए भी, कहते थे कि चित्र-लेखन पर बिताने वाला समय और खर्च (पैसा) दोनों को फिजूल हैं।"[243]

जब तक पिताजी जीवित रहे तब तक मुझे इस कमी को महसूस करने की जरूरत नहीं पड़ी थी। लेकिन उनके गुजर जाने के बाद मेरा उत्साह धीरे-धीरे अंदर ही अंदर दफना दियागया। मेरे पति के काम में जरा-सा आगे-पीछे हो या उथल-पुथल हो तो वह मेरे चित्रों पर ही सारा गुस्सा उतारता था। धीरे-धीरे मेरे मन में वह उत्साह क्षीण होते-होते शिथिल होता गया।"[244]

इसी चित्र-लेखन को लेकर एक दिन झगड़ा हो गया। रामाराव ने यह भी कह दिया कि –"चित्र लेखन के प्रति तुम्हारी इतनी दिलचस्पी हो तो मेरे और तुम्हारे बीच कोई रिश्ता नहीं रहेगा।"[245]तब से लेकर आज तक मैंने ब्रूश को भी नहीं छुआ।

चित्र-लेखन को लेकर रामाराव ने शारदा के संबंध-विच्छेद की चेतावनी देते हुए उस की कला का गला घोंट दिया। रामाराव अपनी अहंवादी प्रवृत्ति का परिचय देते हुए शारदा का व्यक्तित्व और उसकी संवेदनाओं को क्षत-विक्षत कर दिया जो

पुरुष प्रधान समाज की एक मुख्य प्रवृति है। रामाराव ने शारदा की सृजनात्मक शक्ति का घोर अपमान कर बहुत बड़ा अपराध और अत्याचार किया है। शारदा की आर्थिक पराधीनता, उस को इस दबाव के खिलाफ संघर्ष करने में सहयोग नहीं देती।

पति रामाराव की नज़र में पत्नी एक कठपुतली, दैनंदिक जीवन की सुख - सुविधाएँ प्रदान करने वाली मशीन होती है। उसकी दृष्टि में पत्नी की अपनी कोई निजी इच्छाएँ नहीं होनी चाहिए। पत्नी उसके लिए मात्र समयानुसार एवं नियमानुसार हर आवश्यकता को पूरी करने वाली मशीन मात्र है, वो जब चाहे उसकी यौन संतुष्टि करे। वह केवल शारीरिक भोग से ही संतुष्ट नहीं होता बल्कि उसके मन-मस्तिष्क पर भी अधिकार जताकर अपने अधीन रखना चाहता है।

शारदा ज्यादातर स्थितियों से समझौता करने वाली स्त्री है फिर भी कभी-कभी मन विद्रोह कर उठता है। मन को मनाने की कोशिश करने पर भी बार-बार अपना अहं उद्वेलित करता है। इसी कारणवह अपने अस्तित्व को जताना चाहती है। अक्सरवह पति और मन के बीच संघर्ष से जूझती रहती है।

एक बार शारदा अपने बच्चों को लेकर सहजा और प्रसाद के साथ अमरावती शहर घूमने जाती है। आने के बाद पति रामाराव को अमरावती के बारे में बताती है। रामाराव गुस्से में आकर शारदा को खूब सुनाता है कि –"मेरे घर में मेरी मर्जी के मुताबिक चलना है।"[246]इसी कारण रामाराव से बात बिगड़ जाने पर शारदा घर छोड़कर चली जाती है। आर्थिक स्वावलम्बन की कोशिश में लग जाती है। शारदा अपने आप के संघर्ष में सफल हो गई। अब उसको परिवार और समाज से जूझना है।

सहजा – रमा

चार घनिष्ठ मित्रों में से **दूसरी** सहेली है –रमा जो संगीत प्रेमी है। कॉलेज में पढ़ते समय संगीत में इतनी तल्लीन हो जाती थी कि अपना **सुध-बुध** खो बैठती थी। आम स्त्रियों की भाँति बड़ी खुशी से अपने वैवाहिक जीवन को आनंद से बिताती है। अब रमा को अपने बच्चे, पति और पारिवारिक जीवन के अलावा और किसी विषय में

दिलचस्पी नहीं है। पारिवारिक जीवन में वह इतना डूब गयी है कि अपना अत्यंत्र प्रिय विषय संगीत को भी भूले-बिसुरे थी।

रमा का सबसे पसंदीदा कार्यक्रम बालमुरली का गाने का कार्यक्रम है। शादी के कई साल बाद सहजा उसी दिन रमा के साथ उस संगीत सभा में जाना चाहती है। रमा बड़ी खुशी से अपने दैनंदिक कार्यक्रम के बारे में बताने लगती है कि "घर का पूरा काम होने तक शाम चार बज जाता है। मेरे बेटे का स्कूल से आने तक, और सासूमा को नाश्ता बनाना है। इन दोनों को आटे कापराठे या पकौड़ा बनाना है। मेरे पति के आने तक शाम 5.30 बजे जाता है। उनके लिए नाश्ता अलग किस्म का बनाना है। मेरे पति नाश्ता खाने के बाद क्लब को जाते हैं। तब इन सब के लिए खाना बनाना है। रात में मेरे पति के आने तक गरम पानी तैयार रखकर चावल चढ़ाना है। क्लब से रात को 12 बजे आने पर भी चावल गरम-गरम बनाना ही है।"[247]

रमा का पति आते-आते ही जल्दी से क्लब जाने की बात बताता है –"रमा! आज नाश्ता न होने पर भी कोई बात नहीं। कॉफी दे दिये तो भी चलेगा।"

रमा –"अरे रे रे! सब तैयार है। बस! आपके आने की ही देर है।"[248]

इस घटना को देखकर सहजा का पारा चढ़ जाता है कि चार साल के बाद दोस्त आयी तो उस से बातें करने की या पति से परिचय कराने की दिलचस्पी भी नहीं दिखाई दी। बस ! अपने रोज के काम में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होना है।"[249] रमा **तो अपने** परिवार रूपी सागर में अत्यंत आनंद से डुबकियाँ मारने लगी। सहजा ने भी रमा के पूरे कामों में हाथ बँटाया।

बालमुरली के मशहूर गीत 'नगुमोमु'का कीर्तन शुरू होने **का** है, अचानक रमा उठकर 'दूध को नहीं उबाला है, दूध फट जाएगा' कहते हुए वहाँ से निकलकर घर चली जाती है। रमा का उठकर चले जाना सहजा को निश्चेष्ट कर देता है। सहजा सोचती है कि "रमा को कैसे मालूम होगा कि - उसकी जिंदगी ही फूट गयी।"

'दूध फट जाए' तो क्या हो जाएगा? एक दिन खाने में दही नहीं हो तो क्या हो जाएगा? भारतीय स्त्री को सदमा पहुँचेगा?" रमा की संगीत की चाह को कौन निगल लिया? पति? सास या बच्चा[250]

इसे देखकर सहजा को लगता है कि–"शादी के बाद स्त्रियों की जिंदगियों को अंधकार की गर्त में धकेलने की इतनी ताकत पति, रसोई घर और ससुराल इन तीनों में है?" स्त्रियों की अभिरूचियों की गला-गोंठने की रसोईघर की शक्ति इतनी प्रबल है?"[251]

इससे स्पष्ट है कि रमा के पात्र के द्वारा पारिवारिक चौखट के दबावों को प्रस्तुत किया गया है। पति के बारे में रमा कहती है कि –"नौकरी के बाद हर शाम क्लब जाना और ताश खेलना रमा के पति का अत्यंत आनंदमय एवं अनिवार्य दैनंदिक कार्य है।"[252]सहजा रमा के घर की हालत समझ गयी कि –"शारदा की तरह रमा भी पति के निरकुंशता की शिकार बनकर अपनी चाहतों को दफनाने लगी।"[253]

रमा की बातों से पता चलता है कि वह अपने पति के दुर्व्यसनों में भी खुशी महसूस कर रही है। उन सभी विषयों को सुनकर सहजा का मन चकरा जाता है।

बातों-बातों में शारदा रमा की अस्वस्थता के बारे में पूछती है –"दुबली हो गयी हो? कुछ खास बात है, क्या?" तो रमा मुस्कुराते हुए उत्तर देती है कि –"खास-वास कुछ नहीं। शादी होने के दो साल के बाद गर्भवती होने के कारण तबीयत बिगड़ गयी। दस दिन तक बिस्तर पर पड़ी रही। सारा घर हनुमान के जाने के बाद अशोक-वाटिका की तरह, अस्त-व्यस्त रहता था। सास बिल्कुल काम नहीं करती है। मेरे पति को दफ्तर और क्लब के अलावा........ मुझे डॉक्टर के पास ले जाने की फुरसत भी नहीं रहती। ठीक समय पर भोजन न मिलने के कारण मेरे पति ही दुबले हो गये। फिर भी मैं ही उठकर कुछ सब्जी बनाती थी। रात में पति को जल्दी घर आने को कहे तो भी नहीं आ पाता। वह तो उस क्लब का दीवाना बन गया था।"[254] जिसे सुनकर शारदा चकित रह जाती है।

लेखिका वोल्गा कहती हैं कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की निजी स्वतंत्रता न होते हुए भी कम से कम पुरुषों की गलतियों को भी न समझ पाना, उन गलतियों की तरफदारी करना- ये सब स्त्री की अज्ञानता की पराकाष्ठा के साथ-साथ पुरुष की मानसिकता को भी सूचित करती है। सहजा के उषा से मिलते ही साहित्य की बातें शुरू हो जाती है।

सहजा - उषा

घनिष्ट मित्रों में दूसरी सहेली है-उषा। उषा साहित्याभिलाषी है और पति शेषगिरि राव को भी अश्लील फ़िल्में देखने का बहुत शौक था। साथ-ही-साथ वह साहित्य के प्रति घृणा भी करता था। लेकिन उषा कामकाजी होते हुए भी समझदारी से व्यवहार करती थी। न पति से झगड़ा करती और न पति के अनुरूप भी व्यवहार करती। आम गृहिणी की तरह हर काम सुव्यवस्थित रूप में कर लेती है। शेषगिरी भी पत्नी की पसंद को नकारता नहीं है लेकिन अपनी दैनंदिक सुख सुविधाओं में किसी प्रकार का व्यवधान भी पसंद नहीं करता।

उषा को पसंद है कि- "पति-पत्नी दोनों मिलकर बातें करने के सिलसिले में उत्पन्न परस्पर प्रेम, आपसी निकटता का आवेग, एक होने की प्यासी तड़प से मिलने वाला आनंद चाहिए।"[255]

लेकिन शेषगिरी इस तरह के आपसी प्यार को जानता ही नहीं –"उसके लिए यौन भोग एक जरूरत मात्र है जिसकी माँग बाकी चीजों की तरह ही करता है। इस माँग को उसे पूरा करना है। सुबह होते ही कॉफी, गरम पानी, नाश्ता, भोजन – जिस तरह वह माँगता उसी तरह यौन संबंध को भी माँगता है। उनकी मॉगों की पूर्ति करने में, इसे मैं अपनी जिम्मेदारी मानकर पूरा करती हूँ। उन की जरूरतों की पूर्ति करना मेरे लिए उतना मुश्किल नहीं बल्किखुशी की बात है। लेकिन इस माँग को इतनी यांत्रिकता से पूरा करना मेरे लिए बहुत मुश्किल हो रहा है। क्या! प्यार इतना यांत्रिक होता है? शारीरिक मिलन के बावजूद मन का मिलन न हो तो कैसे? इस आदमी को मन की स्थिति के बारे में कब समझ में आएगा?"[256]

इन कथनों के आधार पर आधुनिक नारी की मानसिक स्थिति व्यक्त हो रही है। स्त्री कोई यंत्र नहीं है। यौन संतुष्टि की जिंदगी में एक अहं भूमिका है। स्त्री कोई चीज़ नहीं है कि पुरुष जब चाहे तब उसका इस्तेमाल कर छोड़ दे।

हर स्त्री पति का प्यार चाहती है। प्रतिरूप में पति अपना प्यार न दिखाकर, अधिकार जताता है। खान-पान की तरह शारीरिक भोग को भी पुरुष एक साधारण विषय-सा मानता है, लेकिन स्त्री ऐसे शारीरिक संपर्क में पुरुष का साथ नहीं दे सकती है। अगर साथ देने पर भी एक यंत्र की तरह व्यवहार करती है। वर्तमान संदर्भ में इस प्रकार का यांत्रिक जीवन किसी भी स्त्री के लिए अपमानजनक माना जाता है।

उषा जैसी कई स्त्रियाँ, इसके खिलाफ आवाज उठाने की क्षमता होते हुए भी चुप रह जाती हैं और इसे भी 'पत्नी-धर्म' मानती है। दुर्भाग्य की बात है कि न ही वह अपनी मनोव्यथा को व्यक्त कर पाती है और न ही पुरुष उसे समझने की कोशिश करता है।

सवाल बार-बार उठता है कि-" जब स्त्री यांत्रिक यौन भोग को पसंद नहीं करती है तो वह क्यों नहीं कह पा रही है? कहने से उसे कौन रोक रहा है?"[257]

लेखिका वोल्गा कहती हैं विवाह के समय में कहे गये धार्मिक सूत्रों का पूर्ण अवगाहन न होना और लैंगिक संपर्क को ठीक से न समझपाना भी एक कारण हो सकता है। लैंगिक संपर्क के बारे में चर्चा करना भारतीय घरों में निषिद्ध माना जाता है। जब स्त्री पहली बार संभोग में भाग लेती है तो पुरुष को अधिक श्रेष्ठ समझती है। जबकि इस संदर्भ में पुरुष का भी ज्ञान अल्पमात्र हो सकता है। पत्नी को कैसे भागीदार बनाया जाए, शायद पति को भी न मालूम हो सकता है। इस विषय में समाज की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। शादी के बाद वर-वधु को बिठाकर इसका अवगाहन करना है। यह कोई नीच कृत्य या रहस्य के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। इसे छिपाने की कोशिश न करके नूतन वर-वधू को परस्पर प्रेम के साथ लैंगिक संबंध की स्थापना की आवश्यकता को बताना है क्योंकि वह नवीन सृष्टि के लिए अद्‌भुत ज्ञानवर्द्धक मार्ग होता है।

आमतौर पर जब पति-पत्नी इसे समझने लगते हैं तब तक समय एवं स्थितियाँ हाथ से निकल जाती हैं। खासकर पत्नी शयन कक्ष में अज्ञान और संकोच के कारण एक गुलाम बन जाती है।

समाज को डर है कि इस मुद्दे पर खुले आम चर्चा हो तो जवान बच्चे विश्रृंखल हो जाऐंगे। लेकिन सच्चाई यह है कि युवावस्था में उत्सुकुता, आवेग एवं आवेश के कारण अवैध लैंगिक संबंध में उलझ जाते हैं। सब लोगों को इस विषय के प्रति जागरूक करें। अगर एक दूसरे के साथ सच्चे प्रेम के साथ उस आनंद को समझ सके तो अवैध संबंधों के साथ-साथ स्त्री में होने वाला संकोच एवं मानसिक घुटन भी समाप्त होने की संभावना है।

सहजा के उषा से मिलते ही साहित्य की बातें शुरू हो जाती है। इस से सहजा बहुत खुश होती है। सहजा उषा से कहती है कि –"तुम एक मात्र हो जो साहित्य के पठन का विस्मरण नहीं किया।"

उषा –" वही न रहे तो मेरी जिंदगी कब की कुंठित हो गयी होती?"[258]

"सहजा के पति प्रसाद का खाना बनाने की बात सुनकर उषा चकित हो जाती है क्योंकि साधारणत: पति ज्यादातर घर के काम नहीं करता है। उषा कामकाजी होते हुए भी घर के काम को भी सुव्यवस्थित ढंग से निपटा लेती है।"[259]

उषा जैसी कई स्त्रियों को मालूम नहीं है कि घर केकाम संभालने में पति भी जिम्मेदार है। घर और बाहर सुविधापूर्वक पति-पत्नी दोनों को जिम्मेदारी निभानी है। जब दोनों भागीदार बनते हैं तो वह घर केवल घर मात्र न रहकर स्वर्ग में बदल जाता है।

अब तक यही होता आ रहा है कि पति नौकरी कर आये तो घर में आराम से बैठ सकता है, जबकि पत्नी को दुगुनी भागदौड़ करनी पड़ती है। आश्चर्य इस बात का है कि पत्नी खुद अपनी सीमाएँ नहीं जानती हैं।

उषा सहजा के घर जाकर उनके जीवन शैली को देखकर खुश होकर समझती है कि –"जो भी हो, पति-पत्नी दोनों की आदत एक सी हो तो उसमें झंझट

नहीं रहता। लग रहा है कि प्रसाद अच्छा आदमी, सहजा के दोस्तों से मिलने गयी। उसके आने का इंतजार करते हुए, खाना भी बना देता है। पत्नी के दोस्त और बच्चों से आत्मीयता के साथ व्यवहार करता है। प्रसाद का व्यवहार देखकर उषा को अपने पति की बातें याद आती है कि–"तुम्हारे साथ मैं भी बर्तन माँझते घर में बैठूँ।" शेषगिरी की नजर में बर्तन माँझना नीच काम है । वैसे काम मुझे (औरत) ही करना है। दोनों के मिलकर काम करने की सोच शेषगिरी के मन में नहीं आती है। उससे करवाने की सोच मुझमें भी नहीं आती ?"[260]

उषा जिंदगी का सही मतलब और सार्थकता के बारे में शारदा को समझाती है कि –"प्रेम न होने के कारण पारिवारिक समस्याएँ बढ़ रही हैं। इस समाज में प्रेम के बारे में सही समझ नहीं है। सच्चा प्रेम जहाँ मिलेगा, वहाँ जाने का मेरा मन चाह रहा है। मुझमें प्यार करने की ताकत है। प्यार को पाने का आत्म विश्वास भी है।...."मेरे प्यार को पानेवाला और मुझे प्यार करनेवाला आदमी मिले तो जिंदगी सुधर जाएगी।"[261]

शारदा चकित होती हुई उषा को समझने की कोशिश कर रही है –"अब उषा प्यार करना चाहती है। प्यार को पाना चाहती है। दो बच्चों की माँ होकर, तलाक शदा होकर, अब प्यार का मूल्य समझने लगी। कोई भी अच्छा आदमी उसे प्यार कर`तो स्वीकारने के लिए तैयार है। यह उषा निस्सहाय नहीं, अबला नहीं, असमर्थ नहीं, प्यार की ऊर्जा से भरी हुई ,जिंदगी को प्यार करने वाली ,जिंदगी का मूल्य जानने वाली औरत है। पति उसे छोड़कर पर स्त्री के साथ रहने मात्र वह नहीं मर गयी, उसके पैरों तले दबी नहीं, अपनी जिंदगी को बनाने की कोशिश में लग गयी है।

चार सहेलियों में चौथी सहेली है – सहजा। इस उपन्यास में सहजा की अहं भूमिका है। जिंदगी की सार्थकता को समझने वाली और उसके अनुरूप व्यवहार करने वाली सहजा स्वेच्छा और स्वतंत्र भावों से युक्त है। सहजा पढ़ाई के बाद नौकरी कर, आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर, अपनी मानसिकता को समझने वाली व्यक्ति से ही शादी करना चाहती थी। वैसे ही प्रसाद नामक आदर्श युवक से शादी होती है।

सहजा अपनी तीनों सहेलियों की अभिरुचियों से प्रेरित होकर उन से सीखती है। प्रसाद के तबादले के कारण गुंटूर में वास करने लगते हैं। सहजा गुंटूर में अपनी पढ़ाई के दिनों को याद करते हुए अपनी सहेलियों से संतोषपूर्वक जीवन गुजारने का सपना देखने लगती है।

शारदा, उषा और रमा की जीवन शैली को देखकर सहजा उदास होने लगती है। उन तीनों को जिंदगी की सार्थकता के बारे में सिखाना भी चाहती है। उनकी जिंदगी में उत्साह भरना चाहती है।

प्रसाद सहजा को समझाता है कि –"तुम्हें अज्ञानता के प्रति गुस्सा आना ठीक है लेकिन अज्ञानता से पीड़ित लोगों के प्रति गुस्सा आना ठीक नहीं है। जो लोग इस अज्ञानता का फायदा उठाते हैं उनसे द्वेष करो। जो इस अज्ञानता से पीड़ित है उनसे प्रेम करो।"[262]

प्रसाद भी सहजा की वेदना को समझकर उसे दूर करने की कोशिश करता है। ऐसे बहुत कम मर्द रहते हैं जो औरत की सहायता के लिए तत्परता से आगे बढ़ते हैं। प्रसाद और सहजा दोनों समाज को स्वस्थ बनाने का प्रयास करते हैं।

दक्षिण भारत के सामाजिक और पारिवारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में नारी की समस्याओं का चित्रण और नारी चेतना के बल पर विकसित होने वाली मौलिक उद्भावनाएँ तेलुगु उपन्यासों में दिखाई देती है । अंतिम दशक के जीवन - बोध ने नारी जीवन के सामने कई प्रश्नों को खड़ा किया। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में विकसित होने वाली अमानवीय प्रवृत्तियाँ और नगरीकरण की समस्याओं की अभिव्यक्ति तेलुगु उपन्यासों में विशेष रूप से दिखाई देती है। नारी के व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिद्वंद्विता और नारी के दायित्व की प्रधानता का रेखांकन तेलुगु उपन्यास साहित्य में किया गया है। अंतिमदशक के भारतीय नारी जीवन के व्यापक पक्षों का प्रौढ़तम चित्रण तेलुगु उपन्यासों में भी हुआ है। कथ्य के अनुरूप विषय वस्तु का गठन और चरित्रों की समन्वित दृष्टि का विकास तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है। अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के सृजन में जब नारी

जीवन की नयी प्रेरणाएँ अपना योगदान देने लगी हैं, तब तेलुगु उपन्यासों में नव्यतम रूप में कथ्य उभरने लगे। नारी की समाज मनोवैज्ञानिक स्थिति, नयी स्थितियों में नारी का अंतर्द्वंद्व तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है।

पाश्चात्य सभ्यता के मोह में पारिवारिक मूल्यों का विघटन, बेटे के द्वारा माँ की उपेक्षा (**मुझे जाने दो**) परिवार में नारी की उपेक्षा का परिचय देता है। विवाह की प्रक्रिया में पारिवारिक व्यवस्था की भूमिका और स्वेच्छा के प्रश्न को लेकर भी विचार किया गया है **(कुमारी मधुमती)।** विवाह के बाद पति के साथ नारी-जीवन में आने वाला परिवर्तन समझौते के रास्ते को अपनाने की विवशता और उससे उभरने की कोशिश के प्रति भी ध्यान दिया गया है **(सहजा)।** दूसरी ओर विवाह के बिना संतान को जन्म देने की समस्या और नारी स्वेच्छा की चर्चा की गयी है **(कुंती पुत्रिका)**। विवाह व्यवस्था और व्यक्ति स्वेच्छा के प्रश्न पर विचार किया गया है **(मरीचिका)**।नारी के प्रश्नों पर विभिन्न आंदोलनों और वादों के परिप्रेक्ष्य में भी तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है**(जंगल की पुत्री**)। इस संदर्भ में यह वास्तविकता सामने रखी गयी है कि प्रेम, सेक्स और शादी के विभिन्न दृष्टिकोणें को युवा-पीढ़ी की दृष्टि से विचार किया गया है **(नज़रिए)।** इस तरह स्त्री-पुरुष के संबंधों में परिवर्तन के नये आयाम (**फिर से आई बहार**) और मध्य वर्गीय नारी जीवन की वास्तविकताएँ (**दिखता हुआ अतीत**)यहाँ तक कि समलैंगिक समस्या और प्रकृति विरुद्ध व्यवहार का विरोध को भी लेकर**(आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं**)तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है।

संदर्भ :-

[1]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.50
[2]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.168
[3]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.7
[4]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.287
[5]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.297
[6]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.287
[7]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.308
[8]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.318
[9]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.318
[10]मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.319
[11]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.3
[12]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.3
[13]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.3
[14]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.4
[15]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.4
[16]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.4
[17]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.12
[18]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.13
[19]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.3
[20]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.3
[21]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.10
[22]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.18
[23]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.18
[24]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.19
[25]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.35
[26]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.37
[27]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.37
[28]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.12-13
[29]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
[30]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
[31]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
[32]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.23
[33]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.23
[34]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.23
[35]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.71
[36]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.194, 195
[37]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.196
[38]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.196
[39]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.196
[40]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.200
[41]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.\-200
[42]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.200-201
[43]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.200
[44]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.201
[45]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.208
[46]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.208

---

[47]फिर से बहार आई – डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.211
[48]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.54
[49]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.30
[50]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.29
[51]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.46
[52]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.61
[53]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.84
[54]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.160
[55]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.65,160
[56]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.162
[57]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.162
[58]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.165
[59]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.161
[60]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.61
[61]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.171
[62]मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.162
[63]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.17
[64]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.17
[65]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.18
[66]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.18
[67]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.50
[68]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.54
[69]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.65
[70]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.168
[71]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.183
[72]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.182
[73]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.184
[74]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.184,185
[75]कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.265
[76]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.16
[77]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.17
[78]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.17
[79]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.21
[80]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.9
[81]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.29
[82]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.31-32
[83]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.31-32
[84]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.31
[85]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.31
[86]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.47
[87]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.47
[88]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.50
[89]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.50
[90]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.77
[91]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.77, 78
[92]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.78
[93]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.10

[94]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.111
[95]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.117
[96]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.117
[97]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.117
[98]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.116
[99]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.117
[100]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.119
[101]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.121
[102]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.122
[103]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.125
[104]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.141
[105]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.142
[106]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.142
[107]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.142
[108]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.140
[109]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.140
[110]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.144
[111]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.144
[112]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.149
[113] दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.169
[114]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.174
[115]दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकी बाला, पृ.191
[116] जंगल की पुत्री – वनजा, पृष्ठभूमि
[117]जंगल की पुत्री – वनजा,पृष्ठभूमि
[118]जंगल की पुत्री – वनजा,पृ.7
[119]जंगल की पुत्री – वनजा,पृ.7
[120]जंगल की पुत्री – वनजा,पृ.7
[121]जंगल की पुत्री – वनजा,पृ.81
[122]जंगल की पुत्री – वनजा,14
[123]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.14
[124]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.15
[125]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.16
[126]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.25
[127]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.15
[128]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.37
[129]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.51
[130]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.57
[131]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.59
[132]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.83
[133]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.88
[134]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.89-90
[135]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.92
[136]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.101
[137]जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.125
[138]आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – प्राक्कथन, पृ.1
[139] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – प्राक्कथन, पृ.1
[140] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – प्राक्कथन, पृ.1

---

[141] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.19
[142] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.28
[143]आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.31
[144] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.31
[145] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.31
[146] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.32
[147] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.36
[148] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.225
[149] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.72
[150] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.72
[151] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.72
[152] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.73
[153] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.74
[154] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.74
[155] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.75
[156] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.76
[157] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.76
[158] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.77
[159] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.30
[160] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.36
[161] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.49
[162] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.47
[163] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.51
[164] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.65
[165] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.52, 53
[166] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.66
[167] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.66
[168] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.67
[169] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.141
[170] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.142
[171] आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.136
[172]आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.161
[173]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.15,16
[174]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.22
[175]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.23
[176]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.26
[177]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.26
[178]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.26
[179]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.35
[180]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.40,41
[181]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.41
[182]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.42
[183]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.43
[184]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.43
[185]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.44
[186]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.44
[187]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.49
[188]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.52

[189]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.52

[190]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.59

[191]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.59
[192]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.61
[193]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.62
[194]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.62
[195]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.62
[196]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.67
[197]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.67
[198]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.67
[199]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.70
[200]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.70
[201]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.75
[202]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.77
[203]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.79
[204]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.80
[205]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.88
[206]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.82
[207]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.83
[208] नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.92
[209]नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.97
[210]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.32
[211]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.32
[212]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.42
[213]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.44
[214]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.42
[215]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.52
[216]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.54
[217]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.56
[218]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजू सीतादेवी, पृ.58
[219]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.85
[220]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.89
[221] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.90
[222] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.93
[223] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.94
[224] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.130
[225] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.131
[226]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ. 148
[227]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.152
[228] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.133
[229] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.134
[230] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.137
[231] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.139
[232] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.140
[233] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.142
[234] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.142

[235] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.143
[236] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.141
[237] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.141
[238] कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.141
[239]कुमारी मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.142
[240]सहजा – वोल्गा, पृ. 36
[241]सहजा –वोल्गा, पृ.7
[242] सहजा –वोल्गा, पृ.62
[243]सहजा –वोल्गा, पृ.62
[244]सहजा –वोल्गा, पृ.62
[245]सहजा –वोल्गा, पृ.134
[246]सहजा –वोल्गा, पृ.62
[247]सहजा – वोल्गा, पृ.11
[248]सहजा – वोल्गा, पृ.12
[249]सहजा – वोल्गा, पृ.13
[250]सहजा –वोल्गा, पृ.14
[251]सहजा –वोल्गा, पृ.14
[252]सहजा –वोल्गा, पृ.112
[253]सहजा –वोल्गा, पृ.11
[254]सहजा –वोल्गा, पृ.118
[255]सहजा –वोल्गा, पृ.135
[256]सहजा –वोल्गा, पृ.20
[257]सहजा –वोल्गा, पृ.81
[258]सहजा –वोल्गा, पृ.30
[259]सहजा –वोल्गा, पृ.81
[260]सहजा – वोल्गा, पृ.37
[261]सहजा –वोल्गा, पृ.152
[262]सहजा –वोल्गा, पृ.69

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना

4.1बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक चेतना

भारतीय सामाज में नारी सजग होकर अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए संघर्षरत थी। वह निरंतर समाज की ढकोसली मान्यताओं से जूझने का प्रयास कर रही थी। अंतिम दशकके भारतीयसमाजमेंमूल्यबदलने लगे, अर्थ बदलने लगा।भारत की मान्यताएँ बदलने लगी। स्वाभाविक रूप से इन सब का प्रभाव स्त्री जाति पर भी पड़ना स्वाभाविक है। इसप्रभाव सेउसकी विचारधारा में परिवर्तन आने लगा। इसका सबसे बड़ा कारण स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधों में बदलाव था। इन सबको यूनानी दार्शनिक फ्रायड की विचारधारा ने काफी प्रभावित किया। उसकी मनोवैज्ञानिक विचारधारा ने प्राचीन मूल्यों को समाप्त कर नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की।इस प्रकार से वह अनेक अधिकारों को अपने हाथ में लेने में सफल होने लगी।

4.1.1प्रेम, विवाह व्यवस्था : परिवार का संदर्भ

जागरण के फलस्वरूप नारी ने अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द कर दी। उसकी बौद्धिकता के कारण उसका यह संघर्ष सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। आधुनिक युगीन परिस्थितियों ने नारी में क्रांतिकारी भावनाओं को जन्म दिया। यही कारण है कि आज स्त्री के विभिन्न पक्ष दिखाई देने लगे हैं। एक ओर वह बाहरी दुनिया से दूर घर की चार दीवारों में बंद अपने पुरुषों के दिखाये मार्ग पर आँख बंद कियेचल रही है, और दूसरी ओर वह इन सदियों से परंपरागत रूप में से जागरूक

अवस्था में आ गई है। स्त्री का एक नवीन उदात्त पहलू भी दिखाई देता है जिसमें वह घर और बाहर दोनों की व्यवस्था को ठीक तरह से संजोकर संभालने में सफल हो रही है। इतना ही नहीं उसका एक बिलकुल नया रूप भी सामने आता है जहाँ वह पुरुषों के बाह्य समाज में उससे कंधे से कंधा मिलाकर चलने की होड़ में सफलता प्राप्तकर रही है। यह कहा जा सकता है कि उसका यह नवीन रूप समाज के क्रांतिकारी मार्ग को दिखाने की पहली मशाल थाम लेगा।

नारी चाहे जिस किसी प्रकृति की होने दीजिए, उसे अपने लिए स्वयं संघर्ष करना होगा – फ्रांसीसी आलोचक 'सीमोन-द-बुआ' के स्त्री संदेश से विश्व की नारियाँ जागृत होने लगी। आज विभिन्न नारी जाति समितियों की स्थापनासे स्त्री जागरण में काफी तेजी आई है। इनकी सहायता से वह अपने अधिकार के लिए लड़ना सीख रही है।

प्राचीन संस्कृति केअनुसारविवाह स्त्री-पुरुष संबंधों का एक पवित्र बंधन है। परन्तुसमकालीन समय मेंइसकीमान्यताएँ बदलगयीं हैं।विवाहयह एक सामाजिक समझौते का प्रमाण मात्र बन कर रह गया है। इस निस्वार्थ समर्पण ने आज स्वार्थपूर्ण माँग का स्थान ग्रहण कर लिया है। प्राचीन समय में विवाह का मूल प्राण भारतीय संस्कृति पर आधारित था परन्तु आज उन सांस्कृतिक मान्यताओं ने स्वच्छंद यथार्थपरक रूप धारण कर लिया है। आज का दाम्पत्य जीवन भावनाओं की मधुर संगीत लहरी से अनायास बहने के लिए राजी नहीं है। इन भावनाओं ने कठोर बौद्धिकता का स्थान ग्रहण कर लिया है।आज की नारी शोषित, ठुकराई, उलाहनापूर्ण जीवन से आजाद होकर अविवाहित ही रहना श्रेयस्कर मानती है। आज वह आर्थिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र होना जानती है इसीलिए क्योंकर वह रूढ़िगत कारावास की श्रृंखलाओं में सपने आप को बँधा रहने देगी। आज वह खुले नीले आसमान के नीचे स्वच्छ-स्वतंत्र साँसलेना चाहती है।

आज की नारी की सोच उत्कृष्ट हो गयी है। वह वैवाहिक जीवन की भावभूमि पर बौद्धिकता और स्वच्छंदता का आरोपण चाहती है।समकालीन विवाह निस्वार्थ, त्याग और पवित्रता का बंधन नहीं है अपितु आज विवाह भौतिक, आर्थिक, बौद्धिकता के सुदृढ़ धरातल की माँग करता है।

आधुनिक नारी का जीवन दुपहिया वाहन के समान है। वह घर-बाहर दोनों ही जिम्मदारियों को बखूबी निभाना जानती है। वह पारिवारिक जिम्मेदारी को निभाते हुए बह्त्य संसार में अपने अस्तित्व का निर्माण करना चाहती है। वह अपना जीवन केवल अपने विचारों के आधार पर जीने के लिए लालायित है यहाँ तक कि दांपत्य जीवन में भी वह शरीर और आत्मा से स्वच्छंद होना चाहती है। उसके जीवन का ऐसा कोई छोर न हो जिस पर पुरुष अपना एकाधिकार जमा सके।

"पत्नी यानि पति की अर्धांगिनी" केवल मात्र बनकर रहना आज उसे गवारा नहीं वह तो खुले आसमान में आजाद पंछी के समान उड़ान भरना चाहती है और संध्या समय अपने निविड़ में आराम, शांति, इच्छा, प्रेम, सम्मान आदि के साथ सुख की निद्रा में सरोकार हो जाना चाहती है। अर्थात् दांपत्य जीवन में स्वामी और दास का संबंध वह स्वीकार करना नहीं चाहती। वह चाहती है आपसमें मित्रताका संबंध गठित करे। वह इस समाज का गठन "पुरुष और नारी प्रधान" जैसी नवीन अवधारणा पर करना चाहती है।

आज की स्त्री प्राचीन असमानताओं से टकराकर अपने नवीन प्रभात में अपने प्रतिबिम्ब को खोजना चाहती है। अत: वह समानता के अधिकार को तत्परता से पाने की लगातार कोशिश कर रही है।

यदि वर्तमान समय के दांपत्य जीवन पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाये तो यहाँ प्राचीन और नवीन दोनों का समन्वित रूप दिखाई देगा। विभिन्न अवसरों पर, कभी कठोरता ओर कोमलता, कभी मिठास और कटुता, कभी स्वार्थ और समपर्ण, कभी निकटता और दूरी, कभी सहमत और असहमत आदि जैसे उतार चढ़ाव देखने को मिलते हैं। अलग-अलग अवसरों पर वह अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करती है। उसके स्वतंत्र होने की छटपटाहट इन प्रतिक्रियाओं पर कभी-कभी भारी प्रभाव डालती है और वह अपने अधिकारों की नवीन माँगों के पीछे दौड़ने लगती है।ऐसे में वह स्वयं में बहते हुए प्रेम रूपी नीर को भूल जाती है और कटुता-कठोरता का द्रव्य प्रसारित

करने लगती है। अत: ऐसा सोचने पर हम विवश हो गये हैं कि स्त्री जागरण अथवा स्त्री के स्वतंत्र आंदोलित विचार कहीं विघटन की ओर तो उन्मुख नहीं हो रहे।

वर्तमान समय की नारी अपना अलग स्वतंत्र दृष्टिकोण रखने की इच्छुक है। वह अपनी मंशा से ही अपना नवीन नज़रिया बनाना चाहती है। इसी विचारधारा या सोच के कारण वह अपनी मर्यादाओं की सीमा-रेखाओं को बेधड़ लाँघती जा रही है। आज वह प्रेम और काम को एकनिष्ट नहीं रहने देना चाहती। विवाह के पूर्व की सांस्कृतिक और नैतिक मान्यताओं को वह मानने से इनकार कर रही है। इतना ही नहीं विवाहोपरान्त भी वह अपनी पवित्रता को बनाये रखने में विश्वास नहीं रखती। वह घोर-अनैतिकता के बंधन में बँधती चली जारही है। उसे बस इसी बात की धुन है कि मैं किसी भी कार्य में मर्दो से कम नहीं हूँ। अपने व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण और प्रभावशाली बनाने के लिए वह कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार होने लगी है।

वर्तमान स्त्री का एक वर्ग ऐसा भी है जो अपना देह-व्यापार करना भी बुरा नहीं मानती। उसका सोचना ऐसा है कि आर्थिक, सामाजिक रूप से स्वतंत्रता पाने के लिए ऐसा करना कोई अनैतिक बात नहीं। वह यह दलील देती है कि –"हमारी अन्तरात्मा तो पवित्र है, हम तो हमारे अस्तित्व की रक्षा के लिए ऐसा कर रहीं हैं।"

ऐसी स्त्रियाँ नैतिक-अनैतिक, अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, सामाजिक-असामाजिक आदि सभी मान्यताओं से ऊपर उठकर एक अलग, भद्दा, मटमैला अस्तित्व बनाना चाहती है। इनकी सोच इतनी गिर चुकी है कि वे सामाजिक बंधनों या मान्यताओं कोबेझिझक ठोकर मारती जा रही है। ऐसी विचारों वाली नारियों ने प्रेम के उस हृदयस्पर्शी मूल्य को ही बदल दिया है। आज वे प्रेम के प्राचीन पवित्र मूल्यों को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं। वह नैतिकता को आज के स्वार्थ से मिटा देना चाहती है।

आधुनिक स्त्री पारिवारिक-दांपत्य जीवन को अपनी पवित्र धरोहर नहीं मानती। वह उसके टूटने-बिखरने की परवाह किये बिना अपनी नवीन माँग के पीछे भागना चाहती है। वह किसी न किसी भौतिक प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना कर किसी भी कीमत पर उसे पाना चाहती है। इसका बुरा असर आज-कल के पारिवारिक संबंधों

परतेजी से पड़ता हुआ दिख रहा है। इसी कारण आज पति और पत्नी के बीच प्रेम की परिभाषा बदल गई है।पति के प्रति एकनिष्ठ समर्पण की भावना से वह वंचित होती दिखाई दे रही है।

प्राचीन जीवन के नैतिक बंधन आधुनिक नारी को बाँधने में असफल है। उसकी नैतिकता की श्रृंखलाओं को आधुनिक स्त्रीके कठोर अहं ने तोड़ दिया है। वह निरंतर आगे बढ़ना चाहती है,नवीन मूल्यों को ढूँढने में लग गई है। वह अपने अस्तित्व की खोज में अपने घर की चार दिवारी लाँघना चाहती है। वह जानती है उसकी राह की सबसे बड़ी बाधा रूढ़ियाँ हैं, जो हमेशा अपना डरावना मुख फाड़े उसकी ओर अग्रसर होती रहती है। लेकिन वह पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहती। वह तोनवीन नैतिक मूल्यों और मान्यताओं में अपना भविष्य खोजने में तत्पर है।

आज हम यह देख रहे हैं कि चाहे नारी किसी भी वर्ग की हो, उच्चवर्ग की या निम्नवर्ग की, समृद्ध या ग़रीब, शिक्षित या अशिक्षित, माँ या बेटी, बहन या पत्नी, कामकाजी या घरेलू चाहे किसी भी प्रकार का उसका अस्तित्व हो, सभी के मन में एक ही इच्छा-आकांक्षा है कि वह तो बस इन रूढ़िगत मान्यताओं से निज़ाद पाना चाहती है।

प्राचीन रीति-रिवाज़ों का पालन करते-करते वह इस कदर थक चुकी है कि, कभी-कभी तो वह यह सोचते ईश्वर को कोसने लगती है कि –"हे भगवान तूने मुझे स्त्री का जन्म क्यों दिया....।" वह इन सामाजिक कुरीतियों के प्रति उदासीन होती जा रही है। इन सब का पालन करना उसकी सफलता के मार्ग में बुरी तरह से बाधा उत्पन्न कर रहा है। नौकरी पेशा स्त्री तो इनसे जैसे खीझ-सी गई है।

नारी एक ओर पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना चाहती है और दूसरी ओर रूढ़िगत परंपराओं के बंधन उसे ऐसा करने से रोकते हैं। इसीलिए वह रूढ़िगत बेड़ियों को तोड़कर पुरुष-प्रधान समाज को ललकारना चाहती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने "नारी मुक्ति" आंदोलन प्रारंभ कर दिया है।

आज भावुक प्रेम का स्वरूप बौद्धिकता की प्रकोप में परवान चढ़ना चाहता है। आधुनिक वैश्वीकरण ने इस कोमल भावना को पथरीला बना दिया है। आज के मशीनी जीवन ने मनुष्य की सद्‌भावनाओं को पीछे छोड़कर भौतिक लाभ के पीछे भागना शुरू कर दिया। तत्कालीन समय में नारी को प्रेम की प्रतिमूर्ति माना जाता था, लेकिन वह भी अपनी सुकोमल मर्मस्पर्शी भावना को भूलती चली आ रही है।

आज का मनुष्य दु:ख से घिरे रहने के बावजूद प्रेम की छाँव में दो पल का सुख पाने के लिए लालायित है क्योंकि आज उस निस्वार्थ प्रेम के मायने बदल गये हैं।आज का प्रेम बदले में कुछ पाने की चाह रखता है। स्त्री भी इसी भौतिक जीवन का हिस्सा है। अत: वह भी उससे अछूती नहीं रह पायी है। वह अपनी महत्वाकांक्षाओं को पाने के लालच में प्रेम की वास्तविक परिभाषा को बिसार चुकी है। आधुनिक यथार्थवादी समाज अपने विचारों को स्वार्थ के छोटे से घेरे में बंद करके रखना चाहता है। हर समय, हर कर्म के पीछे उसे तुरंत फलप्राप्ति की आशा घेरे रहती है। इसीलिए भावनाओं के लचीलेपन ने कठोरता का स्थान ले लिया है। इसी मनोवृत्ति के कारण वह हर समय नफा-नुकसान की सोचता है। प्रेम संबंधों में त्याग, सेवा, समर्पण की भावना न होकर ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ ने जन्म ले लिया है। पुरुष तो पुरुष, स्त्री भी अपने ऐश्वर्य के पीछे भाग रही है। यही कारण है कि आज वैवाहिक संबंध दूर और अंत तक सफर करने के बजाय जल्दी से जल्दी दम तोड़ते दिखाई दे रहे हैं।

आधुनिक प्रेम में वह नैसर्गिक प्राकृतिकता नहीं रह गयी है। भावना की सुंदर प्रवीणता के स्थान पर कुछ पाने की लालसा घर कर गई है। आज का मनुष्य हमेशा किसी-न-किसी भौतिकता के प्रति आसक्त रहता है।

युगीन स्वावलम्बीनारी ने प्रेम के पौराणिक अर्थ को बदल दिया है। प्रेम पाने के लिए वह हर संभव प्रेम के मूल स्वरूप को परिवर्तित दृष्टि से देख रही है। विवाह हो जाने के पश्चात् भी वह अपना रवैया बदलना नहीं चाहती। वह अपने चरित्र के मायनों को बदल देना चाहती है। पवित्रता जैसे भाव को भी अनदेखा करने में कोई हिचक महसूस नहीं करती।

आज के युग में विवाह दो आत्माओं का मिलन न होकर, दो स्वतंत्र किनारों पर खड़े व्यक्तियों का समझौता मात्र रह गया है। ये लगातार एक व्यापारी की तरह अपने लाभ की खोज में निरत है।

नारी-पुरुष के मध्य जो प्रेम होता है वह एक आकर्षण का रूप धारण करता है। इस प्रेम का प्रवाह हमेशा यौवनावस्था में बढ़ने लगता है। स्त्री-पुरुष जब एक-दूसरे के प्रति आसक्त होते हैं तो निश्चित रूप से यह भावना कारण बनती है। इसीलिए प्रेम भावना के बिना किसी भी साहित्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। साहित्यकारों ने अनेक शैलियों के माध्यम से प्रेम के इस उदात्त रूप को उजागर करने का हमेशा प्रयास किया है। प्राचीन पौराणिक साहित्य के समय से लेकर प्रेम भावना पर विस्तृत वर्णन होता चला आ रहा है। कोई भी कृति प्रेम-चित्रण के अभाव में संपूर्णता को प्राप्त नहीं होती। विभिन्न कलाओं जैसे चित्रकारिता, संगीत, नृत्य आदि में भी कलाकार इस भावना को उजागर करने में लगा रहता है। आध्यात्म में भी हम इस पवित्र भावना को पाते हैं। आज मानवता जैसी भावना की नींव भी इसी प्रेम को लेकर खड़ी है। अत: हम देखते हैं कि सारे संसार का गठन प्रेममय है परन्तु दूसरी ओर इसी पवित्र प्रेम भावना ने विकृत रूप धारण कर लिया है। उस दूसरी दुनिया में प्रेम की मान्यताएँ बदल गई हैं। प्रेम की पवित्रता दम तोड़ती दिखती है। समाज में प्रेम का रूप अभिशप्त होता गया।

मानव प्रेम का वितरण भी स्त्री और पुरुष के बीच बाँटा गया है। पुरुषों को प्रेम करने का खुला अधिकार दिया गया है। पुरुष जब स्त्री पर आसक्त होता है तो उस बात को बुरा नहीं माना जाता, वहीं यदि स्त्री किसी पुरुष पर आसक्त होकर उसे पाना चाहती है तो उसे उलाहना भरी दृष्टि से देखा जाता था। नारी केवल पुरुष की इच्छानुसर स्वयं को समर्पित करने के लिए बाध्य थी। वह केवल पुरुष के भोग-विलास की वस्तु बन कर रह गयी थी। हमेशा इस भावधारा के अन्तर्गत नारी का अपमान होता रहा। प्रेम जैसी पवित्र मार्मिक जीवन-दामिनी भावना ने भी नारी को नहीं बख्शा। वहाँ भी वह पुरुष-समाज की दासी बन कर रह गयी। इस नैसर्गिक भावना को भी अपनी इच्छानुसार भोगने का अधिकार उसे प्राप्त नहीं हुआ।

युगीन नारी की स्थिति परिवर्तन में प्रेम-जैसी आवश्यक भावना को समझा गया। समाज सुधारवादी आन्दोलन, स्त्री-मुक्ति आन्दोलन, ऊँच-नीच विरोधी आन्दोलनों ने स्त्री की प्रेम-चेतना को उजागर किया। सदियों से सोई नारियाँ जागी और अपने अधिकार के लिए लड़ने की ठानी। इन लोगों ने प्रेम को भी दूसरी आधुनिक समस्याओं के साथ लाकर रख दिया। प्रेम अब व्यक्तिगत न होकर सामाजिक बन गया।यह भाव निजी न होकर सार्वजनिक बन गया। पति-पत्नी का प्रेम घर के शयन-कक्ष से निकलकर अधिकारों के तराजु में तोला जाने वाला भाव बन गया। इस प्रकार स्त्री को समाज में प्रत्येक पहलु से मान्यता प्राप्त होनी प्रारम्भ हो गई। वह मार्मिक, बौद्धिक और शारीरिक अधिकारों की माँग चुनौतीपूर्ण रूप से करने लगी। नयी दुनिया की चमक-दमक में अपने अधिकारों की माँग करती नारी ने अपनी सीमाएँ लाँघना प्रारम्भ कर दिया। उसने बाहरी संसार में तो तरक्की पा ली पर अपने परिवार की रागात्मकता को बिखरा दिया है। वह नाम, पद, पैसा चाहती है और इसके लिए उन्हें विवाहित पुरुष से भी प्रेम संबंध बनाने में कोई आपत्ति नहीं है। ‘आवां’ उपन्यास की नायिका नमिता का एक विवाहित पुरुष से अवैध संबंध जुड़ जाता है। उसके मन में जब से इस संबंध को लेकर उलझन पैदा होती है तो उसकी आंतरंगिक दोस्त हर्षा उसे सुझाव देती है कि –“बहरहाल, घबराने की जरूरत नहीं है। सेठियों का क्या, हरामखोर दशानन होते हैं। एक साथ दस को राजरानी बनाकर रखने की कूवत रखते हैं। मुकाबले में औरत कौन कम ठहरी? दस पिल्लू पेट से जन सकती है तो सौत के रहते उन पर सवारी नहीं कर सकती।”[1]

प्रेम की सामाजिक पवित्रता आज खंडित होने लगी। ‘प्रेम’ की परिभाषा आज बदल गयी है। प्रेम जैसे हृदयग्राही कोमल भाव में महत्वाकांक्षा जैसी विकृत भावना पनपने लगी है। प्रेम में आज विलासिता नज़र आ रही है। यह विलास और मोह आज पुरुषों की ही धरोहर नहीं है, बल्कि नारी भी इसमें बराबर का हिस्सा माँगने लगी है। उसने अपनी पावनता, शर्म, हिचक, मर्यादा आदि जो उसकी सुंदर मूर्ति के आभूषण थे, उसने उन आभूषणों का आवरण छोड़ दिया है।

'आवां' उपन्यास में नमिता को हर्षा सलाह देती है कि, सुविधा और ऐश्वर्य की सीढ़ी 'संजय कनोई' को वह प्यार के नाम पर फँसाए रखे। वह नमिता से कहती है – "न तू पढ़ाई छोड़, न प्रेम, फाँसे रह उल्लू के पट्ठे को! गाड़ी-घोड़ा गहने-गुरिया को राजपाट दुर्लभ होता है। प्रेम का क्या? जरा-सा नजर बाँकी की नहीं कि, लौ के इर्द-गिर्द पतंगों की भीड़ जुटी नहीं, जिससे अगन-लगन लगे लगा लो।"[2]

प्रेम को वह अब अपने नारित्व का अलंकार नहीं मानती बल्कि प्रेम की पावनता को वह अपने पैरों की बेड़ियाँ मानने लगी है। प्रेम का प्राचीन आध्यात्मिक मनोभाव उसके आज के आज़ाद पंछी तुल्य जीवन का पिंजरा बन गया है।

मरीचिका तेलुगु उपन्यास मेंकविता चित्र लेखन को बहुत पसंद करती है। पति मुरारी से कभी किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिलता है। चित्र लेखन केप्रतिमुरारीकी चिड़चिड़ाहट देखकर कविता के उत्साह पर पानी फिर जाता है। कविता सोचती है कि –"उसे जो पसंद है वह पति को पसंद नहीं, किताबें पढ़ना या संगीत कोसुनना पसंद नहीं और सिनेमा से नफरत है। पार्टियों में जाना पसंद नहीं, चित्र लेखन से चिढ़ता है और उसकी उपेक्षा करता है। दोनों में किसी प्रकार का ताल-मेल नहीं है।""विजय की तरह पति मिलते तो दोनों की अभिरुचियों में कितना मेल-जोल होता। बेचारा! उस विजय के लिए वैसी पत्नी।"[3] ऐसी स्थितियों में आधुनिक नारी बेझिझक चौखट लांघने को तैयार हो रही है।

ऐसी स्थितियों में वैयक्तिक चाह को प्राथमिकतादेना, प्रेम का यह अनोखा रूप आधुनिक उपन्यासकारों ने अपनी कृति में बाखूबी उल्लेख किया है। इन उपन्यासों में प्रेम की इस नवीन अभिव्यक्ति का सूक्ष्म और यथार्थ रूप सफलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। समकालीन उपन्यासकारों ने प्रेम के इस बाह्य आवरण को अच्छी तरह समझा और पहचाना है। उन्होंने अपनी कथाओं के माध्यम से इस ऊपरी परतवाले प्रेम को खूब अच्छी तरह अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

युगीन समाज में 'प्रेम' की भावनात्मक प्रकृति को महत्व नहीं दिया जाता है। यह तो एक ढोंग मात्र रह गया है। अब तो बस सच्चा प्रेम एक शास्त्रों वाली

विचारधारा बनकर रह गई है। जीवन के निजी क्षणों में भी यह भावना अपने स्वार्थ को खोजती हुई दिखाई दे रही है।

नारी सुखद वर्तमान को अहमियत दे रही है। समय और स्थिति की जरूरत के अनुसार प्रेम संबंधों को बनाए-बिगाड़े जा रही है –'निष्कवच' उपन्यास में नीरा अपने प्रेमी 'बासू' को छोड़कर अपने जीवन साथीके रूप में रमण को चुन लेती है। 'बासू'अपने निस्वार्थ प्रेम को विफल होते देखकर विचलित हो उठता है। वह सोचता है –"कहाँ गया वह अपना आप जिसे बचाकर रखना था मुझे......। क्या ? वह कमाई जिसे एक छोटी-सी लड़की छेक गयी? व्हेयर इज दट टेल मी?....... सही साबुत......।"[4]

जब नीरा का मौसेरा भाई विशाल, बासू की बातों से व्यथित होकर घर लौटता है तो नीरा बासू से कही गयी बातें सुनना चाहती है। विशाल आवे**ग** में कह डालता है कि –"तुम क्रूर हो, स्वार्थी हो, चालाक हो......। तुमने उसे ठगा है। यूज किया है... तबाह किया है। इस आवेग को ठंडा करता हुआ नीरा का जवाब है कि –"भूल जाएगा। जैसा मैं भूलती जा रही हूँ... तेजी से।"[5]

'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' (तेलुगु) उपन्यास में कॉलेज में राजू और शांता के प्रेम के बारे में सब लोग जानते हैं। आरक्षण के कारण शांता को एम.एस.सी.में सीट मिलती है, बाद में पीएच.डी.भी कर लेती है। अमेरीका में पोस्ट डॉक्टरेट कर, वैज्ञानिक बनना चाहती है। राजू बी.एड॰ के बाद गणित में एम.एस.सी. कर प्राध्यापक बन जाता है।

जब राजू शांता से शादी के बारे में पूछता है तो शांता बदले में उत्तर देती है कि –"शादी करनी है तो तुम कर लो। मुझे अभी नहीं करनी है।"[6]

इन सबसे अलग आज भी नारी प्रेम में निस्वार्थ समर्पण चाहती है। जब निस्वार्थ प्रेम की शीतलता या आत्मीयता उसके तन-मन को आह्लादित नहीं कर पाती है तो 'प्रेम' की स्नेहाशक्ति भावना आक्रोश में बदल जाता है।

'इंद्रगंटि जानकी बाला का'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में श्रवणकुमार कमलाम्बा को एक शारीरिक सुख भोग की वस्तु के रूप में मानता है। वह तो अपनी पत्नी के प्रति प्यार, स्नेह एवं आत्मीयता जैसी भावनाओं से अनभिज्ञ है। "शयनकक्ष में आते ही पत्नी पर एक जड़-पाषाण-सा टूट पड़ता है। कमलाम्बा की पसंद या नापसंद से कोई मतलब न रखकर अपनी पसंद के मुताबिक उसे भोग लेता है। नाजुक कमलाम्बा उसके इस विचित्र व्यवहार से भयकंपित होने लगती है। कभी-कभी मन बिल्कुल खिलाफ होने लगता है। इस पैशाचिक मिलन से घृणित होकर श्रवण कुमार को हटाकर दूर फेंकना चाहती है। लेकिन उसके पशुबल के सामने कमलाम्बा निस्सहाय हो जाती थी। कमलाम्बा रो-रोकर घुटती हुई पता नहीं कब सो जाती है। तो इतने में आधी रात को श्रवण कुमार का जागकर फिर से कमलाम्बा को भोग लेना एक आम बात है।"[7]

'सहजा' (तेलुगु)उपन्यास में उषा चाहती है कि –"पति-पत्नी दोनों मिलकर बातें करते हुए, एक दूसरे के मन में प्रेम जगाये, पारस्परिक निकटता आवेग में बदले, तब उन दोनों के एक होने के समय में जो आनंद होता है ऐसा प्यार भरा सुख चाहिए।"[8]लेकिन उषा का पति शेषगिरी आपसी प्यार को समझता ही नहीं। "उसके लिए शारीरिक भोग एक डिमांड है। उस डिमांड को पत्नी को पूरा करना है। सुबह होते ही, कॉफी, गरम पानी, नाश्ता, भोजन, इस्त्री के कपड़े - जिस तरह दैनंदिक माँगें होती हैं, उसी तरह वह भी एक माँग है।"[9]उषा अपनी व्यथित मानसिकता को व्यक्त करती है कि –" इस माँग को इतनी यांत्रिकता से पूरा करना मेरे लिए मुश्किल हो रहा है। प्यार इतना यांत्रिक होता है? केवल शारीरिक मिलन के अलावा दोनों के मन का मिलन न हो तो कैसा?इस आदमी को कब समझ आता है?

'छिन्नमस्ता' में प्रिया कहती है –"लेकिन औरत की जिंदगी बस एक ही पुरुष की तलाश भर बनकर रह जाए? सारे अनुभवों की भी मैंने एक बात समझी। सत्ता का लोभ पुरुष को है। सच कहूँ जूड़ी। ऐसा प्रेम मेरे लिए बहुत कठिन हो जाता है। समर्पण की यह परंपरा... अपने बाहर किसी सतह के प्रति, इसे तो दोनों पर लागू होना चाहिए था।"[10]

“मगर पुरुष का समर्पण है देवत्व के प्रति। वह भगवान के प्रति जहाँ समर्पण करता है, वही भगवान होना भी चाहता है। उसकी यह अपेक्षा स्त्री से कि स्त्री उसे अपने से महत्वपूर्ण माने।...... अपनी आहुति दे।”[11] “मगर क्यों? किसलिए? और जब आहुति देने वाला अपनी कीमत माँगता है तो उससे कहा जाता है कि निस्वार्थ शर्तहीन प्यार की कोई कीमत नहीं होती।”[12]

‘सहजा’ (तेलुगु उपन्यास) में शारदा से उषा अपनी व्यथा को बताती है –“अब तक मेरा पति मानने वाला व्यक्ति अचानक जब पराया हो जाता है तो वह दु:ख असहनीय है। जिंदगी का मतलब पति ही नहीं है। अब तक पति को ही सर्वस्व मानती थी। आज मेरी जिंदगी मुझसे सवाल कर रही है कि आगे मैं क्या करने वाली हूँ? उस चुनौती का सामना करने का मन कर रहा है। पति के न होने मात्र जिंदगी बेकार नहीं होनी चाहिए। इसे साबित करना है।”?

आज के यथार्थवादी युग में प्रेमानुभूति की आसक्ति एक भटकाव बनकर रह गई है। प्राचीन दिव्य प्रेम भावना स्वार्थपूर्ण ऐश्वर्य की प्राप्ति का प्रमुख मार्ग बन गया है। आधुनिक जीवन की घोर सब कुछ प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने स्नेहशीला को भी अछूता नहीं छोड़ा है।

भारतीय नारी जो प्राचीन संस्कृति की आदर्श भूमि थी, जिसका प्रेम सारे परिवार को बाँधे रखने में निरत रहता था उसी प्रेम भाव को आधुनिक नारी दाँव पर लगाने से नहीं चूकती।

‘छिन्नमस्ता’ में –“एक क्षण तो मैं ठिठककर खड़ी हो गयी। यह क्या कर रही हूँ? कुछ नहीं। और मैं भीतर चली गयी। दरवाजा बंद करके वह मेरी ओर पलटा। मेरी आँखें नीची थी, सांस की गति तेज। कमर में हाथ डालकर अपनी ओर खींचा। मैं लता-सी झुक गयी। देह ने अपना धर्म निभाया। कानों में उसके ये शब्द शहद की तरह घुल रहे हैं कि - “मैं तुमसे प्रेम करता हूँ..... केवल तुम से। उस दिन न मुझे कोई ग्लानि हुई न जुगुप्सा। मैं बाईस की उम्र में एक पूरी औरत बन चुकी थी।”[13] प्राचीन

भारतीय संस्कृति की ऐसी विरासत को आधुनिक ऐश्वर्यपूर्ण अग्नि में झोंकने से पहले उसका हृदय कंपित नहीं होता।

'इंद्रगंटि जानकीबाला' का 'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में श्रवणकुमार के दूर के रिश्तेदार रामचंद्रम दिखने में सुंदर, बातें करने में माहिर एवं दिलचस्प व्यक्ति के प्रति कमलाम्बा अपने को समर्पित कर देती है। "प्रसव के बाद ससुराल में रहने पर भी पति रूपी चील के हाथों न पड़कर, अपने पूरे यौवन को एक साथ रामचंद्रम की मर्दानगी को समर्पित कर दिया।"[14]"शायद उसकी जिंदगी में ऐसा मधुर समागम अब तक प्राप्त नहीं हुआ। उसका शरीर रूई की तरह हवा में उड़ने लगा।"[15]

इस प्रकार वह बड़ी निर्दयता से उसका सौदा करने से नहीं चूक रही। सब कुछ पा जाने का जूनून उसे अँधा बना चुका है। उसने अपने दिमागी पटों को बंद कर दिया है। नारी अपने आत्मीय प्रेम की तलाश में आज जाति - मजहब किसी को रूकावट नहीं मान रही है।

'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) में कविता अपने पति मुरारी के प्रेम में आत्मीयता न पाकर चित्र लेखन में कुशल विजय कुमार के पीछे भाग जाती है। कविता महसूस करती है कि विजय के साथ शारीरिक भोग कितना मादक एवं सुखद हो गया? वह क्या कर रहा है, क्या कह रहा है... उसकी बातों में जादू, उसको पाने की चाह आदि विवशताएँ उसे घेर ली और उसी में तल्लीन हो गयी है। उस मादक एवं सुखद संपर्क के बाद... । ये जालिम दुनिया... कुछ भी कहने दो, पति उसे घर से बाहर धकेल दे, भले ही बच्चे दूर हो जाए... ये सब मामले बहुत छोटे हैं।"[16]

विजय के साथ शारीरिक संपर्क के बाद ही पता चला कि "उसने इतने साल कितना शुष्क एवं नीरस जीवन बिताया था। सत्रह सालों में जो न प्राप्त हुई, उस अनुभूति को विजय के संपर्क में पाकर तन-मन से उसकी गुलाम बन गयी।"[17]

उसका ह्रदय भावुक 'प्रेम' भावना को अब आश्रय नहीं देता। उसका बर्ताव ऐसा हो गया है कि वह जैसे उस समर्पित प्रेम को नहीं जानती। 'प्रेम' उसके लिए एक अपरिचित भाव है, जिससे उसका कोई सरोकार नहीं । अवसर का लाभ उठाकर युगीन नारी ने प्रणय संबंधों को बनाना और बिगाड़ना प्रारम्भ कर दिया है। वह घोर अवसरवादी हो गयी है। कभी-कभी तो राजनीतिज्ञ भी इनकी अवसरवादिता के सम्मुख पानी भरते दिखाई देते हैं।

समर्पण, निस्वार्थ भाव, त्याग जैसी सुखपूर्ण भावनाओं से प्रेम का अस्तित्व कायम रहता है परन्तु आज आधुनिक न्यूकलियरवादी स्त्री ने इसे बदल कर रख दिया है। उसने उदारवादी प्रेम को व्यक्तिगत, एकनिष्ठ, स्वार्थी और अहं से परिपूर्ण कर दिया है। प्रेम के प्रति अनुदारवादी युगीन वैश्विक दृष्टिकोण को छिन्नमस्ता में प्रिया कहती है –"और प्रेम? वह उठती गिरती लहरों का भंवर है। मरीचिका है। मैं प्रेम की वैश्विक परिभाषा नहीं कर रही। यह मेरे निजी अनुभवों का सार है और खट्टे-मीठे अनुभवों के परे कौन जा सकता है?"[18]

इस प्रकार आज प्रेम की परिभाषा को विपरीत दिशा में मुड़ते हुए हम देखते हैं। युगीन समाज में प्रेम संबंधों की बुनियाद जिस जमीन पर डाली जा रही है, उसके अनुभव त्रासदपूर्ण हो रहे हैं। इसी अनुभव को'छिन्नमस्ता' में प्रिया के शब्दों में –"पर एक सपने को, एक प्यास को, जिंदगी भर जिलाए रखना भी कम बड़ी बात नहीं है। कम से कम आज की दुनिया में अपने आप को मारना बहुत आसान है। मैं कायर हूँ, प्यार करने से, चोट खाने से डरती हूँ। सच! रोने से , आँसुओं से मुझे बहुत डर लगता है।"[19]परन्तु फिर भी कहीं-कहीं इस स्नेहशील प्राचीन प्रवृत्ति को नये सुदृढ मानदण्डों के साथ देख रहे हैं। अर्थात् प्रेम भावना ने विकृत रूप नहीं अपना कर कुछ नया और शक्तिशाली रूप धारण कर लिया है। नवीन बुद्धिजीवी स्त्री और पुरुष प्रेम की पुरानी एक तरफा भावना को दो तरफा बना दिया है। स्नहेशीलता का भाव समाज-अस्तित्व के दोनों पहियों स्त्री-पुरुष को समान रूप से समझकर अपनाना होगा। स्त्री के लिए इस पुण्य भाव का एक अर्थ और पुरुष के लिए अलग अर्थ, ऐसा नहीं होना है। इस

प्रणयी भाव को दोनों को समान रूप से निभाना होगा, दोनों इसे आधिकारिक रूप से नहीं बल्कि भावनात्मक रूप में ग्रहण करे।

'कालि-कथा वाया बाईपास' में हैमिल्टन साहब समाज से उपेक्षित-तिरस्कृत नारी को गौरवपूर्ण स्थान देते हैं –"मेरी माँ को सहारा देते-देते कब मेरे पिता उनके सहारे हो गए, वह किसी को पता नहीं चला। माँ के अद्‌भुत रूप-लावण्य के साथ-साथ उनके सरल स्नेहिल स्वभाव ने पिता को बाँध लिया। तुम्हारे पिता उन दोनों के बीच की कड़ी थे और उन्होंने इस रिश्ते को मेरी माँ के अंतिम दिन तक निभाया।"[20] इसकी पहल और निर्वाह दोनों ओर से समान रूप से होने लगे हैं। दोनों ही समर्पण की भावना के साथ इसमें जीते चले जा रहे हैं। अतः ऐसे भी कुछ समझदार ठोस प्रेम के आधुनिक रूप को हम देख सकते हैं। 'अपने-अपने कोणार्क' प्रेम का पावन एवं आत्मीय स्वरूप जिंदगी में उत्साह को बढ़ाता है। यह किसी कसौटी पर कसा नहीं जाता है। 'अपने-अपने कोणार्क' में सिद्धार्थ कुनी से कहता है –"प्रेम सही गलत की तराजू पर तौलकर नहीं किया जाता है। वह तो एक अचानक भीतर से उठता कोई त्वरित-सा आभास है, जहाँ जीवन भर का जोड़-घटाव बिठाने का वक्त किसे मिलता है? और इसकी जरूरत भी कौन समझता है?"[21]

युगीन उपन्यासकारों ने प्रेम के इस नये रूप को अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी देखी जाती है कि यदि स्त्री को दूसरी ओर से निस्वार्थ स्नेह की प्राप्ति नहीं होती तो वह बदले की आग में जलने लगती है। वह केवल दैहिक प्रेम नहीं चाहती वह तो आत्मिक प्रेम की कामना लिए होती है। 'दिखता हुआ अतीत' में "रामचंद्रम को देखते ही कमलाम्बा का मन मयूर की तरह थिरकने लगता है और पति श्रवणकुमार की मौजूदगी में मन गैस लाइट की तरह बुझ जाता है।"[22]

प्रस्तुत वैश्वीकरणीय युग में जीवन की रूपरेखा भोग-विलास पर अधिक झुकी हुई है। प्रणय-संबंधों में किसी प्रकार की विशेष बाधा दिखाई नहीं देती। वैश्वीकरणीय प्रेम प्राचीन समाज की मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ाता जा रहा है। इस युग में प्रेम की पराकाष्ठा एक-दूसरे के लिए निछावर होने की भावना नहीं बल्कि धन-दौलत की

प्राप्ति ही इसका अंतिम लक्ष्य है। 'कठगुलाब' उपन्यास में मारियान की माता वरजिनया को खुद का लाइलाज लीवर कैंसर की बात मालूम हुई तो बहुत उदास हो गयी। विशाल ह्रदयवाले पति जार्ज का वरजिनया को आत्मिक और मानसिक संतोष देने के बावजूद भी उसके मन में संतोष नहीं है। वरजिनया का कहना है कि –"मैं जार्ज से पहले मर जाऊँगी। उसका पैसा मेरे किसी काम नहीं आएगा।"[23]

समकालीन उपन्यासों में कई संदर्भों में हम इस स्थिति को देख पाते हैं। विशेषकर उपन्यासकारों ने किसी न किसी रूप से नारी की चेतना के माध्यम से इस भेद-भाव को मिटाने का भरसक प्रयास किया है। इस स्थिति में उसके मन की मूल भावना स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

इस भाव को न्यूक्लियर परिवेश की नारी ने केवल अपने तक ही बाँध कर रख लिया है, खैर उसने प्रेम का प्रमुख लक्षण 'लेना और देने' वाली भावना को केवल 'लेने' की भावना तक सीमित कर लिया है। अतः यह भावना समाज को खोखला बनाने में बड़ी भूमिका निभा रही है।

इस प्रकार प्रेम-संबंध ह्रदय की वस्तु न होकर मस्तिष्क की कठपुतली मात्र बन कर रह गया है। नारी का यह शिक्षित, प्रशिक्षित दिमाग इस भावना को व्यापार के रूप में ग्रहण कर रहा है। वह इस भावना का व्यापार लेने और देने की प्रक्रिया से संपन्न करना चाहती है। इस व्यापारिक आदान-प्रदान में नैतिकता शर्मसार होती जा रही है। 'आवां' में संजय कनोई नमिता से गौतमी के बारे में बताता है –"जूठी कोख है गौतमी। जिस फ्लैट में वह रही है जानती हो किसका भेंट किया हुआ है? नामी गिरामी उद्योगपति छेडा साहब का। जापान में डेड़ साल रही गौतमी। छेड़ा साहेब की पत्नी मुंबई लौटी तो अपनी सूनी गोद में बेटा लेकर। व्यवसायी समाज में उन्होंने झूठ उड़ा रखा था कि मिसेज छेड़ा गर्भवती है।"[24]

इलैक्ट्रानिक दुनिया के उपन्यासकारों ने कई संदर्भों में प्रेम की इस घोर परिवर्तनशीलता में भी उसके प्राचीन समर्पित गुण को खोजने का प्रयास किया है। शायद यही कारण है कि आज भी यह भाव अपनी उदात्त भावभूमि पर देखा जाता है,

आज भी प्रेम के लिए निकले पहले शब्द पवित्र ही होते हैं। आज के उपन्यासकार ने इन भावनाओं को अपनी कृतियों के माध्यम से जीवित रखा है। उसका यही परिवेश जीवन में आशा की किरण जगाये रखता है।

प्रेम भाव चाहे किसी भी युग का हो, किसी भी परिवेश का हो, किसी भी संस्कृति का हो उसका तो एक ही गुण होता है समर्पण, समर्पण और सिर्फ समर्पण! किसी भी युग मे ंनारी और पुरुष का यह प्रणय-संबंध जाति, धर्म, रंग-रूप, वर्ग आदि किसी की परवाह नहीं करता। वह तो केवल समर्पण करना जानता है। ऐसे सुदृढ़ मनोबल वाले व्यक्तियों में यह आधुनिकता का बुरा प्रभाव जमाने में सफल नहीं हो पाता, अर्थात् ऐसे भी बुद्धिजीवी इस समाज में व्याप्त हैं जो इसकी मूल पवित्र भावना को ग्रहण किये हुए हैं।

कभी-कभी यह समर्पित प्रेम स्त्री जाति के लिए एक धोखा बन जाता है। ऐसी परिस्थितियाँ आज के परिवेश में बार-बार उत्पन्न होती रहती हैं। कई नारियाँ इस धोखे का शिकार बनती हुई दिखाई देती हैं। इस स्थिति का भी मनोमुग्धकारी चित्रण युगीन उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। 'छिन्नमस्ता' में प्रिया की एम.ए. परीक्षा के दौरान प्रो.मुखर्जी प्रिया की जिंदगी में आते हैं। प्रो.मुखर्जी प्रिया को अपने पास खींचकर उसके कानों में कहने लगता है –"मैं तुमसे प्यार करता हूँ....केवल तुम से...।"[25]उस दिन प्रो.मुखर्जी का स्पर्श मादक और सुखद लगा। इस समय प्रिया बाईस वर्ष की उम्र की पूरी औरत बनी थी और प्रो. मुखर्जी बत्तीस वर्ष के एक अनुभवी पुरुष थे। ये हरकतें सप्ताह में दो-तीन बार के हिसाब से छह महीने तक चलीं। परन्तु वे एक बार पंद्रह दिन की छुट्टी पर जाकर शादी कर वापस आ गया। प्रिया जब उनसे मिलने गयी तो प्रिया को फटकारते हुए कहा कि –"मूर्ख लड़की, मैंने कब कहा था कि मैं तुमसे शादी करूँगा? हम दोनों ने मौज की... और सुनो फिर कभी यहाँ मत आना, मैं शादी-शुदा इन्सान हूँ।"[26] तो प्रिया इस बात पर पछतावा करने लगी - "कि शादी-शुदा पुरुष के साथ संबंध जोड़कर बड़ा धोखा खाया था। उसमें अपराध-बोध जागने लगा।"[27]

आधुनिक भौतिक समाज में प्रेम के कई रूप हमारे सामने आते हैं। उसमें विवाह पूर्व का प्रेम काफी चर्चित विषय है। प्रेम की इस अवस्था को विभिन्न मानदण्डों में वर्णित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रेम के परवान न चढ़ने के कई कारण सामने आते हैं। अर्थात् प्रेम एक से किया जाता है और शादी दूसरे से की जाती है। यह किस्सा यही समाप्त नहीं होता। शादी के बाद भी विवाहपूर्व के प्रेम सबंधों को पूर्ववत बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। इसी दोहरेपन के कारण आज प्रेम की परिभाषा ने उसका मूल रूप बदल दिया है। प्रेम विवाह की जब बात आती है तो आज का बुद्धिजीवी युवावर्ग बीच में स्वयं की महत्वाकांक्षाएँ, लाभ, मोह आदि जैसी जरूरतों की गिनती करता है और इन सब का कारण अपने बड़ों का दबाव बतलाता है। इसी कारण आज प्रेम का मार्ग दूषित होता हुआ दिखाई देता है। इस संबंध में 'मुझे चाँद चाहिए' में दिव्या कत्याल के बारे में वर्षा की सोच यहाँ व्यक्त होती है कि –"दिव्या इसी तरह नहीं टूटती अगर प्रशांत ने रिश्ते की गरिमा निबाही होती। महीनों तक दिव्या के पत्रों के उत्तर न देने की बजाय यकायक विवाह कर लेना और उसके समाचार एक तीसरे व्यक्ति के द्वारा दिव्या के घर पहुँचना एक कोमल सबंध की बहुत भौंडी, क्रूर परिणति थी।"[28]

इसी उपन्यास में वर्षा की सहपाठिन ज्योति का भाई प्रकाशमणि प्रेम तो अपनी सहयोगिनी कुंकुमनायिका से करता है, परन्तु शादी कामिनीदेवी से करता है। "पिता-पुत्र से तीखे संघर्ष के बीच आखिरकार प्रकाशमणि की बारात गयी और वह जीवनसंगिनी लाए, लेकिन त्रिचूर से कुंकुमनायिका को नहीं, बल्कि फिरोजाबाद से कामिनी को। 'प्रेम-बारात' का ऐसा प्रत्यावर्तन सिलबिल को निस्पंद कर गया।"[29]

प्रेम के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण जीवन को वेदनापूर्ण बना देता है। अतीत की सुखद स्मृतियाँ वर्तमान को भी सहज नहीं रहने देती।

अतः इस प्रेम का नवीनता की ओर रूख दु:ख का बड़ा कारण बनता जा रहा है। प्राचीन मान्यता है कि प्रणय कभी मरता नहीं है। अतः उसका यह अमर अस्तित्व भावी जीवन में जहर का काम करने लगता है। अतीत की प्रणयानुभूति वर्तमान और

भविष्य को बार-बार भेदती रहती है। पुरानी यादें भावी वैवाहिक जीवन में अड़चनें उत्पन्न करती चली जाती हैं। इसी उपन्यास में सुजाता के साथ भी कुछ इसी तरह का छलावा होता है। "सुजाता की भावनाओं का केन्द्र अक्षय था। वह तबादले पर कलकत्ता गया तो उसने वहीं एक बंगाली युवती से विवाह कर लिया।"[30]

प्रेम लौकिक भी होता है और अलौकिक भी। उसकी निजी अभिव्यक्ति जब हृदय को छूने लगती है तो सामाजिक मर्यादाएँ भी उसके मार्ग को नहीं रोक पाती हैं। युगीन उपन्यासों में चित्रित नारी 'प्रेम' में हर मर्यादा, नियम-निषेध का अतिक्रमण कर जाती है। 'इदन्नमम' में कुसुमा पति-परित्यक्ता है, परन्तु दाऊ जी (देवर) के साथ ही प्रेम संबंध स्थापित करती है। "दाऊजी, तुमने तो पूरे सुख सागर का सत्त निचोरकर घट भर लिया। यह ककरा भरी छत नरम गदेली हो गई। पोर-पोर से रस निचुरता है......। पगली हमने तो अब जाना है कि औरत धरती जैसी होती है। सारे भार को फलों की तरह समेटती हुई इमरतदान देती है आदमी को।"[31]

'दिलो दानिश' में स्त्री की अवधारणा कुछ झुंझलाए - तिलमिलाए हुएव्यक्त हुई है। वकील साहब ने समझकर कहा –"जानम मुहब्बत की रिहाईश सिर्फ जनम में नहीं, दिलो दिमाग में भी होती है।" महक ने न आँख झपकी और बड़ी अनोखी आवाज में कहा –"दिलो-दिमाग क्या काया के अंदर नहीं होते।"[32]

अत: कहा जा सकता है कि प्रेम अपने पतन के कगार पर खड़ा है। स्त्री-पुरुष की प्रेम भावना कुल मिलाकर अपनी विनाशकारिता के घेरे में आ चुकी है। इस स्थिति को युगीन उपन्यासों में बड़े ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है।

4.1.2 समझौतों की अस्वीकार्यता

नये दृष्टिकोण, प्रगतिशील विचार, अदम्य कर्मठता ने नारी व्यक्तित्व को एक नया आयाम दिया है। वह आज पत्नी, प्रेयसी, माँ से इतर अपने स्व-अस्तित्व का निर्माण कर रही है। 'स्व' के प्रति इस जागरुकता के कारण अब नारी पुरुष की

समभागी होने के साथ-साथ प्रतियोगी भी बन गयी है। समझौतों को अस्वीकारने के सिलसिले में पुरुष संबंधों के प्रति एक कटु चुनौती का भाव भर दिया है।

'मरीचिका' तेलुगु उपन्यास में पति विजयेन्दर का कविता के साथ अवैध संबंध को जानकर पत्नी शांता विजयेन्दर को कड़ी चुनौती देती है –"हम कितना भी सोचे अतीत मिटता नहीं। आपको पसंद हो या न हो वह तो इस घर में रहेगी ही। आपको परिवार चाहिए तो उसे स्वीकारना है। नहीं तो एक पत्नी क्या, दो पत्नियों का कुँवारापति की तरह जियो। बस ! मुझे मत सताइए। इतना कुछ होने के बाद आपके स्पर्श को भी मैं बरदाश्त नहीं कर सकती। मैंने बच्चों का जना है, इसीलिए उन्हें मुश्किलों में डालकर पिता से दूर न कर पाकर, तुमसे समझौता कर इस घर में रहने के लिए अपने मन को मना लिया। अब मेरे मन में बच्चों के पिता के रूप में ही आपकी जगह बची है।"[33]

'मरीचिका' तेलुगु उपन्यास में कविता भी विजयेन्दर को धमकी देती है – "विजय.... इस जनम में ही नहीं, दूसरे जनम में भी किसी औरत को धोखा न दे पाने की सबक सिखाऊँगी। तुमको ही नहीं, तुम जैसे मर्द, स्त्रियों को नादान बनाकर, नचवाकर, जाल बिछाकर, भोगकर छोड़नेवालों को तुम्हारा किस्सा मालूम कराके, ऐसा काम करने के पहले दस बार सोचने को मजबूर कर, तुमसे बदला लेने ही आयी हूँ। तुम्हारी कहानी पुरुषों की दुनिया को सबक होना है।"[34]

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रिया जब अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होती है तोस्पर्धा की भावना से उत्तेजित हो उठती है। प्रिया की सोच इस संबंध में दर्शनीय है "क्या चुनाव करने से चिड़िया मिल जाती है शायद मिल जाए पर क्या हम अपने भविष्य का भी चुनाव कर पाते हैं। व्यवस्था जहाँ सुरक्षा देती है वहाँ घुटन भी। मगर मैंने बिलकुल शुरू में हर सीमा को सहज या आरोपित जो भी हो, सब कुछ स्वीकारा। काफी वर्षों तक स्वीकारती रही.... और एक दिन लगा.... मैं नरेन्द्र की पत्नी हूँ..... सेक्रेटरी और नौकरानी नहीं।"[35]

इसी उपन्यास में प्रिया जब एक अच्छी 'बिजनेस वुमन' बन जाती है, तो वह अपने पति नरेन्द्र को चुनौती देती है। वह नरेन्द्र से कहती है –"शांति से बात करो नरेन्द्र। आवाज ऊँची मत करो और मैं तुमसे समझौता करने नहीं आई हूँ।"

"तब क्या करने आई हो?"

"काउंटर चैलेंज। हाँ, तुम इसे धमकी भी कह सकते हो। तुमने कहा था न कि -"तुम मेरा बिजनेस बरबाद करवा सकते हो?"

"धमकी नहीं, आई मीन इट..."

"तब तुम भी सुन लो, यदि मेरा व्यापार डूबा तो..."

"मैं इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स, एक्साइज और तुम्हारे सारे बखेड़ों का खुले बाजार में भंडा फोड़ूँगी। और देखती हूँ कि तुम कैसे बचते हो?"[36]

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में नरेन्द्र का हर छः महीने में हसीन सेक्रेटरी को बदलना एक आम बात है। वैसे ही एक सेक्रेटरी साल-डेढ़ साल तक टिक गयी थी। नरेन्द्र से वह गर्भवती हुई। नरेन्द्र उसका पीछा छुड़ाने के लिए सौदा करने लगता है – "अरे, भूल जाओ, इन कसमों और वादों को। बोलो कितना रुपया लेकर जान छोड़ोगी।"[37] इस अर्थकेन्द्रित यौन संबंधों पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई वह नरेन्द्र को धमकी देती है –"तुमसोचते हो कि तुम रुपये से हर औरत का मुँह बंद कर दोगे? मैं तुम्हें बरबाद करके मानूँगी।"[38]

'मरीचिका' तेलुगु उपन्यास में कविता को देखते ही विजेंदर में नफरत बढ़ने लगी। वह कविता से पीछा छुड़ाना चाहता है। इसी सिलसिले में वह पूछता है कि –"तुम किस उम्मीद को लेकर इस घर में आयी हो? । पैसों के लिए ...? था तुम्हारे साथ अन्याय हुआ तो मेरे साथ भी वैसा अन्याय होना समझकर बीबी, बच्चों से मुझे दूर करने के इरादे में हो? तुम्हें..... क्या चाहिए? पैसे चाहिए तो बताओ। जहाँ तक हो सके, उधार लेकर दे दूँगा। एक ला, दो लाख कितना चाहिए..... ?"[39]

प्रिया - नरेन्द्र की कचोट से छूटने के लिए, आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनने के लिए प्रमोद की सहायता से एक्सपोर्ट का काम शुरू करती है। प्रिया की महत्वाकांक्षा को नरेन्द्र सेक्स्युअल फ्रस्टेशन का नाम देता है। नरेन्द्र की चंगुल से छूटना चाहती है इसीलिए वह अपने हक की लड़ाई भी लड़ना नहीं चाहती है। वह कहती है –"जब हम दोनों में प्यार का कोई लम्हा भी नहीं बचा और धन? नरेन्द्र का धन? खरीदो - बेचो.... उसका जो मन चाहे करे।"[40]

"ओ, तो नौबत यहाँ तक है?क्या यह अच्छा नहीं होगा कि उसके पहले तुम्हारी कबूर-सी गर्दन मरोड़ दी जाए?"

"हाँ, क्यों नहीं? कर सकते हो, पर पुलिस थाने में एफ.आई.आर. करके आई हूँ और मैं मर भी गयी नरेन्द्र, तो इतना समझ लेना, तुम और तुम्हारा अग्रवाल हाउस का सबूत तक नहीं बचेगा।"[41]

प्रिया जब नरेन्द्र के साथ स्पर्धा पर उतर आती है, तो यही स्पर्धा उनके दांपत्य जीवन में जहर भी घोल देता है क्योंकि नरेन्द्र पुरुषवादी अहंकार से ग्रसित होता है। प्रिया का फिलिप से बातचीत इसे रेखांकित करता है – मैंने नरेन्द्र के अधीन में रहकर जो कुछ भी किया, वह सब स्वीकृत था मगर कार्य जगत में जब मैं स्वतंत्र निर्णय लेने लगी, मैं उसकी निगाह में पत्नी की भूमिका नहीं निभा सकी थी। मेरी हर बात में उसे सौ-सौ खामियाँ नज़र आती थी। यही प्रिया आगे चलकर अपना सफल स्वतंत्र अस्तित्व बनाती है। पर पुरुष वर्चस्ववाला समाज पुरुष के साथ इस स्पर्धा को बरदाश्त नहीं कर पाता है। वे चाहते थे कि ऐसी घरफोड़ औरत को सजा मिलनी चाहिए, क्योंकि कहीं न कहीं उन्हें मेरी सफलता से भय था। शायद वे सोचते हों कि एक औरत लड़कर कुछ हासिल कर लेती है तो दूसरी औरत भी उन्हीं रास्तों पर चलेंगी।

नारी आज वैवाहिक जीवन की प्रत्येक उपलब्धि में समान सहयोग चाहती है। 'कठगुलाब' में मारियान का गर्भपात जब इर्विंग करवा देता है तो मारियान दुबारा गर्भ धारण नहीं कर पाती है। मारियान जब इलाज के लिए पुरुष चिकित्सक के पास जाती है तो वह कहता है –"दिस इज द रिवेंज आफ द वूम्ब।"[42]

प्रतिक्रिया में मारियान के मन में पुरुष के प्रति द्वेष भर जाता है। वह कहती है –"वाह रे, नर-सुअर, एकदम सही पकड़ा तुमने। जरूर कहीं न कहीं एक विराट मसखरा बैठा है जो बदला भी लेता है तो हादसे के शिकार से, शिकारी से नहीं। फेमिनिस्ट कहती हैं –"उन्हें भगवान को मर्द मानने से इनकार है। वह औरत क्यों नहीं हो सकता ? तो क्या फर्क पड़ेगा ?""चलिए मैं कमजोर औरत सही। पर आप बड़े-बड़े दावा करने वाले नर डाक्टर ? यही है आपका बुलंद विज्ञान।"[43]

'कठगुलाब' की असीमा पुरुष के प्रति चुनौतीपूर्ण विद्रोही नजरिया रखती है। नर्मदा को, उसका जीजा गणपतअक्सर सताता है तोअसीमा इसे जानकर असीमा आग बबूला होकर चिल्लाने लगती है -"पुलिस में दूँगी, जेल में सड़ाऊँगी, अक्ल ठिकाने लगाऊँगी, तेरी कमेरी बहन के भेजे में बिठलाऊँगी कि छोड़ परे हरामी का घर..."[44]"फिर काहे को मार खाते हो, निकाल बाहर करो ससुरे को। घर अपना, कमाई अपनी, फिर मार खाने का रखा क्यों है उसे ? हाँ अक्ल भी समझाने से आती है मैं अभी जाती हूँ उसके घर।उस हरामी को जेल न भिजावाया तो मेरा नाम नहीं।"[45]

पुरुष के नकारात्मक रवैया से उत्पीड़ित नारीमें प्रतिशोध की भावना भी प्रबल होने लगती है। 'कठगुलाब' में नर्मदा भी एक ऐसी नारी है जो प्रतिशोध से भर उठती है। वह जीजा गनपत को खूब सुनाती है –"फिर कभी इस घर में आने की हिम्मत की तो दोनों टाँगें तोड़ के सड़क पर फेंक दूँगी। भडुवे, जा अपनी बीवी के पल्लू में जा के सो जा। मैं तेरी रखैल न थी, तू मेरा रखैल था। जो, समझ के हिस्सा माफ किया। हिम्मत हो तो आ मेरे सामनेऔर सचमुच चाकू खोल खड़ी हो गयी।"[46]

यहाँ तक कि स्पर्धा के कारण नारी भी पुरुष को एक दैहिक इकाई ही मानती है। विपिन मजूमदार ने कहा –"मैं तुम्हारे लिए स्पर्म से ज्यादा कुछ नहीं हूँ।"

नीरजा उत्तर देती है कि **-**"मिस्टर विपिन मजूमदार**,**असीमा ने आपको जरूर बतलाया होगा कि कोई भी मर्द इससे ज्यादा कुछ नहीं होता।"[47]

युगीन नारी बुद्धिजीवी है जिसके जीवन की धुरी केवल पुरुष नहीं है। समानता का आग्रह प्रतिद्वंद्विता का आग्रह बनकर रह गया है। 'आवां' उपन्यास में संजय कनोई की पत्नी निर्मल कनोई 'पद्मश्री' अवार्ड पाना चाहती है। ताकि वह संजय से श्रेष्ठ साबित हो सके। अवार्ड जब नहीं मिलता है तब भी वह संजय कनोई को ही दोषी ठहराती है। संजय कनोई अपनी पत्नी के साथ इस स्पर्धा से आहत होकर कह उठता है –"उसने मेरा जीना हराम कर दिया। मैं उससे ईर्ष्या करता हूँ। मैंने मुख्यमंत्री से उसके सम्मान के लिए बात ही नहीं चलाई। सरकार तो महीने भर बाद गिरी.... सहमतियाँ तब तक जा चुकी थी.... अब वह मुझ पर भरोसा नहीं कर सकती। किससे क्या करवाना है वह देखेगी और मुझे दिखाएगी। इस साल 'पद्मश्री' की सूची बिना उसके नाम के प्रकाशित नहीं होपाएगी।"[48]

इसी उपन्यास में पवार विमला बेन की पुरुष-स्पर्धा के प्रतिहिंसात्मक पक्षको उद्‌घाटित करते हुए कहता है –"अवमूल्य था, विकृति समाज में कोई नया मूल्य सृजित नहीं कर सकती। अब देखो, स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रतिहिंसा परस्पर इस सभा तक खिंच गयी है कि स्त्रियों ने एक जुट होकर स्त्रियों के संग रहने की ठान ली।"

मर्द औरत के बीच कोई सामंजस्य स्थापित हो सकेगा इन बेहुदा हरकतों से ?बन पाएगी परस्पर स्वस्थ स्थिति ?"[49]

पवार हँस कर कहने लगा कि-"ठीक... ठीक यही पतन मर्दों से विलग हुई आत्मनिर्भर उन सभी नारियों का भी होगा, जो स्त्री स्वातंत्र्य का बीड़ा उठाया है।"[50]

इस उपन्यास में निर्मला कनोई अपने पति संजय कनोई के समानांतर अपना व्यवसाय खड़ा करती है। उसके प्रतिस्पर्धा के बारे में संजय कनोई का कहना है– "जीवन में जिस दर्शन का महत्व नहीं, अंगूठी में पिरोया जा रहा उसे। जलवा देखो। रघुभाई ज्वैलर्स के दूध के दाँत भी नहीं झड़े हैं अभी, और इतना बड़ा सम्मान। पिता हीरा-पन्ना के थोक व्यवसायी हैं। यह शो-रूम तीन साल पहले उसने सिर्फ मेरी नाक में नकेल डालने के लिए खोला है। बेवकूफ नहीं हूँ मैं।"[51]

नमिता के गर्भ-स्राव को लेकर संजय कनोई गुस्से में चिल्लाने लगता है कि – “मैं तुमसे घृणा करता हूँ... तुमसे।”[52] तो इसे सुनकर नमिता को ऐसा लगा - गर्भ कल नहीं आज गिरा है उसका। किराप दुसाध मरा नहीं है। मरेगा भी नहीं। जब तक औरत अपने पेट को उसके लातों के प्रहार से स्वयं को बचाना नहीं सीख जाती।”[53]

‘मुझे चाँद चाहिए’ में वर्षा के जीवन में बचपन से ही उसे चुनौतियाँ घेर लेती हैं जिसका बड़े साहस के साथ उसने सामना किया और कभी समझौते को स्वीकार नहीं किया। मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज के प्रथमवर्ष की पढ़ाई करते समय दिव्या कत्याल की प्रेरेणा से नाटक में अभिनय शुरू करती है। वर्षा के पिताजी इस नाटक को लेकर घर की इज्जत मिट्टी में मिल जाने की बात कहते हैं। तो वर्षा इसके जवाब में कहती है – “इसमें ऐसे घरों की लड़कियाँ काम कर रही हैं, जिनकी इज्जत हमारे घर से ज्यादा ही अच्छी है।”[54] वर्षा की बिगड़ी हुई स्थिति को देखकर परिवार वाले उसकी शादी तय करके जिम्मेदारी से छुटकारा पाना चाहते हैं लेकिन वर्षा इसका कड़ा विरोध करती हुई भाई महादेव से कहती है –“जिस मोड़ पर मैं खड़ी हूँ उसमें शादी मुझे उतने महत्व की नहीं लगती, जितना पावों पर खड़ा रहना लगता है।”[55] पिताजी से भी कहती “वंश में किसी लड़की ने नौकरी नहीं की, वह आगे भी न करे। यह जरूरी नहीं है। मैं ब्याह नहीं करूँगी। चाहे मारो या चाहे कूटो।”[56]

कलात्मक उत्थान वर्षा के जीवन का अंतिम ध्येय था। इसके प्रति अपने को पूर्ण समर्पित की। अपनी कला के उत्थान के सामने वह विवाह को भी महत्व न देते हुए कहती है –“अगर मैंने ब्याह कर भी लिया तो भी रिपर्टरी नहीं छोड़ूँगी। वह रंगमंच के बिना नहीं जी सकती। गृहस्थी और मंचोपस्थिति के जादू का स्थानापन्न नहीं हो सकते। अगर उसके पति का तबादला हुआ तो वह रिपर्टरी के बजाय उसे छोड़ देगी।”[57]

वर्षा के लिए हर्ष उसके जीवन का महत्वपूर्ण पुरुष था। अपने स्त्रीत्व की गहन अनुभूतियों को वर्षा ने हर्ष के साथ जोड़ दिया था। हर्ष के साथ होने वाले मिलन से उसे तुष्टि मिलती है। इसी कारण हर्ष के मरण के बाद भी वह हर्ष के बच्चे को जन्म

देने तैयार हो जाती है। वर्षा ऐसा मानती है कि –“उसके पेट का बीज केवल हर्ष की ही स्मृति नहीं था बल्कि उसका अपना भी अंश था।”[58]

‘इदन्नमम’ उपन्यास में गाँव में हो रहे अन्याय का विरोध मंदा करती है। इसके लिए वह अभिलेख सिंह को चुनौती देती है। वे मंदा के बारे में कहते हैं –“सब समझ गए कि यह टंटा किसने करवाया होगा। किसने दिखाई होगी यह करामात। बहुत नौटंकी होने लगी है, इस गाँव में।”[59]

मंदा समझती है कि -“राउत सहारियों को बगल में देकर बन जाएगा। एमैले (M.L.A.) औरत मंदा के तलुए चाटकर होना चाहता है लीडर। अब आएगा खेल का मजा। अभिलाख से जड्डली है बिटिया ने सो परनाम भी पा लेगी जल्दी ही। नेतागिरी करके क्या मिलती है, यह भी तो जान लेना चाहिए। बिलइया की जात क्या बाघ से जीत लेगी।”[60]

कविता विजय के घर आकर पत्नी शांता से मद्द माँगती है ताकि विजय को सबक सिखा सके। कविता कहती है कि एक लड़का, किसी लड़की से प्रेम व्यवहार चलाये तो उसे मामूली-सी बात मानकर शादी के पहले माँ-बाप गौर नहीं करते हैं। शादी के बाद पति पर स्त्री के साथ घूमे-फिरे तो भी पत्नी यही समझ लेती है कि पति का चंद दिनों का आकर्षण है, घर छोड़कर जाएगा कहाँ मानकर उदास बनकर चुप रहने के कारण ही मर्द ऐसे स्वांग रचते हैं।”[61]

पति वापस अपने पास आ गया मानकर पत्नी खुश होकर उसे स्वीकार कर लेती है लेकिन वह अपने को धोखा किया करके सजा दिये तो फिर कोई भी पुरुष ऐसा साहस कर पाएगा।”[62]

4.1.3 वैवाहिक जीवन की प्रतिद्वंद्विता

परिवार एक मजबूत सामाजिक नींव है। पति और पत्नी उस परिवार की नींव के आधार स्तम्भ हैं। इन दोनों के शक्तिशाली अस्तित्व के अभाव में कोई भी परिवार अपने जीवन का लम्बा सफर खुशहाली से तय नहीं कर सकता। अब सवाल यह

उठता है कि स्त्री और पुरुष में पहल किसे करनी चाहिए। ये दोनों दो अलग व्यक्तित्व, सोच, विचार से संपन्न होते हैं। प्रकृतिवश यह देखा गया है कि जहाँ तक परिवार का प्रश्न आता है स्त्री उसके लिए अधिक जिम्मेदार होती है, क्योंकि यह सर्वविदित सत्य है कि स्त्री का 'मातृत्व भाव' एक ईश्वरीय देन है। इसी भावना से वह पति और संतान को प्रेमपूर्ण धागे में पिरोये रख सकती है। प्राचीन समय से प्रेम भाव को वितरित या प्रवाहित करने का श्रेय स्त्री की झोली में ही आता है और वह उसे बखूबी निभाती भी है।

जीवन रचना का एक दूसरा पहलू भी है जहाँ पर पुरुष के बिना स्त्री को अधूरा मानने की प्रथा कायम है। समाज में पुरुष के बिना स्त्री का अलग अस्तित्व नहीं माना जाता। प्राचीन समाज में स्त्री ने पुरुष के नाम से जीना भी सीख लिया था। वह इसके विपरीत सोच को भी पाप मानती थी। उसका कर्तव्य केवल निस्वार्थ भाव से कोई आशंका बिना पति की सेवा में निरत रहना था। किसी प्रकार की आशा उसके मन में उत्पन्न ही नहीं होती थी। पति के सुख में ही उसका सुख निहित था जैसे वह एक पृथक व्यक्तिव रखती ही नहीं है। इसीलिए उसके मन में पति से किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा रखने वाली भावना जागृत ही नहीं होती थी। जो भी पति के विचार होते थे वही वह स्वयं के मान लेती थी। अत: ऐसी स्थिति में किसी प्रकार के द्वेष या द्वंद्व की बात ही नहीं आती। स्त्री ने कभी अपने 'मैं' की आवाज़ नहीं सुनी थी और ना ही कभी उसका ऐसा प्रयास था।

पारंपरिक परिवार में पति-पत्नी का दाम्पत्य संबंध किन नैतिक मूल्यों पर टिका हुआ था और उसकी त्रासदी स्त्री किस स्तर पर भोगनी पड़ती थी इसका एक उदाहरण 'प्रभा खेतान' की 'छिन्नमस्ता' में प्रिया की अम्मा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रिया की अम्मा राधा से कहती है –"राधा हम लोगों की भी कोई जिंदगी है? जब से शादी हुई, हर दसवें महीने बच्चे पर बच्चा। एक लड़का तो मरा हुआ पैदा हुआ। पहली लड़की आठ बरस की उम्र में मर गयी। चार बार तो ओगण (गर्भपात) हो गया। शरीर में कोई दम रहता है क्या? और सुमित्रा बाई को देखो। चौदह साल में शादी हो गयी, पंद्रह बरस में तो बुल्ली हो गया।"[63]

परिवार में पुरुष वर्ग का अपनी पत्नी पर अत्याचार करना और पत्नी को ऐसी स्थितियों का शिकार होना हमेशा से होता रहा है। 'कलिकथा-वाया-बाईपास' में "ललित भैया बड़ी मामी की कोई भी बात चलने पर उदास हो जाते। किशोर ने देखा या कई बार मामी की थाली सजाते और मामाजी को भरी थाली उठाकर फेंकते। जब तक थाली की झनझनाहट थमती, तब तक मामाजी उठकर घर से बाहर चले जाते और मामी रात भर सतुवां नाक को पल्लू से पोंछती जाती और थाली में खाली कटोरियाँ वापस उठाकर ले जाती। उनका झक गोरा रंग लाल एक दम लाल हो जाता।"[64]

आज तकनीकी युग में स्त्री चेतित हो उठी है। उसने स्वतंत्र होने की हुँकार भरी है। बुद्धिजीवी होने के कारण आज उसका अहं जागृत हो उठा है। आज वह किसान की खूँटी से बँधी हुई गाय नहीं वरन् मंदिर की गाय बन गई है। आज वह पति के नाम से पहचानी जाने वाली पत्नी नहीं बल्कि स्वयं के नाम और डिग्रियों से पहचान बनाने वाली इंटलैक्च्युअल बनना चाहती है। आज वह पति के इशारों पर नाचने वाली चार दिवारी की हद में रहने वाली, निस्सहाय एवं मूक पत्नी नहीं है जो केवल पति की वाणी है। युगीन समय में वह दांपत्य जीवन से अपने अधिकारों को पाने की इच्छुक है। वह पति से समान अधिकार पाना चाहती है। पति के समान ही उसे भी समाज में सम्मान प्राप्त हो, ऐसी उसकी अभिलाषा है। युगीन वैवाहिक जीवन नारी और पुरुष के समानधर्मी होने की भावना के साथ पनपता है। दोनों पक्षों से प्रेम की समान धारा प्रवाहित होने की माँग करता है आज का दांपत्य संबंध। पति-पत्नी का यह गठबंधन किसी एक बात को लेकर समर्पित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण रूप से इसने परिवेश को ही बदलकर रख दिया है।

अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने अपने कथनों में इन स्थितियों को बारीकी से विश्लेषित किया है। इस संबंध में डॉ. टी.मोहनसिंह का कहना है कि –"औद्योगिक क्रांति, द्वितीय विश्व संग्राम, भारत की स्वतंत्रता एवं देश के विभाजन ने मानवीय संबंधों में जो अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किये हैं, उनसे दाम्पत्य संबंधों को भी

महत्वपूर्ण धक्का लगा है। आपसी रिश्तों का पुराना ढाँचा आज खोखला हो चुका है, ऐसा लग रहा है कि वह टूट रहा है।"[65]

स्त्री की नवीन चेतना ने दांपत्य संबंध की नींव को ही झकझोर दिया है। इस विचार धारा ने इस पवित्र स्नेहमयी संबंध को विकृत बना दिया है। आज इस संबंध में द्वंद्व रहित परिणति नहीं होती बल्कि आपसी टकराती उलझनें कार्यरत हैं। पति-पत्नी के अहं आपस में प्रतिशोध-प्रतिरोध उत्पन्न करते जा रहे हैं। दोनों में प्रतिस्पर्धा लगी रहती है कि 'मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ'। दोनों में कोई झुकने को तैयार नहीं। दोनों ही झूठे अहं के पीछे भागते नज़र आ रहे हैं। 'आवां' की गौतमी कहती है कि- "पति क्या होता है, आधिकारिक बलात्कारी। आयोराइज्ड : मैंने अशोक को उस अधिकार से वंचित रखा है कि जब मन किया, बीवी सो रही हो, जाग रही हो, काम में व्यस्त हो, मरजी हो, नहीं - उठाकर बिस्तर पर पटक लिया......।"[66]

ऐसी द्वंद्वात्मक स्थिति में पुरुष नारी का वह प्राचीन त्याग, करुणा, आत्मसमर्पण वाला रूप खोज रहा है। वह उसके इसी रूप का आदि हो गया है। नारी के इस नवीन उदात्त रूप को हजम नहीं कर पा रहा है। फोटोग्राफर सिद्धार्थ नमिता और गौतमी के साथ खंडाला में बातें करते हुए नारी के प्रति अपने विचार प्रकट करते हैं –"बीबी ओ! बरसों बरस से मैं अणिमा में भारतीय नारी खोज रहा हूँ। किसी रात वह 'पति-परमेश्वर' के लिए जगती हुई नहीं मिलती। हताश-निराश–'पति परमेश्वर' कुत्ते की तरह मेज पर ढक के छोड़ दिया गया। ठंडा-ठार खाना निगलता है और बैठक के दीवान पर औंधा हो सोने की कोशिश करता है। अपने ही घर में उपेक्षित वह बीवी के कमरे में घुसने की हिम्मत नहीं जुटा पाता।"[67]यही कारण है कि आधुनिक पति और अधिक कठोर, अवसरवादी, दुष्ट बन गया है।

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में लेखिका वोल्गा शारदा के मनोभाव को पूरी तरह रेखांकित करती है –"शादी होने के नये दिनों में मैंने अपने सभी चित्रों को दिखाया था। उन्हें देखने के बाद उसके चेहरे पर न कोई प्रसन्नता या प्रशंसा दिखाई दी।

देखकर बड़ी निर्लिप्तता से उन्हें एक किनारे कर दिया। बाद में उन चित्रों को लेकर मुझ पर चिढ़ना, मेरी अवहेलना करना, गुस्सा दिखाना आदि शुरू हो गया।"[68]

"घर में उसके दैनंदिक ढर्रे में जरा सा व्यवधान हुआ तो मेरे चित्रों पर ही टूट पड़ते थे। मेरे मन से चित्रकारिता के प्रति इच्छा धीरे-धीरे दबती चली गई।"[69]

इन चित्रों को लेकर पति रामाराव का गुस्सा पारा चढ़ जाता था। वह गुस्से में आकर धमकी भी देने लगा कि - "अगर तुम्हें इन चित्रों के प्रति इतनी अधिक आसक्ति हो तो हमारे बीच का रिश्ता खतम। उस दिन से मैंने ब्रुश को छूना भी बंद कर दिया है।"[70]

आधुनिक शिक्षित स्त्री दोनों ओर से एकनिष्ठता, त्याग, समर्पण आदि की अपने जीवन से अभिलाषा रखती है। यदि इस संबंध में 'परसनल' भाव ने अपनी उपस्थिति दर्शानी प्रारम्भ कर दी तो कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। अपनी निजी बातों को किसी के साथ बाँटना नहीं चाहती। यह निजता स्त्री-पुरुष दोनों में उत्पन्न हो सकती है। वैवाहिक जीवन की सबसे पहली शर्त है पारदर्शिता और यही दांपत्य जीवन के सुख का रहस्य है। यदि इसमें निजता आ जाती है तो उनके वारे-न्यारे होना अवश्यंभावी है। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से लुका-छिपी का खेल प्रारम्भ कर देते हैं तो दोनों के बीच द्वंद्व का यह सबसे बड़ा कारण बन जाता है।

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा को उषाअपने पति शेषगिरीकी दूसरी शादी करने की अनिवार्यता को बताती है फिर भी उषा में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। एक पाषाण की तरह जड़ बन जाती है। इसे देखकर शारदा हैरान हो जाती है। बाद में उषा ही अपने को संभालकर शारदा को समझाती है कि –"आज तक मैं किसी और की जिंदगी को जीती रही। उसकी पसंद के मुताबिक जीवन गुजार दी। अब मैं अपनी पसंद की जिंदगी जीना चाहती हूँ।"[71]

पति-पत्नी के संबंधों में पशुवत जंगलीपन भारी नुकसान पहुँचाता है। इस मधुर संबंध में। कुटुता बढ़ने लगी। वह निरंतर अपनी अस्मिता की खोज में प्रयत्नशील रहती है। इस प्रयत्नशीलता में वह अपनी स्मिता को भूल कर, अपनी मूल मार्मिकता को छोड़कर, अपनी स्नेहमयी प्रवृत्ति को ठुकराकर समाज को खंडित करती जा रही है।

युगीन समय में हमें यह भी मानना होगा कि नारी ने अपनी साहसिकता और कर्मठता के कारण समाज को एक नयी दिशा प्रदान करने का प्रयास किया है। आज की स्त्री स्वयं को एक बिटिया, पत्नी, माँ जैसे मधुर भावों से ओत-प्रोत व्यक्तित्व को नहीं मान रही, बल्कि वह अपने आप को इस भागते हुए संसार की होड़ में भाग लेती हुई देखना चाहती है। अब इस पुरुष-प्रधान समाज में पुरुष अपने एकांगी प्रभाव को ढहते हुए देख रहा है। स्त्री इस समाज की रचना स्त्री और पुरुष प्रधान समाज के रूप में करना चाहती है। इसीलिए उसकी यह नवीन वर्तमान सोच पुरुषों के साथ प्रतिभागी बनने की इच्छुक है। कहीं-कहीं इस भावना ने द्वेष का भाव भी भर दिया है। यह द्वेष भाव समाज में कटुता का भाव उत्पन्न कर रहा है।

नवीन दांपत्य जीवन में नारी स्वयं के लिए पुरुष जैसा ही महत्व चाहती है। वह स्वयं को उससे कम नहीं समझती। प्रत्येक स्थिति में वह समान हक की माँग करने लगी।

पुरुष का दंभी स्वभाव नारी में प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न कर रहा है। यह प्रतिक्रिया कभी-कभी ईर्ष्या बनकर उबल पड़ती है और यह ईर्ष्या बदले की भावना में परिवर्तित हो जाती है। इन सब परिवर्तनों की अति तब होने लगती है जब नारी जैसी पावन मन की प्राणी पुरुष को केवल एक शारीरिक अस्ति समझने लगती है। नारी की यह खूँख्वार सोच समाज में मानवता की नींव हिला देती है।

आधुनिक नारी का जीवन प्राचीन सांस्कृतिक नारी के समान केवल पुरुष के आस-पास नहीं घूमता।वह तो उससे कहीं दूर अपने नीड़ निर्माण की आकांक्षा लिये उड़ान भरता रहता है। उसकी यह समानता स्पर्धा का रूप धारण कर लेती है।

नारी-चेतना ने व्यापार के क्षेत्र मे ंभी अपने पैर पसारने प्रारम्भ कर दिये हैं। औद्योगिक जीवन में भी वह पुरुषों से समानता चाहती है। वह लगातार यह बताने का प्रयास कर रही है कि –"किसी भी क्षेत्र में हम पुरुषों से कम नहीं हैं।"इस प्रकार वह व्यापारिक दुनिया में भी अपना साम्राज्य खड़ा करती जा रही है। परन्तु वह अपनी सफलता के मद में पारिवारिक और दांपत्य जीवन की श्रृंखलित कड़ी को तोड़ने में

कोई कसर नहीं छोड़ रही है। अधिकतर देखा गया है कि ऐसी सफल महिलाएँ परिवार टूटन का मुख्य कारण बनी हुई हैं।

4.1.4 मातृत्व का नवीन प्रतिमान

नारी की मातृत्व की पूर्णता ममता के मार्मिक भाव से निहित होती है। स्त्री की मातृत्व भावना से ही यह संसार सिंचित होता है। उसकी यह स्नेहशील भावना ने नारी के अस्तित्व को पुरुष जाति से अलग पहचान दी है। स्त्री का यह गुण प्राचीन हो या नवीन, समाज में जीने की आशा, उल्लास आदि गुणों से आप्लावित करता है। प्राचीन काल में इस समाज में मातृविहीन स्त्री का कों कदन नहीं हो होती थी। नारी की इसी ईश्वरप्रदत्त शक्ति से विद्यमान है। युगीन समाज में नारी चेतना ने कहीं न कहीं भले ही बहुत सीमित रूप से ही, मातृत्व का भाव प्रभावित हुआ है। स्त्री के अपने नवीन चिंतन के उन्माद ने मातृत्व की भावना को भी नज़रअंदाज करने का प्रयास किया है।

युगीन नारी के लिए 'मातृत्व' के प्रति अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। आज भारतीय समाज में उन्मुक्त यौन संबंधों का सिलसिला तेज गति से चल रहा है। इन उन्मुक्त यौन संबंधों से उत्पन्न संतान की रोकथाम के लिए बाजार में अनेक साधन-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इन सुविधाओं के निरूपयोग होने पर, गर्भपात कराने की कानूनन इजाजत है। लेकिन स्थिति इससे भी आगे बढ़ गयी है। प्रेमवश गर्भ धारण करने पर बिना विवाह मातृत्व का धारण करने वाली, विवाहित पर गर्भ धारण करने वाली, सूनी कोख के कारण गोद लेना चाहने वाली आधुनिक स्त्री 'मातृत्व' को अपनाना या ठुकराना बड़े ही सहजपूर्ण तरीके से आत्मसात कर रही है। आधुनिक स्त्री की स्वेच्छा, ब्याह से पहले माँ बन जाने की सोच को स्वीकार करने के लिए तैयार है। उस स्नेहमयी, ममतामयी, पवित्र एवं प्राकृतिक उपलब्धी को भी उसने अपनी महत्वाकांक्षा, अहं एवं अस्मिता को निढाल करने का प्रयास किया। जिसका दुष्परिणाम आधुनिक समाज में भारतीय विवाह संस्था में टूटन के रूप में परिणित हो रहा है। अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने नारी के इन नवीन चिंतन को कई रूपों में उकेरना का प्रयास किया है। चित्रा मुदग्ल रचित 'आवां' उपन्यास में सुनंदा का ब्याह सुहैल

नामक मुसलमान युवक से संपन्न होने का ही था। लेकिन सुनंदा के सामने सुहैल के अब्बू से शर्त रखी जाती है कि –“सुनंदा को इस्लाम में बदलकर नाम बदलना होगा।”[72] सुनंदा इस शर्त को मानने के लिए बिल्कुल राजी नहीं हुई और जबकि तब तक वह गर्भवती भी थी। इसी प्रस्ताव को लेकर नमिता के सामने अपनी आत्म-निर्भरता का परिचय देती है कि –“फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ दीदी। अपनी बच्ची की परवरिश स्वयं करने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाण-पत्र का मोहताज नहीं।”[73]

आज की स्त्री उसने स्वयं की देह में, अपने गर्भ में अपनी भावी संतान की पनपने की गर्वीलि अभिलाषा को भी त्यागना शुरू करने लगी। फैशन के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। संतान प्राप्ति का एक और मार्ग ‘गोद लेने’ की व्यवस्था काभी उपयोग करने के लिए तैयार है। वह माँ बनने के सुख को भी अपनी स्वेच्दा से खरीदना चाहती है। चित्रा मुद्गल रचित ‘आवा’ उपन्यास में संजय कनोई संतानोत्पत्ति के लिए सक्षम होते हुए भी, पत्नी निर्मला बच्ची को गोद लेने की बात को नमिता से कहता है। निर्मला अपनी प्रिय मझली बहन शारदा की आठ माह की ईशा को कानूनन गोद लेने की इच्छुक है।[74]

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जहाँ सूची कोख के कारण बच्चे को गोद लेकर उस सुखनभूति को प्राप्त करना चाहती हैं। मृदुला गर्ग के ‘कठगुलाब’ में मारियान की अनुभूति भी इसी प्रकार की है कि –“आखिर वह दिन आ पहुँचा जब इम्तिहान का नतीजा निकला और हम जरूरी कागज़ाद पर दस्तखत करके एक बच्ची को बेटी बनाकर घर ले जाने के लिए बुलाया गया। फोन पर खबर मिली तो ‘वुमेन ऑफ द अर्थ’ के प्रकाशन की उपलब्धि भी उसके सामने फीकी पड़ गयी। मैं माँ बनने वाली थी, वह भी बेहद चुनिंदा किस्म की माँ।”[75]

आज की हाईप्रोफाइल नारी माँ बनने के लिए किसी नैतिक, सांस्कृतिक, एकनिष्ट संबंध से भी जुड़ना नहीं चाहती। इस भावुक स्थिति को भी वह बिना पुरुष अकेली भोगना चाहती है। नारी की शिक्षा ने उसे इस हद तक कठोर बना दिया है कि

वह स्नेहमयी भाव से दूर भागना चाहती है, चाहे उसका मातृत्व भाव हाहाकार मचा दे।

सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा डॉ. मिसेज मेहता के पास जाँच करवाने जाती है तो गर्भवती होने का पता चलता है, तब अपनी दोस्त नीरजा से कहती है –"मैं हर्ष की बच्चे को स्वीकार करूँगी।"[76]

सामाजिक रूढ़ियों के हिसाब से वर्षा का यह चुनौती भरा कदम था। भविष्य में अविवाहित रहने का उसने कठोर निर्णय लिया था। हर्ष की मृत्यु हो जाने के कारण हर्ष की दीदी सुजाता वर्षा को गर्भ गिराने के लिए समझाने की कोशिश करती है, लेकिन वर्षा उसके प्रत्युत्तर में कहती है कि –"मुझे लम्बे समय तक शून्य में जीना है और अब यही मेरा सहारा होगा।"[77]

हर्ष की मम्मी भी वर्षा को गर्भ गिराने के लिए मनाने की कोशिश करती है कि –"अभी तुम्हारे सामने पूरी जिंदगी पड़ी हुई है। हो सकता है आगे चलकर कोई ऐसा पुरुष तुम्हें मिले, जिसके साथ तुम कानूनी तौर पर जिंदगी बाँटना चाहो। तुम इससे छुटकारा क्यों नहीं पा लेती?"[78] तो वर्षा बड़ी निर्भीकता से जवाब देती है कि –"और अब यही मेरा सहारा होगा।"[79]

बच्चे के जन्मने के बाद वर्षा महसूस करती है कि –"अब वह संपूर्ण स्त्री बन गयी है।"[80]

डा. शारदा अशोकवर्द्धन की 'कुंती पुत्रिका' (तेलुगु उपन्यास) में श्रीधर के कार दुर्घटना के कारण नीलिमा और श्रीधर की शादी संपन्न नहीं हो पाती तब तक नीलिमा गर्भवती थी। पिता सीतारामय्या और दीदी उमा भी नीलिमा को गर्भस्राव कराने को बहुत समझाने की कोशिश करते हैं, लेकिन इस प्रस्ताव को बिल्कुल नहीं मानकर अपनी निर्भीकता का परिचय देती है कि –"आत्मा को धोखा देना मुझे मालूम नहीं। भ्रूण हत्या कर, अपने को नादान, कुँवारी लड़की मानकर पर पुरुष को धोखा

नहीं दे सकती। इससे बढ़कर बदत्तर और घटिया हरकत और कुछ नहीं हो सकती। ऐसा काम करना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।"[81]

आज की नारी का विचार है कि माँ बन जाना एक सामाजिक पिछड़ापन है। माँ बनते ही उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाएगी। वह उन प्राचीन मान्यताओं से निजात पाना चाहती है कि माँ बनते ही दाम्पत्य प्रेम में गहराई आने लगती है, परिवार में उसका सम्मान बढ़ने लगता है, आदि-आदि......। अपने वैवाहिक जीवन में भी अकेले निर्णय लेने की ओर कदम उठाती है और अपनी ढिठाई में अपने अधिकारों का बखान करती है। मुक्तेवी भारती की 'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) शादी होने के कुछ ही दिनों में शारदा गर्भ धारण करती है, जिसे वह पसंद नहीं करती। शारदा गर्भस्राव करा लेना चाहती है लकिन रामम इस विचार से बिल्कुल सहमत नहीं हो पाता। दोनों में कहा-सुनी हो जाती है। शारदा अकेली क्लिनिक जाकर गर्भस्राव करा लेती है। कविता गुस्से में आकर रामम के खिलाफ भी सोचने लगती है कि –"गर्भस्राव कराने मात्र बड़ा पाप हो गया। इतनी सी छोटी बात को लेकर मुझ पर नाराज हो गए तो, जिंदगी भर इस व्यक्ति के साथ कैसे जी पाऊँगी। सच पूछे तो मुझे ऐसा पति नहीं चाहिए।"[82]

बचपन से ही गर्भ और लड़की बच्ची को लेकर शारदा के मन में विरोधी भावनाएँ प्रबल हैं। अपने दोस्तों के साथ बातचीत के दौरान इन भयानक विचारों को व्यक्त करती है कि –"मैं बच्चे को नहीं जनूँगी। खासकर लड़की बच्चे को। अगर लड़की बच्ची पैदा हो तो, मैं उसका गला गोंट दूँगी।"[83]

युगीन स्त्री चाहे वह किसी की तबके बनकर रहने पर भी, अवैधता के प्रतिफलन से प्राप्त 'मातृत्व' को निःसंकोच अपनान लगी। ऐसा करने में वह गर्व महसूस करती है और किसी भी हद तक टकरा जाने की मंशा रखती है। प्राचीन नैतिक मूल्यों को चुनौती देती हुई उस संतान का पालन पोषण करती है। इस प्रकार का नया 'मातृत्व' नारी में पश्चाताप या अपराधबोधता का भाव उत्पन्न नहीं करता बल्कि उसके माँ बनने को एक सार्थकता प्रदान करता है। कृष्णा सोबती के 'दिलो-दानिश' में वकील कृपानारायण की रखैल महकबानों के भी दो बच्चे होते हैं - बदरू

और मासूमा। प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' में नरेन्द्र के पिता की रखैल तिलोतमा को एकमात्र बेटी होती है – नीना। मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' में कुसुमा अपने क्रूर पति यशपाल को छोड़कर अपने देवर अमरसिंह से जुड़कर बच्चे को भी जन्म देती है। यशपाल कुसुम का अमरसिंह से गर्भवती होने की बात को सुनकर कुसुमा को खूब पीटता है तो कुसुमा बेझिझक उसे उलटा सुनाती है कि –"ओ- नुकीले, खैर माना है कि बच्चा दाऊजू का है। नहीं तो किसी का भी होता, जात का आन जात का। गैल चलते आदमी। तुम्हें क्या हक...। कुत्ता की जात, नहीं गिनते हम तुम्हें।"[84]

युगीन व्यवसायिक नारी ने आज के 'मातृत्व' के मायने ही बदलकर रख दिया है। उसे उस भाव की पवित्रता या अपनत्व नहीं स्वयं का अस्तित्व बनाने में अधिक रुचि रखती है। उसके लिए उसका ऐश्वर्यपूर्ण भविष्य महत्वपूर्ण है। अवैध संबंध के कारण यदि वह गर्भधारण कर भी लेती है तो बिना एक क्षण सोचे, बिना संकोच किए वह आधुनिक तकनीक का सहारा लेकर गर्भपात कराने में समझदारी मानती है।

सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' में कॉमेडियन चतुर्भज के आकर्षण में पड़कर रंभा गर्भवती बन जाती है लेकिन रंभा इस गर्भ को गिराना चाहती है क्योंकि अगले महीने में रंभा की पहली फ़िल्म की शूटिंग होने वाली है। चतुर्भुज इस गर्भस्राव पर आपत्ति जताता है, तो चतुर्भुज के शूटिंग पर जाने के समय रंभा अकेली भारूच अस्पताल में जाकर गर्भस्राव करा लेती है। रंभा चतुर्भुज से कहती है कि –"उससे बच्चे की अपेक्षा न रखे। वह एक अभिनेत्री होने के कारण मेरा अपने शरीर के प्रति प्रोफेशनल दायित्व है। मेरे लिए माँ बनना संभव नहीं।"[85]

राजी सेठ के 'निष्कवच' उपन्यास में मार्था और विशाल के बीच दैहिक संबंध रहता है। जिसके फलस्वरूप मार्था गर्भवती बनती है। तो वह चुपचाप गर्भस्राव करा लेती है। विशाल को जब यह बात मालूम होती है तो मार्था से पूछता है तो मार्था अपने जवाब से विशाल को निरूत्तर कर देती है कि –"यह तुम क्या बक रहे हो। यह मेरी देह है। मेरा निजी मामला। मेरा ही परमाधिकार।"[86]

चित्रा मुद्‌गल की 'आवां' उपन्यास में गौतमी नमिता से अपने पति के बारे में बताती है कि –"गर्भ गिराया एक, फिर तीन पैदा किए। मिंटू...... मेरा मतलब सौरभ है। मेरे पास है। उसका (अशोक) मन है, एक लड़की पैदा करूँ। नौ महीने पेट फुलाकर, अब मैं निष्क्रिय होना चाहती हूँ, न रेती जा रही बकरी सी प्रसव पीड़ा। झेलते छटपटाना।"[87]

चित्रा मुद्‌गल की 'आवां' उपन्यास में नमिता का न चाहते हुए भी संजय कनोई के लिए गर्भ धारण करना पड़ता है। इसी संदर्भ में नमिता कहती है कि –"मैं वैसी आधुनिक नहीं हूँ कि बिना ब्याह के अवैध संतान पैदा कर छद्म क्रांति जिऊँ। मेरे लिए संतान सामाजिक जिम्मेदारी है। उँगली उठा नहीं सकता वह मेरी ओर कि मैंने उसे उस तरह क्यों पैदा किया, जिस तरह से वो जन्मना नहीं चाहता था।"[88]

नमिता के गर्भ धारण को लेकर स्मिता के विचार को भी संजय कनोई के सामने रखती है कि –"स्मिता बड़ी स्वाधीन व्यक्तित्व की लड़की है। बच्चा कुँवारी जनूँ या भावरे डालकर, कोई अंतर नहीं पड़ता उसे। लेकिन... उसका भी यही मानना है कि इस वक्त मुझे अपनी पढ़ाई पर ध्यान देने की जरूरत है। बच्चा घर की खेती है। जब जी में आए जन लेना।"[89]

आज की नारी अपने भविष्य को ऐश्वर्यपूर्ण बनाने के लिए अपनी कोख को किराये पर देने में संकोच नहीं कर रही है। संजय के नमिता से कही गई बातों से गौतमी के किराये कोख के बारे में मालूम होता है कि –"जूठी कोख है गौतमी। जिस ठाठ-बाठ से वह जी रही है, केवल प्रतिभा के बूते वहाँ तक पहुँचने में उसे बीस साल लग जाते। जिस आलीशान फ्लैट में रह रही है, वह जानती हो किसका भेंट किया हुआ है? नामी-गिरामी उद्योगपति छेड़ा साहब का। जापान में उनके संग डेढ़ साल रही गौतमी। छेड़ा साहब की पत्नी मुंबई लौटी तो अपनी सूनी गोद में बेटा लेकर।"[90]

नमिता को इस मातृत्व के प्रति अपनी निजी एवं दृढ़ धारणाएँ हैं तो पवार के सामने निस्संकोच कह देती है कि जननी होना, उसे गुलाम की शर्त हो तो मजबूरी से

स्वयं को मुक्त कर लेना उसकी अनिवार्यता नहीं?क्यों झेले वह सब जो उसे मनुष्य की श्रेणी से अपदस्त करता हो?"[91]

उपर्युक्त कथनों से मालूम होता है आधुनिक नारी गर्भ धारणा के मामले में अपनी स्वेच्छा और अपना अधिकार अपने हाथों में कायम रखना चाहती है। इस 'मातृत्व' के मामले में किसी भी व्यक्ति का, पर पुरुष या पति का दखलअंदाजी भी सहन नहीं कर पा रही है। इस मामले पर फैसला करने का पूरा अधिकार अपने पास रखना चाहती है। उपन्यासकारों का उद्देश्य है कि माँ बनने का अधिकार नारी जरूर अपने पास रखे। हर युग में बच्चे की पहचान माँ-बाप दोनो से है। माता के बिना या पिता के बिना बच्चों की जिंदगी रेगिस्तान की तरह है। जो बच्चे माता या पिता के प्रेम से वंचित हैं, अक्सर पाया जाता है कि उन बच्चों में न्यूनता की भावना, कुंठा, घुटन एवं नैराश्य आदि नकारात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगती हैं। जिससे समाज का विध्वंस होता है। इन स्थितियों में भारतीय संस्कृति का परिक्षण नहीं हो पाता। भारतीय संस्कृति का मूलाधार है – समिष्टि पारिवारिक व्यवस्था। इस व्यवस्था में बच्चे की परवरिश की जिम्मेदारी माता-पिता दोनों पर समान रूप से पड़ता है। इन दोनों में से किसी एक की कमी भी बच्चे पर गहरा असर हो सकता है। भारतीय संस्कृति को इस टूटन से बचाने की नैतिक जिम्मेदारी हर भारतवासी को अपनाना होगा।

4.2 बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की आर्थिक चेतना

आज़ादी की क्रांति के समय जो जन आन्दोलन और समाज सुधार के आंदोलन हुए उन्होंने नारी को भी 'स्त्री मुक्ति आंदोलन' की ओर प्रेरित किया। इसी समय नारी शिक्षा का विकास भी हुआ था। भारतीय संविधान में स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्रदान किये गये। स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार भी दोनों को समान रूप से मिले। यही कारण है किआज़ादी के पश्चात् शिक्षा का प्रसार बड़ी तेजी से होने लगी। नारियाँ शिक्षित होने लेगी। प्रत्येक क्षेत्र में वे काम करने के लिए प्रशिक्षित थी।

अंतिम दशक तक आते-आते वे सभी क्षेत्रों में अपने अस्तित्व का अहसास कराने लगी। पहले नारी केवल एक नादान, मासूम पुत्री, बेटी, पत्नी, माँ के रूप में पायी जाती थी आज वह अपनी स्वतंत्रता के अधिकार के लिए लालायित हो उठी। वह अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए जागृत हो उठी। इतना ही नहीं वह सामाजिक, व्यवसायिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में अपने आपको सफल बनाने लग गई। जो क्षेत्र केवल पुरुष के लिए ही थे - जैसे सेना और विमानचालक, इनमें भी स्त्री अपने लिए जगह बनाना प्रारंभ किया। निर्भीक होकर वह जल, थल और वायुसेना में भीभर्ती होने लगी। यह आम बात हो गई है कि मध्य और निम्न मध्यवर्ग में नारियाँ अपने परिवार की आजीविका चलाने के लिए घर से बाहर जाकर विभिन्न कार्य करने लगी। वह भी अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए स्वयं को जिम्मेदार समझने लगी। पहले उच्च वर्ग की महिलाएँ इस प्रकार के कार्य के लिए लज्जा महसूस करती थीं। वे अपने घर की प्रदर्शनी एवं साज-सज्जा की वस्तु मानी जाती थीं। अब वे भी पुरुषों के साथ समान रूप से काम करने लगीं।

अंतिम दशक में स्त्री ने शिक्षित होकर पुरुषों द्वारा खींची गयी सीमा रेखा को लांघना प्रारंभ कर दिया नारी स्वकेंद्रित होने लगी। उसे स्वनिर्णय लेने में आनंद और तृप्ति आने लगी। उसने स्वयं नवीन नैतिकता की रचना कर डाली। अब ‘यौन शुचिता’ का प्रश्न भी उठने लगा। समाज में ऐसा भ्रमजाल फैलाया गया कि नौकरीपेशा स्त्रियाँ ही ‘यौन शुचिता’ के अपवित्र घेरे में आती हैं। धीरे-धीरे यह मान्यता सार्वभौम होने लगी और नारी उसमें जकड़ती चली गयी। समाज ने व्यक्ति को अप्राकृतिक रूप से दो भागों में बाँट दिया हृदय और बुद्धि। कोमल हृदय पक्ष के घेरे में नारी को आसानी से जकड़ लिया और बुद्धि पक्ष केवल पुरुष की धरोहर बन गया। इससे पुरुष अपने अहं का प्रयोग कर निरंकुशतापूर्वक समाज का संचालन करने लगा। जब भी नारी ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहा तब पुरुष ने उसे दबाने का भरसक प्रयास किया। उसके लिए अहंकार, प्रतिस्पर्द्धा और द्वेष कारण बन गया। नौकरीपेशा महिलाओं के लिए पुरुष की यह अहंकारी प्रवृत्ति एक बड़ी गंभीर और चिंताशील समस्या बनी हुई है। परन्तु नवीन बौद्धिक कामकाजी महिला जिसने अपने आपको आर्थिक रूप से

स्वतंत्र बना लिया है, इन सब समस्याओं से जूझना अच्छी तरह जानती है। वह नवीन सामाजिक स्वरूप को बनाने में अग्रसर है। वह इसमें सफलता भी अवश्य प्राप्त कर लेगी क्योंकि आज की नौकरीपेशा महिला के पास स्वतंत्र विचार शक्ति, बुलंद इच्छा-शक्ति, संकल्पित मनोबल, उत्तरदायित्व का पूर्ण अहसास आदि भावनाएँ हैं।

अंतिम दशक तक आते-आते भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी एक नवीन मोड़ पर आ खड़ी हुई। शहरों के साथ-साथ गाँवों पर भी पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव आसानी से दिखाई देता है। पश्चिमी विचारधारा, वैज्ञानिक प्रगति, नवीन उपलब्धियाँ आदि का आमूल प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस प्रकार के परिवर्तन केवल समाज के लिए ही नहीं बल्कि विशेषकर नारी के लिए भी इन परिवर्तनों ने अपने दरवाज़े खोल दिये हैं। या यूँ कहा जा सकता है कि कामकाजी नारी ने इन्हें दरवाज़े खोलने पर बाध्य कर दिया है। इस प्रकार यह आधुनिक परिवर्तन नारी के लिए एक सादिल भविष्य बनकर उभरा है।

इन परिवर्तनों को दृष्टि में रखकर डॉ. सुरेश कुमार जैन ने लिखा है कि - "स्त्री का अपना इतिहास नहीं, उसने अभी-अभी बोलना सीखा है। अत: उत्तर आधुनिकतावाद को स्त्री के इतिहास को नहीं नकारना चाहिए। ...... पुनर्जागरण काल के मूल्यों को नकारने के लिए यह विशिष्ट बोध की स्वतंत्रता है। किन्तु आज भी दुनिया की अधिकतम जनसंख्या गरीबी एवं शोषण से पीड़ित है। पढ़ी लिखी स्त्री कुछ बोल पाये या नहीं किन्तु ग्रामीण और अशिक्षित स्त्री के तेवर देखकर सच में आश्चर्य होता है।"[92]

नारी जागृति ने एक नवीन चेतना का शंखनाद कर दिया है। नारी दृष्टि से प्रेरित विचारधारा ने नारी को स्वयं अपना इतिहास लिखना सिखा दिया है। इसने उसे भविष्य के प्रति प्रेरित भी कर दिया है। आज वह स्वतंत्रतापूर्वक अपने भविष्य निर्माण के लिए उत्सुक है। आज स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में काम करने के लिए इच्छुक है। संविधान के पक्षों तक सीमित जो मौलिक अधिकार थे वे आज की नारी की प्रयत्नशीलता के

कारण व्यवहार में आने लगे। नारी ने उन अधिकारों का जीवंत उपयोग करना प्रारंभ कर दिया है।

युगीन नारी समस्याओं से विचलित हुए बिना, उसे नज़रअंदाज़ करके अपने मार्ग पर बढ़ती जा रही है। वह हर एक बंधन, अड़चन, समस्या, रूकावट को निडरता से पार करती हुई आगे बढ़ती जा रही है। उसके 'मैं' के प्रति जागरूक होने के कारण पुरुष की नींव की पकड़ ढीली पड़ती जा रही है। इसी आत्मनिर्भरता के कारण आधुनिक कामकाजी स्त्री समस्याओं में फंसती चली जा रही है। लेकिन उसने अपनी हार नहीं मानी। उसने प्राचीन पुरुष प्रधान समाज की मर्यादाओं को चुनौती देकर आगे बढ़ने का संकल्प कर लिया है। वह स्वयं को समाज में आवश्यक स्थान दिलाने में प्रयत्नशील है। वह स्वयं की स्थापना करना सीख चुकी है। स्त्री का नौकरीपेशा होना हमेशा उसकी समस्याओं में अधिकता बढ़ाता है। इस आर्थिक स्वावलंबन से वह स्वयं को किसी न किसी समस्या के बीच पाती है। लेकिन इन सब बाधाओं के पश्चात् भी वह संघर्ष करती हुयी आगे बढ़ रही है। उसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि कई तनावों से गुजरना पड़ता है। उसे हमेशा दोहरा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। एक तरफ उसे व्यावसायिक और दूसरी तरफ पारिवारिक दोनों भूमिकाएँ अदा करनी पड़ती हैं। 'यौन शुचिता' युगीन जीवन में नारी को विचलित नहीं कर पायेगी।

अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने पुरुष की जिंदगी और नौकरीपेशा नारी के जीवन को बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखा और प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासकारों ने इनके जीवन में आने वाली गंभीर समस्याओं, रूकावटों, मुश्किलों, अवरोधों आदि का यथार्थवादी रूप चित्रित किया है। इनमें आर्थिक स्वावलंबी स्त्री को हर रूप में प्रस्तुत किया है। उसकी मानसिक स्थिति, उसका संघर्ष आदि पहलुओं को बहुत ही सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। महिला का सीमित परिवार से निकलकर बाहरी संसार में अग्रसर होना, गाँव से निकलकर असीमित शहरी जीवन में स्वयं को स्थित कर देने की प्रक्रिया को अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने बड़े ही सार्थक रूप से वर्णित किया है।

स्वतंत्र आर्थिक बोध - जो नारी पहले केवल अपने परिवार तक ही सीमित थी वह आज प्राचीन परंपराओं की दहलीज लांघ कर 'कामकाजी' स्वावलंबिता के रूप में दृष्टिगोचर होने लगी है। समकालीन उपन्यासकारों ने स्त्री के इस नवीन स्वावलंबी रूप को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। स्त्री की इस'स्व-पहचान' ने एक नवीन युग का प्रारम्भ कर दिया है। उसका यह नवीन वर्चस्व नवीन आधुनिक स्वतंत्र विचारों पर टिका हुआ है। आज के युग में भी प्राचीन मान्यताएँ अपना अस्तित्व खोने के लिए पूर्ण-रूप से तैयार नहीं। इसीलिए नारी को अपनी आत्मनिर्भर स्थिति बनाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ रहा है। वास्तव में यही संघर्ष उसके नवीन विचारों, मूल्यों, भावनाओं आदि को एक रूप प्रदान करता है। इस अस्तित्व के नवीन बोध में एक ओर बदलाव की माँग है तो दूसरी ओर यातनाएँ, दु:ख और भौतिक जीवन की विषमताओं की मार है। इस संदर्भ में यह कथन दृष्टव्य है –"स्त्री मुक्ति का सही अर्थ यह है कि स्त्री को पुरुष के बराबर समाज में हक मिल सके।ऐसा न समझो कि स्त्री कोई भोग की वस्तु है उसे विकास की दिशा प्रदान करते हुए स्त्री स्वतंत्रता की जगह स्त्री समानता पर अधिक ध्यान दिया जाता। यदि पुरुष अपने ही बच्चे को संभालने में शरमा रहा है तो समानता कहाँ रही?"[93] अत: अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने आधुनिक नौकरीपेशा स्त्री का जो अस्तित्व निर्माण का रूप प्रस्तुत किया है वह उन्हें प्राचीन मान्यताओं से दूर ले आता है।

समकालीन कामकाजी महिला केवल बेटी, बहन, प्रेयसी, पत्नी, माँ ही नहीं है बल्कि वह समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। उसका स्वयं का स्वतंत्र व्यक्तित्व है जो समाज में उसका अस्तित्व बनाता है।

"नवयुग की परिवर्तित परिस्थितियों में भारतीय नारी केवल माँ, प्रेयसी और पत्नी ही नहीं वरन् एक महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है।"[94] नौकरीपेशा स्त्री इतनी अटल हो गयी है कि वह किसी के रुकाए नहीं रुकने वाली। वह आत्मनिर्भरता के मार्ग पर चलने के लिए ठान ली है।

उसका यह जागरूकता संबंधी ज्ञान इस कदर उसकी अंतरात्मा में समा गया है कि उसे कोई डगमगा नहीं सकता। चाहे किसी भी प्रकार की अड़चन आ जाये उसने अपनी सफलता के मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। 'मुझे चाँद चाहिए' की नायिका वर्षा अपनी पारिवारिक मान्यताओं से विद्रोह करती है। वर्षा के पिता जब उससे यह कहते हैं कि –"वंश में जो नही हुआ वह आगे भी न हो, यह जरूरी नहीं ...... यह ब्याह मैं नहीं करूँगी तुम लोग चाहे मारो, चाहे कूटो।"[95]

'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा की पढ़ाई पूरी होने को है। पिताजी से दोनों भाई शारदा की शादी के बारे में पूछते हैं। भाई, भाभियों का मानना है कि –"जवान लड़की को घर में रखे कैंसे?छाती परमूँग दलने को बैठी।इस मामले में शारदा अपना दृढ़ निर्णय सुनाती है कि –"सुनिए!फिर से मेरी शादी के बारे में कोई कुछ मत कहिए। मेरी शादी मेरी मर्जी है। कहीं भी नौकरी करके गुजारा करूँगी। समझे !"[96]

'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' (तेलुगु उपन्यास) में रामराव के गुजरते ही विजया बुआ, पड़ोसी सुमती रागिणी के लिए शादी के लिए रिश्ता ढूँढने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाती हैं। सुमती से नीरजा बताती है कि –"रागिणी नौकरी करने की तैयारियाँ कर रही है। वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है।" सुमती से रागिणी भी बताती है कि –"अभी शादी नहीं करूँगी। व्यक्तित्व और कैरियर के बिना घर में बैठकर, घर के कामों तक सीमित रह जाना मुझे पसंद नहीं। कई लोगों की सोच यही है कि बहु कामतलब है - चौका सँभालना। इसीलिए मुझे पसंद नहीं।""मैं नहीं चाहती कि इतनी जल्दी अपनी माँ और भाई की जिम्मेदारी से मुँह मोड़कर, शादी करके चले जाना।"[97]

विजया बुआ से भी रागिणी निस्संकोच अपना विचार व्यक्त करती है कि– "बुआ माँ अकेली हो जाएगी। भैय्या छोटा और उसकी पढ़ाईभी है। मैं नौकरी करना चाहती हूँ। उसके बाद ही शादी के बारे में सोचूँगी।"[98]

'छिन्नमस्ता' में प्रिया नीना से पूछती है कि तुम्हारी नौकरी करना पापा पसंद करेंगे?नीना का स्वाभिमान इस उत्तर में दिखाई देता है –"पापा भी यही चाहते हैं कि मेरी शादी हो जाए लेकिन मैं नहीं करूँगी। मैं पहले अपने पैरों पर खड़ी होऊँगी।"[99] जिंदा रहने और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपमान और वचंना को भी याद रखें। पापा को यों महीने कामहीना रूपए देना!मुझे नफरत होती है।अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का कोई निरादर नहीं कर सकता।"[100]

प्राचीन भारतीय परंपरा ने स्त्री को हमेशा एक सुरक्षा कवच के भीतर रखने का आडम्बर किया है। पुरुष प्रधान समाज हमेशा यह दिखाने से नहीं चूकता कि हम नारी के रक्षक हैं, हमें नारी जाति का ध्यान रखना होगा, हम उनके बारे में नहीं सोचेंगे तो कौन सोचेगा आदि...आदि। इन सब एहसानों को नारी ने अपनी नई चेतना से एक नये रूप में परिवर्तित कर दिया, जो पुरुष समाज की वास्तविक सोच थी। इस प्रकार नारी पुरानी भावना का विद्रोह करने लगी।

विरोध में नई चेतना जागृत हुई उसे विद्रोह भी कह सकते हैं। 'निष्कवच' की 'मार्था' कहती है –"यह प्रोटेक्टेड की बात तुमने किसे लेकर कहीं? स्त्रियों को उन्हें भी इसी तरह 18 साल की उम्र के बाद, रोटी कमानी पड़ती है। घर ढूँढना पड़ता है। साथ रहने को आदमी तलाशना पड़ता है और यह सब माँ की गोद में बैठे-बैठे हो जाता है। अठारहवाँ बीतते-बीतते दूसरे अबार्शन की नौबत आ जाती है। यह बताओं 'प्रोटेक्टेड' क्यों और कैसे रहना चाहेंगी स्त्रियाँ।"[101]

इ. जानकी बाला का उपन्यास 'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में दही बेचने वाली माणिक्यम्मा से रामचंद्रमका झगड़ा हो रहा था। कमलाम्बा इस बीच में आकर दस दिनों में उधार चुकाने की बात बताकर उसे मना लेती है। माणिक्यम्मा जाते-जाते धीमे स्वर में बोलती है कि –"दिन भर पति को घर में बैठे, बीड़ी पीते हुए देखकर तुम कुछ बोलती क्यों नहीं? तुम कैसे चुप रह सकती हो?कुछ तो छोटा-मोटा काम कर कमाने को कहो। तुम्हारी अकेली की कमाई पर इस जिंदगी को कब तक

खींच पाओगी?मैं भी मेहनत करती हूँ। लेकिन तुम्हारी तकलीफ देखकर मेरा दिल पसीज जाता है। किसलिए ऐसा निकम्मा पति का होना?"[102]

यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि नारी के व्यक्तित्व की पहचान की उसकी जिज्ञासा उसके आत्मनिर्भर होने से जागी है। इसी गुण के कारण वह अब साहस और दृढ़ संकल्प कर यह जान गई है कि बस अब वह पुरुष समाज की आज्ञाकारिणी नहीं रहेगी। वह उसके स्वामित्व को स्वीकार नहीं करेगी। हर कीमत पर वह ऐसा करने से पीछे नहीं हटेगी, यहाँ तक कि वह प्राचीन मान्यताओं को 'नैतिक मानदंडों' को भी ललकारने के लिए तैयार है।

स्मिता अपना विद्रोही तेवर दिखाती हुई कहती है –"मैं जारविस को अपना खून माफ नहीं करुँगी। मेरा शरीर बच गया तो क्या, मेरी रूह तो मर गई। मेरा बच्चा...... कहा न, अपनी सारी ऊर्जा प्रतिशोध के लिए बचाकर रखनी थी।"[103]

'मरीचिका'(तेलुगु उपन्यास) में कविता अपने मन के आक्रोश को विजयेन्दर के सामने व्यक्त करती है –"विजय.... तुम्हें इस जन्म में ही नहीं, दूसरे जन्म में भी दूसरी स्त्री को धोखा न देने की सबक सिखाऊँगी। तुम्हें ही नहीं, तुम जैसे मर्द, स्त्रियों को नादान बनाकर, ठगकर, भोगकर छोड़ देने की चाह रखने वाले सभी को।"[104]

आधुनिक स्वावलंबी नारी आज अपने 'मैं' को पहचानने लगी है। वह यह जान गई है कि वह केवल एक शरीरिक रचना नहीं है। वह इस समाज की एक प्रमुख व्यक्ति है। इस प्रकार की जागृतिक चेतना उसने अपने आत्मनिर्भर होने से पायी है। उसने अपने निरंतर कार्य करते रहने की क्षमता से अपनी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को निभाने का संकल्प ले लिया है। वह यह जतला देना चाहती है कि परिवार और समाज के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व केवल पुरुष की ही जिम्मेदारी नहीं है। इसी कारण उसने अपने घर की दहलीज पार कर संसार को यह दिखला दिया कि अपनी कर्मठशीलता से वह यह काम भी निपुणता के साथ कर सकती है। 'कठगुलाब' में असीमा स्मिता को स्त्री की मानसिकता के बारे में समझाने लगती है कि –" जब तक औरत यह समझती रहेगी कि मर्द ही असली कमाऊ होता है, उसकी कमाई को

अनदेखा किया जाता रहेगा, हर औरत को मार-पीट करना आना चाहिए। तभी मर्दों को वश में रख सकती है।"[105]

मु.भारती का 'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) में बेटी इंदिरा माँ सुब्बलक्ष्मी को समझाती है कि –"माँ!आपके जमाने के अनुसार अब भी लड़की को कमजोर समझो दुर्बल मत मानो। लड़की को पढा़ना है, सशक्त बनना है। स्त्रियाँ नहीं रहे तो दुनिया ही नहीं है न! सृष्टि भी नहीं होती न! इसलिएतो लड़की का आदर करना है। आज के समाज में लड़कियों के बारे में ही सोचना है। लड़के को उच्च समझना, उसको पढ़ाई-लिखाई सिखाना, बेटे ही सब कुछ है करके मानना, उसकी बड़ाई करना, सर पर चढ़ाकरबिठाना आदि को खतम करना है। आजकल लड़की की पढ़ाई, शादी, स्वास्थ्य, बच्चे, जायदाद आदि के बारे में सोचना है। प्रमाणित करना है कि लड़की कमजोर नहीं, सशक्त है।"[106]

प्राचीन धारणा की स्त्री 'माँ' बने बिना अपना जीवन पूर्ण नहीं मानती, नारी के अस्तित्व निर्माण की भावना ने उसके मातृत्व भाव को भी पीछे छोड़ दिया है। वह बिना सोचे-समझे, बिना किसी सुनियोजित योजना के यह मातृत्व का भार भी उठाना नहीं चाहती।आधुनिक कर्मठ नारी ने अपने अंदर की शक्ति को पहचाना है। उसने उस शक्ति की असीमितता का उपयोग किया है।

'फिर से आई बहार में शारदा के गर्भ स्राव के निर्णय से रामम निश्चेष्ट हो जाता है। रामम शारदा को मनाने की कोशिश करता है लेकिन शारदा का निर्णय अटल रहता है। शारदा निस्संकोच कह देती है कि –"स्केनिंग मेंअगर लड़की मालूम हो तो उसी समय गर्भस्राव करा लूँगी।"[107] शारदा के मन में कॉलेज के दिनों में से ही लड़की को लेकर कुछ गलत धारणाएँ हैं। इसी विषय को सहेलियों के सामने कहती है कि –"छि: - छि: मैं बिल्कुल शादी नहीं करुँगी। बच्चों को नहीं जनूँगी। अगर बच्चे को जनना भी है तो लड़की को नहीं जनूँगी।"[108]

नारी की आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे गर्व से ऊँचा उठा दिया है। वह अपने स्वाभिमान को भी पहचानने लगी है। ऐसी धारणा का होनेमें उसे कोई संकोच नहीं।

उसे अपनी सफलता पर गर्व है। अस्तित्वबोध की इसी चेतना ने मातृत्व बोध को भी एक हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया है। यह स्त्री प्रजनन का बोझ भी अपने ऊपर डालकर उससे परहेज की धारणा से ग्रस्त है। इस संदर्भ में 'कठगुलाब' की नीरजा का यह कथन दृष्टव्य है –"दिक्कत यह है कि, अभी मुझे दो साल पढ़ाई करने में लगेंगे। बच्चा पैदा करने का समय नहीं होगा। उसके बाद पैदा कर लूँगी पर पालने के लिए समय नहीं मिलेगा।"[109]

कामकाजी आधुनिक नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण के मार्ग में कोई बाधा नहीं चाहती। उसने अपनी सुकोमल भावनाओं को भी त्याग दिया है। यदि किसी कोमल संबंध के कारण उसके'मैं' को ठोकर लगती है तो वह सहन नहीं कर पायेगी। उसके उस कोमल आत्मीय संबंध को ठुकराने से भी पीछे नहीं हटेगी –'छिन्नमस्ता' की प्रिया नरेन्द्र से कहती है –"व्यापार मैंने अपनी मेहनत से खड़ा किया है नरेन्द्र ! कोई विरासत में नहीं मिला मुझे।"[110]

'दिखता हुआ अतीत' में कमलाम्बा के नौकरी कर घर को चलाने पर भी पति की झिड़कियाँ सहने की विवशता दिखाई देती है।

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में रामचंद्रम को अच्छी-खासी नौकरियाँ मिलने पर भी उसमें खामियों को ढूँढते हुए वह हरनौकरी को छोड़ देता था। इस स्थिति को देखकर कमलाम्बा रामचंद्रम को समझाना चाहती है कि –"घर की आर्थिक स्थिति दिन व दिन बिगड़ती जा रही है।"

रामचंद्रम गुस्से में आकर गालियाँ देने लगता है कि –"साली!तुम चुप रहो!ऐसा मत समझो कि तुम्हारी कौड़ियों की कमाई से ही घर का गुजारा हो रहा है?"प्रत्युत्तर में कमलाम्बा भी उसे सुनाती है कि –"हाँ!सच है ! मेरी कमाई से कहाँ गुजारा हो रहा है?सब कुछ आप ही की कमाई है न।"[111] खिलाने-पिलाने में समर्थ न होने पर भी मार-पीट करने में समर्थ हो।

रामचंद्रम –साली! मुँह खोले तो मार डालूँगा।"[112]

स्वतंत्रता चेता नारी जब 'स्व' में जीना चाहती है तो 'स्वत्व' की यह माँग विद्रोह में परिवर्तित हो जाती है।

नारी की दृष्टि चहुँमुखी रूप से परिवर्तित हो गयी है उसकी परिभाषा एक नवीन आधुनिक, वैचारिक, बुद्धिवादी सोच का निर्माण करती है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है –"अड़तालीस की इस उम्र में एक पूरी की पूरी साबुत औरत, जो जिंदगी को झेल नहीं रही, बल्कि हँसते हुए जी रही, जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है।"[113]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा केसामने उषा अपने स्वाभिमान को इन शब्दों में दिखाती है। कि –"वापस आए तो भी उसे मैं स्वीकार करने की स्थिति में रहूँगी या नहीं। अब उसकी पत्नी के रूप में रहना मेरे लिए अपमान है न ! मेरे स्वाभिमान को बचाना है तो उसे तलाक देना ही है। सब को मालूम होना है कि अब मैं उसकी बीबी नहीं हूँ।"[114]

स्त्रियों को उनके पैरों पर खड़े होने की ताकत उनके आत्मबोध को शक्ति प्रदान करता है। स्त्रियों की इस कर्मठता ने माता-पिता के रिश्ते को भी बदलकर रख दिया है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया नरेन्द्र से कहती है –"सुनो! नरेन्द्र, मैं संजू के बिना जीना सीख लूँगी, हाँ, थोड़ा वक्त लगेगा। आँसुओं की एक बाढ़ और सही।"[115]

'सहजा'(तेलुगु उपन्यास)में उषा की स्थिति से भिन्न होते हुए भी दु:ख तो एक समान लगता है। इस संदर्भ में उषा अपनी समझ को शारदा के सामने व्यक्त करती है कि–"जब समस्या होती है तो उसे सुलझाना है न कि व्यथित होते हुए बैठना ?

जिंदगी का मतलब केवल पति हीनहीं। इतने साल उन्हीं को अपनी जिंदगी समझी थी। लेकिन आज उनकी अनुपस्थिति में भी मेरी जिंदगी है।"[116]

'मुझे जाने दो' (तेलुगु उपन्यास) अमेरीका में स्थित बेटा रवि माँ का अनादर करता है और यहाँ तक की सगे मामा की मृत्यु की बात को भी माँ से छिपाता है तो माँ उस विषय को जानकर भारत लौटने हवाई अड्डे पर पहुँच जाती है। बेटा माँ को

वापस लाने की कोशिश करता है तो माँ उसे समझाती है कि -"मेरी धरती मेरे लिए सब कुछ है। मैं तुम्हारे पिता के बिना जीवन बिताने की कल्पना भी नहीं कर पाती थी। लेकिन अब मैं तो उनके बिना जीने की कल्पना कर सकती हूँ। गणपती के बिना भी कल्पना नहीं कर पाती। लेकिन अब मैं उसकी कल्पना भी कर सकती हूँ। मेरी धरती माँ है। वह तो अपार आत्मीयता मुझ पर बरसाएगी। कल ही मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारी जिंदगी अलग है। तुम्हारे मूल्य अलग हैं। तुम अपने को सँवारो। मुझे अपनी राह पर जीने दो। तुम रुपयों पर विश्वास करते हो। मैं लोगों पर विश्वास करती हूँ। "[117]

आर्थिक रूप से उन्नत युगीन नारियों का आत्म-विश्वास इस कथन में दृष्टिगोचर होता है –"यही कि बाद में मैंने सोचा कि - एक पुरुष पैसे कमाता है और दो चार लोगों को पाल देता है, लेकिन स्त्री यदि अपनी सीमाएँ लाँघ जाए तो वह पारंपरिक समाज उसके लिए खत्म हो सकता है। पर मानव समाज तो बहुत बड़ा है। औरत होकर जो मैं समाज को दे सकती हूँ, वह नरेन्द्र पुरुष होकर कभी नहीं दे सकता।"[118]

इस व्यक्तित्व निर्माण की माँग इतनी अधिक तीव्र हो गई है कि उसने 'सामाजिक व्यवस्था' को भी ललकार दिया है। 'आवां' उपन्यास में जब नमिता अपने स्वप्नों को साकार करना चाहती है तो उसकी माँ उसे अपने पारंपरिक पेशे को अपनाने के लिए कहती है –"समझ नहीं पाती कि, तंगी के मारे विधि, विचलित माँ उसे पापड़ बेलने के काम में झोंकने के लिए विवश है, या वे चाहती ही नहीं कि वह उनकी नियति से मुठभेड़ कर स्वयं सुरक्षित भविष्य का कोई अन्य विकल्प अन्वेषित कर पाए।"[119]

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में पद्मा अपनी आर्थिक विवशता बताती है। आर्थिक दुर्दशा के कारण माँ के हर काम में हाथ बाँटना पड़ता था। घर को चलाने के लिए पद्‌मा ने हर काम को बड़ी कुशलता से सीख लिया। ॠतुओं के अनुसार भी काम करना पड़ता था। खेती-बाड़ी के काम से लेकर सड़क बनाने तक, ईट, कंकड़, पत्थर को ढोना, तम्बाकू पत्तों का चुनना, बीड़ी बनाना, मिर्च की फसल को काटना, कुआँ

खोदना, घर बनाने का काम करना आदि करे तो बड़ी मुश्किल से एक दिन के लिए6 रुपये से 10 रुपए मिलते थे।"[120]

विशेषरूप से स्वावलंबी मध्यमवर्गी नारी ने जागृत होकर हुँकार भरना भी सीख लिया है। निडरता से वह अपने आत्मसम्मान को पाने में जागृत हो गयी है। उसमें चेतना की भावना ने करवट ले ली है। 'आवां' में नमिता कहती है –"आत्मनिर्भर होने की परिभाषा यह है, स्वयं को बुद्धि विवेक का उपयोग, न कि पुरुष के समकक्ष आर्थिक सक्षमता।"[121]

'जंगल की पुत्री' में पद्मा का अनुभव है कि - "माँ के साथ मैंने भी खेती-बाड़ी का काम किया है लेकिन शाम को भू-स्वामी को पैसे पूछने गयी तो उसका जवाब है कि –"तुम तो छोटी हो न ! अभी तुम्हें काम सीखना है। तुम बड़ों के बराबर काम नहीं कर सकती हो न। इसीलिए तुम्हें पैसे नहीं मिलेंगे।"[122] तब से मैंने भूस्वामियों की चाल को समझ लिया। पद्मा बताने लगी कि - "तब से लेकर मजदूरों के श्रम के बल पर जीने वाले भूस्वामियों के प्रति बदले की भावना एवं घृणा पैदा होने लगी। उस दिन से कोई भी मजदूरों के श्रम के सही पैसे न दिये या 'आरे - जारे' संबोधन करे तो मैं बरदाश्त नहीं करती थी। कोई भी अमानुष व्यवहार करे तो उसके मुँह पर थूक कर आ जाती थी।"[123]

आर्थिक चेतना की ओर मुखरित नारी ने आज अपने नवीन आदर्शों का निर्माण स्वयं कर लिया है। उनकी आत्मनिर्भरता की परिभाषा भी एक नवीन चेतना को जन्म देती है। माता–पिता की सोच को भी बदला है। 'आवां' में नमिता के पिता देवीशंकर पाण्डेय उसे आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि –"मुझे खुशी है कि तुमने पहली बार अपने विषय में स्वतंत्र निर्णय लिया, विवेक जागृत है तुम्हारा, जागृत ही रखना। मैं तुमसे हरगिज नहीं पूछूँगा कि तुम वहाँ नौकरी क्यों नहीं करना चाहती हो ?"[124]

'मधुमती' (तेलुगु उपन्यास) में मामा शंकरराव जब दुबारा मधुमती के लिए शादी का रिश्ता ढूँढने निकलता है तो मधुमती अपना निर्णय सुनाती है कि –"मुझे शादी नहीं, नौकरी चाहिए। नौकरी मिले तो ही मुझे शांति मिलेगी।"

समकालीन कामकाजी नारी ने प्राचीन पारंपरिक सीमा के बंधनों को तोड़कर 'मैं' का निर्माण कर लिया है। उसने अपने 'अहं' के साथ जीवन बिताने की ठान ली है। आज की नारी किसी संकीर्णता को अपनाना नहीं चाहती वह तो आधुनिक बौद्धिक विचारधाराओं में जीना चाहती है। अस्तित्व निर्माण का घेरा इन नवीन विचारों से विस्तृत होता जा रहा है। 'आवां' में नमिता की चेतना प्रखर मान्यताओं की पक्षधर है कि –"मैं अपने लिए एक नई दुनिया खोजना चाहती हूँ। अभावों की बिलबिलाहट से दूर, हत्याओं और भीतरघातों से परे।"[125]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा को उषा अपने दाम्पत्य विघटन के बारे में समझाती है –"मैंने आजतक किसी और की जिंदगी को जिया है ।उसकी पसंद के मुताबिक मैंने जिया है। आज से मैं अपनी पसंद के मुताबिक जिंदगी को जीना चाहती हूँ।"[126]

उषा फिर से कहने लगती है कि –"मेरी जिंदगी बरबाद हो गई? नहीं ..... मैं ऐसा नहीं समझ रही हूँ। मैं समझ रही हूँ कि अभी मेरी जिंदगी शुरू हुई।"[127]

नारी की स्वतंत्र विचारधाराओं ने व्यक्तिगत संबंधों को भी नहीं बख्शा। उसकी आत्मनिर्भरता स्वावलंबन, स्वाभिमान, अस्तित्व निर्माण, व्यक्तित्व विचारधाराओं ने उसके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया है। उसके सपनों के संबंधों में एक प्रकार का खिंचाव व तनाव उत्पन्न हो गया है। वह भी पुरुषों के समान कठोर मर्म बनना चाहती है। वह मार्मिक बहाव में बहना नहीं चाहती। वह भी बंधनमुक्त रहना चाहती है। नमिता इसकी चेतना के दुर्दम्य भाव को प्रकट करती है –"स्त्री चेतना सिर उठाते ही साँप का फन हो उठती है उनके लिए, जो अपनी लाठी की हुकूमत निरापद बनाने के लिए रखते हैं।"[128]

उपलब्धि प्राप्त कोई भी व्यक्ति सचेत हुए बिना नहीं रह सकता। आधुनिक गुणी नारी क्योंकर जागृत न हो। वह अपने कर्म में संलग्न होना चाहती है। वह अपने 'मैं' को विशाल बनाना चाहती है कि यह उसका मौलिक अधिकार है। यह स्वावलंबन

उसे अस्तित्व की परिभाषा गढ़ने के लिए उकसाता है –"कठगुलाब उपन्यास की लेखिका मृदुला गर्ग का कहना है –"स्त्रीत्व की परिणति क्या माँ होने मात्र है? क्या माँ बनकर वह आत्मनिर्भर हो सकती है?जो लड़की समाज में अपना भार स्वयं वहन करने में सक्षम नहीं हो पाई उसके लिए अस्तित्व का पर्याय क्या है?"[129]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में देवकी बचपन से ही अपने परिवार के प्रति आत्मीयतारखती है। उनके लिए अपने इसी बालकपन से कुछ न कुछ करती है। उसी को जताते हुए कहती है कि –"माता, पिता, भाई, बहन को छोड़कर मैं कहाँ जा सकती हूँ। क्या कर सकती हूँ? लेकिन यहाँ रहकर भी क्या कर पाऊँगी? कब तक भेड़-बकरी की तरह जीना है?इन यातनाओं से उभरना है तो कहीं और जगह चले जाना है। अच्छा से पढ़ना है। अच्छी-सी जिंदगी को जुटाना है, बनाना है।"[130]

वह प्राचीन परंपराओं और विधियों को स्वीकारना नहीं चाहती। वह उसे पार कर अपने भविष्य का निर्माण करना चाहती है। वह जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ना चाहती। वह सब कुछ पा जाने की मंशा रखती है।

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में देवकी को लगता था कि –"घर के कामों में हाथ बँटाने पर भी कुछ रुपए कमाये तो माँ के लिए सुकून होता। लेकिन मुझे नौकरी कौन देंगे? सबका कहना है कि नौकरी के लिए 18 साल का होना जरूरी है। जल्दी से मैं 18 साल की हो गयी तो अच्छा होगा न।"[131]लॉयर सत्यनारायण जी के घर में टंकक के रूप में मुझे नौकरी मिली। पहले ही दिन मुझसे टंकण का कार्य करवाकर मजूरी में 5 रुपए दिए। इन पाँच रुपयों को देखकर मेरी खुशी की सीमा न रही।"[132]हर दिन मुझे पाँच से सात रुपए मिलते थे, जिन रुपयों से पूरा परिवार भरपेट रात का भोजन खा पाते थे। कम से कम एक सेर चावल खरीदने के रुपए मुझे मिल रहा था।"[133]

स्वनिर्माण का इतना चाव है कि वह सामाजिक नैतिक बंधनों को ठुकराकर आगे बढ़ना चाहती है। नाम, यश और सफलता नारी के अस्तित्व बोध की चाह उत्पन्न करता है। यह भाव किसी वर्ग विशेष या परिस्थिति विशेष के द्वारा उपजा नहीं होता।

यह तो व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन जाता है। युगीन नारी व्यवस्था को ही चुनौती दे रही है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है –"यह कैसी जिंदगी मैं जी रही हूँ? यह कैसी तस्वीर है और इसे कैसे सजाऊँ, ताकि व्यवस्था की निगाहें बदले और वह मेरी तस्वीर को स्वीकार करे? आह! कैसी अंधी जिद?कैसी असंभव कल्पना और व्यवस्था की चुनौती? चट्टानों से टकराने का, टकराते रहने का निरंतर प्रयास।"[134]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में उषा शारदा को अपनी बीती हुई जिंदगी के बारे में बता रही है कि –"शारदा!तुम समझ रही हो कि मैं आज अकेली हो गई। शादी के कुछ समय बाद से ही मैं तो अकेली बन गई। उनकी और मेरी दुनिया बिल्कुल अलग है। मैंने उसे अपनी दुनिया बनाने की कोशिश की थी। लेकिन कामयाब नहीं हो सकी। इसीलिए मुझे आज ज्यादा दु:ख नहीं हो रहा है।"[135]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) देवकी का मन विकल हो जाता था कि –"इस शहर और जान-पहचान के चेहरे, इन यादों से कहीं दूर भाग जाने का मन करता है। लेकिन किसी के सहारे के बिना कहीं जाए तो भी कुछ हादसा होने का डर लगा रहता था।"[136]

अपने पैरों पर खड़ी नारी पारंपरिक सीमाओं में बंधकर नहीं, बल्कि अपने को स्थापित कर अपने 'स्व' के साथ जीना चाहती है। आधुनिक नारी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण के आनंद की अनुभूति चाहती है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है –"सच कहूँ फिलिप? वह एक अतीत था जो मुझे याद तो आता है पर मैं जिसे पीछे छोड़ आई हूँ। उसका प्रभाव मेरे वर्तमान स्वरूप पर है। लेकिन मेरा अपना काम, जिसमें मुझे सृजन और अभिव्यक्ति का सुख मिलता है, मेरा सबसे बड़ा आलंबन है, यही एक बालिश्त जमीन है जिस पर कभी मैंने मुट्ठीभर बीज रोपे थे। यह पौधा छोटा ही सही, पर इसे मैंने सींचा है।"[137]

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में पद्मा रेडिकल दल में प्रवेश करती है। सेंट्री का ड्रेस पहनते ही उसके मन में उत्साह भर आता है। बीती हुई जिंदगी उसे याद आती है, तो वह उस पल को सोचती है कि –"पद्मा का उस मूर्ख के साथ शादी होना, पति से

दी गई यातनाएँ, ठीक से पहनने के लिए चोली का भी न होना। अधनंगा होकर घूँघट ओढ़कर मायके तकपहुँचना, ऐसी दु:स्थिति में दल वालों का हमारे प्रति आदर दिखाना आदि।"[138]

"बाहरी समाज में यातनाओं से जूझते हुए कितने अपमानों को सहना पड़ा। इस दल में प्रवेश लेने के बाद जिसकी उम्मीद मैंने नहीं की, जिंदगी में पहली बार मैंने स्वेच्छा एवं गौरव को प्राप्त किया।"[139]

आत्मनिर्भर बौद्धिक नारी किसी संकीर्ण दायरे में बंदी होकर जीना नहीं चाहती है। उसकी पहचान के भाव तथा विचारों का दायरा व्यापक होता रहता है –"ज्यों-ज्यों मैं अपने काम में स्थापित होती गई, त्यों-त्यों प्यार की जरूरत, प्यार के माध्यम से स्वयं को किसी भी पुरुष की नज़र में स्थापित करने की चेष्टा और चाहत भी खत्म होती गई।

मेरे स्व का घेरा बृहद् से बृहत्तर की ओर अग्रसर हो रहा है। नहीं मैं दुनिया में असुरक्षित नहीं। मेरे पास मेरा व्यवसाय है। इस व्यवसाय के माध्यम से मैं नित्य नये लोगों से मिल रही हूँ।"[140]

'सहजा'(तेलुगु उपन्यास) में उषा से शारदा पूछती है कि–"अकेली रहने में तकलीफ नहीं हो रही है?" उषा का जवाब है कि–"मुझे ऐसा लग रहा है कि पसंद न करने वालों के साथ जीने के बजाए अकेली रहना बेहतर है।"[141]

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में पद्मा रेडिकल दल के 15 दिनों के कैंप में रहती है, जिससे उसका आत्मविश्वास बढ़ जाता है। वह कहती है कि–"रेडिकल दल में इतनी ताकत है! आज से रेडिकल सदस्य ही बनकर जीना है। चंद दिनों के लिए भी जिए तो भी समाज के लिए जीना है।"[142]

इसी उपन्यास में प्रिया का अस्तित्व बोध एक अलग रूप में प्रकट हुआ है। न ही पति या बेटा या प्रेम ही जिंदगी के सहारे हो सकते हैं। इनके साथ चलते हुए कठिन मुकामों को पार करने में आसानी जरूर होती है, राहत मिलती है, मन को सुकून होता है कि चलो कोई साथ है। लेकिन यदि वे साथ न दें तब क्या एक तरफा

आहुति भी देते चलो और सफर भी तय करो? चलो, थोड़ी और कठिनाई सही। अपनी राह चल रही हूँ, इसका तो संतोष रहेगा। मैं यदि अपनी नज़रों में सही हूँ तब किसी और की नज़रों में खुद को स्थापित करने की यह कठिन तपस्या क्यों?"[143]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा उषा से तलाक के बादकी जिंदगी के बारे में पूछती है। उषा इसका जवाब देते हुए कहती है कि –"मेरी जिंदगी.... अद्‌भुत है। खासकर पहले तो दिनभर काम में घिस जाती थी। अब वो घिसजाना बहुत कम हो गया है। यकीन करो कि मैं बहुत सुखी हूँ।"

सुख ..... इसकी अनुभूति होना है। इसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। सुबह पाँच बजे को उठने पर भी मेरा काम खतम नहीं होता था। उसके लिए अलग से काफी बनाना, शेविंग करने के लिए गरम पानी देना, जाग गया कि नहीं देखना, इस कमरे से उस कमरे में फिरने के लिए ही एक घंटा लग जाता था। पैर दुखते थे। अब तो वो सब नहीं है न।"[144] कार्यरत नारी का स्वाभिमान, स्वअस्तित्व की जागरूकता ने व्यक्तिगत संबंधों को भी प्रभावित किया है। 'निष्कवच' में मार्या भी इसी तरह के अस्तित्व चेतना से ग्रसित है –"छुट्‌टी के बावजूद भी मार्या स्टूडियो गई थी। रविवार की दोपहर एक मात्र दिन निश्‍ंचित रहने का। मार्या की तत्परता पर मान भरा उज्र किया तो बिगड़ गयी। 'अयॉम नॉट युअर प्रापर्टी। डिडन्ट आय डू इन्नफ?"[145] मार्या का जवाब सुनकर रमण भौचक रह गया था। मार्या जीवन में स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता और एकाधिकार चाहती है। 'मार्या के रोशनी करने का अर्थ था - उठो।'

व्यक्तित्व के प्रति चेतित नारी की विचारधारा ही अस्तित्व बोध से उसका परिचय कराती है। यह विचारधारा 'मार्मिक व्यक्तिगत संबंधों' पर भी आघात करती है। 'मुझे चाँद चाहिए' में 'वर्षा' अपना कैरियर रंगमंच में बनाती है और अपने व्यक्तित्व का निर्माण वह खुद करती है। वर्षा के जीजा जी वर्षा के कैरियर के प्रति इस मोह को देखकर विस्मित होकर पूछते हैं कि –"ड्रामा स्कूल के प्रति जो तुम्हारा मोह है, हम उसे सचमुच समझने में असमर्थ है। मैं सचमुच समझ नहीं पा रहा हूँ कि

तुम ड्रामा स्कूल क्यों छोड़ नहीं सकती?" तो वर्षा का उत्तर है –"जिस तरह आप अपना घर-परिवार नहीं छोड़ सकते - क्योंकि वह आपके जीवन की धुरी है जिस तरह आपका घर आप की जिंदगी को सार्थकता देता है, उसी तरह रंगमंच मेरी जिंदगी में ऐसा अर्थ भरता है, जिससे मैं जिंदा रह सकूँ।"[146]

वर्षा कैरियर होने के कारण अपनी कला को प्रोत्साहन दे सकी और उसी को जिंदगी बना सकी। यही कला आर्थिक अभाव में किस प्रकार शिथिल हो जाती है, इसका उदाहरण 'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा के द्वारा मालूम होता है। सहजा के पूछने पर शारदा अपनी व्यथा को व्यक्त करती है। कि – "ताना देना, खीझना शुरू हो गया। चित्र लेखन के लिए आवश्यक कागज, पैन्सिल, रंग ब्रूश आदि चीजों पर होने वाले खर्च को फिजूल ठहराया। पिताजी के रहने तक वे खरीदकर दे देते थे। इसीलिए खर्च के बारे में मुझे मालूम नहीं पड़ा। इनके दैनंदिक कामों में जरा-सा आगे-पीछे या उल्टा-सीदा हो तो उसका सारा गुस्सा मेरे चित्र लेखन पर दिखाता था। धीरे-धीरे मेरा उत्साह शिथिल होता गया।"[147] उसने यह भी कह दिया कि -अगर मुझे चित्र लेखन ही चाहिए तो उसके और मेरे बीच रिश्ता भी खतम। तब से मैंने ब्रुश को नहीं छुआ।"[148]

संदर्भित रूप से कहा जा सकता है कि अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने नौकरी पेशा नारी का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने का और आर्थिक निर्भरता में नारी की दुस्थिति का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। आधुनिक स्वतंत्र एवं निर्भर नारी के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिपात किया गयाहै।

4.2.1 दोहरी जिम्मेदारी

दोहरी जिम्मेदारी के कारण नारी को अनेक मानसिक एवं दैहिक कष्टों को पार करना पड़ता है। इस संघर्ष में अपने आत्मीय लोग भी समर्थन नहीं करते हैं। 'आवां' उपन्यास में नमिता की मौसी अपनी दीदी ऊर्मिला के कान भरने लगती है कि –"पहला काम करो नमी का पर कतरो। नौकरी छुड़वा उसे घर बैठाओ। फिर सुयोगवश, हाथ पीले कर गंगा नहाओ।"[149]

'छिन्नमस्ता उपन्यास में प्रिया पति का घर छोड़कर मायके आती है तो माँ उसे समझाने की कोशिश करती है कि - सरोजबाई डॉक्टर है, उसके बाद भी तो जीजा जी को खाना खिलाती है...... बात सुनो बात समझो। कहा मानो नरेन्द्र ठीक है, नरेन्द्र जैसा पति नहीं मिलने का, अग्रवाल जैसा घर नहीं मिलने का, देवी जैसी सास......।"[150]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में उषा की तलाक की बात सुनकर रमा भी उसे समझाने लगती है कि –"वह तो मर्द है। लाखों कमजोरियाँ होंगी। हमें ही समझौता करना है। इस उम्र में पति को छोड़कर जीवन भर अकेली रहना समाज में कितना मुश्किल है। बच्चों को क्या समझाओगी? अभी से लोग अपमान करने लगे। क्या मालूम कल कौन सी समस्या शुरू होगी?"[151]

जब कोई पुरुष प्राचीन मान्यताओं का विरोध करता है और विकास की ओर अग्रसर होता है तो वह सम्मान का पात्र बनता है। अगर नारी अपने लिए एक नया रास्ता खोलती है तो समाज इसके खिलाफ हो जाता है। वह समाज में अपराधी बना दी जाती है। उसे सामाजिक न्यायालय के सामने दंडित किया जाता है।

इस संदर्भ में 'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है कि - "व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को समाज यहाँ सौ कोड़े लगाते हैं, वहीं पुरुष को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बैठाता है। और नारी हर तरह मरती है, लेकिन रोती हुई औरत मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुंझलाहट होती है।"[152]

डी.कामेश्वरी के 'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) में कविता के प्रति बच्चों के उपेक्षित व्यवहार को देखकर कविता अपनी मौसी कामाक्षम्मा से प्रश्न करती है कि – "मौसी जी!बताइए!कोई ऐसे हैं जो गलतियाँ न किये हो?ये मर्द सदियों से कितनी बार गलतियाँ किये थे, कर भी रहे हैं, और करते भी रहेंगे। पुराने जमाने में मर्द पर स्त्री से संबंध रखे तो वह रसिकता का प्रमाण माना जाता था। चोरी-छिपे कितने ही अवैध संबंध रहने पर भी समाज उसे मर्द का स्वाभाविक गुण मानकर अनदेखा करते थे। वह रखैल को घर में रखकर, बीबी के साथ उसके पैर भी धुलवाता था।"[153]

बीबी को मनाकर दूसरी शादी करने वाले, बड़ा घर - छोटा घर कहकर दो घरों को चलाने वाले मर्दों को समाज ने कौन सा दण्ड दिया। मर्दों की इन गैर हरकतों को बड़ी आसानी से समाज और परिवार दोनों नजरअंदाज कर देते हैं। अगर यही गलती एक औरत करती तो उसे क्यों इतनी कड़ी सजा भुगतनी है? क्या, औरत का मन नहीं है? औरत का मन कभी विचलित नहीं होना?"[154]

इस प्रकार की विषम समस्याएँ केवल शहर की आत्मनिर्भर, कामकाजी, शिक्षित स्त्री के लिए ही नहीं बल्कि अनपढ़, निम्न, बेचारी, अबला नारियों को भी झेलनी पड़ती हैं।

'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' (तेलुगु उपन्यास) में रागिणी नवता से समाज की धारणा को बताती है कि –"जवान बेटी को देखते ही सब के मन में शादी की चिंता होने लगती है। मेरे ख्याल से लड़की की पैदाइश से शादी की समस्या शुरू हो जाती है।"[155]

इस संदर्भ में नवता भी अपना अनुभव बताती है कि –"जिसलड़की की शादी नहीं हुई और जो लड़की शादी नहीं करना चाहती है दोनों पर लोग अफवाएँ फैलाते हैं। इस समाज से जूझने के लिए लड़कियों को साहस और व्यक्तित्व को बनाने की समझ आनी चाहिए।"[156]

कामकाजी स्त्री के लिए समाजवादी रूढ़ परंपराएँ बाधक बन जाती है। कभी-कभी उसे झेलना असंभव हो जाता है। 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा की जीजी उसे समझाते हुए कहती है –"सिलबिल अपना जीवन संवार बहन। यह क्या तुमने ड्रामे की लत पाल ली है। सिलाई, कसीदाकारी जैसी कुछ सीखती तो कोई बात भी थी। लड़के वालों की आँखों में कुछ चढ़ेगा तभी नाव मझधार से निकलेगी।"[157]घर और बाहर से जूझती हुई वर्षा कहती है –"मेरे दोनों संसार इतने अलग और प्रतिकूल क्यों हैं?"[158]

'मधुमति' (तेलुगु उपन्यास) में सावित्रम्मा मधुमती को शादी के बारे में मनाने की कोशिश करती है –"शादी से लड़की की जिंदगी सुस्थिर होती है।लड़की की

जिंदगी में सुस्थिरता जितनी जल्दी आएगी उतनी ही बेहतर होगी । कितने भी साल नौकरी करने पर भी कभी न कभी शादी तो करनी ही है।उस शादी कोअब ही कर लो।"[159]

'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) में मौसी कामाक्षम्मा कविता को समझाने की कोशिश करती है कि –"पगली ! तब हो या आज "- कभी भी औरत पढ़ी-लिखी हो, कामकाजी हो, कहने के लिए पुरुष के समान है। लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ ही प्रमाणित करती हैं कि औरत कभी भी पुरुष के समान स्तर तक पहुँच नहीं सकती। जो रुढ़ भावनाएँ अपने खून में समा गयी हैं, वे इतनी आसानी से नहीं बदलेंगी। जिस समाज में अपनेसे गलती न होते हुए भी, गलती न करे तो भी सीता, सावित्री, शकुन्तला जैसी स्त्रियाँ सजा की भागीदार बनीं, वह समाज औरत को इतनी आसानी से छूट नहीं देता। ये तो इतिहास में दिखे हुए सबूत हैं, न दिखने वाले सबूत कई हैं।"[160]

नारी के भविष्य के सपनों को पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयास किया जाता है। उसकी आत्मनिर्भरता उसके स्वाभिमान का छोर पकड़कर चलती है। अतः वह अपनी अपूर्व मेहनत की भाव भूमि पर उतरती हुई स्वतंत्रता पाना चाहती है। सुरेन्द्र वर्मा वर्षा की इस मनोदशा को प्रकट करते हैं –"देह स्वामिनी के पद और भावना को तृप्ति से तृप्ति की क्षतिपूर्ति से अपने को सार्थक क्यों नही मान लेती? रीटा ने अपनी कलात्मक लालसा को काँटेदार झाड़ियों में फँसे पल्लू की तरह झटक दिया है। क्या इन सबके आत्मसम्मान उसके आत्मसम्मान के सामने हीन हैं। मजेदार तथ्य यह है कि उसकी पारिवारिक पृष्ठिभूमि इन सबसे हीन है।"[161]

घर-बाहर के बीच यह अंतराल स्त्री-जीवन में अभिशाप बनकर उभरने लगा है। स्त्री के शांत मन में तरंगों की तरह उथल-पुथल मचा दी है। 'पारिवारिक द्वंद्व' का यह कैसा अभिशाप उसके सिर पर है" जब लग रहा था कि कलेजा कुतरनेवाले अतीत के संघर्षों की स्मृति धूमिल हो गयी है, तो जमी हुई पपड़ी की दरारों से नए नाग फुफकारने लगे।"[162]

‘सहजा’ (तेलुगु उपन्यास)कितने सालों से दबी हुई ऊर्जा चित्र लेखन में भरकर आयी है। चित्र पूरा होने तक शारदा में कोई दूसरा विकल्प नहीं रहा। “उस रात को निश्चिंत सो सकी। शनीचर की रात जितनी निश्चिंत बीती रविवार की रात उतनी ही भयानक रूप धारण कर ली। वह निर्जीव सी बिस्तर पर सोई रही तो उसकी इजाजत के बिना, उसकी घृणा को गौर न करते हुए, उसे एक वस्तु की तरह भोग कर पति रामाराव बड़े आराम से सो गया। शारदा के हृदय को इन दोनों रातों के बीच का जो अंतर है, उसे विकल और विचलित कर दिया।”[163]

4.2.2 वैचारिक – दैहिक संघर्ष

वैश्विक नारी को इस जटिल व्यवस्था के साथ ताल-मेल बैठाने के लिए काफी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ती है। उसे लक्षित ध्येय प्राप्त करने के लिए कई विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। उसे केवल दैहिक ही नहीं बल्कि मानसिक लड़ाई भी लड़नी पड़ती है। पुरुष निर्मित सामाजिक व्यवस्था में उसे आदरपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। इन वैश्विक परिवर्तनों के बाद भी उसे अपना मर्यादित स्थान सुरक्षित नहीं मिल पाया है। इसका कारण यह है कि भले ही आज के विज्ञान ने अति आधुनिक समाज का गठन करने का दम्भ भरा है, परन्तु पुरुषों की संकीर्ण, निर्धन सोच में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। खुली मानसिकता का केवल हवाला मात्र दिया जाता है। यह भ्रमित कर देने वाली विचारधारा स्वतंत्र और सफल नारी के वर्चस्व को सहन नहीं कर पाती है। इसका कारण है कि अंतिम दशक में नारी की एक ‘शोषित’ के रूप में छवि स्वीकार कर ली गई है। आधुनिक अहं निष्ठ, कर्मठ नारी ने इस बेचारी, अबला और शोषित का रूप बदल लेने का संकल्प कर लिया है। यही प्रमुख कारण है कि उसे सभी प्रकार के कष्टों को सहन करना पड़ता है। अंतिम दशक के उपन्यासों में नौकरी पेशा दैहिक और वैचारिक अत्याचारों की शिकार स्त्रियों के मर्म को छूनेवाला यथार्थवादी अंकन प्रस्तुत हुआ है। ऐसी नारियों पर हो रहे अनेक अत्याचारों का जीवंत चित्रण किया है।

'आवां' में नमिता कामागार आघाड़ी में नौकरी करने लगती है। वहाँ पर पिताजी के दोस्त अन्ना साहब श्रमिक नेता है, जो उसके साथ अश्लील व्यवहार करता है। दोस्त की बेटी के साथ अपनी बेटी के बराबर लड़की के साथ असभ्य व्यवहार करने में सकुचाता नहीं। उनकी काम वासना अपनी सारी प्रतिष्ठा को ताक पर रखकर नमिता को शिकार बनाती है –"देखो, दोस्त की बेटी हो तुम, बेटी नहीं हो मेरी, पिता समान हूँ मैं पिता नहीं हूँ...... तुम बस इतना भर करो, आओ, मेरी जाँघ पर आकर बैठ जाओ।

स्त्री का यह शोषण केवल शिक्षित और अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित नहीं है अपितु निम्न मध्यवर्गीय औरतों को भी यह सब कुछ झेलना पड़ता है। इस संदर्भ में 'इदन्नमम' की एक भील औरत का निम्न कथन दृष्टव्य है –"जीजी बाल-बच्च भूखे मरते रहें। कोई कुछ नाही। फिर? पूछे तो जनि मांसों को, उन्हें बुलावे रात विरात। अब बताओ, कैसे काटते जिंदगानी।"[164]

मैं तो अपने को छुड़ाने के लिए बहुत गिड़गिड़ायी और चिल्लायी थी कि – "छोड़ो- छोड़ो। उसने नहीं छोड़ा और भी मुझे जोर से कस के पकड़ लिया। उसकी पसीने की बदबू – देह की दुर्गंध मुझे चकरा देने लगी। ईश्वरी के पिताजी के डर से मुझे गालियाँ देते हुए बड़ी मुश्किल से मुझे छोड़ दिया।"[165]

उसको छुड़ाने की कोशिश में मेरा पूरा बाल बिखर गया। एक चोटी खुल गयी दूसरी चोटी में से फूल गिर गया। उसने अपनी खुरचने वाली दाढ़ी से मेरे गालों को पूरा रगड़ डाला । मेरे गाल कुम्हला गये और जलने लगे। मेरा पूरा शरीर काँपने लगा।"[166]

स्त्री पुरुषों द्वारा दी गई यातनाओं को पारकर, इससे दृढ़ अनुभूति ग्रहण कर स्वयं के लिए नवीन मार्ग खोजने की तैयारी कर ली है। - "नहीं, जिंदा रहने और अपनी लड़ाई लड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपमान और वंचना को भी याद रखें। मुझे ये सब चुप-चुप रहो वाली बातें न सिखलाए तो अच्छा है।"[167]

मानसिक संघर्ष से उभरने वाली पीड़ा को प्रिया का निम्न कथन पूरी तरह उभारता है। “मेरी उद्दाम महत्वाकांक्षाओं को नरेन्द्र बार-बार सेक्स्युअल फ्रस्ट्रेशन का नाम देता है। कई बार मेरा मन करता कि पूछकर देखूँ कि तुम जैसे तो और भी खिलाड़ी दोस्त हैं और उनकी बीवियाँ क्यों न्यूरोटिक हैं क्या उन्हें हिस्टीरिया के दौरे पड़ते हैं।”[168]

अपने नवीन भविष्य के निर्माण के लिए नारी जब अपनी चेतना की भावभूमि का निर्माण करने लगती है तो समाज उसे स्वीकार नहीं करता। प्रिया जब नरेन्द्र के वजूद को अस्वीकार कर अपना वजूद बनाती है तो समाज की निगाहें और पारंपरिक सोच उसके इस नवीन ऊर्जा की रचनात्मकता से लबालब विरोधी व्यक्तित्व को अस्वीकार कर देता है –“प्रश्न पूछती हुई आँखें, व्यंग्य से देखती हुई आँखें ...... इस औरत को हम कैसे अपने घर बुलाएँ? कैसे सम्मान दें। कल हमारी भी बहू-बेटियाँ ऐसा ही कदम उठाएंगी।”[169]

‘सहजा’ (तेलुगु उपन्यास) मेंशारदा का मन विकल होने लगा कि –“आज तक आस-पड़ास वाले यही समझ रहे हैं कि मेरा परिवार सुखी-परिवार। मेरे आंतरिक संघर्ष को कोई नहीं जानते हैं। ऐसा जानने की बुद्धि या ज्ञान को मेरी पढ़ाई मुझे क्यों नहीं दी? इतना सब मालूम होते हुए भी मैं क्यों इस जिंदगी से लटक रही हूँ? मुझमें इस परिवार को छोड़ने का साहस क्यों नहीं हो रहा है?”[170]

“बच्चों का भविष्य क्या हो जाएगा? उनकी तकलीफों से डर है। सामाजिक धारणा से भी डर है। इन सभी विषयों से डर है। ये सब औरत को इस संसार में दफना देता है।”[171]

सहजा और मेरी जिंदगी में कितना अंतर है। प्रसाद में सहजा के प्रति विश्वास, गौरव, आत्मीयता ये सब हैं। सहजा की जिंदगी में स्वेच्छा है। पाँच साल की वैवाहिक जिंदगी में रामाराव को बिना बताये पहली बार मैं बाहर गयी तो मुझ पर वह कितना शक कर रहा है। कितना अपमान सहना पड़ा, गालियाँ सुननी पड़ी, मार खानी पड़ी, समाधान देना पड़ा। मेरे और सहजा की जिंदगी में किसी भी विषय में समानता

है ही नहीं। ऐसा क्यों हुआ? मैंक्यों इस भ्रम में रह गयी कि सभी लोग अच्छे होंगे। शादी का मतलब गुलामी है करके मुझे क्यों मालूम नहीं हुआ । शादी की खबर सुनते ही मन में संतोष, उत्साह,आनंद और कुछ नयापन जिंदगी में प्रवेश करने की खुशी के अलावा उस आदमी की पसंद-नापसंद, स्वभाव के बारे में,उसके बारे में पूछताछ करने की कोशिश नहीं की। आज तक नादान बनकर यही समझ रही हूँ कि–"आस-पड़ोस के सभी परिवार सुखी हैं - क्या यह सच है?"[172]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा अपने आप को समझाने लगी कि-"अपनी निस्सहायता, नीचता न चाहते हुए स्पष्ट रूप से दिख रही है। पाँच साल के पहले से मालूम होते हुए भी उसकी इजाजत के बिना बाहर कदम नहीं रखना है।बाहर गए तो क्या होता है आज ही मालूम हुआ। अपनी दासता के कारण ही इसके पहले ऐसा संघर्ष नहीं हुआ शादी होने के बाद मायका, ससुराल, उनके साथ गये हुए प्रदेशों के अलावा मैं तो अकेली कहीं गयी नहीं। कभी मैंने उनके नियमों का अतिक्रमण नहीं किया। चित्रलेखन नहीं करना है तो मान लिया। मैंने अपने को मना लिया कि- मुझे तकलीफ होने पर भी उसकी नापसंद के काम न करे। मैं तो अब तक यही समझकर गुजारा कर रही थी कि घर बसाने के लिए समझौता करना पड़ता है। लेकिन यह समझौता नहीं। समझौता दो लोगों के बीच में होता है। लेकिन मैं तो मनुष्य ही नहीं रही। अपना व्यक्तित्व, इच्छाएँ, गौरव कुछ भी नहीं बचा। बच्चों के सामने मुझे मारने को तैयार हो गया। आगे भी अगर मैं अपनी पसंद के काम करूँ तो मार भी खानी पड़ेगी। मुझे एक जानवर-समझकर अपने अधीन में रखने की कोशिश कर रहा है। मैं तो एक पशु हूँ, वस्तु हूँ, न कि व्यक्ति ।"[173]

नारी का प्रस्तुत संघर्ष खून के रिश्तों में भी जटिलता और आक्रोश उत्पन्न कर देता है। 'मुझे चाँद चाहिए' में जब वर्षा साक्षात्कार के लिए जा रही होती है तो उसे पिता और भाई महादेव द्वारा शारीरिक यातना दी जाती है –"उसने दरअसल इस प्रकरण को पेटी से नीचे का प्रहार माना। भाई पिता के साथ संलग्न उसके मन का एक बहुत नाजुक तंत्र ऐसे टूटा कि, फिर कभी न जुड़ सका।"[174]

'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा नौकरी कर अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है। शारदा को लेकर भाइयों का गुस्साहै कि –"जवान लड़की को घर में रखे कैसे "[175]

बड़ा भाई पिता जी से पूछ रहा है – उसकी पढ़ाई इस साल खत्म हो जाएगी न। उसकी शादी के बारे में कुछ सोच रहे हैं?

बड़े भाई - तुम्हारी शादी के बारे में पिताजी बहुत चिंतित हैं।

बड़ी भाभी – किसी को देख लिया होगा।

छोटी भाभी – हे शारदा ! तुम्हारी तरह ही एक लड़की कहा करती थी कि शादी नहीं करूँगी। सभी लोग समझते थे कि यह लड़की औरों की तरह नहीं है। तुम्हें मालूम -उस लड़की ने क्या किया। एक दिन रिक्शेवाले के साथ भाग गयी।

बड़ी भाभी - हमको धमकी दे रही हो कि शादी को न ...न... बोल रही हो। लड़की होकर शादी न करोगी तो क्या करोगी?

इस संघर्ष में वह परिवार से भी लड़ जाती है। उसे परिवार से दूर होना पड़ता है। इस स्थिति से वह किसी भी कीमत पर समझौता नहीं करना चाहती। 'मुझे चाँद चाहिए' में शारीरिक – मानसिक यंत्रणाओं को झेलती हुई वर्षा एक सफल अभिनेत्री बन जाती है। फिर भी यातनाओं का वह कारुणिक स्मृति दंश उसे कचोटता ही है। उस सफलता में भी भुगती हुई यातनाओं का विष घुला होता है –" पिता और बड़े भाई जिनके चेहरे लपलपाती ज्वाला के पर्याय थे, सामने दिखते रहे। वर्षा के भीतर इस चारदीवारी में घटित वे अनेकानेक क्षण कसक, जब पर क्षत-विक्षत हुई थी। पर दंश में पहले जैसी पीड़ा नहीं थी, घाव भरे हुए से लगे। मरहम का काम किसने किया...... समय, उपलब्धियों या विरोधी पक्ष की स्वीकृति ने, उसने अपने आप से पूछा, विशेष खुशी नहीं हुई। बस थोड़ी वीतराग सी संतुष्टि थी।"[176]

इन संघर्षों के दौरान नारी कभी-कभी अपनी चेतनता खो बैठती है। 'आवां' उपन्यास की स्मिता कहती है –"जिस दिन नौकरी मिल जाएगी मुझे नमि, बाप रूपी इस राक्षस को मैं सीढ़ियों से ढकेल स्वाभाविक मौत मरने पर विवश कर दूँगी।"[177]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में देवकी के घर की आर्थिक तंगी जैसी की तैसी रहती थी। माँ घर चलाने के लिए दिन भर मेहनत करती थी लेकिन पिता ओसारे में संगीत का आलाप करते, बीड़ी पीता हुआ, निकम्मा बनकर बैठता था। माता-पिता के बीच पिता की कमाई को लेकर कभी-कभी कहा-सुनी हो जाती थी। एक दिन पिता ने - "माँ के जूड़े को कसकर, बालों को खींचकर, सर झुकाकर, पीठ पर जोर-जोर से पीटने लगा। देवकी को ऐसा लगा कि – मेरे पिता बाकी पिताओं की तरह न होकर एक राक्षस पिता के रूप में दिखने लगा।"[178]

बड़े-बड़े लोग हमेशा ऐसे मौकों की तलाश में रहते हैं। अवसर मिलते ही वे अपना वार कर बैठते हैं और स्त्री पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। संजय कनोई के साथ नमिता का व्यवहार देखकर पवार उसे समझाते हुए कहता है –"संजय कनोई ठग है। कोई अलग अनुबंध तुम्हें नहीं दे सकता। लेकिन बपौती कायम रखने की मंशा से तुम पर प्रेमजाल अवश्य फेंक सकता है।"[179]

नारी को इस दोहरे जीवन में परिवार भी उसे नहीं बख्शता है। परिवार एक ओर तो उससे आर्थिक सहायता चाहता है और दूसरी ओर उस पर पारिवारिक अंकुश भी लगातेहैं। इस प्रकार उसे असमंजसता की तनावपूर्ण स्थिति से जूझने पर मजबूर कर देता है। कभी-कभी वह इससे दूर भागना चाहती है।

आचार्य तोमटला जी नृत्य में प्रवीण हैं। वे मुझे मुफ्त में नृत्य सिखाना चाहते हैं। उनका कहना है कि –"देवकी में नृत्य-गान की अद्‌भुत क्षमता है। इस कलासे आपके घर की आर्थिक स्थिति भी सुधर जाएगी।" लेकिन माता-पिता बिलकुल इस सुझाव को मानते नहीं। पिता कहते हैं कि –"लड़की की कमाई पर निर्भर होना मैं नहीं चाहता।"

माँ कहती है कि –"तुम्हारी कमाई की जरूरत नहीं।"

इन बातों से देवकी के मन में आक्रोश बढ़ जाता है कि–"सुबह होते ही एक कौड़ी का नसीब नहीं होता। लेकिन माता-पिता दोनों को बहुत घमंड़हैं, बोलते हैं कि - पैसों के लिए नहीं।"[180]

कामकाजी नारी घर गृहस्थी और बाहरी जिम्मेदारियों को निभाते हुए आगे बढ़ने का प्रयास करती है। कार्य क्षेत्र में वे उस पर आरोप लगाने से चूकते नहीं। 'आवां' में जचकी का केस होने के बावजूद कंपनी ने पंढरी बाई को धमकी दी थी कि- "वह तत्काल काम पर लौटे वरना नौकरी खत्म समझे। इतनी लंबी छुट्टी कंपनी बरदास्त नहीं कर सकती। अंडर सेक्शन चार का केस था।"[181]

पवार का कहना है कि –"कायदे से बच्चा होने के छ: हफ्ते बाद ही उसे काम पर लौटना था लेकिन कंपनी की धमकी से घबड़ाकर पंढरी बाई तुरन्त काम पर पहुँच गई। अधिक परिश्रम के चलते उसके पेट के गीले टांके टूट गये।"[182]

'आवां' की सुनंदा भी इसी तरह के शोषण का शिकार होती है। 'मे एण्ड बेकर' कंपनी से सुनंदा को नोटिस में काम पर लौटने की चेतावनी दी गयी थी कि - "अगर वह ब्याह का प्रमाण पत्र नहीं प्रस्तुत करेगी कंपनी में तो, न तो उसकी जचकी की छुट्टियाँ कानूनन मंजूर होंगी न छुट्टियों की तनख्वाह मिलेगी। ब्याहता स्त्रियाँ ही जचकी के फायदे की कानूनन अधिकारिणी हैं।"[183]

कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में नारी शारीरिक-मानसिक संघर्ष एवं शोषण का शिकार हो रही है। नमिता अपने कार्य क्षेत्र में फोटोग्राफर सिद्धार्थ के मानसिक-शारीरिक शोषण का शिकार बनते-बनते रह जाती है –"देखो ! पोर्टफोलियों मैं तुम्हारा तैयार करवा दूँगा। फीस की शक्ल भर बदल जाएगी। अन्यथा न लेना। मैं बेहद स्पष्टवादी, ईमानदार पेशेवर रवैये का व्यक्ति हूँ। लेकिन प्रत्येक अनुबंध में साठ प्रतिशत मेरा - चालीस तुम्हारा। पोर्टफोलियों बनाने की एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक संबंध बनाने होंगे।"[184]

'नजरिए' (तेलुगु उपन्यास) में सरला और साम्बमूर्ति विवाह के बाद अच्छा-सा इलाज करवाने हैदराबाद जाते हैं। वहाँ पर साम्बमूर्ति सरला को ब्लू फिल्म्स अभिनय करनेके लिए एक सिनेमा मालिक द्वारा पाँच लाख रुपए की अच्छी रकम मिलने की बात कहता है जिससे साम्बमूर्ति का इलाज हो सकता है। इसे सुनकर साम्बमूर्ति सरला के अंतरंग को समझकर उसे छोड़कर चली जाती है। "साम्बमूर्ति मुझे किसी व्यभिचारिण के रूप में बना देगा। उसके मुँह पर थूक कर चली जाती है।"[185]

दोहरे मानदण्ड को झेलती हुई युगीन नारी मानसिक संघर्षों से गुजरती है। परिवार जहाँ एक तरफ आर्थिक सहायता चाहता है वहीं दूसरी तरफ बंदिशों की हद पार करते ही शारीरिक शोषण करता है। 'आवां' में नमिता को पिताजी की मृत्यु के चौथे दिन ही काम पर जाना पड़ता है तो मौसी नमिता से पूछती है– क्या तू मैडम से कह नहीं सकती थी कि आज ही तेरे बाप का चौथा हुआ है? दावत उड़ाना तेरे लिए डूब मरने के बराबर है।" तो नमिता भी मौसी से प्रश्न करती है कि–"बाबूजी के शोक में तुमने अपनी फैक्टरी बंद कर दी?" मौसी निरुत्तर हो आई। अचानक माँ शिकारी बिल्ली सी उस पर पीछे से झपटी। अनपेक्षित हमले से असावधान सैंडिलों को एड़ियों के असंतुलित होते ही वह रपटकर फर्श पर ढेर हो गई। लात-घूंसों से कूटते हुए माँ ने उसे संभलने ही नहीं दिया।"[186]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में कमलाम्बा अपने निकम्मे पति को ताना देती है तो- "पिता झट से उठकर माँ का जूड़ा पकड़ कर कस लिया। माँ तो हवा में हिल-डुल जानेवाला करिया पत्ता के पेड़ सा झूल गयी। उसकी पीठ को झुकाकर जोर-जोर से पीटने लगाा।"माँ भी चुप नहीं रही कि - "घर सँभालने में समर्थ न होने पर भी मारने-पीटने में समर्थ हो।"पिता गालियाँ देने लगता है कि - "साली, जुबान चलाये तो मार डालूँगा।"[187]

अंतिम दशक में नारी और पुरुष का जीवन एक मशीन तुल्य हो गया है। वे एक स्पीडोमीटर की तरह अपनेद्वारा तय किए गये लक्ष्य को नापने में लगे हैं। उनमें सारी भावनाएँ निष्क्रिय हो गयी हैं।

आधुनिक व्यावसायिक स्त्री अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अंधा-धुंध दौड़ते चली जा रही हैं। एक ओर वह आर्थिक रूप से संपन्न बन रही हैपरन्तु वह धीरे-धीरे अकेलेपन का शिकार बनती जा रही है। ऐसी स्थिति उन्हें सामाजिक जीव होने से रोक रही है, जो उनकी सहज प्रवृत्ति है। 'छिन्नमस्ता' में प्रिया एक सफल महिला उद्यमी के रूप में खुद को प्रतिस्थापित करती है जिसे परिवार सहज रूप में अपना नहीं पाता है। प्रिया कहती है –"आदमी खुद नहीं समझ पाता कि कब और कहाँ उसकी जिंदगी के क्षण विस्फोटक हो जाएँगे? कि कब वह सारे अतीत को फेंककर उठ खड़ा होगा? नरेन्द्र से मेरी वह आखिरी बातचीत थी। उस बड़े घर में मेरी वह आखिरी रात थी। सुबह मैं बक्सा लेकर उतर रही थी। मुझे उतरते हुए सब ने देखा। सब खामोश थे।"[188]

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में पद्मा के पति ने झमेला खड़ा कर दिया है। पंचायत में पति को मनाने की कोशिश करने पर भी उसने साफ इनकार कर दिया कि –"जो भी हो, वह (पत्नी) मुझे नहीं चाहिए।"[189]मैं तो घुट-घुट कर रो रही थी कि – "शादी होने के एक साल के पहले ही, गलती न होते हुए भी, कई अपमानों को सहना पड़ा। भविष्य के बारे में सोचे तो सब कुछ शून्य दिखने लगा। मेरा अनपढ़ होने के कारण, मजूरी करने के अलावा कोई चारा नहीं है। मैं तो उदास हो गयी कि कुछ भी करे, आखिर लड़की की दुर्दशा ही होती है। घर की स्थिति देखे तो मजूरी किये बिना एक दिन का भी गुजारा नहीं हो पाएगा। फिर से मजूरी करने में जुट गयी।"[190]

प्रिया को घर के साथ-साथ अपने बेटे तक को छोड़ना पड़ता है। वह अपने पति का घर छोड़ देती है क्योंकि उसकी सफलता नरेंद्र स्वीकार नहीं कर पाता है। प्रिया की मनोव्यथा इन शब्दों में व्यक्त होती है –"नरेन्द्र तुम्हारा सब कुछ तुम्हारे पास छोड़ आई हूँ। कुल बीस साड़ियाँ और किताबें लाई हूँ।"

"बहुत अच्छा, धन्यवाद।"

"और संजू को बीच-बीच में भेजते रहना।"

"बड़े तैश से बातें कर रही हो?"

"नरेन्द्र!आदमी की भाषा में बातें करो। घर की जमीन कौन औरत छोड़ना चाहती है? और तुमने तो मेरा बेटा भी रख लिया है।"[191]

कामकाजी नारी के घरवाले भी उसकी परेशानियों को समझने की कोशिश नहीं करते हैं, उल्टा इल्जामों के कटघरे में खड़ा कर तमाशा देखते हैं। 'छिन्नमस्ता' में प्रिया को नीचा दिखाने में नरेंद्र कोई कसर नहीं छोड़ता है –"ठीक ही किया। तुम अपने को सँभाल लो तो महान आश्चर्य होगा...हूँ!खुद का ठिकाना नहीं और संजू की बात कर रही हो?बेटे को साथ लिए विलायत अमेरिका के चक्कर लगाओगी?ह्वाट फ्यूचर कैन यू गिव हिम?टेल मी?"[192]

प्रिया धीरे से रिसीवर रखते हुए सोचने लगती है कि जब पति में संवेदना नाम की कोई चीज़ नहीं, उससे माथा लड़ाना बेकार है। नरेन्द्र कुछ और बके जा रहा था।

सहजा (तेलुगु उपन्यास) में शेषगिरी के स्वभाव के बारे में उषा बताती है कि – "किसी भी कीमत पर शेषगिरी की दैनंदिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाना है। उसकी अपनी धारणाएँ, अपना काम, अपने दोस्तों के अलावा किसी और विषय के बारे में सोचता ही नहीं। कल रात उसके बुलाते ही मैं तो गयी। अगर मैं कभी उसके पास जाती तो मेरी कदर ही नहीं करता। मेरा प्यार, मेरी पसंद या इच्छा का कोई मायना नहीं। उसकी और मेरी दुनिया बिल्कुल ही अलग है। आज मुझे एकाकीपन बहुत काट रहा है।"[193]

विशेष रूप से आधुनिक नौकरी पेशा नारी दैहिक और वैचारिक प्रताड़नाओं को झेलती हुई कार्यरत हो रही है। समाज में इनका निरंतर शोषण होता जा रहा है। ऐसी स्त्रियों का सशक्त वर्णन अंतिम दशक के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है।

4.2.3 कामकाजी नारी का यांत्रिक जीवन

अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने नारी के आधुनिक स्वरूप को यथार्थवादी रूप से उकेरने का प्रयास किया है। आज की नौकरी पेशा नारी यंत्रवत होती जा रही है। समाज ने उसके मानसिक- दैहिक यंत्र तुल्य जीवन को उपेक्षित करने का प्रयास

किया है। गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों का पालन करने का ठेका नारी को पहले से दे दिया गया था। बाहरी दुनिया में भी उसे अपनी सक्षमता की परीक्षा निरंतर देनी पड़ती है। उसे बाजार के व्यावसायिक मानदण्डों पर खरा उतरना पड़ता है। उसे कदम-कदम पर चुनौती का सामना करना पड़ता है। लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी नारी-पुरुष का पारस्परिक जीवन समानता का नहीं है। इस दौर में भी पारिवारिक समाज नारी की अस्मिता को स्वीकार करना नहीं चाहता। उसकी पुरानी छवि को बदलते देखना नहीं चाहता। पुरुष या परिवार की हमेशा यही मंशा रहती है कि वह भीतर-बाहर दोनों क्षेत्रों में अपनी सक्षमता को बनाये रखे। वह अपने दोतरफा उत्तरदायित्व को कुशलता के साथ पूरा करे। इसी प्रयास में नारी का जीवन मशीन तुल्य हो गया है। भविष्य निर्माण की ओर ताकती स्त्री का जीवन यांत्रिकता के कारण कठोर हो गया हे। उसकी मार्मिक मनोभावनाएँ, कोमल विचार विलीन होते जा रहे हैं। उसमें सहृदयता का भाव समाप्त होता जा रहा है। व्यावसायिक, यांत्रिकी जीवन के प्रभाव से वह मानसिक रोगों का शिकार हो रही है। नारी के इस नवीन जीवन ने उसके परिजनों को ही नहीं बल्कि उसकी आत्मा की भावभूमि को भी हिला दिया है।

यांत्रिकता की इस विभीषिका को सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास में अद्‌भुत ढंग से चित्रित किया है। वर्षा कहती है–"वह कितनी बार टूटी, कितनी बार लहूलुहान हुई, कैसे तन-मन को पूरी एकाग्रता से कला-कुंड में झोंका। अगर इन तीखी आँखों की प्रेरणा से डर न होता, तो शायद इस अग्नि-परीक्षा में खरी साबित न होती। पर वह कुछ कह न पाई। बस एक छोटा सा आँसू आँख में झिलमिलाता गया।"[194]

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास)में रामाराव शारदा के सिर को पकड़कर बाल खींचते हुए कहने लगा कि –"अमरावती पिकनिक, दोस्तों की तस्वीरें बनाना, दोस्तों के साथ घूमना-फिरना....... ये सब क्या है? तुम्हें मालूम है न, ये सब मुझे पसंद नहीं?.... कभी घर से बाहर नहीं निकलना। मुझसे पूछे बिना, बताए बिना, तुम्हें कभी घर से बाहर नहीं निकलना है। अगर तुम गयी तो....।"[195] रामाराव का पुरुषहंकार पूरी तरह इन चेष्टाओं में और शब्दों में व्यक्त हो रहा है।

वर्षा की टूटन हताशा और अवसाद इन पंक्तियों में परिलक्षित होता है – "रातभर की यात्रा से देह क्लांत थी और शोक से मन लग रहा था जैसे उसका महसूस करना स्थगित हो गया हो। जैसे वह जल्दी-जल्दी स्थितियों से गुजर रही हो। अपने घर में पहुँचकर बारी-बारी से फिर जोड़ कर अपनी अनुभूतियों की जुगाली करेंगी।"

शारदा का मन इन विचारों में सुलगकर अब विद्रोह करने लगा कि –"बाहरी दुनिया में घूमने कामेरा मनचाहता है तो उस इच्छा को क्यों दबाना है? उसकी पसंद के अनुसार ही मुझे क्यों चलना है?इतना साहस उसे कैसे मिला। मुझे क्यों सहना है? मैं क्यों सह रही हूँ?"[196]

स्त्री जीवन की यांत्रिक अवधारणा इतनी तीव्र हो रही है कि अपने-अपने सहज और प्राकृतिक जीवन को भुला दिया है–"न उम्मीदों के पीछे कोई तर्क होता है, न उन्हें पूरा करने के पीछे कोई तर्क होता है। वर्षा ने गहरी साँस के साथ उपसंहार किया। सब किस्मत का खेल है पाण्डेजी।"

'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में सहजा से कही गयी शारदा की बातों में वह यांत्रिकाता व्यक्त हो रही है जिसको वह कभी पहचानने की कोशिश नहीं की कि – "साजी..... उसका गौरव करना, प्यार करना, उसके पसंद के मुताबिक चलना – इन सब को अपना धर्म मानने की प्रबलता मेरे अंदर कहीं रही होगी। शायद इसी विश्वास ने मेरी नापसंद या अनिच्छा को बाहर नहीं आने दिया। इसी को मैंने अपना धर्म मान लिया। मुझ में छायी हुई उदासीनता को भी गौर नहीं कर पाई। लेकिन अब मैं न घर के बाहर आ पाकर, न घर के अंदर जी पाकर नरक को भुगत रही हूँ।"[197]

आर्थिक स्वतंत्र नारी अपनी कोमल भावनाओं को रौंदती अपने भविष्य निर्माण का स्वप्न देख रही है। उसका जीवन एक ही ढर्रे पर चलने के लिए विवश हो जाता है। वह एकाकी नीरस जीवन का शिकार होने लगती है। प्रभा खेतान ने 'छिन्नमस्ता' में उपन्यास की नायिका प्रिया के रूप में स्त्री के यांत्रिक जीवन का बड़ी सफलता के साथ चित्रण किया है।

नरेन्द्र प्रिया को कोसते हुए कहता है कि –"तुम मन लगाने के लिए ही काम करना चाहती थी। और चार साल में तुम इतना बदल गई कि, काम के अलावा तुम्हें और किसी बात का होश ही नहीं? ...... सुबह आठ बजे घर से निकलती हो और रात आठ बजे शक्ल दिख जाए तो भाग्य हमारे। मैं कहीं चलने के लिए कहूँ तो तुम थकी हुई हो?सर में दर्द हो रहा है और तुम्हारा कोई व्यापारी आ जाए तो तुरन्त उसे लेकर तुम रात बारह बजे तक बाहर......।"[198]

आधुनिक नौकरी पेशा स्त्री परिवार की नींव है इसलिए उसकी यांत्रिकता स्वयं उसे ही नहीं बल्कि उसके पूरे परिवार को भी अपनी चपेट में ले लेती है। क्योंकि वह असमंजसता, चिंता और तनावग्रस्त होती है उसका असर परिवार पर पड़ना स्वाभाविक है। उसकी सारी कोशिशें स्वयं की सफलता और समर्थता आदि में लगी हुई है। इस कारण उसका प्रभाव स्नेहमयी संबंधों पर भी पड़ रहा है। 'छिन्नमस्ता' में नरेन्द्र प्रिया से कहता है-"यही तो मैं पूछ रहा हूँ कि, तुम क्यों इतनी मशीनी होती जा रही हो? व्यक्तित्व में जरा भी रस नहीं। जरा-सा शरीर पर हाथ लगाओ तो ऐसे बिदकती हो मानो बिजली का करंट छू गया। एक दम फ्रिजिड ...... होपलेस।"[199]

स्त्री जीवन की यांत्रिक अवधारणा इतनी तीव्र हो रही है कि उसने अपने सहज और प्राकृतिक जीवन को भुला दिया है। वह एक असहज यांत्रिक जीवन जीने लगती है। अपने-अपने कोणार्क में कुनी का कहना है कि - "मन की बात! सोचती हूँ मेरे पास भी तो था मन ! अचानक कहाँ सो गया?देखे-अनदेखे सपनों की गंध से महकता था कभी। अब उस जगह एक खाली विचार क्यों रह गया था?मेरे सपने क्या हो गए थे? उस वक्त अपने ही ख्यालों को मैं नाक पर बैठी मक्खी-सा उड़ा देती थी। अपने बारे में सोचना जैसे सीधी राह चलते-चलते पगडंडियों में भटकना था।"[200]

'सहजा(तेलुगु उपन्यास) में शारदा का मन विकल होने लगा कि –"आज तक आस-पड़ोस वाले यही समझ रहे हैं कि मेरा परिवार सुखी परिवार है। मेरे आंतरिक संघर्ष को कोई नहीं जानते हैं। ऐसा जानने की बुद्धि या ज्ञान मेरी पढ़ाई मुझे क्यों नहीं

दी? इतना सब मालूम होते हुए भी मैं क्यों इस जिंदगी से लटक रही हूँ? मुझमें इस परिवार को छोड़ने का साहस क्यों नहीं आ रहा है?"[201]

"बच्चों का भविष्य क्या हो जाएगा? उनकी तकलीफों से डर है। सामाजिक धारणा से भी डर है। इन सभी विषयों से डर है। ये सब औरत को इस संसार में दफना देता है।"[202]

इसके बिल्कुल विपरीत है उषा सोने के पहले नाव में प्रसाद का गाना सुनते हुए सहजा की आँखों में प्यार एवं आत्मीयता प्रतिफलित होते हुए देखती है। समझने लगती है कि प्यार.... जिंदगी का अहं मुद्दा है। प्यार करना, प्यार पाना कितना अच्छा लगता है। सहजा की आँखों में चमक आने के लिए उसका हृदय कितना परवश हुआ होगा जिस व्यक्ति को पसंद किया, उस व्यक्ति के प्रति प्यार होना, दोनों मिलकर जीवन को सफल बनना, ... अद्भुत विषय है।

अपने-अपने कोणार्क में कुनी का कहना है कि - "पहली बार मुझे लगा कि मैं इस भरे-पूरे परिवार में उतनी जरूरी नहीं, जितनी मैं समझती आई थी या जितना माँ बाप ने मुझे बना दिया था। मेरे भीतर बवंडर उठने लगे। मैं इस घर की सुख शांति के लिए खटती रही हूँ।"[203]

"मेरा घर! यह है मेरा घर! इसमें उठे हर सवाल का जवाब मुझे देना है, हर शंका का समाधान मुझे करना है। और मेरी थकान टूटने का समाधान कौन करेगा। मेरे लीर-लीर होते विश्वासों को कौन समेट लेगा? यह अहसास बार-बार डंक मारने लगा। घर!किसका घर?"[204]

आर्थिक स्वतंत्र नारी अपनी कोमल भावनाओं को रौंदती अपने भविष्य निर्माण का स्वप्न देख रही है। उसका जीवन एक ही ढर्रे पर चलने के लिए विवश हो जाता है तो वह एकाकी, नीरस जीवन का शिकार होने लगती है। 'अपने-अपने कोणार्क' की कावेरी भी एक कामकाजी नारी है जो अपने पति के साथ रहना चाहती है पर नौकरी की जगह अलग-अलग होने से रह नहीं पाती है। कावेरी की मनोव्यथा इन शब्दों में

व्यक्त होती है –“शादी के बाद भी वह पति से अलग और अकेली रहने को मजबूर है। उसने मेरे सामने ही बातों के दौरान दिवाकर से कहा कि अकेली रहते-रहते वह ऊब गई है। दिवाकर भी पत्नी के साथ रहकर अपने घर-संसार का सुख देखना-भोगना चाहता होगा, फिलहाल इस मामले में कुछ कर नहीं पा रहा था।”[205]

पति-पत्नी साथ रहते हुए भी परस्पर समझ न होने के कारण सांसारिक सुख का सच्चा आनंद नहीं ले पा रहे हैं। इसका उदाहरण ‘सहजा’ (तेलुगु उपन्यास) में शारदा को उषा अपने पति शेषगिरी के बारे में बताती है कि -“शेषगिरी को मैं शादी में देखी थी। सुदंर, शिक्षित, अच्छी नौकरी, अच्छे संस्कार हैं और मेरी नौकरी करने पर कोई पाबंदी नहीं है। इसे मैंने अपना भाग्य माना। उसी को अपनी दुनिया बनाने की चाहत रखी थी। धीरे-धीरे उनकी कमजोरियों को समझने लगी। उनके और मेरे मूल्य एवं विचार में कोई ताल-मेल नहीं है। सब कुछ सह लिया।”[206]

यांत्रिक कामकाजी नारी के जीवन में एक खालीपन भरता जा रहा है। “लेकिन यह सच है कि एक लंबा रेगिस्तान-सा खालीपन मेरे भीतर भरता जा रहा था। दिन तो कॉलेज और घर की व्यवस्तताओं में निकल जाता पर रात तकिए पर सिर रखते ही, वह सुरसामुखी दैत्य-सा मुझे लीलने को लपकता। मेरी नींद जाने कहाँ उड़ गई थी। ढँक-ओढ़कर तकिए पर औंधे मुँह लेटती तो भी लगता खुले में सोई हूँ । हजारों आँखें मुझ पर चिपकी हुई हैं।”[207]

आज की मशीनी दौर की नारी अपने चकाचौंधपूर्ण भौतिक भविष्य की ओर बिना कोई विचार किये भागती चली जा रही हे। उसकी सब कुछ पा जाने की महत्वाकांक्षा ने जीवन के सुख चैन को छीन लिया है। वह कुछ समय सुस्ताने के लिए भी तैयार नहीं। वह इस कदर भाग रही है कि कुछ आराम के पलों की भी आवश्यकता अनुभूत नहीं करती। वह इस प्रकार के यांत्रिक जीवन को जीने के लिए बाध्य होती जा रही है।

इसी उपन्यास में प्रिया के यांत्रिक जीवन की व्यथा कुछ यूँ प्रकट होती है – “सुबह आँख खुलते ही मैं अपने से पूछती मुझे क्या करना चाहिए? रात को उठ-

उठकर बैठ जाती- अब मत रुला भगवान। अब बहुत हो चुका। अब मुझसे रोया नहीं जाता। एक रास्ता और भी सही, चुनाव तुम्हें करना होगा प्रिया...... तुम्हें अपनी मदद् खुद करनी होगी।"[208]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में दही बेचने वाली माणिक्याम्बा से पिता का झगड़ा हो रहा है। तो माँ कमलाम्बा बीच में आकर दस दिनों में बाकी रुपए चुकाने की बात बताकर उसे मना ली। जाते-जाते माणिक्याम्बा धीमी आवाज में कहने लगी कि –"एक की कमाई पर इस जिंदगी को कब तक खींच पाओगी?""मैं भी मेहनत करती हूँ। लेकिन तुम्हारी तकलीफ देखकर मेरा दिल पसीज जाता है। ऐसा निकम्मा पति किसलिए?"

अपनी दोहरी जिम्मेदारियों का बोझ उठाते-उठाते वह अपनी कोमलता को भूल चुकी है। समय-समय पर इस प्रकार की स्थिति उसे दु:ख से घेर लेती है। ऐसी स्थिति में वह छटपटा उठती है। 'अपने-अपने कोणार्क' में कुनी भी अपनी भावनाओं, उमंगों का गला घोंटकर अपनी सारी आय अपने परिवार की खुशियों हेतु खर्च करती है। परिवार की जिम्मेदारी ढोते-ढोते वह एक-कमाऊ मशीन भर बन कर रह जाती है। "इधर मति और भाइयों की शादी के बाद जैसे मैं सन्यासिनी हो गई थी, या बहुत बुजुर्ग।" अपने बारे में सोचना मैंने बिल्कुल ही छोड़ दिया था। लेकिन उस दिन सिद्धार्थ से मिलने के बाद यही मुझे कोंचती रही। "क्या मैं यों ही धूप में सूखते चमड़े-सी अकड़ जाऊँगी? मेरे चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ेगी, बालों में चाँदी के तार झाँकने लगेंगे और मैं घर के लिए खटते-खटते, एक बेचारी उम्रदराज बूढ़ी लड़की ही रह जाऊँगी, जिसकी झोली हमेशा खाली रहेगी।"[209]

परिवार द्वारा भी नारी का शोषण होता है। इसी अवस्था में उसे अपने कर्तव्य का आभास दिलाया जाता है। परन्तु इस बोझ के तले वह किस तरह रौंदी जाती है, इसका अहसास उसके अपने भी नहीं समझते। वह मात्र धन उपार्जन की एक मशीन बनकर रह जाती है। वह उपेक्षा और उपेक्षिता का भार ढोने के लिए विवश हो जाती है। 'अपने-अपने कोणार्क' में कुनी सोचती है - "मैंने जो कुछ भी ठीक समझा, किया था।

अपनों के लिए अपने को खर्च करते कभी सोचा ही नहीं कि एक दिन सब अपनी-अपनी दुनिया में रच-बसकर अलग-अलग हो जाएँगे। और मेरे लिए हताशा के सिवा कुछ भी अपना नहीं रहेगा?"[210]

'दिखता हुआ अतीत' (तेलुगु उपन्यास) में देवकी को वकील सत्यनारायण जी के पास टंकक की नौकरी मिली। देवकी को बड़ी खुशी होती है कि –"मेरी आमदनी घर के लिए बहुत मायना है। मुझे रोज तीन से पाँच रुपए तक मिलते थे। अब तो रात को भूखा रहने की नौबत नहीं है। एक सेर चावल खरीदने के रुपये मिल जाता था।"[211]

कुछ ही समय के अंतराल में उसका अकेलापन काटने को दौड़ता है। ऐसा जीवन झेलने की स्थिति में नहीं रह पाती?'कुनी'भी कुछ इस प्रकार की अनुभूतियों को झेलती हैकि-"तेरे अकेलेपन का साझीदार कौन है?तेरे बंद अहसासों में सीलन और सड़ाँध पैदा होने लगी है इन्हें खुली हवा और धूप की छुअन चाहिए। कितनी देर भीतर के कपाट बंद रह पाएगी तू?कोई दस्तक भी दे गया कभी, तो तूने कान बंद कर दिए। नहीं, यह सब मेरे लिए नहीं है। लेकिन अब? मेरे अंदर ढेर का रूदन इकट्ठा हो रहा था। दु:ख, निराशा, बेबसी और गुस्से का मिलाजुला अहसास! मैं कोई कंधा तलाशने लगी थी जिस पर सिर रखकर मैं अपने मन का बोझ हल्का कर सकती। मैंने घर परिवार की खुशी के लिए सभी निजी आकांक्षाएँ होम कर खुद को ऊँची जगह पर रखा था। पर वह जगह मुझे बीहड़ जंगल में एकाकी छोड़ गई।"[212]

एक ओर नारी को आर्थिक स्वतंत्रता एक ठोस आधार प्रदान करती है वहीं दूसरी ओर जीवन की सुंदर अनुभूतियों का आधार खोने लगती है। उसकी मर्मस्पर्शी अनुभूतियों से वह दूर होती जा रही है। 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा भी अपनी जिंदगी की छोटी-छोटी खुशियाँ, भावों पर से अपना नियंत्रण खो बैठती हैकी - "जीवन-शैली का बदलना एक स्तर पर भला लगता था। वह बहुत व्यस्त थी। इतने समय से आमतौर से उसे महीने में दूसरे इतवार की छुट्टी कैंसिल हुई थी। मन उखड़ा था सिरदर्द होने के कारण उसने कभी नखरा नहीं दिखाया था। मेरा मूड खराब होने की कीमत निर्माता

को हजारों रुपए के नुकसान से चुकानी होगी, सोचकर अपने पर नियंत्रण किया था। उनींदी होने से सिर भारी है, पर यूनिट के सौ सदस्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसने अपने आपको डाँटा।"[213]

अंतिम दशक के उपन्यासों में आधुनिक मशीन तुल्य नारी के जीवन को सार्थकता से प्रस्तुत किया गया है। इस मशीनी जीवन की करुण गाथा प्रत्येक वर्ग की नारी को झेलनी पड़ती है। इसका प्रतिबिंब आज के सामाजिक जीवन की असफल कड़ियों में देखा जा सकता है। परिवार टूटन भी नारी के इस रूप से प्रभावित है। आज का समाज जिस छोर पर खड़ा है वह छोर इस समस्या से आप्लावित है।

4.2.4 नारी देह - अर्थ संपादन का साधन

नारी और पुरुष का यौन आकर्षण ईश्वर प्रदत्त है। परन्तु इस प्राकृतिक आकर्षण को समाज ने नैतिक धरातल पर सीमित कर रखा है। सृष्टि को आगे बढ़ाने का यह एक माध्यम है पर इसकी पवित्रता को बनाये रखना होगा। यह तब तक वरदान सिद्ध हो सकता है जब पुरुष स्त्री को स्वयं के समान गौरव एवं महत्व प्रदान करे। लेकिन जब पुरुष इस महत्व का अतिक्रमण करता है तो यह अभिशाप बन जाता है। इस प्रकार यह नारी देह-शोषण के रूप में सामने आता है। इससे भयानक एवं वीभत्स कांड इस संसार में और कुछ नहीं हो सकता।

ईश्वर ने स्त्री शरीर को पुरुष की अपेक्षा कमज़ोर बनाया है। उसके पास पुरुष जैसा बाहुबल नहीं है। इसी कारण वह बाहरी संसार में ही नहीं कभी-कभी अपने घर की चारदीवारी में भी असहाय हो जाती है। भले ही वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गयी है, पर उसे इस समाज से जूझना पड़ता है। युगीन समय में 'नारी मुक्ति आंदोलन' की पुकार बुलंद है परन्तु कहाँ तक स्त्री उसकी सहायता प्राप्त कर रही है, आज भी यह विषय विवादास्पद है। आंदोलन तो बाह्य-समाज के लिए है परन्तु स्त्री घर के दुर्जनों का क्या करे? ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का कारण यौन कुंठा भी होता है। इसमें अश्लीलता का सबसे बड़ा रूप होता है। अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने महिलाओं के यौन शोषण को यथार्थवादी धरातल पर चित्रित किया है।

'आवां'उपन्यास में अन्ना साहब जहाँ एक ओर नमिता को नौकरी दिलाकर उसको अपनी काम कुंठा का शिकार बनाते हैं तो दूसरी ओर संजय कनोई उसे अच्छा भविष्य का लालच दिखाकर अपनी काम-कुंठा का शिकार बनाता है। भावनात्मक धोखा एवं सुखद भविष्य का झांसा देकर पुरुष अपनी यौन तृप्ति करता है।

श्रमिक नेता अन्ना साहब नमिता के पिता के दोस्त होते हुए भी कार्यालय में ही नमिता का यौन शोषण करते हैं। वे नमिता से कहते हैं –"तुम बस इतना भर करो। आओ मेरे जांघ पर आकर बैठ जाओ। अच्छा रहने दो जैसे बैठी हो वैसे ही बैठी रहो। अपने हाथ भर को मेरे नियंत्रण में दे दो वरना गलत दिशा में उत्तेजित करने की जिम्मेदारी तुम्हारी होगी।"[214]

वहीं संजय कनोई नमिता को अपनी वासना का शिकार बनाता है –"सांसे नहीं ले पा रही वह, दम घुट रहा, दम घुट गया तो......पुरुष बल और बकरी में कोई मुकाबला है?"[215]

'आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं' (तेलुगु उपन्यास) रागिणी मेघना से नौकरी के बारे में पूछती है तो मेघना का जवाब है कि –"लड़कियों को भोग वस्तु के रूप में देखने वाला मर्दों की दुनिया में नौकरी न कर पाकर मैंने नौकरी छोड़ दी। कोई मर्द घूरकर देखने लगता, कोई असभ्य बातें करने लगता, कोई पास आकर छूने की कोशिश करता है। इन मर्दों की विकृत चेष्टाओं से तंग आकर मुझे कई नौकरियाँ छोड़नी पड़ी थीं।"[216]

आज की नारी यौन शोषण की किस यंत्रणा से गुजर रही है इसको पूरी तरह रेखांकित करती ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं। 'आवां' में डॉक्टर के मुख से निकले शब्द हैं – "सौं में से प्रत्येक पाँच लड़कियाँ स्वतंत्र यौन संबंधों में अपना वजूद तलाश रही हैं। समता तलाश रही हैं, अधिकार तलाश रही हैं। तलाश लिया? पा लिया? चली आती हैं कहानियाँ लेकर।"[217]

आधुनिक युग में एक और नयी विचारधारा पनप रही है 'इच्छित यौन शोषण'। वास्तव में गंभीर रूप से विचार करने पर यह समझ में आता है कि व्यावसायिक पुरुषों के द्वारा ही अपनी काम वासना की भूख मिटाने का नया तरीका है।

'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) में चित्र लेखन के बहाने विजयेन्दर और कविता एक दूसरे के करीब होने लगते हैं। तोविजयेन्दरअपने बातों के जाल में कविता को फँसा लेता है।देखिए - कविताजी! उचित, अनुचित, अन्याय, अधिकार, अच्छा-बुरा आदि के बारे में सोचने के लिए मेरे पास समय नहीं है। जो मुझे पसंद आया उसे मैंने आपसे पूछा। सच कह रहा हूँ कविता जी, जबसे आपको देखा तब से, आपको गुस्सा आने पर भी आपके विवाहित मालूम होते हुए भी मेरा मन विचलित हो गया। चालीस की उम्र में, विवाहिता, दो बच्चों के बाप होते हुए आपको देखने के बाद कॉलेज के छात्र की तरहअपने को महसूस करने लगा। आपकी खूबसूरती के सामने गुलाम हो गया। आप ही बताइए इसमें मेरी क्यागलती है ? मेरा मनअपने काबू में नहीं रहे तो मैं क्या कर सकता हूँ?

विवश कर्मचारी महिला कभी-कभी अपने बॉस की यौन शोषण की शिकार हो जाती हैं। अपने हालातों की वजह से नारी के पास दूसरा रास्ता नहीं बचता। ऐसे मौकों पर पुरुष अपनीआदत के अनुसार बड़ी सफाई के साथ फायदा उठा लेता है। पुरुषों के लिए स्वेच्छाचार उसकी पारंपरिक सोच है। लेकिन स्त्री के लिए मजबूरी है। 'छिन्नमस्ता' के नरेन्द्र को यह आदत है कि वह हर महीने में हसीन सेक्रेटरी बदलता रहता है और उसकी भूख मिट जाती है।...... एक बार तो एक लड़की छः महीने के बदले डेढ़ साल टिक गई थी। अरे ! सच में वह नरेन्द्र के प्रेम में पागल थी। उसके गर्भ में नरेन्द्र की संतान थी। पर इस जालिम ने उसे भी निकाल दिया था।"[218]

'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) में कविता को देखते ही विजयेन्दर में नफरत बढ़ने लगी। वह कविता से पीछा छुड़ाना चाहता है। इसी सिलसिले में वह पूछता है कि –"तुम किस उम्मीद को लेकर इस घर में आयी हो? जीने के लिए तुम्हारे पास नौकरी है। पैसों के लिए ...? था तुम्हारे साथ अन्याय हुआ तो मेरे साथ भी वैसा

अन्याय होना समझकर बीबी, बच्चों से मुझे दूर करने के इरादे में हो? तुम्हें..... क्या चाहिए? पैसे चाहिए तो बताओ।जहाँ तक हो सके,उधार लेकर दे दूँगा। एकलाख, दो लाख कितना चाहिए.....?"[219]

निम्नवर्ग और गरीब औरतें तो इन परिस्थितियों का शिकार बनने को मजबूर हैं और बिल्कुल कम आवश्यकता की पूर्ति वह कर पाती हैं अर्थात् थोड़े से पैसों के लिए उसे ऐसा करना पड़ता है। 'इदन्नमम' में एक कथन है –"अरे, हमारी तो बेबसी है, ठेकेदार के यहाँ हमें पेट के वास्ते दिन में ही पत्थर तोड़ने परत, रात में देह भी......। हमें बिना रौंदे चींथे तुम्हारी बिरादरी के लोग पत्थरों से हाथ लगाने नहीं देते।"[220]

"जनी की जात मरद बिरोबर काम नहीं कर पाती सो सहद का छत्ता की तरह निचोरत है मालिक लोग......।"[221]

'कठगुलाब' में चौका-बासन कर पेट भरने वाली नर्मदा जब एक दिन काम पर नहीं जाती है तो मालकिन फटकारने लगती है –"ना, बच्चे का गू-मत चलेगा मेरे घर में। नौकरी करनी है, करो। छोड़नी है, छोड़ो। पर बच्चे को लटकाकर लाने की जरूरत नहीं है। और ये तुम लोग इतने ढेर बच्चे पैदा क्यों करते हो? तभी न, इतनी छोटी उमर में काम पर लगना पड़ता है। तेरी माँ भी बच्चा जनते-जनते मरी होगी। अब तू भी ......।"[222]

बुद्धजीवी कार्यशील महिला भी परिस्थिति की चपेट में आ जाती हैं चाहे वह कितनी ही सफल और सक्षम ही क्यों न हों, हाँ नारी होने का दंड तो उसे भुगतना ही पड़ता है। 'आवां' उपन्यास में सिद्धार्थ नमिता से कहता है –"देखो! पोर्टफोलियों मैं तुम्हारा तैयार करवा दूँगा। फीस की शक्ल भर बदल जाएगी। अन्यथा न लेना। मैं बेहद स्पष्टवादी, ईमानदार, पेशेवर रवैया का व्यक्ति हूँ। तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचाने में कोई कोर-कसर नहीं रखूँगा। लेकिन प्रत्येक अनुबंध में साठ प्रतिशत मेरा- चालीस तुम्हारा। पोर्टफोलियों बनाने की एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक संबंध बनाने होंगे।"[223]

कुछ स्त्रियाँ कभी-कभी अनायास बहकावे में बह जाती हैं। उसकी दिन भर की किच-किच और थकान मिटाने के लिए वह इस तकलीफ को स्वीकार कर लेती हैं। अन्ना साहब की बातों से पता चलता है कि मर्द कितनी होशियारी से नारी को अपनी वासना का शिकार बना लेता है - "देह मुझे नहीं भोगती भूले-भटके मैं स्वयं अपनी दैहिक और मानसिक थकान उतारने के लिए उसका उपयोग कर लेता हूँ और नई स्फूर्ति, नई ऊर्जा के साथ श्रमिक सेवा में संलग्न हो उठता हूँ.... इधर देखो, मेरी ओर, नमिता!"[224]

"मेरी खुरदरी उँगलियाँ तुम्हारी सूख रहे होठों को पपड़ियाता हुआ नहीं देख सकतीं। जवान फेरों अपने होठों पर। उन्हें तर करो। सूखने न दो।"[225]

कुल मिलाकर यह एक अटल सत्य है कि नारी किसी भी स्तर, ओहदा, कुल, वर्ग आदि की हो उसे तो किसी न किसी रूप में 'यौन शोषण' का शिकार बनना ही पड़ता है। 'अपने-अपने कोणार्क' के 'कुनी' एक रिसर्च स्कॉलर है परन्तु एक डॉक्टर से यौन शोषण का शिकार होते-होते बचती है। उसकी जुबान से मीठे शब्द झर रहे थे पर हाथ मेरे जिस्म के नरम हिस्से तलाश रहे थे। मेरे हडबड़ी में उठते भी उसने दोनों हाथों से मुझे भींच लिया।

"डॉक्टर ! मेरी आँखों में से आग बरसने लगी। "चिल्लाओ नहीं कुनी" ! मैं कोई भेड़िया नहीं हूँ जो खा जाऊँगा। आइ लाइक यू......।"

"डॉक्टर, मुझे जाने दो नहीं तो मैं शोर मचाऊँगी।"[226]

समाज में अविवाहित नारी को हमेशा संदिग्ध नज़रों से देखा जाता है। भले ही वह नारी कितनी ही सचेत एवं आत्मनिर्भर क्यों न हो?

'अपने-अपने कोणार्क' की कुनी अपने बारे में सोचती हैं –"मैं कुनी, तीस पार की कुँवारी लड़की, जिसके भरे-पूरे जिस्म पर भूखी ललचाई नज़रे कोई भी नायाब मौका छोड़ने को तैयार नहीं। किस-किस को शिकायत करती? दोष मेरी उम्र में इतना नहीं, जितना कुँवारी होने में था 'लोनली वुमेन'। कितनी बार सुना।"[227]

‘दिखता हुआ अतीत’ (तेलुगु उपन्यास)में माँ कमलाम्बा ने देवकी को कुटुम्बराव की दुकान पर जाकर चावल लाने के लिए कहती है –“मैं थैली लेकर उसके घर गयी। नागमणी जी को बुलायी। इतने में नागमणी जल्दी जल्दी आयी, इधर-उधर चारों ओर देखकर, थैली में पाँच किलो चावल दे दी और मुझे जल्दी घर से निकल जाने के लिए कहा।”[228]

इतने में कुटुम्बराव अंदर से आया और नागमणी पर गुस्सा दिखाते हुए पूछा कि –“उस लड़की को क्यों भेज दिया और दरवाजे बंद करके नागमणी को खूब पीटने लगा। खिड़की से देखा तो ‘नागमणी का बाल खींचते हुए पीठ पर जोर-जोर से पीटने लगा।’ मेरी समझ में आया कि –‘कुटुम्बराव मुझे कुछ करने को सोचा लेकिन नागमणी ने उसे मौका नहीं दिया। इसीलिए उसे पति की मार सहनी पड़ी थी।”

तीन दिन बाद नागमणी मंदिर में मिलकर मुझे बतायी थी कि –“ मेरे पति के रहते समय तुम मेरे घर पर मत आना। मैं तुमको बचा नहीं पाऊँगी। मेरी मौजूदगी के बावजूद वह कुछ भी कर सकता है।”[229]

जैसे-तैसे वह इस भूल-भुलैया में फँस ही जाती है लाख उसकी आत्म-निर्भरता की समाज दुहाई दे दे पर यही समाज और नारी की नियती का अटल-सत्य है। “उसी दोपहर की घटना है जिस रोज पांडेय जी अस्पताल में दाखिल हुए। किसी ग्राहक के संग अनीसा का झगड़ा हुआ। ग्राहक इच्छा विरुद्ध जोर-जबरदस्ती उससे संभोग करना चाह रहा था। पेट में उसके सात महीने का बच्चा था। दारू पिए ग्राहक ने अनीसा के राजी न होने पर उसके पेट में इतने जोर की लातें लगाई कि उसका गर्भ गिर गया। और बच्चा पेट से बाहर निकल आया।”[230]

कभी नारी विवश होकर कभी पुरुष की चालाकी से तो कभी अपनी मूर्खता से इस जघन्य अत्याचार का अवश्य शिकार हो जाती है। ‘आवां’ की नमिता भी इसी अनचाहे चक्रव्यूह में फंसकर शोषण का शिकार बनती है –“संजय कनोई के हाथों ने उसकी कमीज का ऊपरी बटन खोल वक्ष-संधि पर होंठ रख दिए।” न, न, मुझे रोको

नहीं, नमिता बहुत प्यासा हूँ मैं। अतृप्त। चिर अतृप्त...... प्रेम की अनंतता मुझे महसूस करने दो..... उतरने दो उन वीथियों में जिनकी चंदन गंध बेसुध किए दे रही।"[231]

'मरीचिका' (तेलुगु उपन्यास) मानसिक व्यथा को आज आपके सामने रख दिया। जोर-जबरदस्ती आपके साथ मिलन नहीं चाहता हूँ। मेरे जैसे ही आप भी मुझ पर आकर्षित हो तो ही इस मिलन में खुशी और आनंद होता है। अगर आपके मन में कहीं गलती की भावना हो तो इसे भूल जाइए। सच कहना है तो जिसे हम गलती मानते हैं, हमारे अंदर जकड़ी हुई भावनाएँ हैं। समाज के द्वारा आचार-व्यवहार, विधि-निषेध विश्रृंखल न होने के लिए खिंचे गये दायरे हैं। वैवाहिक व्यवस्था की सुरक्षा के लिए ये रोक-थाम है। इससे मात्र अपनी वैवाहिकव्यवस्था बिगड़ जाएगी? नहीं न! मेरे अनुसार शारीरिक तौर से ज्यादा मानसिक तौर पर करने वाले काम ही गलत है। वैसा माने तो हम दोनों से मानसिक तौर से गलती हो ही गई न! हम दोनों परस्पर आकर्षित हुए न !

जब हम मानसिक तौर से करीब हुए तो उस सुखानुभूति को शारीरिक तौर पर प्राप्त करने में गलती क्या है?

'छिन्नमस्ता' में नरेन्द्र द्वारा यौन शोषण का शिकार उसकी सेक्रेटरी बनती है और वह गर्भवती हो जाती है। नरेन्द्र उससे अपना पीछा छुड़ाना चाहता है और पूछता है कि –"अरे भूल जाओ इन कसमों-वादों को!बोलो कितने रुपया लेकर जान छोड़ोगी?"[232]

पुरुष नारी को इस्तेमाल करके कूड़ेदान की तरह फेंक देता है। यह प्रथा सदियों से चली आ रही है।वह आज भी चल रही है। आधुनिक लड़की के पढ़ी-लिखी स्वावलंबी, आत्मनिर्भर होते हुए भी स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया।

अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आर्थिक स्वतंत्र नारी का रूप प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में नौकरीपेशा स्त्री की दोहरी भूमिका प्रस्तुत होती है। इन उपन्यासों में नारी का बाह्य-अभ्यंतर स्वरूप रोचक और यथार्थ रूप से उकेरा गया है। उसकी विडंबना, असमंजसता, त्रासदी, दोहरी परिस्थितियाँ आदि पहलुओं

पर सूक्ष्म निरीक्षणात्मक वर्णन किया गया है। नारी को केवल आर्थिक स्वतंत्र होने मात्र से काम नहीं बन जाता वरन् उसे यौन शोषण की जाल से बचने की समझदारी एवं सूझ-बूझ को बढ़ाना है।

4.3 बीसवीं सदी केअंतिम दशक के हिन्दी–तेलुगु उपन्यासों में नारी कीराजनीतिक चेतना

राजनीतिक अराजकता ने ही देश को गुलामी करने के लिए मजबूर कर दिया था। भारत की उदासीन शासन व्यवस्था ने ही विदेशियों को आमंत्रण दिया था। वो राजनीतिक स्वार्थ ही था जिसका खामियाज़ा आज तक हमारा देश उठा रहा है। तत्कालीन समय में भारतीय जनता भगवान के भरोसे जीवन-यापन कर रही थी। आज की स्थिति भी कुछ वैसी ही है। उसका विचार है कि - जो कुछ घट रहा है वह तो नियति के आधार पर ही होगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।

सामान्य रूप से तो झूठ-फरेब से शक्ति का अपहरण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में दण्डनीय है। यहाँ पर सहनशक्ति, सहनशीलता, मानवता, परोपकार जैसे भारी-भरकम विचारों पर अमल करने की शिक्षा दी जाती है। ऐसे व्यक्ति प्रशंसा के पात्र भी होते हैं। परन्तु इन उपर्युक्त महान गुणों को वह कब तक संजो कर रखता, लगातार विदेशी आक्रमण, आक्रमण ही नहीं आर्थिक लूटपाट, स्त्रियों की लूटपाट आदि सभी को सहन करता। आखिर कब तक वह संयम रख पाता? अंत में स्वतंत्रता संग्राम ने हमारी आत्मा को झकझोर कर रख दिया। इस प्रकार उनकी दृष्टि राजनीति की ओर रूख करने लगी। पहले तो हम यह सोचते थे कि राजनीति एक बुरा क्षेत्र है। इसमें मनुष्य का मानवीय गुण समाप्त हो जाता है। मनुष्य में प्रेम जैसी मधुर भावना कुंठित होने लगती है। 'इदन्नमम' उपन्यास में पुष्पा बऊ कहती है कि – "चुनाव नहीं होने गाँव में । कहते हैं आज़ादी का जख्म हमने अपनी आँखों से देखा। हे भइयो इस आजादी को संजोकर, सुरक्षित रखो, संभाले रहो। गुलामी बड़ी पीड़ाओं और कठिनाइयों के बाद पायी है। ..... निर्विवाद चुनाव के पक्ष में रहते है सदा। उनका मत है कि वोटों के कारण पार्टी नहीं होती गाँव में। बस्ती का विभाजन होता है।"[233]

4.3.1 राजनीतिक नेताओं की भोग-विलासी प्रवृत्ति

'इदन्नमम' उपन्यास में नेताओं के स्वभाव को बड़ी बारीकी से उजागर किया गया है। इनकी भोग-विलासी प्रवृत्ति ने धीरे-धीरे अपने पैर पसारने प्रारम्भ कर दिये। इनकी स्वार्थ भावना लगातार बढ़ती गयी। इनकी रग-रग में कपट की भावना घर करने लगी। जनता से लूटपाट, जनता का शोषण आदि इनकी आदत-सी बन गयी। और पाने की इच्छा ने इन्हें अंधा बना दिया। इन नेताओं ने यह भी नहीं सोचा कि उनके विश्वास पर जनता टिकी हुई है, वह उनसे घोर आशा लिये हुए है। समाज, देश और व्यक्ति की सेवा के नाम पर उन्हें लूटा जाने लगा। वोट माँगते समय ये लोग जनता से कई वादे करते है परन्तु जैसे ही जनता ने विश्वास के साथ इन्हें राजनीतिक सत्ता की कुर्सी सौंप दी, ये ऐसी करवट लेते है कि हम उन्हें पहचान भी नहीं पाते। ये अपने वादों से ऐसा मुकर जाते हैं कि जनता को अपने कानों से सुने गये वादे झूठे लगने लगते हैं।

आजकल का समकालीन नेता अपनी झूठी मान-मर्यादा, शानो-शौकन आदि को बचाने के लिए इतना तत्पर है कि, इसके रास्ते में जो भी आता है उसे मारडालने से भी पीछे नहीं हटता।

'इदन्नमम' में लेखिका पुष्पा जी कहती हैं कि –"वे लोग जीभ-जुबान से लोक सभा, विधान सभा में भी लड़ते हैं। स्याही कलम से अखबारों में और करम आचरण से हमारे और औरों के बीच मचवाते हैं महाभारत। इन्ही सबकी भरपाई कर रहे हैं हम लोग कुपरिणाम भोग रहें हैं।"[234]

यह स्पष्ट हो जाता है कि सहभाव और स्नेह के रहते गंदी राजनीति की कलुषित भावना अपना स्थान नहीं बना सकती। परन्तु आधुनिक युग में यह निस्वार्थ भावना अपना दम तोड़ती दिखाई दे रही है। "वोट देने की बात तो भइया ऐसी ही हुई जैसे कड़वी ककड़ी को पेट में रखे हैं। चुनाव के दिन मोहन ठोंक के कागज़ घोंपि आए मतपेटिका में। कर दिया पीठ पर वार। काढ़ लिया बदला।"[235]

ऐसे राजनेताओं का रंग ऐसे बिगड़ गया कि छल-कपट, मारकाट, धोखाधड़ी के बिना वे साँस ही नहीं ले पाते। ऐसा ना करें तो उनकी रातों की नींद हराम हो जाती

है। वे लगातार समाज के नाम पर अपनी ही आत्मा को धोखा दे रहे हैं। भोली भाली जनता का शोषण कर रहे है। छलावा तो जैसे उनके जीवन और आत्मा का एक अभिन्न अंग बन कर रह गया है।

4.3.2 नारी की राजनीति के प्रति जागरूकता

ये नेतागण हमेशा विधान सभा और लोक सभा में जनता की दुहाई देकर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उनकी जुबान से ऐसे लगता है कि ये बिचारे तो समाज और जनता के उद्धार के लिये ही जीते-मरते हैं। स्वयं का उन्हें कोई ख्याल ही नहीं है। परन्तु वास्तव में यही वे पाखंडी नेता है जो समाचारों के माध्यम से जनता के बीच आपस में दुराव लाने का सफल कार्य करते है। जनता इन्हीं के आग लगाने के कारण कभी, धर्म के नाम पर, कभी सांप्रदायिकता के नाम पर, तो कभी जाति के नाम पर आपस में बिना कारण टकराती रहती है।

अब ऐसा समय आ गया है कि कोई भलामानुस यदि परोपकारी का काम भी करता है तो हम उसे संदेह की दृष्टि से देखते है। क्योंकि नेता लोग इनपर झूठे इल्ज़ाम झूठे प्रमाण के आधार पर लगा देते है। प्रस्तुत उपन्यास 'इदन्नमम' में उपन्यासकार के शब्दों में –"अब हर निस्वार्थ व ईमानदारी से किये जाने वाले कार्य को शक की निगाह से देखा जाने लगा। हर छोटी सी छोटी बात को राजनैतिक रंग दिया जा रहा है।"[236]इस संदर्भ के आधार पर कहा जाता है कि प्रत्येक छोटी-से-छोटी या बड़ी-से-बड़ी बात को राजनीतिक मुखौटा पहना दिया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास 'इदन्नमम' के माध्यम से लेखिका मैत्रेयी पुष्पा जनता को अपनी उदासीनता छोड़कर जागरुक होने का संदेश देती है। सारा देश एक साथ होकर इन शोषकों का सामना करें। उन्हें अपने निजी स्वार्थ आपसी भेदभाव भुला कर ऐसा करना चाहिए तभी जाकर वे अपने उद्देश्य में सफल होंगे। अपनी मूल जरूरतों और समाज की सुख-शांति के लिए उन्हें अपनी राजनीतिक व्यवस्था को सुदृढ़ और पवित्र बनाना ही होगा। जनहितकारी लोगों को यह भी ध्यान रखना होगा कि देश की भलाई की दुहाई देते-देते स्वयं ही लोभी न बन जायें क्योंकि धन का आकर्षण बड़ा ही शक्तिशाली होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक मंत्री बऊ से वादा करते हैं कि वे उनके बेटे के अस्पताल में डाक्टर जरूर लायेंगे। लेकिन जैसे ही उन्हें अपनी कुर्सी प्राप्त हो जाती है, वे इस प्रकार गायब होते हैं जैसे चील के घोंसले से माँस का टुकड़ा। यहाँ तक कि वे कभी वापस लौटकर गाँव तक नहीं आते। अत: कहा जा सकता है कि राजनीति स्वार्थपूर्ति का एक अखाड़ा बन कर रह गयी है। जो जितना अधिक स्वार्थी होगा वह अपनी कुर्सी संभाले रख सकता है, और उसी की जीत होती चली जायेगी। ये सफेद पोश नेता सरलता का झूठा रूप धारण कर फरेब का ताँडव करते हैं। जनता इनके पर्दे के पीछे छिपे वास्तविक व्यक्तित्व को पहचान ही नहीं पाती। इनकी ज़बान तो ऐसे होती है जैसे मिश्री की ढली। वे हमेशा अपनी पत्नी, बच्चे, नात-रिश्तेदार और करीबियों के लिए जनता को लूटने से नहीं चूकते। इनके लिए सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रीति नाम का कोई शब्द ही नहीं होता। वे इन रीतियों का बड़ी सफाई के साथ दूसरों की आँखों में धूल झोंककर लाभ उठाते हैं। इस प्रकार ये अपनी कई भावी पीढ़ियों के लिए जमापूँजी को छुपा कर रखते हैं, जिसका कोई टैक्स भरण भी नहीं होता।

नेता इतने चतुर होते हैं कि जब तक जनता उनका एक घोटाला समझने में लगी रहती है तब तक वे और चार घोटालों का ताना-बाना बुन चुके होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि –“वे जनता से हमेशा चार कदम आगे ही रहते हैं। उन्हें पकड़ना इतना आसान नहीं। इस ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि सत्ता में आसीन सरकार ही नहीं बल्कि विपक्षी दल के नेता भी कुछ कम नहीं होते। दोनों ही एक ही चट्टे-बट्टे के हैं।”[237] अत: यह सवाल उठता है कि जनता किस-किस से बचे। आखिर वह किस पर विश्वास करे।

देश पर प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक या आर्थिक चाहे किसी भी प्रकार का संकट हो वह पहले से भाँप कर उसके निवारण का प्रयत्न ही नहीं करती। जब पानी सिर पर से निकल जाता है तो दो सांत्वना भरे भारी-भरकम डॉयलॉग बोल देती है।

'कलि-कथावाया बाइपास' में अलका द्वितीय विश्व युद्ध के समय आये संकट का बखान करती है। युद्ध की विभीषिका के कारण लोग भूखों मर रहे थे और एक साथ ढेर सारे लोगों को जलाया जा रहा था। तब सरकार दो-टूक कह देती है कि –"बंगाल में सूखे की स्थिति है तथा हर संभव प्रयास किये जा रहे हैं, सूखे से निपटने के लिए।"[238]

किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था निर्धन और मध्यम वर्ग को सहारा देने का प्रयास करती है। सरकार को हमेशा इन वर्गों की सहायता करते रहना चाहिए। परन्तु सरकार इसके विपरीत धनिक और उच्च वर्ग के भरे हुए पेट को और भी भरना चाहती है क्योंकि वह स्वयं भी इन्हीं वर्गों के अन्तर्गत आती है।

अन्न जो कि मनुष्य की मूल आवश्यकता है, जिसपर भी सरकार टैक्स का बोझ डालना नहीं भूलती और लगातार दाल, रोटी, चावल आदि के मूल्यों में बढ़ोतरी करती रहती है। इससे धनिक वर्ग को तो कोई अंतर नहीं पड़ता परन्तु ग़रीब भूखों मरने के लिए मजबूर हो जाता है। अतः गरीब तो और भी गरीब होता चला जाता है। यही कारण है कि गाँव की गरीब जनता और कृषक शहरों की ओर भागने लगे हैं। भारत ग्रामीण देश होने के गर्व के साथ दावा करता है लेकिन लगता है यह दावा अब केवल कोरा दावा ही बन कर रह जाएगा।

4.3.3 महिलाओं का समकालीन राजनीतिक भ्रष्टाचार के प्रति सजगता

आजकल भ्रष्टाचार की समस्या भी अपना विशाल और असीम मुँह खोले खड़ी है। अब इन नेताओं और सरकार की नीतियों के करण ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहाँ भ्रष्टाचार का नासूर ना पनप रहा है। आज अस्पताल भी इसका शिकार हो गये हैं। इसका प्रमुख कारण है शहरों में जनसंख्या की बेशुमार वृद्धि।

समकालीन राजनीति इतनी जटिल हो गई है कि बुद्धिजीवी वर्ग भी इसे समझ नहीं पाता। अब आम जनता के बारे में क्या कहें? आजकल के नेता जनता को अपने दाँव-पेंचों में फँसा कर उसे जिस कदर खोखला बना रहे हैं, कि उसका एक उदाहरण 'इदन्नमम' उपन्यास में देखा जा सकता है। दादा बऊ से कहते है- "राजकाज की भाषा समझना हमारे बस की नहीं है। मातौन। काहे से कि जब तक हम एक बात

समझ पाए, तब तक तो हमारे नेता लोग चार पहेलियाँ और धर देते हैं हमारे सामने। वह भी ऐसे, जैसे कुनैन को शक्कर में लपेट दिया हो। सरकार और विपक्षी दलों को गोरखधंधा मछेरे का जाल सा फैल है। कहाँ-कहाँ तक बचे आदमी।"[239]

'कलि-कथा:वाया बाइपास'अलका सरावगी द्वारा लिखित उपन्यास में राजनीतिक सत्ता के इस अखाड़े का ऐतिहासिक संदर्भ पंडित जी अमोलक से कहते हैं –"सारे अंग्रेजों के पिट्टू और दलाल गाँधी टोपी पहनकर कांग्रेस में घुस आए हैं। नेहरू ने सारे अफसर भी ज्यों का त्यों रख लिए हैं।"[240]

उपन्यास 'आवां' में चित्रा मुद्‌गल ने भी इन सत्ता लोलुप राजनीतिज्ञों का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि–"राजनीति और मजदूर संगठन में जो भी प्रवेश करता है नेता बनने के लिए - कार्यकर्ता बनने के लिए नहीं, जहाँ नेता ही नेता संगठित होंगे, निश्चय ही वे एक दूसरे की छाती पर पाँव देकर उखाड़ने पछाड़ने की प्रतिघाती राजनीति करेंगे। अन्ना साहब इन सबसे अलग प्रतिमान हैं।"[241]

इस आधार पर कहा जाता है कि समकालीन राजनीति प्राचीन साँप-सीढ़ी के खेल के समान दर्शित होती है।

राजनीतिज्ञ एक ओर जन-कल्याण की दुहाई देते हैं और दूसरी ओर उसी जन के पैरों तले की जमीन ही खिसका लेते हैं। नेताओं के सत्ता के गलियारे में शोषण और धोखे का खेल खेला जाता है। ये खेल सारे देश की जनता को ग्रसित करता जाता है।

धन के लालच में ये नेता अमानुषता की सारी हदें पार करते दिखाई दे रहे है। अपने लालच के आगे इन्हें इन्सान का जीवन शून्य के बराबर लगता है। अपने परिवार के प्रति कर्तव्य, अपने धर्म के प्रति निष्ठा, मानवता के प्रति दया, इन सारी भावनाओं से जैसे इनका कोई सरोकार नहीं। वह अपने पारिवारिक सदस्यों को भी नहीं बख्शता है। इन सभी कारणों से आधुनिक मानव में कुँठा बढ़ रही है और इसी कुंठा के कारण अपराधों की संख्या बढ़ रही है। 'इदन्नमम' उपन्यास में इसका उदाहरण दिखाई देता है, जब गोविंद सिंग धोखे से जमीन के दस्तावेजों पर मंदा के हस्ताक्षर करा लेता है।

इस प्रकार वह मंदा की निरक्षरता और विश्वास का लाभ उठाता है। इससे पहले वह बऊ और मंदा को अपने साथ रखने के लिए भी तैयार नहीं होता परन्तु जमीन के लालच में वह मंदा की शादी अपने बेटे से करने की सोचता है।

'जंगल की पुत्री'(तेलुगु उपन्यास) में भी इस राजनीति का एक नया मुखौटा दृष्टिगोचर होता है। संघ के नाम पर फॉरेस्ट अफसर किसी प्रकार अपना उल्लू सीधा करता है। और एक अफसर अपने रिटायरमेंट से लेकर ठेकेदारों के कामों तक मजूरी बढ़ाने के लिए आंदोलन का सहारा लेता है। इस प्रकार निर्धन दुकानदारों की जर-जर होती परिस्थिति के लिए जद्दोजेहद करना पड़ता था। संघ ने महिलाओं की मजदूरी दर को बढ़ाने का भी कार्य किया। अनेक समस्याओं को संघ ने अपने अधीन करके सुलझाया। पंचायती समस्याएँ आदि। संघ के आदेश पर अकाल पीड़ितों को, जमींदारों, ठेकेदारों और समाज के धनिक वर्गों से सौ-सौ कुन्तल अनाज के बीजों को गरीबों में वितरित करवाया।

4.3.4 नारी : राजनीतिक अपराधीकरण की शिकार

'आवां' उपन्यास चित्रा मुद्‌गल द्वारा लिखित, राजनीतिक अपराधीकरण की सशक्त रचना है। इसमें नमिता के पिता देवीशंकर मजदूरों के नेता है। दयाशंकर मिल मालिक के विरोध में मिल के गेट के सामने आमरण अनशन करते है। मजदूरों को इस अनशन से सहायता मिल जाने के भय से मिल मालिक कुछ गुंडों द्वारा दयाशंकर पर जानलेवा हमला करवा देते हैं। इस संदर्भ में नमिता अपने पिता के संबंध में निम्न बात कहती है –"बाबूजी को क्या पता था कि उनके पीछे वहाँ कौन घात लगाए बैठा हुआ है। वापसी में वे जंगल से बाहर भी नहीं निकल पाए थे कि उनकी घात में बैठे हत्यारों ने पीठ पीछे छुरे से उन पर कई प्राण घातक वार किए।"[242]

परन्तु आज ऐसी वारदातें सामान्य सी हो गयी हैं। आये दिन सारे देश में ऐसी कई वारदातें सुनी और देखी जाती है। तत्पश्चात् इसकी न्यायिक कार्यवाही का भी कुछ पता ही नहीं चलता। इस प्रकार का अपराधीकरण मजदूर संघ के बीच चलने वाली राजनीतिक उठा-पटक के कारण प्रकाश में आता है। प्रस्तुत उपन्यास में

राजनीति के अपराधीकरण का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इस क्षेत्र में उपन्यासकार लेखिका चित्रा मुद्‌गल ने बड़ी ही सूक्ष्म और दूरदृष्टि डाली है। राजनीतिक दुनिया के विभिन्न कलुषित पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किया गया है।

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में राजनेताओं द्वारा चुनाव के पहले किये जाने वाले प्रचार का यथार्थपूर्ण वर्णन किया गया है। जब वोट हासिल करने के लिए वे गाँव-गाँव का भ्रमण करके झूठे वादे करते हैं इसका वर्णन बड़े ही सशक्त ढंग से किया गया है। "हम नादान लोग धोखेबाजी की बातों में विश्वास कर आने वाले कल की जिंदगी मेंपरिवर्तन की आशा करते हुए मतदान करते थे। झूठे वादों से वोटों की भीख माँगते थे। वादे निभाने कभी उनके आने की उम्मीद करते थे। लेकिन इन गरीब लोगों के माथे पर निराशा ही लिखी रही।"[243]

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में पद्मा के पिता आज़ादी के समय की और इंदिरागाँधी शासनकाल के समय की एमरजेन्सी का आँखों देखा हाल सुनाता है कि – "1975 के समय में हमारी जिंदगियाँ उथल-पुथल हो गई। पता नहीं कि मैं पैदा हुआ था नहीं। लूटमार-दमन जहाँ होते हैं वहाँ पर आंदोलन और लड़ाइयाँ होती थीं। इस खून के बहाने में शोषित वर्ग फायदा उठाता था। तब तक हमारे जंगल में नक्सलवादी आ पहुँचे। इंदिरागाँधी के आपातकालीन समय की घोषणा के साथ जनता और पार्टी पर दमनकांड शुरू हुआ। हजारों नादान कर्मचारियों पर झूठे बयान बनवाकर उन्हें मार दिये थे।"[244]

राजनीतिक जाल के फाँस से कानून व्यवस्था भी अछूती नहीं रह सकी है। राजनीतिक मैदान की आपसी होड़, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनाओं के कारण एक दूसरे पर झूठे मुकदमें चलना, यह एक सामान्य-सी बात बन गई है।

'इदन्नमम' उपन्यास में गाँव के जीवन में लोगों द्वारा छोटी-छोटी बातों पर मुकदमें दायर करना एक आम बात हो गयी है। असमय विधवा बनी बहू प्रेमा, बेटी मंदा की प्राप्ति के लिए बऊ के विरोध में नेता रतनसिंह यादव के उकसाये में आकर झाँसी की अदालत में शिकायत दर्ज करती है। तब बऊ चीफ साहब से कहती है –

“चीफ तुम फिकीर जिन करो। लड़ने दो उन कंजरी को।”“जब तक इन काया में पिरान है, लड़ेंगे हम भी। पूरी जिंदगानी हमने लड़ाई लड़ी है, हँसी खेल नहीं जमींदारिन बने रहना। वैसा ही रोब-रुतबा रखना।”[245]

मंदा गाँव के मजदूरों में चेतना को जागृत करने की कोशिशकरती है। अब उसकीआँखों में नींद के बदले क्रेशर के मालिकों की महान शक्ति के विरोध का सामना करने के विभिन्न उपाय खोजती रहती है। वह मन ही मनमें संकल्प करती है कि अब चाहे आँधी आये या तूफान वह रुकेगी नहीं। उसके मन को वह वज्र के समान कठोर और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अडिग बनायेगी। इसी सिलसिले में वह गाँव के लोगों को आगाह करती हुई कहती है –“प्रधान काका आप, रामरतन कोरी, रामदास कक्का, मगन दरजी, पिरभू नाई, राम परसाद कक्का और वे सब जिनके खेत गये हैं और वे भी जिनके खेत नहीं गये, सब चलो पहाड़ की ओर।”[246]

जागो रे जागो ! चेतो रे चेतो, छोटे-बड़े, नन्हें-मुन्ने, बूढ़े-पुराने, नये जवानों के अलावा ढोर-चोंप, पेरना-पंछी, नदी-ताल, पेड़-रूख, हवा-पानी यहाँ तक कि दसों दिशाओं को जागना होगा। बचने-बचाने को जूझना होगा। अमीर-गरीब, शत्रु-मित्र सबको शामिल होना होगा इस यज्ञ में। समय पड़े तो समिधा-सामग्री बनना होगा। बात होम की है। बात आंदोलन की है।”

“कतारें बाँध लो गाँव से पहाड़ तक।”[247]

‘जंगल की पुत्री’(तेलुगु उपन्यास) में दल ने पद्मा को पंद्रह दिनों के लिए पान के पत्तों की दर बढ़ाने के प्रचार का काम सौंपा। वह गाँव वालों को ठेकेदारों की चाल समझाने लगी। “कहीं-कहीं ठेकेदार दर का निर्णय करने के लिए हमें आमंत्रित करते थे। कहीं-कहीं हम ही लोग पत्तों के दर निर्णय करते थे। एक जमाना था कि ये ठेकेदार हमें शासित करते थे। उनकी मनमानी और अपराधों को चुपचाप सहते हम अपने रास्ते पर चल देते थे। कितनी विचित्र बात है न ! आज हम लोग इन ठेकेदारों का सर झुकाकर दर का निर्णय कर रहे हैं। हम धोखे पर सवाल कर रहे हैं?यह सच

है या सपना ?क्या सचमुच राड़िकल दल की इतनी ताकत है। हमें राडिकल की तरह जीना है। चंद दिन ही सही हमें जनता के लिए जीना है।"[248]

4.3.5 स्वार्थपूर्ण राजनीति की शिकार नारी

स्वतंत्रता के पश्चात की चुनावी राजनीति ने गाँवों को भी नहीं छोड़ा। इसने ग्राम की सामूहिक जीवन की सामान्य व्यवस्था को विकृत करना प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन ग्रामीण आत्मा विलीन होती गई। उनकी सुदृढ़ एकता टूटने लगी।उनमें भी आपसी दरारे पड़ने लगी। राजनीतिक गुटबंदी के ग्रामवासी भी शिकार होने लगे। अब गाँव में एक दल, एक नेता, एक पंच आदि का बोलबाला समाप्त हो गया। अब ग्राम में भी कई राजनीतिक दल पनपने लगे। चुनावी राजनीति के ही परिणाम-स्वरूप ग्रामवासियों की सद्भावना और भाई-चारे की भावना विलीन होने लगी।

शहरों की तरह ही ग्रामीण राजनीति भी अमानवीयता के कगार पर खड़ी है। यहाँ भी नेता और लोग अपने-अपने स्वार्थ के पीछे-पीछे भागने लगे हैं।

उपन्यास 'इदन्नमम' में भी 1994 के चुनावी राजनीति के दर्शन होते हैं। परन्तु ऐसे वातावरण में भी श्यामली गाँव के चुनाव निर्विरोध रूप से संपन्न होते है। इस गाँव में चुनावी राजनीति का ऊँच-नीच दर्शित नहीं होते। दादा पंचमसिंह इस बात का बड़ी बारीकी से ध्यान रखते हैं कि उनके गाँव में चुनावों के कारण अशांति और असंतोष न उत्पन्न हो। गाँव की एकता में किसी प्रकार की खंडितता न आने पाये। चुनाव की आड़ में जाति-पाति के भेदभाव न पनपे।

चुनाव की तारीख घोषित होने पर नेता चुनाव क्षेत्रों में दौरा कर मतदाताओं का अंकन करना प्रारम्भ करते हैं। आज ऐसे भी प्रतिनिधि उभर रहे हैं जो ग्राम का विकास न होने पर नेता पर प्रश्नों की बौछार कर देते हैं। दोषी उम्मीदवार जिसने अपने वादे पूरे न किये हों उन्हें वोट नहीं दिया जाता। अतः प्रस्तुत उपन्यास के राजा साहब का भी यही हाल है। इसीलिए वे चुनावी प्रचार के लिए दिन-रात एक कर देते हैं। वे स्वयं चुनावी क्षेत्र का दौरा करके, नये वायदे से ग्रामीण जनता को लुभाने का संपूर्ण प्रयास करते हैं। इसी दौरान वे कोयले वाले महाराज से मिलने सोनपुरा गाँव

आते हैं। इस पर सोनपुरा गाँव के लोग उनकी आलोचना करते हैं। ग्रामीण जनता राजनीतिक विषय में अज्ञानी नहीं हैऔर भावी चुनावों में उन्हें वोट न देने की सूचना दे देते हैं। गाँव के लोग एकजुट होकर राजा साहब से कहते हैं –"हम वोट नहीं देंगे। चुनाव का बहिष्कार करेंगे।"[249]

सभी आसपास के छोटे बड़े गाँवों की यही मंशा होती है कि–"हम वोट नहीं देंगे। चुनाव का बहिष्कार करेंगे।"[250]

अब वे अपने प्रतिनिधि को आड़े हाथ लेते हैं और सवाल करते हैं। इस बदलते जागरुक ग्रामीण जनता की क्रांति को देखकर राजनीतिक दल के नेता या फिर दलाल प्रत्येक मतदाता को रुपये देकर वोट माँगने का प्रयास करते हैं। इस पर अठारह वर्ष की मंदा हँसकर राजा साहब से कहती है –"पेटी खाली ले जानी पड़ेगी, एक भी वोट नहीं पड़ेगा।"[251]मंदा की इस बात को सुनकर राजा साहब के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। वे चकित होकर कहते हैं –"कमाल है। गाँव-गाँव नेता होते जा रहे हैं लोग, मतदाताओं में जागृति हो चुकी है। अठारह वर्ष के मतदाता आज जागरूक होते हैं अपने अधिकारों के प्रति चुनाव के दिन लोग नेताओं को कसौटी पर लगा देते हैं।"[252]

प्रस्तुत संदर्भ में ग्रामीण मतदाताओं में जागृति की भावना दिखाई देती है। इसमें राजनीति के खेल का और एक कड़वा सच सामने आता है कि राजनीतिक दलालों के माध्यम से वोटों की बिक्री भी संभव है। इस संदर्भ से समय की माँग के दर्शन भी होते हैं और यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में राजनीतिक चुनाव की यह बीभत्सता नष्ट होगी।

प्रस्तुत उपन्यास में मजदूरों का शोषण, उनकी स्त्रियों को बेचना आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। इन सबके पीछे राजनीति का षडयंत्र ही कार्य कर रहा है। अत: उपन्यासकार के शब्दों में - "अभिलाख तो सोच रहे थे कि राऊतों को फूँक दें। न बाँस रहे, न बाँसुरी बजे, लेकन यह तो उलटा निकला। बाँस भी रहा और बाँसुरी भी बजी।"[253]

उपन्यास में शोषित ग्रामीण किसान की जर्जर अवस्था पर टिप्पणी की गयी है, अतः प्रस्तुत संदर्भ दृष्टव्य है –"मंदाकिनी के भीतर भरा मलाल बाहर फूटने लगा और कहने लगती है कि - कैसेजियें महाराज?किसे सँवारें?किसे गढ़े? दरार पड़ी अकाल की मिट्टी को नहीं गाड़ा जा सकता। नहीं सँवारा जा सकता। हमारी तरह क्रैशर की हदबंदी में आये किसान लोग अब मजदूर भी नहीं रहे। कंगाल और मुँह देखते हुए बैठे हैं। हमें मोह नहीं था जर जमीन का, लेकिन अन्याय नहीं सहा जाता। कोई हमें कौड़ियों में ठग ले जाय, यह नहीं देखा जाता। बाहरी आदमी हमारी जमीन से पैसा खोद रहा है। हमारे पहाड़ की चट्टानों से धन काट रहा है और मूल लोग मजदूरी को भी तरस रहे हैं।"[254]

प्रस्तुत उपन्यास में ठेकेदारों की अमानुषिकता के विरोध में ग्रामीण मजदूरों में चेतना जागृत हो उठती है और वे एकस्वर हो उठते हैं। अतः इसी चेतना शक्ति का मंदा के शब्दों में निम्न संदर्भ में बखान किया गया है –"स्थानीय मजदूर लोग रखते नहीं। ये लोगडरते हैं संगठन न बना लें। एक मिट्टी से जन्मे लोग एक होकर उनके विरुद्ध में जेहाद न छेड़ दें। बस यह एहतियात बताते हुए ठेकेदारों ने भूखों के मुख की रोटी छीन ली।"[255]

प्राचीन समय से भारतीय समाज में नारी को केवल गृहिणी के रूप में देखा गया है। वह केवल घर की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु के रूप में अंकित की जाती थी। इसी कारण राजनीतिक क्षेत्र उसकी पहुँच से काफी दूर की वस्तु थी। स्त्री का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश असंभव माना जाता था। समय बदलते देर नहीं लगती। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जाति-पांति भेदभाव, धार्मिक भेदभाव, आदि के साथ-साथ नारी के प्रति भेदभाव की ओर भी दृष्टि उठी। अतः इसी के आधार पर नारी-मुक्ति आंदोलन ने धीरे-धीरे अपना जोर पकडा। महात्मा गाँधी और दूसरे समाज-सुधारक नेताओं के सिद्धान्तों के कारण नारी ने भी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना प्रारम्भ किया। महिलाओं ने भी आजीवन खद्दर पहनने की शपथ ली। इन लोगों ने जुलूसों और आंदोलनों में साहसपूर्वक भाग लिया। अब नारियाँ जेल जाने से भी भयभीत या विचलित नहीं होती थी। उसने पूर्ण उत्साह, त्याग, बलिदान, लगन, संयम,

दृढ़ता आदि के साथ संग्राम में भाग लिया और सफलता भी प्राप्त की। इस प्रकार प्राचीन समय से उलाहना की शिकार नारी ने अपनी शक्ति का बड़ा रोमांचक परिचय दुनिया को दिया। नारी जाति के इस बदलते रूप की प्रेमचंद जैसे महान युगीन उपन्यासकार ने भी प्रशंसा की। इसके बाद तो यह सिलसिला चलता ही गया। अब नारी की उदात्तता साहित्य का एक महत्वपूर्ण अभिन्न अंग बन कर रह गयी है। उपन्यासकार भी महिलाओं को राजनीतिक मंच पर पुरुषों के समान ही बराबर का अधिकार दिलाना चाहते हैं। स्वयं आज की महिला भी राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों संग कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना चाहती है। और चल रही है। अब वह अपने ऊपर अत्याचार सहने के लिए तैयार नहीं। वह अपनी रक्षा करने के लिए तत्पर है। अब नारी बड़े-बड़े मंचों पर खड़ी होकर ओज़पूर्ण भाषण देने लगी है। ग्रामीण नारी भी कुछ पीछे नहीं है। उसमें वर्ग-संघर्ष की तीव्र भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

जो नारी प्रेमचंद युग में राजनीति क्षेत्र में केवल सहायक के रूप में कार्यरत थी वह आज स्वयं एक राजनीतिक नेता के रूप में दिखाई देती है। इन सब के पीछे नारी शिक्षा का प्रभाव सर्वविदित है। स्वतंत्रता संग्राम के समय में नारी की इस जिजीविशा ने उसे 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा' और 'अखिल भारतीय महिला संघ' में सक्रिय रूप से अपनी महत्वपूर्णता का प्रदर्शन दिया है। इसका उदाहरण हमें 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन में स्त्रियों के भाग लेने में दिखाई देता है। श्रीमती इंदिरा गाँधी ने सबसे पहले देश की सबसे बड़ी नेता होने का गौरव प्राप्त किया। उनका भारत की प्रधानमंत्री बनना प्रत्येक नारी के लिए एक गौरव की बात है। सामाजिक आंदोलन और वर्ग-संघर्ष की पुकार में अनेक महिलाओं ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। वे कम्युनिस्ट पार्टी में भी अपना सिक्का जमाने लगी। यही कारण है कि उपन्यासकारों ने नारी के लगातार बढ़ते राजनीतिक योगदानों का विस्तृत वर्णन किया है।

अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध विद्रोह की आग हमारे देश-वासियों में धीरे-धीरेपनपने लगी थी। 'जलियाँवालां बाग' जैसे कुकांडों ने इस आग को अंगारा बना दिया। भारतीय जनता ऐसे भड़की कि नारी समाज भी बिना कुछ सोचे निर्भीकता से इस आग में कूद पड़ी। इसी आधार पर प्रेमचंद ने अपने कुछ उपन्यासों में उपर्युक्त

वर्णित नारियों का चित्रण प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए सुखदा, मुन्नी, सलोनी आदि। प्रेमचंद का साहित्य स्वतंत्रता की लड़ाई चलते लिखा गया है। उनके प्रारम्भिक साहित्य में आदर्शवादिता अधिक दिखाई देती है। 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना में राजनीतिक पृष्ठभूमि विकसित होती हुई दिखाई देती है। राजनीतिक भावभूमि पर आधारित उपन्यासों में सबसे पहला कदम प्रेमचंद ने ही उठाया। उपन्यास सम्राट के नारी-चित्रण को देखकर ऐसा कौन-सा उपन्यासकार होगा जो प्रभावित हुए बिना रह सकता था। 'कर्मभूमि' की रचना भी प्रेमचंद ने सत्याग्रह आंदोलन से ही प्रेरणा पाकर की थी। उपन्यास में मंदा जैसी कर्मनिष्ठ, साहसी, धैर्यशील नारी का अंकन हुआ है।

अतः कहा जा सकता है कि आज़ादी की लड़ाई के समय एक स्वच्छ और स्पष्ट राजनीति का जन्म हुआ परन्तु स्वतंत्रता पश्चात् धीरे-धीरे या दूषित होती गयी। राजनीति नेताओं के लिए लाभ-हानि का व्यापार बन कर रह गयी। लगभग सारा देश नेताओं के स्वार्थ के कारण जातिवाद, प्रांतीयता, भाषावाद, भाई-भतीजावाद, द्वेष, कलह आदि ने अपना जाल फैलाना प्रारम्भ किया और प्रजातांत्रिकता पतन के कगार पर खड़ी हो गयी। नेताओं में नैतिक व्यवहार आदि शून्य के बराबर होने लगा, इनका चारित्रिक विकास रुक गया। नेताओं के पास धर्म के नाम पर छल, विद्वेष, घृणा, ईर्ष्या आदि भावनाओं ने जड़े जमा ली। इसी कारण विघटन शक्तियाँ अपना पैर आसानी से फैलाने लगी। अतः कहा जा सकता है कि नेता हमेशा अपना घर भरने के लिए षड्यंत्र रचने में ही लगे हुए है। अब उन्हें इस देश समाज और देशवासियों से कोई सरोकार नहीं।

भ्रष्टाचार आज सभी को ग्रसित करता जा रहा है। यह एक अभूतपूर्व शक्ति बन गया है। राजनीति का पर्याय भ्रष्टाचार से लगाया जा सकता है। अतः 'आवां' उपन्यास में अंजना कहती है –"पैसे की ताकत से एक बुद्धिहीन, अपाहिज, असमर्थ व्यक्ति बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद, बड़ी आसानी से अपने हित के लिए उसका उपयोग कर समाज और संसार का सर्वाधिक समर्थ व्यक्ति बन सकता है। सत्ताधारी बन सकता है। प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। लोगों पर शासन करने के लिए नोट की शक्ति को पहचानो। सुख-सुविधाएँ जुटाने में उसकी भूमिका

की कद्र करो। नोट से ही तुम अपने बाबूजी के लिए बेहतर इलाज कर सकती हो..... और भाई बहनों के लिए उज्जवल भविष्य।"[256]

आज की राजनीतिक अवधारणा भ्रष्टाचार से भरी-पड़ी है। पुराने जमाने में व्यक्तिअपनी आवश्यकताओं को सीमित रखता था और उसके आदर्श उच्च कोटि के हुआ करते थे। परन्तु आज उसकी सोच इसके बिल्कुल विपरीत है। आज वह अधिक से अधिक पा लेने के लिए तत्पर है। वह नैतिकता या अनैतिकता दोनों के बारे में नहीं सोचता बल्कि लाभ या हानि के बारे में सोचता है।

मजदूर संगठनों का राजनीतिक यथार्थ पूर्ण चित्रण भी दृष्टव्य है –'आवां' उपन्यास में –"राजनीति और मजदूर संगठन में जो भी प्रवेश करता है नेता बनने के लिए, कार्यकर्ता बनने के लिए नहीं। जहाँ नेता ही संगठित होंगे, निश्चित ही वे एक दूसरे की छाती पर पाँव देकर उखाड़ने-पछाड़ने की प्रतिघाती राजनीति करेंगे।"[257]

वर्तमान समय नारी आंदोलन का समय है। समकालीन उपन्यासकारों ने भी नारी के प्रति सद्भावना रखकर सुधारवादी दृष्टि अपनायी। इस क्षेत्र में महिला उपन्यासकारों का योगदान बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा। उपन्यासकार मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी सुधार का चित्रण यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। अत: उपन्यासों में नारी के स्वरूप ने एक नई दिशा अपनाई। । उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से घर की चार-दिवारी में जकड़ी नारियों की श्रृंखलाएँ खोलने का प्रयास किया ।

महिलाओं के इस स्वरूप में आने का सर्वप्रथम मार्ग है, शिक्षा। शिक्षा के कारण ही उसकी चिंतन शक्ति का विकास हो सकता था, और हुआ भी। शिक्षा के कारण ही वह अपने बारे में, और अपने भविष्य के बारे में सोच सकी। स्वयं के लिए उपयुक्त स्थान को वह पहचान सकी और उन उपयुक्त स्थानों की प्राप्ति के लिये अर्थात् अपने अधिकारों के लिए उसने लड़ना सीखा। उसने केवल लड़ना ही नहीं उसे पाना भी सीख लिया। उसने अपना कर्तव्य कभी नहीं छोड़ा पर हाँ उसने अंधश्रद्धा करना छोड़ दिया। पति का वास्तविक स्थान वह अब समझने लगी। अब वह उसे पतिपरमेश्वर नहीं बल्कि अपनी गृहस्थी चलाने वाला भागीदार मानने लगी। अब घर में केवल पति

के नियम व सिद्धान्त नहीं चलते बल्कि वह भी उन नियमों और सिद्धान्तों को चलाने की हकदार है। इतने समय से जो वह विकृति का शिकार थी, पर अब उसका स्वरूप तेजी से बदलता गया। वह अब अपने मन की मानने लगी। अब उसकी भी इच्छाएँ, लालसाएँ, आकांक्षाएं आदि जागृत होने लगी। समाज के सभी परिस्थितियों राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आदि में उसने एक नया रूप धारण कर लिया। नारी के इसी नवीन रूप को आधुनिक उपन्यासकारों ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है। नारी का यह रूप रोचकतापूर्ण है क्योंकि सदियों से चले आ रहे उसके विकृत रूप को समाप्त कर उसे नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह आज खुली हवा में साँस लेने लगी है। वह आज वास्तव में एक रंगीन तितली के समान स्वच्छंद रूप से उड़ती-फिरती है। नारी का यह नवीन स्वरूप नारी के खुद के प्रयास से बना है।

4.4 बीसवीं सदी केअंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासों में नारी की धार्मिक चेतना

4.4.1नारी साम्प्रदायिक भावना की शिकार

अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासों में नारी की धार्मिक चेतना पर दृष्टिपात करें तो नारी जीवन की रूढ़ियों का परिचय मिल जाता है। नारी धार्मिकता के क्षेत्र में भी अवहेलित की जाती है। धार्मिक और सांप्रदायिक परंपराओं के जाल में वह उलझी हुई है। अशिक्षित नारियाँ स्वयं धार्मिक कट्टरता का शिकार होती हैं और दूसरी स्त्रियों को भी शिकार बनाने से पीछे नहीं हटती। वे अपनी ही बहू-बेटियों पर बंधन लगाती रहती हैं। अधिकतर नारियाँ इस अत्याचार को अपनी नियति समझकर स्वीकार कर लेती हैं परन्तु कुछ शिक्षित व जागृत महिलाएँ इसका विरोध करती हैं। धर्म के नाम पर रूढ़िगत परंपराओं की आड़ में अन्तर्जातीय विवाह करने की पाबंदी लगाई जाती है। यहाँ पर इस बात का ध्यान नहीं दिया जाता कि लड़का-लड़की एक-दूसरे को निस्वार्थ रूप से अपनाना चाहते हैं बल्कि ये कहकर उन्हें रोका जाता है कि उनके धर्म एक नहीं है। इनके विवाह में परंपरा रोड़ा बन जाती है। इस प्रकार उन्हें अपना मन मार कर जीवन भर अलग-अलग रहने की सजा काटनी पड़ती है। अधिकतर यह भी देखने में आया है कि वे अपने घर वालों की मर्जी से अपनी बिरादरी

में जबरन शादी तो कर लेते हैं लेकिन कोई भी खुश नहीं रह पाते, यहाँ तक कि गलत कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

भारतीय परंपरा के अनुसार स्त्री के लिए एक विवाह ही मान्य है। यदि वह किसी कारणवश विधवा हो जाती है तो भी उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं होती। ऐसा करने पर हिन्दू समाज उसे घृणित निगाहों से देखता है। परन्तु शिक्षित नारी परंपरा की इन जंजीरों से मुक्त होना चाहती है। उसका मुक्त होना इतना आसान नहीं होता। पराम्परानुसार पुरुष के धर्म को अपनाना चाहिए। पत्नी को हमेशा अपने पति के धर्म को ही स्वीकारना पड़ता है।आधुनिक नारी इस परंपरा का समर्थन नहीं करती क्योंकि उसे इसमें गुलामी नज़र आती है, वह सोचती है कि वह क्या अपना धर्म अपनी मर्जी से स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकती। धर्म परिवर्तन के साथ-साथ उसे उस धर्म के रीति-रिवाज, विधि, परंपरा, सिद्धान्त आदि सभी को भी अपनाना पड़ता है। इसी कारण उसका विकास भी रुक जाता है। क्योंकि मनुष्य में जन्म से जो संस्कार पाये जाते हैं उसे एकाएक बदलना और दूसरी परम्परा में अपने आपको ढालना बड़ा कठिन होता है। नये धर्म को अपनाने में ही उसका कीमती समय बर्बाद हो जाता है और मानसिक तनाव अलग।

अतः 'आवां' उपन्यास में इस धार्मिक समस्या का सजीव वर्णन हुआ है। सुनंदा एक मुसलमान लड़केसुहैलसे प्रेम करती है। दोनों शादी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। अचानक लड़के के घरवाले सुनंदा को मुसलमान धर्म अपनाने की शर्त रखते हैं । वे यह भी चाहते हैं कि वह अपना हिन्दू नाम बदलकर कोई मुसलमान नाम रख ले। इस पर सुनंदा की धार्मिक चेतना जागृत होती है। वह मुसलमान धर्म अपनाने के लिए तैयार नहीं होती। उसकी चेतना उसे ऐसा करने से रोकती है। उपन्यासकार के शब्दों में –"उसने मुसलमान बनने से इनकार किया। वह हिन्दू और मुसलमान बनने से इनकार किया। वह हिन्दू और मुसलमान से ब्याह करने को राजी थी, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाह रही थी। छोटी बात है यह।"[258]प्रस्तुत पंक्तियों में सुनंदा के उच्चएवं क्रांतिकारी विचार दर्शित होते हैं। वह मानव-धर्म को हिन्दू और मुसलमान धर्म से ऊँचा उठाना चाहती है।

उपर्युक्त संदर्भ पर आधारित कुछ जीवन्त वाक्य ‘छिन्नमस्ता’ की प्रिया के शब्दों में -“अम्मा, अम्मा, प्लीज, आप देवी होना छोड़ दीजिए। एक साधारण औरत की तरह थोड़ा सुख तो भोगिए। कभी तो कहीं आया-जाया कीजिए।”[259]

प्रिया यह भी कहती है –“क्या पुरुष के प्रति देवत्व के भाव, एक निष्ठा श्रद्धा, तिल-तिलकर स्वयं के छोटे-छोटे सुखों का गला घोंटते जाना, मैंने भी स्वीकार नहीं कर लिया था? क्या लड़कियों के मन में, अचेतन में अपनी माँ का ही रूप नहीं बसा होता? बाद की जिंदगी में, जब भी बार-बार छली गई हूँ, मैंने स्वयं को ही दोषी ठहराया है फिर गहरी पीड़ा और अंतर्द्वंद्वों के क्षणों में कहीं अपने सारे आचरण में अम्मा के व्यवहार की छाया देखी है।”[260]

‘फिर से बहार आई’ में भुजंगराव की बेटी इंदिरा अपनी माँ के संकुचित स्वभाव को दूर करने की कोशिश में कहती है कि –“लड़की को कमजोर नहीं बनाना और ना ही कमजोर समझना। लड़की को शिक्षित करना है, समर्थ बनाना है। स्त्री ही नहीं रही तो दुनिया नहीं होगी। सृष्टि का सृजन ही नहीं होता। समाज में तो ऐसी स्त्री के प्रति गौरव भावना बढ़ना है। साबित करना है स्त्री अबला नहीं सबला है।”[261]

उपर्युक्त उद्धरण से लेखिकामुक्तेवी भारती यहाँ लड़कियों में और समय के अनुसार व्यवहार, व्यवस्था और पिता के रूप में पुरुष की मानसिकता में आये बदलाव को व्यक्त किया है।

‘फिर से बहार आई’ में भुजंगराव की बेटी इंदिरा पिताजी से प्रश्न करती है कि -“माता पिता यही सोचते हैं कि लड़की को दहेज में रुपया देना पड़ता है, इसीलिए उसे ज्यादा पढ़ाना बेकार है। लड़के को डोनेशन देकर भी पढ़ाते हैं। और यही माँ बाप बेटे के लिए दहेज लेते हैं न! जो भी हो लड़की और लड़का दोनों बराबर हैं, समझनेकी मानसिकता परिवार से ही शुरू होनी है।”

‘कुंती पुत्रिका’ में पिता जी नीलिमा को गर्भस्राव कराकर दूसरी शादी करना चाहते हैं। तो नीलिमा इसके भी खिलाफ होकर कहती है कि-“इसीलिए मैं गर्भस्राव

कराना नहीं चाहती हूँ। पिता जी! औरत एक ही बार पुरुष को मन समर्पित करती है। बार-बार साड़ियों की तरह जीवन साथी को आसानी से बदल नहीं सकती। आत्मा को धोखा देना मेरे बस की बात नहीं है। भ्रूण हत्या करके, नादान कुँआरी जतलाकर, पर पुरुष को धोखा देना मुझे पसंद नहीं। इससे बढ़कर बदतर और घटिया हरकत नहीं हो सकती।"[262]

पिता जी कहते हैं कि –"कम से कम बच्चा पैदा होने के बाद अनाथालय में पहुँचा देंगे।"नीलिमा इस प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है कि –"नौ महीने पेट मे ंपालकर बच्चे को जन्म देना अनाथ शरणालय में पहुँचाने के लिए? उसके बदले अब ही उससे मुक्ति पा सकती है ना! उस जमाने में कुंती ने समाज के डर से बच्चे को पानी में बहा दिया। उसके बाद हृदय विदारक रूदन करने लगी।"

4.4.2 धार्मिक अंधविश्वासों से प्रभावित

उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में धार्मिक अंधविश्वासों पर आधारित कई रोचक संदर्भ प्रस्तुत किये गये हैं। प्रिया की माँ में परंपरावादी विचारधारा कूट-कूट कर भरी हुई है। वह धर्मान्दता की आग में हमेशा जलती रहती है। यहाँ तक कि हिन्दू शादी के फेरों पर भी उसे शंका होने लगती है। इसीलिए वह सोचती है कि बड़े भैय्या की शादी में जो फेरे लिए जा रहे थे तब ताई ने टोटका किया था। यही कारण है कि बड़े बच्चा बिमार पड़ गये। वास्तव में उनके बिमार पड़ने का कारण कुछ और ही था। कनु को भी जबरन अपनी माँ की धार्मिक परंपराओं को मानना पड़ता है। उसे छुआछूत जैसे सामाजिक नासूर को झेलना पड़ता है। कनु की बड़ी बहन सरोज धीरे-धीरे इन अंधविश्वासों का विरोध करने लगती है। प्रिया ऐसे वातावरण में घुटती चली जाती है। वह सोचती है कि इस परंपरा की मजबूत जड़े मानो अंग-अंग के रेशे-रेशे में फैली हुई है। शताब्दियों से चली आ रही इस परंपरा को कौन-सी संज्ञा दी जा सकती है। धर्म के नाम पर अमानवीयता का ऐसा वीभत्स नाच उससे देखा नहीं जाता। घर में जब मेहतर साफ-सफाई के लिए आता तो उसकी माँ अपने कमरे में बैठ कर साड़ी के पल्लू से अपनी नाक ढांप लेती, वह मेहतर को देखना भी अशुभ मानती थी। कनु चुपचाप न चाहते हुए भी सब कुछ देखती जाती। वह यह सोचने लगती है कि -"जब

वह ब्याहकर अपने ससुराल जायेगी तो यह सब नहीं सहेगी। वह अपनी भाभी की तरह नहीं बनेगी। इन धार्मिक परंपराओ, छूआछूत आदि का विद्रोह करेगी। बड़ी भाभी कभी इन पुरानी मान्यताओं से आगे सोच ही नहीं पाई, उनमें चेतना ही जागृत नहीं होती।"[263]

प्रस्तुत संदर्भ को 'दिलो-दानिश' उपन्यास में यथार्थ रूप से वर्णित किया गया है। भारत के कई लोग धार्मिक अंधविश्वास के शिकार हैं। इस स्थिति का लाभ धूर्त, ढोंगी बाबा लोग समय-समय पर उठाते रहते हैं। वे अक्सर स्त्रियों को अपने जाल में फँसा लेते हैं अब चाहे वह आर्थिक रूप से हो या फिर दैहिक रूप से। अतः धर्म की आड़ में नारी का शोषण किया जाता है। कृपानारायण की पत्नी कुटुम्बप्यारी पति को रखैल महकबानो से दूर रखने के लिए साधु भस्माकर की शरण में जाती है। साधु बाबा उसे बहला-फुसलाकर उसका शारीरिक शोषण करने लगता है। अब वह मानसिक रूप से भी बाबा के वश में हो जाती है और सदा हर समय और स्थिति में उसे बाबा का ही अहसास होने लगता है। वह ऐसी स्थिति से उभर नहीं पाती और कहती है –"तमाम रात इनमें छिपे बाबा हमारी ओर लपकते रहे। बार-बार हम छटपटाते रहे। बाबा के साथ जो कुछ भी हुआ, किया था, वह अपने बदन पर लौट-लौट आता रहा ! अब सामाजिक, धार्मिक परंपराओं का अनुपालन स्त्री के लिए अनिवार्य बना दिया गया है। भले ही परंपराएँ अंधविश्वास और कुरीति के रूप में हमारे जीवन में रचे बसे हों।"[264]

4.4.3 धार्मिक असमानता

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में नरेन्द्र के पिता की रखैल तिलोत्तमा और सौतेली बहन नीना को घर के कार्यक्रमों में आने की अनुमति नहीं है। पुरुष समाज दूसरी औरत के साथ सालों साल जीवन गुजार सकता है परन्तु धार्मिक संस्कार उसे सम्मानपूर्वक स्थान और अधिकार देने से वंचितकरते हैं। इससे बेटी को बहुत दुःख और आक्रोश होता है और वह विद्रोह कर उठती है। वह प्रिया से कहती है - "भाभी मुझे पता है किमैं नाजायज संतान हूँ। मम्मी कितना भी माँग में सिंदूर लगाए, उस लाल रंग में थोड़ी सी कालिख घुली है इसीलिए मम्मी का सिंदूर चमकता

नहीं।"[265]'छिन्नमस्ता' में प्रिया अपने बेटे संजू को लेकर छोटी माँ तिलोत्तमा के पास जाती है तो नरेन्द्र इसी विषय को लेकर प्रिया को चेतावनी देता है कि –"सुनो प्रिया ! संजू अब कभी वहाँ नहीं जाएगा।"[266]

"वह रखैल है .... मिस्ट्रेस..... मेरी माँ नहीं।"

प्रिया भी प्रश्न करती है कि - क्यों? क्या चुटकी-भर सिंदूर से ही पत्नी कहलाने का हक मिल जाता है, और बीस वर्ष बिना सात फेरे के संबंध को यों ही नकार दिया जा सकता है?"[267]

"सास के माथे पर लाल बिंदिया और माँग में सिंदूर। सुहाग.... पत्नी... जायज संतान! छि : औरत के लिए यह समाज इतना निर्मम क्यों ? और इस समाज को बनाने वाला पुरुष इतना कायर क्यों?"[268]

'छिन्नमस्ता' में नरेन्द्र के पापा के मरने के बाद प्रिया छोटी माँ को लाकर आखरी दर्शन कराना चाहती है। लेकिन नरेन्द्र ने साफ इनकार कर दिया कि –"इस अग्रवाल हाऊस में रखैल और रंडियाँ नहीं आ सकती।"[269]

इस दृश्य को लेकर प्रिया का मन विकल होता है कि - "हाँ ! बाबूघाट पर मुझे दूर एक औरत नहाती हुई दिखी थी। अरे !यह कौन?क्या छोटी माँ हैं?हाँ, छोटी माँ घाट पर अकेले, अपनी चूड़ियाँ तोड़ रही थीं। माँग का सिंदूर मिटाया था। और अकेले बिल्कुल अकेले। मेरे सास को दस औरतें थामें हुई थीं। सब पत्थर दिल । पर मैं किसको गालियाँ देना चाह रही थी? व्यक्ति को? समाज को?परंपरा को?किसको? पता नहीं?"[270]

उपन्यास 'दिलो-दानिश' में भी धार्मिक असमानता का उदाहरण देखा जा सकता है। जिसमें महकबानो को अपनी नाजायज़ बेटी की शादी में जाने की इजाजत नहीं दी जाती है और कृपा के घर पर भी वह नहीं जा सकती। यहाँ तक कि अंत में उसके बच्चों को भी छीन लिया जाता है। परन्तु महक के मन में आक्रोश उत्पन्न होता है। वह अपनी ही बेटी की शादी टूटने की संभावना रहने पर भी अपनी तवायफ माँ के

कीमती जेवर पहन कर शादी में आती है और साहस करके बेटी को आशीर्वाद भी देती है। वह परंपरा का विरोध करती हुई कहती है कि –“बेटा हमेशा से आपका है। अब बेटी को भी गोद लिया जा रहा है। आहा-हा, हम से जो पैदा हुए। वकील साहब, इन बिचारे लावारिसों को खानदानी जामा पहनाना तो जरूरी है। आप ही बताएँ – इन दोनों के बिना हमारे पास आपका क्या धरा पड़ा है? है कुछ?”[271]

परन्तु महकबानों के साहसपूर्ण कदम से समाज पर किसी प्रकार का फरक नहीं पड़ता। वह अब जीवन-भर अपनी संतान के वापस लौटने का इंतजार करती है। लेकिन उसकी स्वयं की बेटी मासूमा अवसरवादी बनकर अपने भविष्य को सुधारने के लिए अपनी माँ का साथ छोड़कर सुनहरे सपनों में खो जाती है और उसका अपनी कोख से जन्मा बदरू बेटा तो पहले से ही वकील साहब की चमक-दमक से आसक्त है अत: वह भी कभी वापस पलटकर माँ को नहीं देखता।

‘सहजा’(तेलुगु उपन्यास) में रामाराव चित्र लेखन का गला-घोंट देता है। इसी संदर्भ में सहजा प्रसाद से कहती है कि –“पत्नी में अधिक काबिलियत रहे तो उसे पति बरदाश्त नहीं कर पाता है। पति के अधीन में रहने वाली पत्नी में अपने से ज्यादा काबिलियत है तो अपने को बौना समझता है। इस न्यून भावना के कारण ही स्त्री को दबाने की कोशिश करता है।”

सुनंदा ‘आवां’ उपन्यास में सुहैल से जरूर प्रेम करती है, लेकिन वह किसी भी कीमत पर अपने धर्म की स्वतंत्रता खोना नहीं चाहती। जब सुहैल शादी के लिए हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म अपनाने के लिए कहता है तो वहाँ नमिता से कही गयी बातों में सुनंदा के आक्रोश में सच्चाई व्यक्त होती है। “शादी दो आत्माओं का मिलन होता है ना कि दो धर्मों का।”[272]

सुनंदा का सवाल है कि - “वह सुहैल से विवाह करना चाहती है ना कि इस्लाम धर्म से। जिस प्रकार पुरुष अपने धर्म के प्रति कर्तव्यपरायण होता है तो क्या स्त्री को यह अधिकार नहीं कि जिस धर्म का दामन पकड़कर उसने नैतिकता सीखी है

अब उसे भूल जाए! बचपन से उस धर्म के संस्कारों की वह आदी हो चुकी होती है, उसे वह एक दैहिक आकर्षण के लिए क्योंकर छोड़े।"[273]

वोल्गा के 'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा उषा को समझाने की कोशिश करती है कि अगर शेषगिरी दो साल बाद उषा के पास आ जाना चाहता है तो?तो उषा अपना दृढ़ निर्णय सुनाती है कि–"शेषगिरी दो साल बाद आएगा या नहीं? ये सब छोड़ो ! अभी उसकी पत्नी की हैसियत से रहना मेरे लिए अपमान है न! मेरे आत्म-गौरव को बचाना है तो तलाक लेना ही है। सबको मालूम होना चाहिए कि अब मैं उसकी पत्नी नहीं हूँ।"[274]

उपन्यास 'इदन्नमम' की बऊ के विचार काफी उदात्तता लिये हुए हैं। वह तो 'रामायाण' और 'महाभारत' जैसी सैद्धान्तिक और पौराणिक कृतियों के संदर्भों पर भी सवाल उठा देती है। उन कृतियों में भी पुरुष समाज का दम्भ दृष्टिगोचर होता है। वह भगवान राम पर भी आक्षेप लगाने से नहीं डरती। वह राम से भी पति धर्म में सच्चे होने के प्रमाण माँगती है। वह कहती है –"अच्छा ! यह तो बताओ !क्या हम गलत कह रहे हैं? तुम तो रामायण बाँचती हो, भागवत सुनाती हो, पुरान पढ़ती हो, अपनी मरजाद त्यागना, अपनी देहरी छोड़ना आसान और मामूली बात है। फिर से बऊ पूछने लगती है –"क्या कहे मंदाकिनी? क्या बताए वह?सही-गलत, उचित-अनुचित की परिभाषा किस तरह करें? पुरुष कथाओं को किस कसौटी पर कसे?"'रामायण', 'महाभारत' का अंधानुकरण उसके बस का नहीं... वे सब पुरुष प्रधान के अवसरवादी अंग हैं। एक ओर पतिव्रत धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वनगमन, दूसरी ओर उसी निष्ठा को तोड़ मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सीता की अग्निपरीक्षा लेना। सीता ने क्यों नहीं माँगा कोई सबूत कि हे भगवान! कहे जाने वाले राम, तुम भी तो उस अवधि में मुझसे अलग रहे हो, अपने पवित्र रहने के साक्ष्य दो।"[275]

मु.भारती का 'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा के गले में मंगलसूत्र को न पाकर ललिता को बेचैनी होती है। उसी विषय को पूछती है तो शारदा

बड़ी निर्लिप्तता से जवाब देती है कि–"हाँ, मैंने उसे निकाल दिया।""तीन गाँठ का बंधन मेरी जिंदगी पर इतना आधिपत्य चलाने की जरूरत नहीं।"[276]

इसी संदर्भ में नीरजा आधुनिक नारी वैवाहिक बंधन पर प्रश्न करती है कि – "गले में मंगलसूत्र के न होने मात्र पति, पति नहीं कहलाया जाएगा ?"तुम्हारी शादी हुई कहकर मंगलसूत्र, काला गुंजा, बिछुए आदि निशान हैं। लेकिन पुरुष की शादी हुई करके कौन-से निशान हैं ?स्त्री के लिए शादी इतना महत्वपूर्ण हो तो पुरुष के लिए क्यों नहीं ?"[277]

आधुनिक नारी की परिस्थिति भी सीता के समान ही है। धर्म का पालन करना नारी का सबसे पहला कर्तव्य है। पुरुष को धर्म का पालन करना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। यदि नारी धर्म का पालन नहीं करती तो उसे पाप का भागीदार ठहरा देता है। वहीं पुरुष के लिए ऐसा कोई बंधन नहीं। पुरुष कभी अपवित्र नहीं हो सकता चाहे वह कितनी ही बार कितनी ही गैर स्त्रियों के साथ अपना मुँह काला कर चुका हो। इसीलिए पुरुष भी नारी को कोई महत्व नहीं देता। वह अवसरवादी है।

मानव जीवन के लिए उसका सामाजिक विकास जितना आवश्यक है उतना उसका धार्मिक विकास भी। सामाजिक विकास एक ओर परंपराओं के आधार पर नैतिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है तो दूसरी ओर धार्मिक विकास आध्यात्म की ओर, अर्थात् ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दर्शित करता है। धर्म मानव को पारलौकिक जीवन की ओर उन्मुख करवाता है। धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करने वाले साधुओं के प्रति हमारे मन में विश्वास और श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। वे हमें हमारे ईश्वर प्राप्ति का मार्ग लगने लगते हैं। समाज की कितनी ही मान्यताएँ ऐसी है जिसे धर्म के साथ जोड़ दिया गया है। नारी से संबंधित सामाजिक परंपराएँ जैसे सती-प्रथा, विधवा विवाह निषेध भी धार्मिक सिद्धान्तों से जोड़ दिये गये हैं, जिसके नाम पर नारी का बुरी तरह शोषण होता है। नारी को पाप-पुण्य का हवाला देकर उसे मानसिक और दैहिक दोनों रुपों से प्रताड़ना दी जाती है। उसे अपशगुणी-शगुणी कहकर भी कई यातनाएँ दी जाती हैं। बुरा हुआ तो स्त्री, अच्छा हुआ तो पुरुष, इसी प्रकार की गलत धारणा लेकर

नारी को सताया जाता है। यही कारण है कि वह स्वयं को अभाग्यपूर्ण, दरिद्र मानकर सारे अत्याचारों को सहती चली जाती है। नैतिक-नियम भी पूर्ण रूप से धर्म से संबंद्ध है। ये परिस्थितियाँ, बंधन, निषेध आदि सारे नियम भी स्त्री जाति के नाम पर ही आकर रुक जाते हैं और यही कारण है कि सदियों से स्त्री के विकास को रोका जा रहा है।

कट्टर धार्मिकता की आड़ में साम्प्रदायिकता का घिनौना खेल समाज को काफी खोखला बना रहा है। 'आवां' उपन्यास में इस बात की पुष्टि हुई है। सुनंदा हर्षा के द्वारा विमला बेन को संदेश भेजती है –उनसे कहिएगा दीदी। कुंआरी माँ की जचकी का हक लड़ने से पहले वे सांप्रदायिक उन्माद को खतम करने की लड़ाई लड़े, वरना सब बरबाद हो जाएगा। खोली-खोली के भीतर घुसकर हिन्दू मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों में उन्मादी मर्दों के हाथ से उनकी कटारें छीन लें। उनकी संदिग्ध गतिविधियों को चेतावनी दे दे कि अगर उन्होंने भड़का-भड़काई माहौल में हिस्सा लिया तो ध्यान रखें - अपने घर परिवार से हाथ धो-बैठेंगे। बच्चों समेत वे आत्म-दाह करेंगी। आत्म-दाह की धमकी को वे कोरी धमकी ही न माने। औरत के निश्चय और उसकी आकूत-ताकत का अंदाजा नहीं।"[278]

इस पर हर्षा अपने मन में सुनंदा की प्रशंसा करते हुए सोचती है कि –"खोली के भीतर पली-बढ़ी लड़की की अंतर्चेतना की इतनी प्रखर ! उसे लगा, सुनंदा के सामने वह कितनी बौनी है।"[279] सुनंदा हर्षा की अन्त:चेतना को एक प्रकार से ललकारती हुई कहती है -तुम्हें नहीं लगता कि धर्म-परिवर्तन के लिए तुम गुपचुप राजी हो जाती तो शायद विद्रोह की यह आग....।"[280] सुनंदा नमिता की बात को बीच में ही काट कर कहती है –"गलत सोच रही दीदी। धर्मांधों के लिए मात्र मैं एक बहाना भर हूँ। मैं बहाना न रहूँ तो कल वे और कोई बहाना तलाश लेंगे। गढ़ लेंगे। गढ़कर उनमें तेल के पीपे उलीचेंगे। दीदी, जरूरत है उनकी कलाइयाँ धर लेने की – मजबूती से, ताकि वे हाथ न छुड़ा पाएँ। तीली न सुलग पाएँ। और यह अब कोई नहीं सिर्फ स्त्रियाँ कर सकती हैं?"[281]

पुरुष समाज के समान स्त्री भी अपना अधिकार छीनना चाहती है। वह यह जान चुकी है कि ईश्वर ने पुरुष और स्त्री दोनों को समान अधिकार दे रखे हैं।ऐसे मार्मिक क्षेत्र में भी स्त्री की यह ललकार सराहनीय है। नारी की इस सशक्त ललकार को समसामयिक उपन्यासकारों ने प्रोत्साहन देने का श्रेयस्कर कार्य किया है।

मु.भारती के 'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) में भुजंगराव की बेटी इंदिरा पिता से प्रश्न करती है कि –"समाज मेंलड़की और लड़का समान माननेकी मानसिकता को बढ़ाना है । लोगों में यह विश्वास घर गया है कि चिता जलाने के लिए बेटे का होना अनिवार्य है। पुनर्जन्म नामक नरक लोक से मुक्ति पाने के लिए बेटे का पैदा होना जरूरी है। स्वर्ग-नरक मुझे मालूम नहीं कि–जिसके बेटा न हो, उस घर में लड़की पिता की चिता जलाए तो क्या गलत है?"

भुजंगराव इसके जवाब में कहता है कि –"यह समस्या केवल तुम्हारी नहीं है? मैं तो इन जैसी कई समस्याओं के बारे में सोच रहा हूँ।"[282]

4.4.4 परंपराओं से प्रभावित

भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का आनंद धार्मिक अनुष्ठानों से ही प्राप्त किया जा सकता है। अगर मनुष्य नासमझ है तो इसके अभाव में वह कुछ नहीं कर सकताप्रस्तुत उपन्यासों में धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति विश्वास की भावना बताई गई है। आज भी कई महात्मा जन संस्कृति की रक्षा के लिए निस्वार्थ कार्य कर रहे हैं। आश्रमों का गठन हो रहा है। वहाँ भोजन-पानी की व्यवस्था का भी ध्यान दिया जाता है। उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास' में भी पंडित जो वर्ष में एक बार धर्म के उद्धार के लिए संस्कृत विद्यालय निर्माण के लिए चंदा जमा करने किशोरी बाबू के घर जाते हैं।पंडित जी बहुत ही संयमी और नियमबद्ध हैं। वे साधुगुण सम्पन्न हैं। सब धर्मों की रक्षा के लिएइस प्रकार के कार्य चला रहे हैं।

किशोरीलाल को धर्म पर विश्वास नहीं परन्तु अपनी माँ की बात रखने के लिए वे ऐसी दान-दक्षिणा करते हैं । कथा में अलका सदानंद उपदेश देकर लोगों से कहती

है कि–“तुम्हें जीवन को पकड़ कर रखना नहीं चाहिए, वह तो पानी है अतः उसे बहने दो।”

मनुष्य की अंतिम विदाई के समय भी धार्मिक संस्कार अपने कुछ नियम कायम किये हुए है। उपन्यास ‘आवां’ में इसका उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। जब पांडे जी का पार्थिव शरीर घर पर ही होता है। उसीसमय मनोरमा चाय बनाने स्टोव जलाती है इतने में करमाकर आँटी गुस्से में आकर कर कहती है –“बंद कर दीजिए चूल्हा। चाय मैं ऊपर से भिजवाती हूँ। मय्यत घर से उठी नहीं.... शोभा नहीं देता।”[283]

आज भी मृत्यु के पश्चात की कर्म क्रियाओं पर अमल हो रहा है। प्राचीन मान्यताओं को लोग ज्यों का त्यों मानते हैं। इसकी पुष्टि प्रस्तुत उपन्यास में कुछ इस प्रकार हुई है–“शाहबेन नमिता की माँ उर्मिला को समझाने की कोशिश में कहती है–“यो ऽ ऽ उर्मिला! काय को रोती? रोना छोड़ के भजन कर, नहीं तो भगवद्‌गीता पढ़।”[284]

शारदा अशोकवर्द्धन के ‘कुंती पुत्रिका’ (तेलुगु उपन्यास) में नीलिमा से सगाई करने श्रीधर के परिवार वाले कार में निकलते हैं। रास्ते में दुर्घटना होती है। श्रीधर को गहरी चोटें लगती हैं। उठने की स्थिति में भी वह नहीं रह पाता है। बहनोई की मृत्यु के कारण दीदी विजेता का विधवा हो जाना, श्रीधर का अपाहिज होना आदि घटनाओं से दीदी विजेता मानसिक तनाव से ग्रसित है।”[285]नीलिमा के पिता सीतारामय्याकोविजेता खूब सुनाकर रिश्ते को ठुकरा देती है कि –“नीलिमा अपशगुणी है। उसके साथ रिश्ता तय होने के बाद इतने अनर्थ हुए, कल शादी करके घर आए तो जो भी जीवित हैं उनके लिए खतरा हो सकता है। इसलिए हम इस रिश्ते को तोड़ रहे हैं।”[286]“वह अपशगुणी हमें नहीं चाहिए। हम कष्टों को मोलकर घर नहीं लायेंगे न!ऐसा दरिद्र रिश्ता हमें नहीं चाहिए।”[287]

वोल्गा केसहजा’ (तेलुगु उपन्यास) में अमरावती जाने की घटना को लेकर रामाराव और शारदा में कहा-सुनी होती है। शारदा खिन्न होकर अपने मन की व्यथा सहजा को बताती है–“शादी के बाद अपने पति का गौरव करना, उसकी हर

आवश्यकता को पूरा करना, आत्मीयता दिखाना, उसकी मर्जी के मुताबिक चलना आदि को मैंने अपना पारिवारिक धर्म समझा और निभाया। मेरी अनिच्छा को अपने अंदर ही दफना दिया। बाद में बच्चे होना – दैनंदिक कार्य में लग जाने की आदत पड़ गयी। मैंने अपने अंतरंगिक भावनाओं को पहचानना भी भूल गयी थी कि धीरे-धीरे मुझमें निर्लिप्तिता छाने लगी। अब इस घर को छोड़कर न बाहर आ जा रही हूँ न घर में रहकर इन परिस्थितियों में जी पा रही हूँ। घर में न जी पाकर नरक का अनुभव प्राप्त कर रही हूँ।"[288]

वह नारी को कभी माँ के रुप में तो कभी पत्नी के रूप मेंइस्तेमाल करता है। वह इसे अपना अधिकार समझता है। वह सामाजिक नियमों को अपनी सहूलियत अथवा लाभ के अनुसार बनाता-बिगाड़ता या नये नियम स्थापित करता चला जाता है। इस सिलसिले में 'इदन्नमम' उपन्यास में मंदा कहती है–"पुरुष पूजा को मान-मर्यादा का नाम न दो। तुम उसी परंपरा को निभाने की कोशिश करती रहीं और उसी का फल है कि आजतक तो हमारे घर की स्थिति वहीं की वहीं है।"[289]

बिलकुल इसी संदर्भ को सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में रेखांकित किया गया है। बाँके बिहारी वर्षा से जब पूछता है कि 'आप विवाह को किस प्रकार मानते हैं? क्या वह दो आत्माओं का मिलन है?इसपर वर्षा आक्रोश से कहती है –"मैं तो दो प्रेतात्माओं का मिलन मानती हूँ। एक तरफ धर्म ने स्त्री को देवी रूप माना और उसकी आराधना के लिए दुर्गा रुप में उसे प्रतिष्ठित किया। दूसरी ओर उसे नरक का द्वार भी मान लिया गया।"[290]

कहीं पर यह पुरुष प्रधान समाज नारी को ईश्वर के रूप में स्वीकार करता है। यदि गौर किया जाये तो वेदों के संकलन के समय भी श्लोकों के गठन के कार्य में ऋषि स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है। यज्ञ के प्रतिष्ठानों में स्त्री की भागीदारी दर्शित होती है। अतः उसे दैवी शक्ति के रूप में भी स्वीकारा जा चुका है। दुर्गा माता, चण्डिका, लक्ष्मी आदि भी यही दर्शाते हैं। परन्तु नारी का विकृत रूप भी इस संसार में

देखा जा सकता है, जहाँ उसे नरक का द्वार कहा जाता है, उसे ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधक कहा जाता है।

यही कारण है कि इस दोहरी पहचान के कारण वह स्वाभाविकता से दूर होती चली जाती है। वह एक सहज जीवन जीने में असमर्थ होती है। उसे पारिवारिक सुख-शांति का सम्पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। परिवार की मर्यादा उसके जीवन का ध्येय बन जाती है, जिसके कारण हर समय उसे यह चिंतन करना पड़ता है कि, उसका अगला कदम उसके परिजनों पर किस प्रकार का प्रभाव डालता है। उसे बड़ी सावधानी से सोच कर आगे बढ़ना पड़ता है। वह निश्चलता, वह स्वतंत्रता जो पुरुष को होती है वह स्त्री जाति को नहीं।

मु.भारती का 'फिर से आई बहार' (तेलुगु उपन्यास) में कविता कारामम से अनबन होने के कारण मंगलसूत्र को निकाल देने को सोचती है। निकालने के लिए मन में काफी अंतर्मथन होता है। उन्हीं ख्यालों में सो जाती है। नींद में घबराहट-सी होती है कि रामम की आवाज सुनाई देती है – मंगलसूत्र को खींचते हुए - "इनसे क्या मतलब। इसे दे दो।" इन शब्दों से अचानक नींद खुल जाती है और मुख से अनायास भी शब्द निकलने लगते हैं – श्री आंजनेयम, प्रसन्नांजनेयम, प्रभा दिव्यकायम, भजे वायुपुत्रम, का श्लोक।"[291]

बचपन में दीदी बताती थी कि कभी भी डर लगे तो इसका पाठ करना। कितने भी हम परंपराओं से दूर होकर आधुनिक बनने की कोशिश करे पर समस्याओं के समय भगवान को याद करना हर मनुष्य की स्वाभाविकता हैजो भारतीय संस्कृति की एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में घर की बड़ी बेटी की शादी की चिंता सभी घर के सदस्यों को रहती है। गायत्री देखने में सुंदर अवश्य है परन्तु ना ही वह शिक्षित है और ना ही उसके पिता के पास दहेज देने के लिए पर्याप्त धन है। अब करें तो क्या करें? भगवान की शरण में जाना ही एक आखिरी रास्ता रह गया था। अत: पिता ने

मंगलवार का व्रत रख लिया। माँ ने शुक्रवार का व्रत रख लिया, स्वयं गायत्री ने दुर्गा-सप्तशती का पाठ आरंभ कर दिया। वह प्रतिदिन संध्या समय जल-चढ़ाने मंदिर जाती।

'कुंती पुत्रिका'में पिता सीमारामयया और दीदी उमा नीलिमा को गर्भस्राव करने को मजबूर करते हैं। लेकिन नीलिमा की भावनाएँ कुछ अलग सी होती हैं। पिता के सामने निर्भीकता से कहती है कि –" पिता जी ! अपने मन से इन ख्यालों को निकाल दीजिए। मैं गर्भपात नहीं करा पाऊँगी। मेरे पेट में पलने वाले पिंड का निर्दयता से घोंट नहीं सकती। यह तो पैशाचिक प्रवृत्ति है। अमानुष है। एक स्त्री होने के नाते ऐसा काम करने के लिए मैं सहमत नहीं ....।"[292]

परन्तु आज की नारी जैसे दूसरे क्षेत्रों, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि में जागृत हो गयी है और अपने अधिकारों को छीनने की क्षमता है। ठीक इसी प्रकार अब वह धार्मिक चेतना से भी प्रभावित हो गई है। अब धर्म के नाम पर किये जाने वाले विभिन्न अत्याचारों को वह चुपचाप सहन नहीं करती बल्कि उदात्तता से उसका सामना करती है। प्रस्तुत संदर्भ में राजकुमारी राडकर के शब्द दृष्टव्य हैं –"पहले पुरुष कमाता था, आज नारी कमाती है और वह भी पुरुष से अधिक फिर वह करवा चौथ क्यों करे ? उसके मरने पर यदि पुरुष दूसरी शादी करता है तो वह उसके जिंदा रहने के लिए उपवास क्यों करे ? पुरुषों ने आज तक नारी की सुखद कामना के लिए कोई उपवास नहीं रखे।"[293]

4.4.5 ईश्वर के प्रति अटूट आस्था

हमारे धार्मिक ग्रंथों में बार-बार प्रेम-पूर्वक मिल-जुलकर रहने के उपदेश दिये गये हैं। मानव मात्र पर दया करने की सीख दी गई है लेकिन हम हैं कि हमारे परिवार के सदस्य के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं करते। यहाँ तक कि हमारे हिन्दू धर्म में पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि की भी बात की जाती है परन्तु फिर भी हम स्वार्थ में इतने अंधे हो गये हैं कि इन सब बातों से हमें ज़रा भी भय नहीं।आज के परिवार अपने आस-पडौस वालों के बारे में कोई जानकारी रखने की जरूरत महसूस नहीं करते।

के.रामलक्ष्मी के 'मुझे जाने दो' (तेलुगु उपन्यास) में माता सुंदरम्मा से बहू रानी कहती है कि –"यहाँ अमेरीका में शनिचर और रविवार को ही थोड़ा सा समय मिलता है। अगर उन दिनों में भी दूसरों के बारे में सोचे तो अपनी जिंदगी में कब सुख प्राप्त होगा?"[294] तो माता सुंदरम्मा उसे समझाती है कि –"स्वलाभ को थोड़ा सा भी न छोड़े तो मनुष्य कैसे कहलाया जाएगा।"[295]

हमारी भारतीय संस्कृति का मूल ही है –'अतिथि देवो भव'में अतिथि को देवता मानते हैं । अन्न को परब्रह्म मानते हैं। दूसरों को खिलाए बिना हमें खाने की आदत नहीं है न कि अपने चारों ओर दायरा खींचकर उसी में खपते रहे। हमारे ऋषियों का यही उपदेश है कि –"स्वार्थ ही हर समस्या का जड़ है।"[296]

उपन्यास 'इदन्नमम' में धार्मिक परंपरा से कटिबद्ध होकर बऊ घर-घर जाकर भागवत का वाचन करती है। यह सब वह अपने मन की शांति के लिए करती है। इसी संदर्भ में मंदा कहती है –"बऊ, देखो कितेक छोटी-सी रामायण। यह दादा की है। मकरंद ने हमें दी थी। हम तुम्हें पढ़कर सुनाया करेंगे, बऊ, डर नहीं लगेगा फिर।"[297]

धार्मिक परंपरा हमारे जीवन को सही राह दिखाती है। इससे हमारा जीवन आनंदमयी हो उठता है। जब-जब त्यौहारों के दिन होते हैं, हम हमारी सारी चिंताएँ छोड़कर उसकी तैयारी में खुशी से लग जाते हैं। इस समय हम ईश्वर के साथ-साथ प्रकृति की भी पूजा करते है। इसी से हमारा मन प्रसन्नहो जाता है। इसी दिन एक दूसरे से मिलाप भी हो जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में भाई-बहन कायह राखी का त्यौहार अनोखा हिन्दू धर्म के अलावा संसार के किसी धर्म में नहीं।

भारतीय पौराणिक ग्रंथ हमारे विचारों को पवित्रता और सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। ये ग्रंथ दु:ख-सुख में हमारा साथ देते हैं। हमारे जीवन के अकेलेपन का सहारा होते हैं। इसी संदर्भ में बऊ कहती है –"रक्षाबंधन के अवसर पर शकील मंदाकिनी से राखी बंधवाता है, भुजरियाँ उगाते हैं, झूलते हैं।"[298]

धार्मिक परंपरा मधुरता का चिन्ह है। इसी कारण भारतीयों में बंधुत्व की भावना अधिक पायी जाती है। दिपावली, दशहरा, होली, संक्रांति, ऊगादी, रक्षाबंधन, आदि जैसे त्यौहार हम सभी को एक सूत्र में बाँधे रखते हैं।

धार्मिक संस्कार हममें आत्मविश्वास जगाते हैं। हमें स्वच्छंद होकर जीने की प्रेरणा देते है। इन्हीं संस्कारों के कारण हम एक आदर्शात्मक जीवन-यापन की क्षमता रखते हैं। लेखिका चंद्रकांता का 'अपने-अपने कोणार्क' में प्रस्तुत संदर्भ पर माँ अपने विचार प्रस्तुत करती है –"घट-अघट, अच्छा-बुरा, सब कुछ जगन्नाथ की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है, करने वाला तो वही है।"[299]

धार्मिक परंपराएँ केवल कोरे बंधन या अंधविश्वास नहीं है। उपवास, भजन-कीर्तन, अनुष्ठान आदि का उद्देश्य वैज्ञानिक भी है। जैसे उपवास करना हमारे शरीर के लिए लाभदायक होता है। भजन-कीर्तन एक प्रकार का मन की एकाग्रता का अभ्यास है। अनुष्ठान भी जीवन में एक प्रकार के अनुशासन का अभ्यास करता है। जो लोग अनैतिक होते हैं, वे इन सब बातों से डर का दूर भागते हैं। क्योंकि अनुशासन से रहना, नीतिपूर्वक रहना और स्वास्थ्य के लिए कुछ घंटे भूखा रहना, उनके बस की बात नहीं। वे अति-भोग-विलासी होते हैं।

वेदों को जानने के लिए केवल शारीरिक कष्ट ही नहीं बल्कि मानसिक मंथन की भी आवश्यकता है। नहीं तो वेदों का ज्ञान संभव नहीं। वेदाध्ययन के लिए सदियाँ लग जाती हैं। इसीलिए कर्मठ व्यक्ति ही यह ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता रखता है। इसके लिए तन-मन-धन न्यौछावर करना पड़ता है।

यह आत्ममंथन हमारे धार्मिक त्यौहारों के माध्यम से किये जा सकते हैं।

सबसे प्राचीन और आदि ग्रंथ वेदों में भी दूसरों का सम्मान करने की सीख दी गई है। अज्ञानी मनुष्य इसके विपरीत करता चला जाता है। वेदों के अनुसार सृष्टि की रचना ईश्वर द्वारा हुई है इसीलिए प्रत्येक प्राणी उसी का अंश हैं। हमें जीव मात्र को सम्मान और स्नेह-पूर्वक देखना चाहिए। उपन्यास 'इदन्नमम' में लेखिका दादा के द्वारा प्रस्तुत गंद्यांश वर्णित करती है। - "सरनागत को ठुकराना हमारा धरम नहीं है

भाई। बऊ विपदा की मारी है, बच्ची को सुरक्षित रखना हर हाल में हमारा धरम है।"[300]

प्रस्तुत संदर्भ से यह जाना जा सकता है कि आज भी इस घोर आधुनिकता में 'अतिथि देवो भवः' की पद्धति का पालन हो रहा है।

भारतीय धर्म का पालन 'अपने-अपने कोणार्क' उपन्यास में लेखिका चंद्रकांता धन मर्यादा का पालन करते हुए किवदंति कहती हैं कि –"जगन्नाथ भगवान बड़े-बूढ़ों व घर परिवार वालों को मान-सम्मान देने के लिए रथ यात्रा में नहीं ले जाते। किन्तु लक्ष्मी माता को प्रसन्न करने के लिए क्षमा माँगते हैं तथा उपहार देते हैं।"[301]

के.रामलक्ष्मी का 'मुझे जाने दो' (तेलुगु उपन्यास) में माँ सुभद्रम्मा अमेरीका में मंदिर देखने जाती है। वहाँ पर स्थित 'गोशाला' नामक होटल में पहुँचते हैं। उस गोशाला का नक्शा देखकर चकित हो जाती है कि – कितनी भक्ति एवं श्रद्धा हो - तभी इस रूप को साकार कर सकते हैं। यह तो सराहने वाली बात है कि – यहाँ के लोग धन कमाने में पागल होते हुए भी भगवान के प्रति भक्ति भी है। यह भी साबित किया कि यहाँ के कृष्ण भक्त वर्ग-वर्ण, देश-काल का भेद न कर भक्ति भाव में तल्लीन होकर इस काम को पूरा किये होंगे। कोई बताए तो हमें विश्वास नहीं होता। हमें खुद उसका अनुभव करना है। कितनी पवित्र है यह जगह।"[302]कितना शांत है यह वातावरण। लोगों के होते हुए भी जरा सा प्रदूषण नहीं है। अपने देश में भगवान के दर्शन के साथ शोर को भी बरदाश्त करना पड़ता है।"[303]

भारतीय परंपरा मनुष्य के सामाजिक जीवन से जितनी अधिक जुड़ी हुई है उतना ही वह हमारे धार्मिक जीवन से भी जुड़ी हुई है। धर्म और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक है। रोटी, कपड़ा और मकान ये संसार के प्रत्येक मनुष्य की मूल आवश्यकता है। परन्तु भारतीय मनीषी के लिए प्रेम, सद्‌भावना, परोपकार मानवता जैसी महान भावनाएँ भी मूल आवश्यकता हैं। हम लोगों का मुख्य ध्येय ईश्वर की प्राप्ति ही है। भगवान की शरण में जाना ही हमारे जीवन की सार्थकता है। हम भारतवासी जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओं को तुच्छ मानते हैं। आदर्श के सामने

हम सब कुछ त्यागने का हृदय रखते हैं। भारत परसमय-समय पर बाहरी आक्रमण हुए हैं। उन लोगों ने हमारी संस्कृति और धर्म को आघात पहुँचाने का बहुत प्रयास किया परन्तु आज भी हमारी संस्कृति और धर्म सुदृढ़ता से खड़े है। हमने कभी हमारे धर्म को नहीं छोड़ा। आज भी सारा भारत एक जैसे पर्व मनाता है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक सारे त्यौहार मनाये जाते हैं। इससे हमारी धार्मिकता की एकता दिखाई देती है। भारत के प्रत्येक त्योहार किसी न किसी धार्मिक आस्था पर आधारित हैं। हममें तिथि, पंचांग, नक्षत्र आदि की बड़ी महत्वपूर्णता देखी गई है। सप्ताह के सात दिनों के नाम भी नक्षत्रों पर आधारित हैं। प्रत्येक दिन अलग-अलग धार्मिक महत्व लिये हुए अनुष्ठान सम्पन्न किये जाते हैं।

4.4.6 परंपरा की दुहाई देते अत्याचारी पुरुष

‘छिन्नमस्ता’ में प्रिया का पति नरेंद्र उसे लंदन जाने से मना करता है। परन्तु प्रिया के मन का आक्रोश खौल उठता है और वह बड़े जोश और सुदृढ़ रूप में कहती है -“औरत को यह सब इसीलिए सिखाया जाता है किइन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आयी आहुति की परंपरा को कायम रखे।”[304]

अर्थात् वह यह समझ चुकी है कि यह पुरुष प्रधान समाज हमेशा से इन बड़े-बड़े शब्दों का जाल फेक कर औरत की मासूमियत को उसमें जकड़ लेना चाहता है। पर वह इन धार्मिक परंपराओं के दांव-पेंचों को अच्छी तरह समझ चुकी है। अतः इनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं आती।

वोल्गा के ‘सहजा’ (तेलुगु उपन्यास) में प्रसाद को सहजा बताती है कि –“ सुजाता नाट्यकला में प्रवीण है। काफी प्रोग्राम्स भी देती थी। कुछ सालों के बाद उसे प्रोग्राम्स के बारे में पूछे तो जवाब देती है कि –“शादी होने के बाद ये सब कैसे होंगे।”[305] समाज यही समझता है कि - उस लड़की की शादी हो गयी। अपनी जिंदगी को खुशी से सँवार रही है। लेकिन उस संसारिक जीवन में दबी हुई उसकी कला और कला कोदबाने के सिलसिले में उस लड़की का मानसिक तनाव किसी को नहीं दिखाई देता है।”[306]“प्यार करते हैं..... तब तक ही। पत्नी बनने तक। तब से पति

बनने का अहंकार पनपने लगता है। उसकी कला की तारीफ कोई करते हुए दिखे तो पति का एक अपरिचित के रूप में रह जाना उसके लिए असहनीय है।"[307]

वोल्गा के'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में शेषगिरी द्वारा दूसरी शादी कर लेने के बावजूद रमा उषा को घर को बसाए रखने की बात कहती है। रमा के शब्दों में – "तुमने उससे तलाक की माँग क्यों की? वह तो मर्द है। उसमें लाखों कमजोरियाँ होती हैं। उसे गौर नहीं करना है। हमें ही समझौता कर लेना है। क्या ! पति को छोड़कर अकेली जिंदगी को काटना आसान है? बच्चों को क्या समझाओगी? अभी सेतुम्हारा नाम बदनाम होना शुरू हो गया है। किसको मालूम है कि भविष्य में कौन-सी समस्या उपजेगी।"[308]

परन्तु प्रिया जैसी सजग नारियाँ भी है जो ना ही ऐसी परंपराओं को अपनाती हैं और ना ही दूसरों को ऐसा करने देती हैं।

उपन्यास 'सहजा' में उपर्युक्त कथन के बिल्कुल विपरीत घटना–शेषगिरी की दूसरी शादी और तलाक के बारे में शारदा को उषा बताती है। इसे सुनकर शारदा पूछती है कि –"बच्चों को देने के लिए कहे तो ?"

"बच्चों को नहीं पूछता।"

"क्यों"

वह बच्चों को नहीं पूछता। उससे संभाला नहीं जाता। अगर बच्चों को पूछे तो दे दूँगी। लेकिन वे दो दिन में वापस आ जाएंगे। उनको पिता के साथ उतना लगाव नहीं है।"[309]

लेखिका वोल्गा यही समझाना चाहती हैं कि बच्चों की देख-रेख में माँ की जितनी सहनशीलता, आत्मीयता, प्यार एवं समझ होती है उतना पिता इन विषयों में उलझता नहीं। शेषगिरी जैसा पिता अपनी विलासिकता को प्राथमिकता देने वाला व्यक्ति है न कि अपना पारिवारिक धर्म निभाने वाला।

कई बार देखा गया है कि धर्म की विकृति सांप्रदायिकता की आड़ में जाकर पूर्ण रूप से दिखाई देती है। यह विकृति भी अधिकतर स्त्रियों को ही अपना शिकार बनाती है। अर्थात् प्रेम विवाह के समय भी स्त्रियों को ही अपने धर्म का परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जाता है। आधुनिक नारी इस तरह की बाध्यताओं को स्वीकार नहीं करती। उसे भले ही अपने प्रेम को त्यागना पड़े। वह अपनी अस्मीता के आगे किसी भी कीमत पर झुकना नहीं चाहती। वह इस धर्मान्दता को दबाना भी अच्छी तरह से जान गई है। कहीं-कहीं पुरुष भी स्त्री चेतना को पहचानकर उससे सहमत होते दिखाई देते हैं। 'आवां' उपन्यास में पवार नमिता से कहता है –"जिस औरत की अस्मिता की रक्षा के लिए उनके घर मर्द उन्मादी तांडव मचाने को आतुर हों, जरा वे इस स्त्री का मन टटोलकर तो देखें? सहमत है वह उनसे? क्या वह अपने स्व की लड़ाई कट्टरपंथियों और धर्मांधों के कंधों पर चढ़कर लड़ना चाह रही है।"[310]

'फिर से आई बहार' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा मनु-धर्म शास्त्र का ग्रंथ पढ़ती है। उसे लगता है कि स्त्री-पुरुष के बीच इतना अंतर रहे तो समाज में स्त्री को आदर कैसे प्राप्त हो सकता है? उसे आश्चर्य होता है कि –"पत्नी के रहते हुएया छोड़कर शादी करने वाले पुरुष को समाज में आदर मिलता है।"[311]

शारदा अपने अनुभव को बताती है - "अपने जान-पहचान का रंगय्या, पत्नी के होते हुए, अस्पताल में नर्स से शादी भी कर लेता है। रंगय्या के पीठ पीछे सभी बातें करते हैं लेकिन उसके सामने सब लोग झुक-झुककर सलाम क्यों करते हैं?कोई उसे प्रश्न नहीं किया कि अग्नि को साक्षी मानकर शादी करने वाली पत्नी के साथ यह अन्याय कैसे कर सकता है?"[312]

के.रामलक्ष्मी का 'मुझे जाने दो' (तेलुगु उपन्यास) में अमेरीका में स्थित रवि और बहु रानी दोनों सुंदरम्मा के साथ बुरा बर्ताव करते हैं। इससे खिन्न होकर सुभद्रम्मा घर छोड़कर हवाई-अड्डे पर पहुँच जाती है। रवि अपनी माँ से कियेगये बुरे व्यवहार को यादकर पछताने लगा है कि –"माँ के लिए गणपति मामा प्राणों से भी प्यार है। अगर कुछ अनहोनी घट गयी तो मैं अपने को माफ नहीं कर सकता।"[313]"मैंने

उसे धोखा दिया। कई उम्मीदों को लेकर आयी हुई माँ को मैंने पूरी तरह धोखे में रख लिया।""उसने मेरे साथ कौन-सी दुश्मनी की कि मैंने उसके साथ दुश्मन सा व्यवहार किया।"[314]"मैंने उसे अपनी 'माँ' कहकर किसी से परिचय भी नहीं कराया। अपने बेटे से उसे दादीमाँ नाम से बुलाना भी नहीं सिखाया। इस समाज में माता को माँ कहकर बुलाने के लिए शरमाने की क्या जरूरत थी। लेकिन मैं.... मैंने कैसा शर्मिंदगी का काम किया है।"[315]"गणपति मामा से आई चिट्ठियों को छिपाकर उसे गैर बना दिया। सगे मामा की मृत्यु की खबर छिपाकर उसे नौकरानी बना दिया। हमने उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। सभ्य लोग कोई ऐसा नहीं करते हैं।"[316]

वोल्गा के 'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में सुजाता का दूसरा महीना चल रहा है। गर्भपात के डर से पति को फोन पर बुलाती है तो पति कहता है कि मुझे ये सब मालूम नहीं। मैं नहीं आऊँगा।" सहजा सुजाता को अस्पताल ले जाती है। गभ्रस्राव के बाद सहजा फिर से उसके पति को अस्पताल आने के लिए फोन करती है तो पति पूछता है कि – पैसे कम पड़ गये क्या? मुझे ये सब कुछ मालूम नहीं। मुझे एक जरूरी काम है, शाम को घर जल्दी पहुँच जाऊँगा। आप ही उसे घर तक पहुँचा दीजिए।"[317]

शादी के नाम पर धार्मिक मंत्रों का उपदेश एवं पठन किया जाता है। शादी के बंधन का मतलब ही है कि – पति-पत्नी हर सुख-दु:ख में साथ रहने का धर्म निभाएँगे। यह तो केवल कोरे पठन मात्र रह गया।

वोल्गा के 'सहजा' (तेलुगु उपन्यास) में नायिका सहजा भी दूसरों की जिंदगियों को सँवारना चाहती है। इस कोशिश में शारदा को पति रामाराव से हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देती है। बिना बताये शारदा का बच्चों के साथ अमरावती पिकनिक प्रोग्राम पर जाने की बात को लेकर रामाराव बौखला उठता है कि –"मुझसे पूछे बिना तुमने यह काम क्यों किया?""मेरे घर में मेरी मर्जी ही चलनी चाहिए। मैं इस घर का मालिक हूँ।"[318]

इन बातों को सुनने के बाद सहजा शारदा से पूछती है कि– "वह तुमको नौकरानी मानते हुए, तुम्हें उसके प्रति प्यार न होते हुए तुम......दोनों कैसे जीवन बिता रहे हैं?"

उपर्युक्त संदर्भ के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में बहुत कम नारियों में चेतना दर्शित होती है। शेषगिरी की दूसरी शादी से उषा पर कोई असर नहीं होता। उसी विषय को शारदा से बताती है - "तुम्हें नहीं मालूम है कि मैं तो पहले से ही मानसिक तौर पर अकेली रही। उनकी और मेरी दुनिया हमेशा से अलग है। उनको ही मैं अपनी दुनिया बनाने की कोशिश की थी। लेकिन मैं तो कामयाब नहीं हो पाई। इसीलिए मुझे उतना दुःख नहीं हो रहा है।"[319]मुझे ऐसा लगता है कि जब पति में प्यार नहीं है उसके साथ रहने के बजाय अकेली रहना बेहतर है।"[320]

हमारा देश धर्मनिरपेक्ष देश है जिसमें सामाजिक संबंधों को अधिकाधिक महत्व दिया गया है परन्तु आज यह स्थिति आ गयी है कि हमारे पड़ोस में किसी की मृत्यु, हादसा, बिमारी, शादी-ब्याह, अथवा किसी भी प्रकार का कोई सुख या दुःख आ जाये तो हमें कानों-कान खबर नहीं होती।

समकालीन उपन्यासों में संयुक्त परिवार और न्यूक्लीयर परिवारों में धार्मिक परंपराओं के आधार पर होने वाले छोटे-बड़े परिवर्तनों को दर्शाने का प्रयास भी किया गया है। वैसे तो मूल रूप से भारतीय मानसिकता संयुक्त परिवार प्रथा पर ही विश्वास रखती है। परन्तु आधुनिकीकरण के कारण संयुक्त परिवार में स्वार्थ ने अपना घर कर लिया है। इस स्वार्थ के कारण परिवार में अशांति का माहौल बना रहता है। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, प्रतियोगिता आदि जैसी भावनाओं ने संयुक्त परिवार प्रथा को जर्जर करके रख दिया है। ऐसी परिस्थिति में परिवार का विघटन ही एकमात्र रास्ता रह जाता है। इस सबका सबसे बड़ा कारण है परिवार के सदस्यों में समान रूप का धनोपार्जन का नहीं होना अतः आर्थिक असमानता ने ही सबसे अहम भूमिका निभाई है, इस छोटे परिवार की व्यवस्था के लिए।चर्चित उपन्यासों में विघटित परिवारों की अवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत उपन्यासों में आधुनिक नारी की धार्मिक चेतना का जीवंत वर्णन दृष्टिगोचर होता है। कहना ना होगा कि धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्री जाति ने धावा बोल दिया है। यहाँ पर पुरुष का नहीं बल्कि भगवान का शासन चलता है। एक तरह से धर्म

के बंधनों को तोड़ना भगवान की अवज्ञा हो सकता है। परन्तु नारी ने बुद्धिजीविता के कारण इस आशंका को तोड़ लिया है। वह यह जान चुकी है कि धर्म के ये नियम भगवान ने नहीं बल्कि उसकी आड़ में पुरुष ने ही गढ़े हैं। यही कारण है कि वह निडर और निस्संकोच होकर इन अनावश्यक बंधनों को तोड़कर आगे निकल जाना चाहती है।

4.5 बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासों में नारी की सांस्कृतिक चेतना

भारतीय समाज में स्त्री अपने घर परिवार से अलग कोई अस्तित्व ही नहीं रखती। उसे सांस्कृतिक मर्यादाओं का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। घर के बाहर की दुनिया में उसे उत्पीड़न, दमन और शोषण का शिकार बनते देर नहीं लगती। इसीलिए वह युगों से अपनी सुरक्षा के लिए पिता, भाई, पति और पुत्र आदि के संरक्षण में रहना चाहती है। इतना ही नहीं प्रेमिका और रखैल के रूप में ही सही वह पुरुष का रक्षा कवच पहनना चाहती है। और जब पुरुष असमर्थ, होने पर वह अपने आपको असहाय समझती है, यदि जीवन में पुरुष की छत्रछाया न हो या वह पुरुष हिंसक हो तो भी इन दोनों स्थितियों में अंत में स्त्री ही अपने आपको असुरक्षित समझती है। अतः वह इसी खोज में रहती है कि उसे कोई मिल जाये, जो उसकी सुरक्षा कर सके।

4.5.1सांस्कृतिक चेतना के प्रति नवीन दृष्टिकोण

नारी में सांस्कृतिक चेतना के लक्षण दर्शित होने लगे हैं। कहीं-कहीं निम्न-मध्य परिवार में परिवार के बड़े-बुजुर्ग सदस्य प्राचीन संस्कृति के रंग में ही रंगे हैं। ये लोग अपनी सांस्कृतिक जटिलताओं को बदलने में असमर्थ हैं। क्योंकि यह वर्ग सर्वाधिक रुढ़िग्रस्त होता है। परन्तु आज स्वतंत्रता के समाज सुधार आंदोलनों के कारण समय बदल रहा है। आज की नारी में सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई है। निम्न वर्ग से अधिक मध्यम वर्ग की महिलाएँ सांस्कृतिक अधिकारों की ओर अधिक सचेत हैं। उच्च वर्ग की महिलाएँ तो इससे दो कदम आगे ही निकल गयी हैं, वे तो अब संस्कृति को ढकोसला कहने से भी पीछे नहीं हटती।

उपर्युक्त परिवर्तन का कारण सामाजिक सुधार आन्दोलन ही है। इस समय से सशक्त उपन्यासकारों ने नारी की सांस्कृतिक चेतना को उदात्त रूप से वर्णित किया है। नारी की चेतना जो पहले निद्रावस्था में थी अब धीरे-धीरे वह सचेत होने लगी है।

इसी चेतना के चलते वह अपने वैवाहिक जीवन के प्रति भी एक नवीन दृष्टि रखती है। आज महिलाएँ मात्र एक साज-सज्जा की वस्तु बनकर नहीं रहना चाहती हैं। 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा विवाह की पारंपरिक अवधारणा का उपहास करती है। वैवाहिक संबंध जुड़ने के पहले जिस ढकोसले और रूढ़िगत मान्यताओं को काफी गंभीरता से लिया जाता है। लड़के का लड़की के घर आकर उसे देखना अर्थात् आधुनिक समय में उसे 'इंटरव्यू' कहा जा सकता है कितना हास्यास्पद हो सकता है, उसका वर्णन वर्षा के शब्दों में –"बैठक में आ गायत्री के निर्णायक मंडल के सदस्यों को नमस्ते करती और इंगित कोने पर वर्षा के साथ आकर बैठ जाती। पढ़ाई, रसोई, बुनाई को लेकर तीन चार सवाल होते। एक बार एक संभावित ननद ने विवाहित जीवन में गायन की उपयोगिता रेखांकित की थी। उसने बाथरूम सिंगर की अपनी विनम्र पृष्ठभूमि के बावजूद पर्याप्त मीठे सुर में 'हेरी मैं प्रेम दीवानी सुना दिया'।"[321]

निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में भी आज आधुनिक सोच-विचार वाले वातावरण में बहुत सारे माता-पिता अपनी पुरानी सांस्कृतिक पद्धति को मानने के लिए तत्पर हैं। वे नयी संस्कृति को अपनाना ही नहीं चाहते। वे उन्हीं पुरानी घिसी-पिटी परंपरा का दामन पकड़कर चलना चाहते हैं। ये रूढ़िवाद के चंगुल में इस कदर फंस गये हैं कि बाहर निकलने का मार्ग इनके लिए आसान नहीं है।

भारतीय संस्कृति संयुक्त परिवार प्रथा पर टिकी हुई थी। संयुक्त परिवार, बड़े-बुजुर्गों का सम्मान, आत्मीयता से उनकी देखरेख, उनके प्रति श्रद्धा व प्रेम, छोटों के प्रति असीम स्नेह, यही सब हमारी सुदृढ़ संस्कृति की नींव थी। यहाँ तक कि स्त्री को भी घर की चार दिवारी में सम्मान प्राप्त था। परन्तु जैसे-जैसे युग बीतते गये हमारी संस्कृति ढहती चली गयी और महिलाओं का सम्मान भी जाता रहा। अब परिवार विघटित होते गये। परन्तु हर चीज़ के दो पहलू होते हैं, इसी आधार पर प्रस्तुत

उपन्यास में निम्न संदर्भ व्यक्त किया गया है। 'फिर से बहार आई' में शारदा महसूस करने लगी कि घर में औरत का न होने से सूनापन छा जाता है। "छः बच्चों के पिता राजाराव की ही इतनी दयनीय स्थिति होती... एक बच्चे होने वालों की क्या दशा होगी, इसीलिए न ! अपनी संस्कृति से भिन्न लगने वाले ये वृद्धाश्रम हर शहर में उग रहे हैं।"[322]

उपर्युक्त पंक्तियों में उपन्यासकार ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि – इस जमाने में राजाराव जैसे पुरुष भी है जो अधिक बच्चों के रहते भी अपनी पत्नी की अनुपस्थिति उन्हें परेशान कर देती है। वे सोचते हैं कि स्त्री के बिना घर-आंगन सूना हो जाता है।

4.5.2सांस्कृतिक रूढ़िगत परंपराओं का विरोध

भारतीय संस्कृति के विरुद्ध आज शहरों में वृद्धा-आश्रमों की व्यवस्था बड़ी तेजी से बढ़ रही है। प्राचीन समय की सोच यह थी कि घर-परिवार, संतान आदि पर बड़े-बुजुर्गों का हाथ होना आवश्यक था। परन्तु आज उन्हें घर से बाहर वृद्धा-आश्रम में रखने का प्रचलन चल रहा है। उनकी सेवा तो दूर प्रतिदिन उनसे मिलने भी नहीं जाया जाता। "जमाना कितना बदल गया।'फिर से बहार आई' (तेलुगु उपन्यास) में भारती कहती हैं कि - "कई लोगों की यही सोच है कि - घर में बड़े लोगों का न रहना है। बड़े लोग बहुत ही रूढ़िवादी हैं। बड़ों की बातें कूड़े के बराबर हैं। उनके न रहे तो घर साफ-सुथरा रहता है। वे हर मामले में टाँग अड़ाते हैं।"[323]

"बड़ों का पीछा छुड़ाने का एक रास्ता है – वृद्धाश्रम। बच्चों के होते हुए भी अनाथ-सा, खाने के लिए किसी पर निर्भर होकर, हफ्ते या महीने में आने वाले बच्चों के लिए इंतजार करते हुए जिंदा रहना है।"[324]

पिता राजाराव शारदा का समर्थन करते हुए, बेटे के विरुद्ध हो जाते हैं। क्रिया-कर्म के मामले में भी वे स्त्री के पक्ष में हैं। 'फिर से आई बाहर' (तेलुगु उपन्यास) में शारदा का उदात्त रूप दृष्टिगोचर होने लगता है। राजाराव की बेटी शारदा किसी भी

मामलेमेंलड़कों से कुछ पीछे या कम नहीं है। वह पुरुषों से आगे निकल जाना चाहती है। निम्न पंक्तियाँ इस विचार को अभिव्यक्त करती हैं–"पिता जी! वसीयतनामा में इस घर को वेकडि के नाम पर लिख दीजिए। लेकिन इस में एक विषय जोड़िए। आपकी क्रिया-करम मैं करुँगी। मुझे इस प्रकार आपका ऋण चुकाने दीजिए। बेटों से न होकर बेटी से पिता की चिता जलाने पर अगर महा पाप हो तो उस पाप का भागीदार मैं बनूँगी।"[325]

मु.भारती के 'फिर से आई बहार' (तेलुगु उपन्यास) में भुजंगराव की बेटी इंदिरा पिता से प्रश्न करती है कि -"लोगों में लड़की और लड़का समान मानने वाली मानसिकता को बढ़ाना है। लोगों में ऐसा विश्वास घर कर गया है कि चिता जलाने के लिए बेटे का रहना जरूरी है। पुनर्जन्म या नरक लोक से मुक्ति पाने के लिए बेटे का होना जरूरी है। स्वर्ग-नरक के बारे में तो मुझेमालूम नहीं। जिसके बेटा न हो तो उस घर में लड़की को पिता की चिता जलाना क्या गलत है? "

भुजंगराव इसके जवाब में कहता है कि –"यह समस्या केवल तुम्हारी ही नहीं है? उन सब माता-पिताओं, जिनके बेटे नहीं हैं। मैं तो इसके बारे में गंभीरतापूर्वकसोच रहा हूँ। ऐसी कई समस्याएँ हैं।"[326]

"मेरी चिता को तुम ही जलाना।"[327]

उपर्युक्त उद्धरण से लेखिका भारती ने लड़कियों में और पिता के रूप में पुरुष की मानसिकता में समय के अनुसार व्यवहार, व्यवस्था और मानसिकता मेंआये बदलाव को सूचित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री चेतना अपनी चर्मोत्कर्ष अवस्था में पहुँच गयी है। सुनंदा विमला वेन की अर्थी को अपना कंधा देने के लिए किसी प्रकार की हिचक महसूस नहीं करती। अब उसकी मनस्थिति ऐसी है कि यदि इस समय उसे किसी ने रोका तो वह उससे बहस करने से भी पीछे नहीं हटेगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि कर्मकाडियों के द्वारा पाप-पुण्य की सीमारेखा को लाँघने से वह पीछे नहीं हटती।

सुनंदा के साहस का एक जीवन्त उदाहरण दृष्टव्य है। 'आवां' में जब पाटिल विमला बेन से कहता है कि –"औरत के लिए मय्यत का कंधा देना शास्त्र-सम्मत नहीं?"

प्रत्युत्तर में विमला बेन ने कहा कि निर्दोश स्त्री की नृशंस हत्या करना शास्त्र सम्मत है?" कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र-सम्मत है, क्या नहीं ?...

"मैं कंधा किसी औरत की मय्यत को नहीं दे रही, उस स्त्री चेतना को दे रही हूँ, जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है। मैं हर जाति, धर्म, वर्ग की स्त्रियों का आवाह्न करती हूँ कि वे सबके सब शमशान चलें और बारी-बारी से सुनंदा की मय्यत को कंधा दें।"[328]

वह सोचती है कि ये पुरुष तो बहुत ही संकीर्ण मस्तिष्क वाले हैं अतः ऐसी संकीर्ण मानसिकता वाले पुरुष समाज से वह कुछ नहीं सीखना चाहती। इस प्रकार विमला बेन की मृत्यु ने सुनंदा रूपी स्त्री जाति में एक नवीन चेतना को जन्म दिया। आधुनिक संस्कृति में यह बदलाव क्रांति उत्पन्न करेगा। यह बदलाव आने वाली पीढ़ी के लिए एक सशक्त उदाहरण और प्रेरणा है।

'फिर से आई बहार' उपन्यास में शारदा अपने गले में से मंगलसूत्र निकालना चाहती है। यह एक संवेदनशील कदम है, जिसे निकाल देने के लिए शारदा ने पूरे-सात दिन लगा दिये । मन में काफी अंतर्मथन होने लगता है। आखिर पति की सलामती का प्रश्न - शारदा को नींद में घबराहट होने लगती है। इन्हीं ख्यालों में सो जाती है।नींद में किसी की आवाज सुनाई देती है कि-"जब यह नहीं वह किसलिए? माथे पर लगी बिंदी को मिटा रहा है।"

कौन कौन ?

इनसे क्या मतलब..... इसे दे दो।

इनके साथ क्या काम है। इधर दे दो

अरे रे रे - 'बिंदी के बिना औरत' समझकर शारदा मंगलसूत्र आँखों से लगाकर नमन करने लगी।" रामम की आवाज सी सुनाई दे रही है। अचानक नींद खुल जाती है तो मुँहसे - श्री आंजनेय, प्रसन्नांजनेयम, प्रभा दिव्य कायम, भजे वायु पुराण का श्लोक अनायस ही निकल गया। बचपन में दीदी बताती थी कि जब भी डर लगे तो इस श्लोक का पठन करो। उसे आज भी याद कर लेती है।"[329]

आखिर एक दिन वह अपनी इस संवेदनशीलता से बाहर निकलने में कामयाब हो जाती है। मंगलसूत्र धारण करने का प्रचलन भी कर्मकाण्डी पुरुष समाज की ही एक चाल है। केवल स्त्रियों के गले में ही विवाह का प्रमाण हो यदि ऐसा है तो पुरुष भी तो उस विवाह के बराबर के हिस्सेदार हैं, तो फिर उनके गले में यह बंधन बाँधने की आवश्यकता नहीं पड़ती। रीति-रिवाज, अंधविश्वास, आदि के कानून या नियम केवल स्त्रियों के लिए ही क्यों बनाये गये हैं।

4.5.3 संस्कृति के नाम पर नारी पर पुरुष अत्याचार

'जंगल की पुत्री' (तेलुगु उपन्यास) में भी संस्कृति के नाम पर पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों का विस्तृत वर्णन हुआ है। अहंवादी और लालची पुरुष संस्कृति, रीति-रिवाज आदि की आड़ लेकर नारी पर अत्याचार करता है। इसका जीवन्त उदाहरण देखिए, जब पद्मा के पति की दूसरी शादी होते हुए भी, वह दहेज के लिए उसपर अत्याचार करता था। हर दिन कुछ नयी उलझनें पैदा करता था कि - "शादी में अच्छे कपड़े न देने की बात को लेकर सताता था। दहेज नहीं तो कम से कम घर के सामान तो दे सकते थे। जब तक सामान नहीं लाओगी तब तक तुम अपने घर पर ही रहो। जब तुम्हार भाई सामान दिलाएगा तब ही मेरे पास आना। वह उसे रोज पीटता था।"[330]

पद्मा बताती है कि–"माडिया गिरिजन स्त्रियों के साथ हमारे दल की महिला कामरेड उनकी कुप्रथाओं को समझाने लगी। अधनंगे रहने की मजबूरी, पल-पल अपमान सहना, बड़ों को न समझा जाने की असमर्थता, अनचाहे ब्याह कर जीवन भर घुट-घुटकर मरना, पति के जीवित रहते भी स्त्री को विधवा की तरह रहना पड़ता है।

दोनों में वैचारिक अंतर, प्रथाओं के नाम पर स्त्री पर हो रहे अत्याचार आदि के बारे में उन्हें समझाती थी।"[331]

माडिया गिरिजन लोगों में मूर्खता एवं मूढ़ता इतनी प्रबल है कि "प्रसव के समय में भी कुछ दवा-दारू नहीं देते। पुजारी पर निर्भर होते हैं। पुजारी पीढ़े पर अनाज के दो-दो दाने अलग-अलग करते हुए मंत्र-जाप करते रहते हैं। इनका विश्वास है कि दवा-दारू ली तो भगवान कुपित होता है। भ्रूण गिरने तक नाभी से नस को काटकर बच्चे को न माँ से अलग करते हैं न ही माँ को पानी तक पिलाते हैं।"[332]

"एक बार माडिया औरत का प्रसव तो हुआ लेकिन अंदर का माँस नहीं गिरा। इसीलिए नाभी से जुड़े नस काटकर बच्चे को न अलग किया और न साफ किया। भ्रूण के न गिरने के कारण उस औरत को बैठे ही रहना पड़ा और उसे पानी तक नहीं पिलाया।"[333]"रीति-रिवाजों और अंध-विश्वास के कारण माँ और बच्चा दोनों यातनाएँ सह रही हैं।"[334]

4.5.4 संस्कृति की व्यक्तिगत धारणा

'निष्कवच' उपन्यास में राजी सेठ ने केवल दो वक्तव्यों द्वारा यह समझाने का प्रयास किया है कि 'निष्कवच' का अर्थ क्या है - एक तो वह जहाँ सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाया नहीं जाता और दूसरा वह जो किसी विशेष नियम पर अपने आपको नहीं बाँध ले अर्थात् जो प्राचीन रूढ़िगत सांस्कृतिक पद्धतियों को स्वीकार न करे। अनुष्ठान करने के कारण है कुछ न कुछ प्राप्त करने की लालसा जैसे - दया, परोपकार, प्रेम आदि। धार्मिक या सामान्य किसी प्रकार का भी अनुष्ठान सांस्कृतिक चेतना से ही संबंधित है। सांस्कृतिक मूल्य के अभाव में मानव की सार्थकता समाप्त हो जाती है।

परन्तु आज आधुनिक व्यवस्था में सांस्कृतिक मूल्यों को उदासीनता से देखा जा रहा है, इतना ही नहीं उसकी अवहेलना की जा रही है। आज का स्वार्थी मानव झूठे सांसारिक आकर्षण की दुनिया में डूबता जा रहा है। झूठी इज्जत के लिए वह अपना सब कुछ दाँव पर लगाने से भी पीछे नहीं हटता। आज अर्थ के पीछे मनुष्य इस कदर पागल हुआ जा रहा है कि, उसे पाने के लिए उसे किसी की जान की भी परवाह

नहीं। समाज में ऊँचा स्थान पाने के लिए भी यही स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है। धन, शौर्य, ऐश्वर्य पाने के लिए वह सदा प्लानिंग करता रहता है। विभिन्न प्रकार के हथकंडों को अपनाता है। इससे चाहे उसकी स्वयं की शांति ही क्यों न भंग हो। समाज में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिलसिला चलता आ रहा है। जो जितना अधिक कपटी है उतना अधिक बलवान होता जा रहा है। आज बाहुबल या ज्ञानबल जैसे संस्कारी शब्द विलीन हो गये हैं। इन्हें तो सांस्कृतिक मूल्य का अर्थ ही नहीं पता। इन्हें तो फरेब, धोखा, दबाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि के मूल्य ही मालूम है।

'निष्कवच' उपन्यास में नायिका नीरा प्रेम का गला घोंट कर उसकी हत्या कर देती है। धन संपत्ति ऐशो-आराम के लालच में वह प्रेमी बासू को एक क्षण में ठुकरा देती है। इस प्रकार वह दूसरे व्यक्ति से विवाह करने के लिए तैयार हो जाती है। ऐसा करके वह संस्कृति का भी गला घोंट देती है। शायद उसकी इस मनोवृत्ति के कारण उसके माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया था। उपन्यासकार के कहने का तात्पर्य यह है कि समाज की इस कदर विकृति मनुष्य को पतन के कगार पर ही ले जाती है। मनुष्य का प्रथम कर्तव्य तो अपने समाज का मजबूत गठन करने से है। अतः समाज से ऐसे नासूर को निष्कासित करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि, यह सांस्कृतिक धर्म का ही 'निष्कवच' है।

'मुझे जाने दो' उपन्यास में संस्कृति का एक पारिवारिक रूप दिखाया गया है। इसमें संस्कृति का पालन करना व्यक्ति विशेष पर आधारित होता है। जो व्यक्ति जिस प्रकार संस्कृति का आकलन करता है उसी के आधार पर उस पर अमल भी करता है। इसी का एक उदाहरण चर्चित उपन्यास में दर्शित होता है। अमेरीका में अपने बेटे रवि और बहू दोनों मिलकर माता सुंदरम्मा से सगे मामा गणपति की मौत की खबरकोभी छिपाते हैं। सुंदरम्मा जल्दी से जल्दी भारत लौटना चाहती है। किसी की सहायता के बिना भारत वापस आना बहुतमुश्किल है इसीलिए वह अपने पड़ोसियों से सहायता लेकर जैसे-तैसे एयरपोर्ट पहुँच जाती है। बेटे की लाख कोशिश के बाद भी वह रुकने के लिए कतई राजी नहीं होती। वह अपने बेटे से कहती है –"मैं तो तुम्हारे पिता के बिना जिंदगी की कल्पना नहीं कर पाती थी। लेकिन कर लिया। गणपति के

बिना भी जीवन की कल्पना नहीं कर पाती। अब मैं उसकी कल्पना कर सकती हूँ।""मेरी जमीन ही धरती माता है। वह तो मुझ पर असीम आत्मीयता बरसाएगी। रवि! कल ही मुझे मालूम हुआ कि कोई रहे या न रहे मैं जिंदा रह पाऊँगी। आपकी जिंदगियाँ अलग हैं, मूल्य भिन्न हैं। आप उनको सँवार लेना..... मुझे अपनी राह पर जीने दो.... आप रुपयों में विश्वास रखते हैं। मैं लोगों में विश्वास रखती हूँ।.... जाओ। बहू अकेली है।"[335]

'आवां' उपन्यास में नमिता ने जैसे प्राचीन रुढ़िग्रस्त संस्कृति का तख्ता पलटने की जैसे ठान ली है। क्रिया-कर्म जैसे गंभीर माहौल में भी वह विकृत होती संस्कृति का खुल आम विरोध करती है। चर्चित उपन्यास में देवीशंकर पांडे की मृत्यु के बाद उनके क्रियाकर्म में नमित की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार होती है। कि –"चुन्नू तो अभी बहुत छोटा है । वह किस प्रकार यह क्रिया-कर्म कर पाएगा।"[336] एक तरह से नमिता जिद्द करके क्रिया कर्म करने बैठ जाती है।

उसे देवीशंकर ने कई बार कहा था कि, मेरी बिटिया ही मरने पर मेरा क्रियाकर्म करेगी। वह उनकी एक लायक बेटी है इसीलिए हर काम के लिए वह समर्थ है। नमिता उनके लिए दस बेटों के बराबर है।

यह तो नारी की सांस्कृतिक चेतना का सशक्त उदाहरण है। ऐसे विषय में दुनिया से लड़ना आसान होता है पर अपने परिवार वालों से लड़ना काफी मुश्किल होता है।

सामाजिक परंपरा जब समय के साथ परिवर्तित नहीं होता तो वह रूढ़ि बन जाती है। अतः समाज के नियम, मान्यताएँ, आदर्श आदि को भी समय बीतते बदल जाना चाहिए। स्त्रियों की शिक्षा और उसकी आर्थिक निर्भरता नारीवादी आंदोलनों के माध्यम से जागृत हो गयी है। इस भावना ने पारम्परिक रूढ़ियों का विरोधी बना दिया है।

परन्तु इसका एक और पहलू यह भी है कि परिवार विघटित होते चले जा रहे हैं और परिवार की नैतिकता को ठेस लगने लगी है। आज की आधुनिक नारी पुराने रीति-रिवाजों को ढोने के लिए बाध्य नहीं है। वह स्वतंत्र रूप से अपना भला-बुरा सोच

सकती है और उस पर अमल भी कर सकती है। उपन्यास 'कठगुलाब' में असीमा के पिता दूसरी स्त्री के मोहपाश में बंध जाते हैं। इस प्रकार वे अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं। इसीलिए असीमा की माँ भी उनसे अलग ही रहती है। वह स्वाभिमानी है इसीलिए कानूनन अधिकार होने के बावजूद भी अपने शौहर से भरण-पोषण का खर्च स्वीकार नहीं करती। क्योंकि वह यह सोचती है कि यदि उसके शौहर के साथ रहना ही नहीं तो खर्च क्यों लेना? यहाँ पर स्त्री का आत्मसम्मान परिलक्षित होता है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जागृत हो गई है। अर्थात् वह किसी भी रूप में अपने पति की संरक्षणता या सहायता नहीं चाहती।

स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण के लिए प्राचीन रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध कर रही है। वह निरर्थक सांस्कृतिक मान्यताओं को स्वीकार नहीं करना चाहती।

'फिर से आई बहार' (तेलुगु उपन्यास) में मंगलसूत्र की उन तीन गाँठों पर करारा व्यंग्य किया गया है। नीरजा स्वयं अपनी शादी के बारे में शारदा को बताती है कि –"तुम्हें मालूम है न ! मैं और दिनेश, हम दोनों शादी नहीं किये थे। हम दोनों मिलकर साथ गुजारा कर रहे हैं।"[337]

शारदा–"हाँ! शादी कर लेंगे।"

नीरजा–वही गलत है। कुछ दिनों तक साथ-साथ रहेंगे। लिविंग टुगेदर का मतलब है कि बिना शादी किये कुछ दिन साथ बिताएंगे। जिस दिन शादी की जरूरत महसूस करेगे, तब सोचेंगे कि शादी करनी है या नहीं। जरूरत नहीं है तो ऐसे ही साथ-मिलकरबिताएंग। क्या! तुम्हें ठीक नहीं लगा।"[338]

नीरजा शारदा से प्रश्न करती है कि –"हाँ ! तुम्हारी शादी हुई उसके इतने निशान है। पुरुष की शादी होने के कौन से निशान हैं ?स्त्री के लिए शादी इतना महत्वपूर्ण हो तो पुरुषों के लिए क्यों नहीं?"[339]

उपरोक्त कथन द्वारा लेखिका भारती कहती है कि आज की नारी शादी को लेकर प्रश्न कर रही है। सही रास्ता अपनाने में कई सदियाँ लग जाती हैं लेकिन गलत रास्ता अपनाने में पलभर का समय काफी है। 'जैसी चाह- वैसी राह'।

विवाह-बंधन के साथ समाज एवं कानून दोनों जुड़े हैं। विवाह-बंधन में बंधे बिना स्त्री-पुरुष का साथ मिलकर जीना आज के युग की परिवर्तित संस्कृति है। यही संस्कृति स्त्री से सवाल कर रही है कि शादी-शुदा स्त्री पर ही कई अत्याचार हो रहे हैं। जो स्त्री विवाह बंधन में बंधे बिना समाज से सुरक्षा कैसे प्राप्त कर सकती है? 'छिन्नमस्ता' में प्रिया सिंदूर के बारे मेंप्रश्न करती है –"माँग में सिंदूर भरने मात्र से पत्नी बन जाती है।" वास्तव में वे गाँठें क्या पति-पत्नी के संबंधों को बाँधे रखने में वह शक्ति है। नीरजा मंगलसूत्र केबारे मेंप्रश्न करती है–"गले में मंगलसूत्र के न होने मात्र से पति पति न माना जाता है?"[340]अत: शारदा जो नीरजा की आधुनिक चेतना से अत्यधिक प्रभावित होकरअपने मन को मना लेती है कि – तीन गाँठ के बंधन से स्त्री के जीवन पर इतना आधिपत्य चलाने की जरूरत नहीं।"[341]

सांस्कृतिक चेतना का और एक सशक्त उदाहरण द्रष्टव्य है। सुनंदा की शादी को लेकर नमिता से कही गयी पवार की बातें इस प्रकार की हैं –"तुम्हें नहीं लगता कि सुनंदा जैसी स्त्रियों की अडंगेबाज चेतना ने समाज को सर्वदा नयेअसंतुलन में झोंक दिया है।"[342]

'मुझे चांद चाहिए' में पवार का कहना है कि –"परस्परता विकसित होनी चाहिए थी। संतुलित। हो रहा है उल्टा। घर टूट गए। टूटेंगे। त्रिशंकू की संतानें अपनी अस्तित्व के अपरिचय से जूझ रहीं। समस्या विकराल से विकराल होती जा रही। सुनंदा की बेटी उसी में से होगी।"[343]

"नमिता को पवार की बातें अच्छी नहीं लगी तो प्रश्न करती है कि - असंतुलन कैसा?गठबंधन परंपरा को ध्वस्त होने की जिम्मेदारी क्या सिर्फ औरत की है?"[344]

"जननी होना उसे गुलाम बनाए रखने की शर्त हो तो मजबूरी से स्वयं को मुक्त कर लेना उसकी अनिवार्यता नहीं। क्यों झेले वह सब जो उसे मनुष्य की श्रेणी से अपदस्थ करता हो?"[345]

4.5.5 स्त्री की उदात्त सांस्कृतिक चेतना

'कुंती-पुत्रिका' उपन्यास में स्त्री का अपने गर्भ पर पूर्ण अधिकार जताने की नवीन परंपरा का वर्णन किया गया है। यहाँ तक कि वह अपनी बदनामी के डर से गर्भ को समाप्त करने के लिए तैयार नहीं। नीलिमा अनब्याही गर्भवती हो जाती है। इस पर उसके पिता सीताराम जी सामाजिक मर्यादा के बोझ तले दबने लगते हैं। वे सोचते हैं कि ऐसी स्थिति में वे समाज को कैसे मुँह दिखाएँ। इसीलिए वे बेटी को गर्भपात कराने को बाध्य करते हैं। परन्तु नीलिमा इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती और विरोध में कहती है –"स्त्री एक ही मर्द के प्रति अपना मन समर्पित करती है। जिंदगी भर उसी की आराधना जिंदगी भर करती है। साड़ियों की तरह औरत हर बार जीवन साथी को बदल नहीं सकती है। आत्मा को धोखा देना मुझे मालूम नहीं। भ्रूण-हत्या करके, दुनिया के सामने अपने को नादान कुँवारी साबित कर पराये मर्द को धोखा देना मुझे पसंद नहीं। इससे बदतर और घटिया हरकत और कुछ नहीं हो सकती।"[346]

'कुंती पुत्रिका' और 'मुझे चांद चाहिए' उपन्यास में इक्कीसवीं सदी की स्त्री की सांस्कृतिक उदात्त चेतना का साहसिक और मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कुंती बिनब्याही गर्भवती होने के बावजूद श्रीधर से शादी का प्रस्ताव ठुकरा देती है। वह समाज की बिलकुल परवाह नहीं करती है। वह सोचती है कि यह सब समाज के ढकोसले मात्र हैं। और तो और वह अपने भविष्य को लेकर भी भयभीत नहीं होती। उसे अपने आप पर पूर्ण विश्वास होता है। वह सोचती है कि इस स्वार्थी और ज़ालिम समाज के डर से वह क्यों उस छोटे से शिशु की हत्या कर दे। उसे भी जीने का अधिकार है। अत: वह माँ होकर अपनी भावी संतान को कैसे समाप्त कर सकती थी। कुंती में एक उच्च और निडर मातृत्व के गुणों को उपन्यासकार ने बड़े ही आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। वह सोचती है कि उसका वह शिशु ही उसके जीने की प्रेरणा

ओर सहारा होगा। 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में भी वर्षा की स्थिति कुंती के समान ही है। वह भी संसार की परवाह किए बिना अपनी संतान को इस संसार में जन्म लेने का दृढ़निश्चय कर लेती है। यहाँ पर नारी जाति का स्वावलंबन बहुत अधिक मायने रखता है। यदि ये दोनों महिलाएँ शिक्षित नहीं होती तो इनका ये क्रांतिकारी कदम उठाना मुश्किल हो जाता। सामाजिक धर्म के विपरीत जाना बहुत कठिन होता है। परन्तु फिर भी वर्णित दोनों महिलाएँ अपने मानव और मातृत्व धर्म को बड़ी सक्षमता के साथ निभाती है।

आज की नारी के लिए और एक विडबंना की स्थिति उत्पन्न होती है जब वह बिनब्याही माँ बनती है। उसके नौकरी शुदा होने के बावजूद यह कहकर 'जच्चा और बच्चा के अधिकारों' से रोकने का प्रयास किया जाता है कि उसने कानूनन विवाह नहीं किया। 'मुझे चांद चाहिए' में किशोरी भौजी की बेटी सुनंदा दसवीं पासकर पैकिंग कंपनी में सेल्स गर्ल का काम करती है। जब सुनंदा बिनब्याही गर्भवती बनती है तो कंपनी की ओर से उसे एक नोटिस मिलता है। उसे अपनी शादी का प्रमाण पत्र दिखाना होगा यदि उसने ऐसा नहीं किया तो उसे प्रसव शुल्क नहीं दिया जायेगा। ना ही उसकी छुट्टियाँ मंजूर की जायेगी, उसे बिना वेतन ही रहना पड़ेगा। शादी-शुदा स्त्री ही इसका अधिकार रखती है। 'आवां'उपन्यास में इस गंभीर विषय पर आधारित संदर्भ प्रस्तुत है। सुनंदा इस नोटिस के प्रत्युत्तर में अपने अधिकारों का परिचय देती है कि –"सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है न कि कुंआरी माँ या ब्याहता माँ को लेकर समान घोर कष्टों को सहकर नहीं गुजरती? उसे आराम की जरूरत नहीं होती?माँ बनना किसी के निजी मामले की बजाय कंपनी का ममला कैसे हो गया?"[347]

असमय प्रसव के कुछ दिन बाद वह व्यक्तिगत विभाग में एक प्रार्थना-पत्र भेजती है –"बारह हफ्तों की छुट्टी तथा अन्य सुविधाओं के संदर्भ में (बच्ची के लिए भविष्य में क्रेच की सुविधा) सारी सुविधाएँ जो माँ कर्मचारी को मिलना है।"[348] इसके जवाब में नोटिस मिली कि आप तत्काल काम पर लौटिए। आप कुँआरी हैं। जचकी की सुविधाओं की कानूनन अधिकारिणी नहीं हैं।"[349]

इस संबंध में हर्षा सुनंदा से कहती है कि –"सुहैल से तुम प्यार करती थी, इस्लाम कबूल कर लेने में क्या दिक्कत थी?" इस के उत्तर में सुनंदा कहती है कि – "प्रश्न यह था दीदी, कि मैं औरों की सुख संतुष्टि के लिए अपने सच को घोंट दूँ या अपने 'स्व' के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूँ, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ.... सुहैल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं इस्लाम से करना होगा...या उसे हिन्दुत्व से?"[350]

सुनंदा फिर से बताने लगी कि –"मैंने सुहैल से स्पष्ट कहा था। माँ को मैं मना लूँगी। चलो हम कोर्ट मैरेज कर लें। दोनों ओर के आडम्बरों से मुक्त। माना नहीं। शर्त पहले नहीं थी, बाद में क्यों शर्त बने? समझौते को मैं भी राजी नहीं हुई। मुझे लगा दीदी, समझौते 'आदि' तो होते हैं, अंत नहीं।"[351]

उपयुक्त वर्णन में नारी की सांस्कृतिक चेतना का स्वार्थरहित रूप प्रस्तुत किया गया है। मातृत्वकीनवीनभावनाके प्रतिनारी का दृढ़तापूर्वक कदमआगे बढरहा है। अपनी संतान के आगे वह समाज की बदनामी को भी चुनौती देने के लिए तैयार है। नारी चेतना का उत्कृष्ट रूप इस संदर्भ में यथार्थपूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है।

अतः कहा जा सकता है कि अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों मेंनारी चेतना का सांस्कृतिक स्वरूप अपने चरमोत्कर्ष पर दर्शित होता है। कहना न होगा की नारी की सांस्कृतिक चेतना के पीछे सबसे बड़ा हाथ उसकी आर्थिक स्वतंत्रता है। आर्थिक स्वतंत्रता से ही वह स्वावलंबी होने का सौभाग्य प्राप्त करती है। यदि इस स्वालंबन में शिक्षा का भी समावेश हो जाये तो नारी चेतना और अधिक सफल होगी।

संदर्भ :-

1आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.509
2 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.509
3 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.21
4 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.54
5 निष्कवच – राजी सेठ, पृ.56

6 आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मुदिगोड सुजाता रेड्डी, पृ.148
7 दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकीबाला, पृ.117
8 सहजा – वोल्गा, पृ.20
9 सहजा – वोल्गा, पृ.20
10 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.189
11 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.189
12 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.189
13 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.120, 121
14 दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकीबाला, पृ.125
15 दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकीबाला, पृ.125
16 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.21
17 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.21
18 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.113
19 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.114
20 कलिकथावया बाईपास - अलका सरावगी, पृ.46
21 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.154
22 दिखता हुआ अतीत – इंद्रगंटि जानकीबाला, पृ.116
23 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.65
24 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.540
25 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.121
26 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.122
27 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.122
28 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.124
29 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.55
30 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.159
31 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.92
32 दिलो दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.15
33वसुधा - अक्तूबर, पृ. .99
34 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.157
35 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.139
36 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.176
37 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.167
38 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.167
39 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.21155
40 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.164
41 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.176
42 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.98
43 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.99
44 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.134
45 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.134
46 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.178
47 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.233
48 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.282
49 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.261
50 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.264
51 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.423
52 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.540
53 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.540
54 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.32

55 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.48
56 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.77
57 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.163
58मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.183
59 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.349
60 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.340
61 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.129
62 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.130
63 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.102
64 कलिकथा-वया-बाईपास - अलका सरावगी, पृ.102
65साठोत्तर हिन्दी उपन्यास प्रतिपाद्य और शिल्प – डॉ. टी.मोहन सिंह, पृ.72-73
66साठोत्तर हिन्दी उपन्यास प्रतिपाद्य और शिल्प – डॉ. टी.मोहन सिंह, पृ.72-73
67 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.290
68 सहजा – वोल्गा, पृ.62
69 सहजा – वोल्गा, पृ.63
70 सहजा – वोल्गा, पृ.63
71सहजा – वोल्गा, पृ.91
[72]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.107
[73]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.105
[74]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.277
[75]कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.101
[76]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.553
[77]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.553
[78]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.555
[79]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.556
[80]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.557
[81]कुंती पुत्रिका – डा. शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.184
[82]फिर से आई बहार – मुक्तेवी भारती, पृ.16
[83]फिर से आई बहार – मुक्तेवी भारती, पृ.5
[84]इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.124
[85]मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.453
[86]निष्वकवच – राजी सेठ, पृ.91
[87]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.361
[88]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.523
[89]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.523
[90]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.528
[91]आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.129
92उत्तरशती का हिन्दी साहित्य – डा. सुरेश कुमार जैन, पृ.60
93नारी – चिंतन – नयी चुनौतियाँ – डॉ. राजकुमारी, पृ.सं.40
94महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि - डॉ. अमर ज्योति, पृ.सं.46
95 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.77
96फिर से आई बहार – मु. भारती, पृ.49
97 आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी, पृ.46
98 आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.सुजाता रेड्डी,पृ.27
99 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.144
100 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.145
101 निष्कवचा – राजीसेठ, पृ.92

102 दिखता हुआ अतीत – इ.जानकी बाला, पृ.46
103 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.55-56
104 मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.157
105 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.111
106 फिर से आई बहार - मुक्तेवी भारतीय, पृ.18700
107 फिर से आई बहार - मुक्तेवी भारतीय, पृ.1
108फिर से आई बहार - मुक्तेवी भारतीय, पृ.
109 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.211
110 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.13
111 दिखता हुआ अतीत – इ. जानकी बाला पृ.77
112 दिखता हुआ अतीत – इ. जानकी बाला पृ.78
113 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.25
114 सहजा – वोल्गा, पृ.92
115छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.213
116 सहजा – वोल्गा, पृ.93
117 जंगल की पुत्री - वनजा, पृ.7
118 कठगुलाब - मृदुला गर्ग, पृ.210
119 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.17
120 जंगल की पुत्री –वनजा, पृ.4
121 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.17
122 जंगल की पुत्री –वनजा, पृ.7
123 जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.7
124 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.129
125 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.155
126 सहजा – वोल्गा, पृ.24
127 सहजा – वोल्गा, पृ.88
128 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.61
129 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.503
130 दिखता हुआ अतीत – इ.जानकीबाला, पृ.189
131 दिखता हुआ अतीत – इ.जानकीबाला, पृ.179
132 दिखता हुआ अतीत – इ.जानकीबाला, पृ.181
133 दिखता हुआ अतीत – इ.जानकीबाला, पृ.183
134 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.200
135 सहजा – वोल्गा, पृ.93
136दिखता हुआ अतीत – इं.जानकी बाला, पृ.
137 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.212
138 जंगल की पुत्री –वनजा, पृ.37
139 जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.41
140 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.214
141 सहजा – वोल्गा, पृ.152
142 जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.27
143 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.214
144 सहजा – वोल्गा, पृ.151
145निष्कवच – राजी सेठ, पृ.41
146 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.113
147 सहजा, वोल्गा, पृ.63
148 सहजा, वोल्गा, पृ.63
149आवां – चित्रा मुद्गल, पृ. 522

150 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.173
151 सहजा – वोल्गा, पृ.119
152 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.187
153 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.11
154 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ.11
155 आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – सुजाता रेड्डी, पृ.50
156 आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – सुजाता रेड्डी, पृ.50
157 मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.116
158 मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.116
159 मधुमती - गोविन्दराजु सीतादेवी, पृ.55
160 मरीचिका – डी.कामेश्वरी, पृ.118
161 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.242-243
162 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.406
163 सहजा – वोल्गा, पृ.123
164 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.70
165 दिखता हुआ अतीत –इं.जानकीबाला, पृ.175
166 दिखता हुआ अतीत – इं.जानकीबाला, पृ.175
167 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.145
168 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.200
169 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.200
170 सहजा – वोल्गा,पृ.135
171 सहजा – वोल्गा, पृ.135
172 सहजा – वोल्गा, पृ.135
173 सहजा – वोल्गा , पृ.135
174 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.181
175फिर से बहार आई– मु. भारती, पृ.146
176मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.219
177 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.43
178आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.187
179 दिखता हुआ अतीत – इं.जानकीबाला, पृ.172
180 दिखता हुआ अतीत – इ. जानकी बाला, पृ.146
181 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.97
182 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.97
183 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.62
184 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.243-293
185 नजरिए - अंपशय्या नवीन, पृ.91
186 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.430
187 दिखता हुआ अतीत - इ.जानकी बाला, पृ.77
188 छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान, पृ.126
189 जंगल की पुत्री – वजन, पृ.20
190 जंगल की पुत्री - वनजा, पृ.20
191 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.157
192 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.189
193सहजा – शारदा, पृ.57
194 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.276
195सहजा – शारदा, पृ.171
196 सहजा – शारदा, पृ.135
197 सहजा – शारदा, पृ.143

198 छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान, पृ.12
199 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.12
200 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.76
201 सहजा – शारदा, पृ.135
202मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.
203 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.76
204 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.87
205 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.91
206 सहजा – वोल्गा, पृ.89
207 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.91
208 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.171
209अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.131
210 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.115
211 दिखता हुआ अतीत – इं.जानकीबाला, पृ.183
212 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.117
213 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.406
214 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.298
215आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.219
216आकााश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं – मु.ु सुजाता रेड्डी, पृ.89
217 आवां – चित्रा मुद्गल पृ.500
218 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.144
219 मरीचिका- डी.कामेश्वरी, पृ.155
220 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.276
221 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.276
222 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.130
223 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.293
224 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.136
225 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.136
226 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.68
227 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.71
228 दिखता हुआ अतीत – इं.जानकीबाला, पृ.176
229 दिखता हुआ अतीत – इं.जानकीबाला, पृ.176
230 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.353
231 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.429
232छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान, पृ.218
233 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.37
234 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.20
235 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.37
236 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.20
237इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.258
243 कलिकथा वया बाइपास - अलका सरावगी, पृ.5
239 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.20
240 कलि-कथा : वया वाइपास - अलका सरावती, पृ.161
241 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.71
242 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.69
243 जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.12
244 जंगल की पुत्री – वनजा, पृ.2
245 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.77
246इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा, पृ.219

---

247 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.357
248 अडवि पुत्रिका – वनजा, पृ.15
249 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.133
250 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.133
251 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.457
252 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.358
253 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.133
254 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.181
255 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.182
256 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.201
257 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.71
258 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.230
259 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.69
260 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.69
261 फिर से आई बहार – मु.भारती, पृ.187
262 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.183
263छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.
264 दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.116
265 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.148
266 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.146
267 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.146
268 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.147
269 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.147
270 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.147
271 दिलो दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.71
272 आवां – चित्रा मुद्गल,पृ.121
273 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.121
274 सहजा – वोल्गा, पृ.93
275 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.308
276 फिर से बहार आई– मु.भारती, पृ.23
277 फिर से बहारआई– मु.भारती,पृ.24
278 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.112 व 113
279 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.113
280 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.113
281 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.113
282फिर से बहारआई– मु.भारती, पृ.108
283 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.397
284 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.395
285 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.163
286 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.163
287 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.164
288 सहजा – वोल्गा, पृ.143
289 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.216
290 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.216
291फिर से बहारआई– मु.भारती, पृ.27
292कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.108
293नारी चिंतन – नारी चुनौतियाँ – डॉ. राजकुमारी राडकर, पृ.41
294 मुझे जाने दो - के.रामक्ष्मी, पृ.170

---

295 मुझे जाने दो - के.रामक्ष्मी, पृ.170
296 मुझे जाने दो - के. रामलक्ष्मी, पृ.170
297 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.66
298 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.44
299 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.27
300 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.23
301 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकांता, पृ.32
302 मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.182
303 मुझे जाने दो - के.रामलक्ष्मी, पृ.180
304 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.212
305 सहजा – वोल्गा, पृ.128
306 सहजा - वोल्गा, पृ.129
307सहजा – वोल्गा, पृ.
308 सहजा – वोल्गा, पृ.119
309 सहजा – वोल्गा, पृ.92
310 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.113
311फिर से बहारआई– मु.भारती, पृ.12
312फिर से बहारआई– मु.भारती, पृ.13
313 मुझे जाने दो - के. रामलक्ष्मी, पृ.308
314 मुझे जाने दो - के. रामलक्ष्मी, पृ.308
315 मुझे जाने दो - के. रामलक्ष्मी, पृ.308
316 मुझे जाने दो - के. रामलक्ष्मी, पृ.309
317 सहजा – वोल्गा, पृ.131
318 सहजा – वोल्गा, पृ.141
319 सहजा – वोल्गा, पृ.93
320 सहजा – वोल्गा, पृ.152
321 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.24
322 फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.190
323फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.
324 फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.191
325 फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.200
326 फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.188
327फिर से बहारआई– मुक्तेवी भारती, पृ.
328 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.153
329 फिर से बहार आयी – मु.भारती, पृ.27
330 जंगल की पुत्री– वनजा, पृ.14
331जंगल की पुत्री– वनजा, पृ.
332 जंगल की पुत्री– वनजा, पृ.88
333 जंगल की पुत्री– वनजा, पृ.88
334 जंगल की पुत्री– वनजा, पृ.189
335 मुझे जाने दो - के.समलक्ष्मी, पृ.318
336आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.
337फिर से बहारआई– डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
338फिर से बहारआई– डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
339फिर से बहारआई– डॉ. मुक्तेवी भारती, पृ.24
340फिर से बहारआई– मुक्ता भारती, पृ.23
341 फिर से बहारआई– मुक्ता भारती, पृ.23
342 आवां – चित्रा मुद्‌गल, पृ.128

343 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.128
344 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.129
345 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.129
346कुंती पुत्रिका – डॉ. शारदा अशोकवर्द्धन, पृ.183
347 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.108
348 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.111
349 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.111
350 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.112
351 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.112

पंचम अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

उपन्यासकार जब वस्तुपरक दृष्टि से जीवन की प्रक्रिया का निरीक्षण करता है तब उसका ध्यान जीवन के उन अंत: संबंधों पर जाता है जिनसे किसी समय का सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने विशेष रूप से भारतीय जीवन के उन अंत:संबंधों पर ध्यान दिया है जिनसे भारतीय समाज की संरचना के केन्द्र में उपस्थित स्त्री-पुरुष संबंध के विकास की प्रक्रिया की समीक्षा होने लगी। भारतीय समाज के विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय चिंतन में जो मूलभूत परिवर्तन हुए हैं, उसी के कारण हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की दृष्टि स्त्री-पुरुष संबंधों पर नये सिरे से सोचने की ओर प्रेरित हुई। नैतिकता पर आधारित स्त्री-पुरुष संबंधी अवधारणाएँ, धर्मनिरपेक्ष और समानता पर आधारित मानव संबंधों की अवधारणाओं में रूपांतरित हुई और उन्होंने गहरे स्तर पर हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की दृष्टि को प्रभावित किया। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों की समाज दृष्टि में संपन्न परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक स्थिति से दूसरी स्थिति में संक्रमण की पृष्ठ-भूमि को और उपन्यासकारों के अनुभव जगत के यथार्थ को स्पष्ट करना जरूरी है। इसलिए अंतिम दशक के भारतीय समाज की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

समग्रत: अंतिम दशक के भारतीय समाज की पृष्ठभूमि हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों के सामने वैविध्यपूर्ण चिंतन और स्थितियों को प्रस्तुत करती है। द्रुतगति से बदलनेवाली आर्थिक स्थितियाँ, उदारवादी राजनीति, भूमण्डलीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित्य नवीन प्रगति के कारण हिन्दी-तेलुगु उपन्यास साहित्य लेखन की पृष्ठभूमि तेजी से बदलती जा रही है। इस पृष्ठभूमि में हिन्दी-तेलुगु उपन्यासकारों ने अपनी सृजन चेतना के बल पर नारी चेतना की बहुआयामी

वास्तविकताओं को आत्मसात करने का प्रयास ही नहीं किया वरन् इन वास्तविकताओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति करने का प्रयास भी किया है।

अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासकारों के औपन्यासिक कथ्य अंतिम दशक की भारतीय समाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तथा धार्मिक वास्तविकताओं के आधार पर निर्मित हुए हैं। सच्चाई यह है कि अंतिम दशक का भारतीय समाज एकोन्मुख या एक रूप समाज नहीं है।

ग्रामीण भारतीय समाज से लेकर महानगरीय समाज तक समानांतर कई बहुलताओं को लेकर भारतीय समाज बहुआयामी विशेषताओं और जटिल संबंधों को रचनाकारों के सामने प्रस्तुत करता है। यहाँ एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक होती जा रही है वहाँ भारतीय सामाजिक व्यवस्था स्थानीय और जातीय होती जा रही है। राजनैतिक मोर्चे पर जनतंत्र और धर्म निरपेक्षता दिखाई देती है। विभिन्न राजनैतिक समूह अपने-अपने ढंग से राज्य प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। राजनैतिक विचारधाराएँ सत्ता प्राप्त करने के संघर्ष, बौद्धिक स्तर पर तरह-तरह के प्रभाव, आर्थिक जीवन की वास्तविकताएँ, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इस बहुल वास्तविकताओं की स्थिति में भारतीय नारी चेतना का विकास नारी अस्मिता की अभिव्यक्ति को कथ्य का रूप देता है। नारी-पुरुष के संबंधों में दमन और सहमति की अंतः क्रीड़ा कई संदर्भों में भारतीय सामाजिक यथार्थ को अनावृत्त करती है।

विशेषकर नारी-जाति पर विभिन्न समाजों में परिव्याप्त पुरुष की अहंवादिता ने स्त्री में आक्रोश और वैमनस्यता को जन्म दिया। समाज में सहजता, उदारता और समता का क्षेत्र खंडित होता गया। परन्तु सामाजिक जीवन में अनाचार, शोषण, दमन अत्याचार आदि भावनाएँ शेष रह गयीं। नारी शोषण भी इस महत्वपूर्ण क्षुब्ध वातावरण में होता जा रहा है।

अतः नारीवादी सिद्धान्त नवीन युग की नवीन सोच के रूप में उत्पन्न हुआ है। इस सिद्धान्त का आरम्भ सबसे पहले पश्चिमी देशों से हुआ। नारीवाद के विभिन्न

आयाम मनोविश्लेषणवादी, मार्क्सवादी, उग्रवादी और उदारवादी रूप देखे जा सकते हैं। इस सभी सिद्धान्तों में विद्रोह की भावना ही प्रबल दिखाई देती है।

साधारणतः नारी की चेतना के अनुसंधान के बल पर हम किसी देश के एक काल विशेष से संबद्ध स्त्री और पुरुष के संबंधों में अभिव्यक्त होने वाली परिवर्तन-शीलता को समझते हैं। विशेषतया यह परिवर्तनशीलता केवल स्त्री की जागृति से संदर्भित होती है। परिवर्तनशीलता को प्रस्तुत करने वाली नारी चेतना जनजीवन में लक्षित तत्कालिक जीवन में उत्पन्न अप्रत्याशित गतिरोध और गतिशीलता से उत्पन्न हो सकती है। भारतीय उपन्यास विधा के अंतर्गत निर्मित होने वाली प्रत्याशित गतिरोध नारी चेतना की गतिशीलता से उत्पन्न हो सकती है। इस तरह से हिन्दी-तेलुगु उपन्यास विधा मानव जीवन के निकट होने के कारण जीवन को यथार्थता से प्रस्तुत करता है। साधारणतया लोगों को यह कहते सुना जा सकता है कि – "क्या स्त्री भी लिख सकती है? क्या इस समाज में स्त्री लेखन जैसी कोई बात भी हो सकती है.....? अतः कहा जा सकता है कि साहित्यकार कोई लिंग विशेष से बंधित नहीं होता।

नारी लेखन भारतीय सामाजिक चेतना का वाहक बन गया है। नारी घर से बाहर आकर खुला आकाश खुली आँखों से देख सकी है और इतना ही नहीं उसने पुरुषों के समान उसे समझा भी है। उसे समझ कर उसने उसमें उड़ान भी भरनी प्रारम्भ कर दी है। नारी में आज इतनी समर्थता आ गयी है कि वह जीवन के यथार्थ को सक्षमता के साथ प्रस्तुत कर सकती है। शोषण उसे पसंद नहीं है। स्त्रियों के लिये जो नैतिक मर्यादा अनिवार्य थी उनकी सीमाओं को वह स्पष्ट रूप से समझती है। सारी संस्कारशील मान्यताएँ एक चुनौती बन कर रह गयी।

तेलुगु और हिन्दी उपन्यासकारों ने नारी की छटपटाहट को विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत किया है। कुछ महिला लेखिकाओं ने सीमा लाँघने का प्रयास भी किया है। अब यह देखने में आ रहा है कि डिग्री हासिल कर महिलाएँ नौकरी या शादी करते ही 'सब कुछ कर सकने' का जज्बा लेकर निकल पड़ी हैं। वह अपनी नौकरी को सुरक्षित

रखने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार हैं चाहे उसके वैवाहिक जीवन पर गहरा असर ही क्यों न पड़ता हो। उसे अपनी स्वेच्छाचारिता के लिए कोई भी समझौता स्वीकार है।

कुछ महिला उपन्यासकारों ने नारी की वास्तविक पीड़ा को उतारने का सफल प्रयास किया है। समय की माँग के अनुसार बदलाव को समझा और अनुभव किया है। महिला लेखन एक सीमा में बंधा हुआ दर्शित होता है। उनमें एक प्रकार की निरीहता या फिर परिस्थितियों के प्रति विवशता और समर्पण दिखाई देता है। आज के वातावरण में यह खिलौना नहीं है। यह भी सच है कि कार्यानुभूति का अवसर महिलाओं को पुरुष की तुलना में कम ही मिला है।

भारतीय नारी चेतना अंतिम सदी में लोकतंत्र की चेतना के आलोक में विकसित हो रही थी। इसी दौरान स्त्रियों को प्राप्त सबसे पहली सफलता 'मतदान का अधिकार' के प्रति सचेत हो गयी थी। शिक्षित स्त्रियाँ अपने राष्ट्र-निर्माण का भागीदार बनने के लिए लालायित थी। स्त्री के जीवन सफर में हर्षातिरेक के वे क्षण भी उत्पन्न हुए जहाँ उनके प्रतिनिधियों ने दुर्गम लक्ष्य हासिल किये। नारियों ने पुराने रिकार्ड को तोड़ा और समाज की सोच को सायास नई दिशा में मुड़ने को मजबूर किया। तकनीकी और विज्ञान ने साक्षर स्त्रियों की संख्या में बढ़ोतरी की। परन्तु, सामान्य स्त्री का जीवन मात्र एक साये के समान बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप स्त्रियों को कई तरह के भय, पराधीनता और अंधविश्वासों आदि से मुक्ति मिली। आज यह स्थिति आ गई है कि स्त्री ने भी इस स्वतंत्रता का गलत प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। युवा स्त्री घोर आधुनिकता की ओर अपने कदम बढ़ाने लगी है।

नारीवाद एक प्रतिक्रिया है। नारी के प्रति हो रहे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध औरतें नारीवाद की न केवल कर्ता है बल्कि वे ही शक्ति भी है। उसकी चिंता के मूल में वे जीवनमूल्य हैं जो नारियों समेत पूरी मानव-जाति के हित में है। नारीवाद के सामने सवाल केवल नारियों के मुक्त होने का ही नहीं बल्कि इसमें सभी प्रश्नों की ओर नारी की दृष्टि से देखकर भिन्न दर्शन निर्माण करने का प्रयास है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी चेतना

हिन्दी उपन्यासों में नारी चेतना को अंतिम दशक के उपन्यासों में संपूर्ण विश्व की चेतनाओं को नियंत्रित करने वाले अनेक आयामों के आधार पर संप्रेषण मिला है। अंतिम दशक में प्रकाशित उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण नारीवादी उपन्यास, दलित उपन्यास, आदिवासी जीवन-चित्रण उपन्यास, मध्यमवर्गीय जीवन पर आधारित उपन्यास, प्रेम और सुकुमार संवेदनाओं का चित्रण करने वाले उपन्यास, स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखे गये उपन्यास के रूप में किया जा सकता है। फिर भी प्रत्येक उपन्यास में नारीवादी दृष्टिकोण का अपना एक विशेष महत्व दिखाई देता है। नारी संदर्भ को संप्रेषित करते हुए हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों का विश्लेषण इस शोध-प्रबंध में किया गया है।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्यों के अध्ययन के बल पर यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत मूल्यों पर नारी का अंत:संघर्ष और नारी के अस्तित्व की लड़ाई अभी भी जारी है **(दिलो-दानिश)।** नारी अपनी आर्थिक स्वतंत्रता एवं जाति वाद के अहं के बल पर नये मानवीय मूल्यों की माँग कर रही है (अपनी सलीबें)। बाजारवादी राजनैतिक परिस्थितियों में जनतांत्रिक संबंधों के आलोक में नारी मान-सम्मान की माँग चाहती है **(इदन्नमम)** और उसका वर्तमान संघर्ष प्राचीन जीवन की परंपराओं को तोड़ते हुए नये विकास की ओर संकेत करता है **(अपने-अपने कोणार्क)**। नारी अपने व्यक्तित्व के विकास में भारतीय मूल्यों की समीक्षा करती है और परिवार की नयी भूमिका को रेखांकित करती है **(निष्कवच)**। वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के नये मानदण्ड – स्वेच्छा प्रतिमान की ओर संकेत करता है **(मुझे चाँद चाहिए)**। समय और मनोविज्ञान के आलोक में नारी के स्वाभिमान का नारा और सुरक्षा की माँग अंतिम दशक के उपन्यासों की वास्तविकता है **(कठगुलाब)**। भारतीय रूढ़ियों से टकराती हुई अपने अस्तित्व के लिए स्वेच्छा की माँग करती है **(छिन्नमस्ता)**। इस संघर्ष के दौरान वह संतुलित बुद्धि की माँग भी करती है **(कलिकथा वाया बाइपास)**। इस प्रक्रिया में नारी मुक्ति चेतना संघठनात्मक विद्रोह

का रूप धारण भी कर लेती है **(आवां)**। अंतिम दशक के उपन्यासों के कथ्य भारतीय समाज में विकसित होने वाली नारी चेतना के बहुमुखी आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में नारी चेतना

अंतिम दशक के भारतीय नारी जीवन के व्यापक पक्षों का प्रौढ़तम चित्रण तेलुगु उपन्यासों में भी हुआ है। कथ्य के अनुरूप विषय वस्तु का गठन और चरित्रों की समन्वित दृष्टि का विकास तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है। अंतिम दशक के तेलुगु उपन्यासों के सृजन में जब नारी जीवन की नयी प्रेरणाएँ अपना योगदान देने लगी हैं, तब तेलुगु उपन्यासों में नव्यतम रूप में कथ्य उभरने लगे। नारी की समाज मनोवैज्ञानिक स्थिति, नयी स्थितियों में नारी का अंतर्द्वंद्व तेलुगु उपन्यासों की विशेषता है। पाश्चात्य सभ्यता के मोह में पारिवारिक मूल्यों का विघटन, बेटे के द्वारा माँ की उपेक्षा **(मुझे जाने दो)** परिवार में नारी की उपेक्षा का परिचय देता है। विवाह की प्रक्रिया में पारिवारिक व्यवस्था की भूमिका और स्वेच्छा के प्रश्न को लेकर भी विचार किया गया है **(कुमारी मधुमती)।** विवाह के बाद पति के साथ नारी-जीवन में आने वाला परिवर्तन समझौते के रास्ते को अपनाने की विवशता और उससे उभरने की कोशिश के प्रति भी ध्यान दिया गया है **(सहजा)**। दूसरी ओर विवाह के बिना संतान को जन्म देने की समस्या और नारी स्वेच्छा की चर्चा की गयी है **(कुंती पुत्रिका)**। विवाह व्यवस्था और व्यक्ति स्वेच्छा के प्रश्न पर विचार किया गया है **(मरीचिका)**। नारी के प्रश्नों पर विभिन्न आंदोलनों और वादों के परिप्रेक्ष्य में भी तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है **(जंगल की पुत्री)**। इस संदर्भ में यह वास्तविकता सामने रखी गयी है कि प्रेम, सेक्स और शादी के विभिन्न दृष्टिकोणों का युवा-पीढ़ी की दृष्टि से विचार किया गया है **(नज़रिए)।** इस तरह स्त्री-पुरुष के संबंधों में परिवर्तन के नये आयाम **(फिर से बहार आई)** और मध्य वर्गीय नारी जीवन की वास्तविकताएँ **(दिखता हुआ अतीत)** यहाँ तक कि समलैंगिक समस्या और प्रकृति विरुद्ध व्यवहार का विरोध को भी लेकर **(आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं)** तेलुगु उपन्यासों में विचार किया गया है।

उपर्युक्त चर्चित हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का तुलनात्मक विश्लेषण एक महत्वपूर्ण विचारधारा का निर्माण करता है कि किसी भी भारतीय भाषा में साहित्य लिखा जाये, उसका मूल सिद्धान्त एक ही विचारधारा से आप्लावित रहता है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही भारतीय समाज में प्राचीन और नवीन मान्यताओं का संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था। प्राचीन अंधविश्वासों और परंपराओं का विघटन, संस्कृति व मूल्यों के बदलते आयाम समाज पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। नारी भी अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत होने लगी थी। बदलते परिवेश, शिक्षा और आत्मनिर्भरता के बढ़ते अवसरों के कारण नारी ने उन प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने का सिलसिला शुरू कर दिया। उसने सभी प्रकार की चुनौतियों को स्वीकार किया।

हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने नारी के इस आधुनिक कदम का स्वागत किया और अपनी लेखनी से इसकी भी सराहना की। इन उपन्यासकारों ने नारी को अपने उपन्यास में प्रमुख स्थान दिया। सदियों से नकारात्मक रवैया पाने के कारण वह हताश हो चुकी थी। अतः उसने अपनी स्वतंत्रता की माँग प्रारम्भ कर दी।

नारी समाज अपने अन्दर के डर को निकालकर आत्मविश्वास जगाना चाहता था। वह अपने हीनत्व को अपनी अस्मिता द्वारा निकाल बाहर फेंकने का इच्छुक था। नारी अपने को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहती थी। यह तो निश्चित है कि कोई भी मनुष्य जन्म से सक्षम नहीं होता। वह अपनी लगन, मेहनत, क्षमता आदि गुणों से समाज में श्रेष्ठ स्थान पाता है। परन्तु पुरुषवादी समाज ने प्रारम्भ से ही नारी को इन सब अवसरों से वंचित रखा था। वह तो नारी के पराश्रित रूप को ही देखना चाहता था। उसने कभी नारी के स्वावलम्बी रूप को देखना नहीं चाहा। यही कारण है कि वह नारी पर अपनी मान्यताओं का आरोपण करता रहा।

नारी इन सारी बंदिशों और आरोपणों से ऊपर उठकर, अपने घर-परिवार, समाज आदि के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होकर, अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में सतत

प्रयत्नशील होने लगी। नारी को अपनी जागृत चेतना के कारण कठोर संघर्ष करना पड़ा और अब भी कर रही है।

5.1 सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी उपन्यास 'आवां' में हमें यह उदाहरण स्पष्ट रूप से दर्शित होता है। नारी ने यौन स्वतंत्रता के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा दिये हैं। उसने अपनी देह पर स्वयं के अधिकार को जताना सीख लिया है। आज की आधुनिक चेता विवाहित नारी भी अपनी देह पर उसके पति का नहीं बल्कि स्वयं का प्रभुत्व मानती है। प्रस्तुत उपन्यास की गौतमी अपने दूसरे पति अशोक के साथ रहने लगती है। वह अशोक को अपनी सीमा में रखती है।

पराधीनता की जंजीरों को वह तोड़ना चाहती है। वह एक नई राह पर नये साहस के साथ चलने के लिए तत्पर है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रभा खेतान ने प्रिया की मनोदशा का वर्णन इस प्रकार किया है – "क्या! सारी जिंदगी मैं बस टेबल साफ करती रहूँगी? बरतनों को सम्भालती रहूँगी? एक ही अनुभव का बार-बार घटते चले जाना, सब कुछ कितना नीरस होने लगता है। ..... गृहस्थी के झमेले, कभी शांत न होने वाली लहरें।"[1]

प्रस्तुत संदर्भ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नारी अपने इस दासतापूर्ण जीवन से तंग आकर निराशा के दल-दल में पूर्ण रूप से फँस चुकी थी। इसीलिए वह वहाँ से उठकर खुले में साँस लेने के लिए छटपटा रही है। 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया की यह छटपटाहट - 'आवां' उपन्यास की नमिता में दिखाई देती है, जहाँ वह अपने आत्मसम्मान के लिए चरित्र को भी दाँव पर लगाने के लिए तैयार है। अब वह अपनी सार्थकता को चरित्र से अधिक महत्व देती है। नमिता अपनी दैहिक स्वतंत्रता को सबसे अधिक महत्व देती है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में भी वर्षा के पिता ने उसे यह कह कर नौकरी करने से मना कर दिया कि यह हमारी परंपरा के खिलाफ है। हमारे खानदान में

किसी भी स्त्री ने अब तक नौकरी नहीं की है। इस पर वर्षा का कहना है कि – "वंश में किसी लड़की ने नौकरी नहीं की, वह आगे भी न करे, यह जरूरी नही है, मैं ब्याह नहीं करूँगी। भले ही तुम लोग चाहे मारो या कूटो।"[2]

उपन्यास 'कलि-कथा वाया बाइपास' में मारवाड़ी युवतियाँ भी इस कैद से बाहर आने के प्रयत्न करती दिखाई देती हैं। परन्तु बाहरी वातावरण और सामाजिक दबाव के कारण कुछ नहीं कर पाती। परन्तु किशोरी बाबू की लड़कियाँ प्रयत्न करती हैं। उनकी छोटी लड़की नंदिनी का कहना है कि – "बड़ी माँ, तुम बताओ कि पापा इस तरह क्यों सोचते हैं, लड़कियों के बारें में? हम क्यों नहीं खेल सकते बगल के मकान की लड़कियों से। हम बरामदे में क्यों नहीं खड़े हो सकते। हम क्यों नहीं जा सकते अपनी सहेलियों के घर? तुम क्यों सहती हो हर बात पर पापा की मर्जी?"[3]

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भित कथन से यह संकेत मिलता है कि मारवाड़ी समाज की नारियाँ भी नारी मुक्ति चेतना की ओर अग्रसर होने लगी हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में भी नारी संग्राम अदम्य साहस के साथ जारी है। इसमें मंदा की विधवा माँ परम्परागत वैष्णव परिवार की चौखट लाँघकर अपने जीजा रतनसिंग के साथ भागने का साहस करती है। इसी कृति में कुसुमा अपने पति यशपाल की क्रूरता से हताश हो अपने देवर अमर सिंह से संबंध जोड़ लेती है। अमरसिंह से गर्भवती होकर बच्चे को जनने का साहस भी करती है। 'दिलो-दानिश' उपन्यास में भी कृपानारायण का महकबानो के साथ अवैध संबंध देखकर कुंटुंबप्यारी बहुत परेशान होती है। वह विद्रोह की आग में गलत कदम उठाने से भी पीछे नहीं हटती। वह तैश में आकर पति से कठोरतापूर्ण कहती है – "आप इस खानदान की खाक उड़ाने के लिए क्यों तुले हैं? हम आपको नहीं भाते तो...।" इस धारा में बहते हुए वह आगे कहती है – "रज्जो की कसम, जो आपने हमें छुआ।"[4]

रात के समय जब मोती के गजरे लेकर कृपा जब शयनागार में जाते है तो वह रोष में आकर कहती है – "आज तक नवाबों की, सामंतों की इस प्रकृति पर

धर्मपत्नियों द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। परन्तु आधुनिक सभ्यता में पत्नी कुटम्बप्यारी मात्र इस प्रवृत्ति के खिलाफ आवाज उठायेगी।"[5]

समकालीन हिन्दी और तेलुगु दोनों ही उपन्यास कृतियों में नारी की दासतापूर्ण जिंदगी को वास्तविक दृष्टिकोणों के आधार पर चित्रित किया गया है। परन्तु अब नारी ने दासता के विरुद्ध लड़ने का शंखनाद कर दिया है। वह अब कदम-कदम पर अपने विद्रोह का प्रदर्शन करना चाहती है और करने में सफलता भी प्राप्त कर रही है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में भी नारी का विद्रोह यथार्थ रूप में दर्शित हुआ है। आज की नारी ने अपनी मर्जी बताना प्रारम्भ कर दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में वर्षा वशिष्ठ नाम की लड़की का स्कूल में नाम यशोदा शर्मा था। उसके घर का नाम सिलबिल था। उसे बचपन से ही अपना नाम पसंद नहीं था। इसीलिए उसने अपना नाम बदल दिया। जब पिता ने उसे ऐसा करने की वजह पूछी तब उसे किसी प्रकार का भय नहीं हुआ था और वह निस्संकोच होकर कहती है – "मुझे अपना नाम पसंद नहीं था। यशोदा शर्मा नाम में कोई सुंदरता नहीं।"[6]

किसी व्यक्तित्व का जन्मनाम एक सरल बात है परन्तु इस छोटी-सी बात पर भी आज की चेतित नारी ने सोचना प्रारम्भ कर दिया है।

आधुनिक स्वतंत्र चेता नारी के रूप में वर्षा वशिष्ठ एक रोमांचक और विशेष नाम कहा जा सकता है। उसकी सोच इस दुनिया से बिल्कुल अलग निराली-सी है। पारंपरिकता के प्रति उसका स्वभाव काफी सजग है। प्रत्येक बात को वह केवल अपने मन से ही सोचना चाहती है और सोचती भी है। जो बात उसे पसंद नहीं उसका वह दृढ़ता के साथ तिरस्कार भी कर देती है। उसमें जिज्ञासु प्रवृत्ति कूट-कूट कर भरी पड़ी थी। निम्न-मध्यमवर्गीय परिवार की स्त्रियों में हमेशा एक समझौता करने की भावना रहती है। उसके सारे परिवार की स्त्रियों में यह भावना उसने स्वयं देखी थी। परन्तु वह किसी भी बात से समझौता नहीं करना चाहती थी।

'मरीचिका' उपन्यास में भी कविता का चरित्र वर्षा के समान ही दिखाई देता है। वह विजय को चुनौती देती है और कहती है - "विजय इस जन्म में ही नहीं दूसरे जन्म में भी किसी औरत को धोखा न देने का सबक तुम्हें सिखाती हूँ। तुम्हें ही नहीं, तुम्हारे जैसे मर्द, स्त्रियों को नादान बनाकर, खिलवाड़ कर, प्रलोभन में डालकर, इस्तेमाल कर, छोड़ देते हैं, ऐसे लोग तुम्हारी कहानी जानकर ऐसा करने के पहले दस बार सोचने पर मजबूर होंगे। मैं तुमसे बदला लेने के लिए ही आई हूँ।"[7]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में नारी की उदात्त विद्रोही भावना को चित्रित किया गया है। 'दिखता हुआ अतीत' उपन्यास में भी पति श्रवण के दुर्व्यवहार के कारण कमलाम्बा का मन घृणा से भर उठता है और वह सोचती है कि – "इस जुगुप्सा भरे संसार में हर साल एक बच्चा पैदा कर, नापसंद पति को देह सौंपकर, किसी भी प्रकार के सुख को न भोगकर, घुटते हुए मैं नहीं जी सकती। क्या करना है...। मर जाना है? नहीं, क्यों मरना है? मैं डरपोक नहीं हूँ कि अपनी जान गवां दूँ। मैंने कोई गलती नहीं की। मुझसे धोखा किया गया है। मुझे इस धोखे से बाहर आना ही है।"[8]

हिन्दी उपन्यास 'अपने-अपने कोणार्क' में भी कुनी की स्वतंत्र चेतना चीत्कार कर विद्रोह कर बैठती है। वह जिंदगी के अहम् फैसले में अपने भाइयों की सोच की छाया नहीं पड़ने देना चाहती। वह कहती है – "मेरे भाइयों को मेरे व्यक्तिगत मामले में बोलने का कोई अधिकार नहीं क्योंकि आज तक उन्होंने मेरे लिए चिंता कभी नहीं की। आज भी मैं अपनी जिंदगी के अहम् फैसले में उनकी राय नहीं लूँगी। मेरे भीतर फन काढ़े साँप की सी जिद फूँफकारती रही। मेरे बरदाश्त की हदें टूट गयी।"[9]

'कुंती पुत्रिका' उपन्यास में भी स्त्री की स्वतंत्र प्रकृति का वर्णन मिलता है। आधुनिक नारी अपने जीवन को स्वच्छंदतापूर्वक जीने की इच्छुक है। वह अपने व्यक्तिगत जीवन में किसी और का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करना चाहती। प्रस्तुत उपन्यास में जब किरन और उसके साथी नीलिमा को शादी के बारे में दबाव डालकर उसे राजी करने का प्रयत्न करते है तो नीलिमा निस्संकोच होकर उनसे कहती है कि

-“यह मेरा निजी मामला है। इस पर निर्णय करने का अधिकार मैं किसी को नहीं दूँगी।”[10]

‘इदन्नमम’ उपन्यास में तो नारी का अत्याचार के खिलाफ विद्रोह इस कदर दर्शाया गया है कि, हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं होगा। हम यह अनुमान भी नहीं लगा सकते कि स्त्री की सहन शक्ति का बाँध टूट कर इस कदर तूफान ला सकता है, जिसमें वह अपनी लज्जा, संकोच, दुनिया से डर सभी कुछ छोड़ अपने पति से निम्न संदर्भ कहती है – “ओ नकीले, खैर माना कि बच्चा दाऊजू का है। नहीं तो यह किसी का भी होता, जात का आन जात का। गैल चलते आदमी का। तुम्हे क्या हक...कुत्ता की जात, नहीं गिनते हम तुम्हें।”[11]

इस संदर्भ को पढ़कर नारी के आक्रोश की असीमता का अंदाजा लगाया जा सकता है। तेलुगु उपन्यास ‘दिखता हुआ अतीत’ में बचपन से देवकी को अपने पिता के अत्याचार को सहने की मजबूरी होती है। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ी होती जाती है, उसके भाई द्वारा भी उसे शोषित किया जाता है।

अपने पिता द्वारा माँ पर किये गये अत्याचार उसे जीवन भर का ज़ख्म देते हैं और बाद में भाई की यातनाएँ भी उसे सहनी पड़ती है। भाई-बहन, जिनकी परवरिश बचपन से एक ही छत के नीचे, एक ही माँ-बाप की देख-रेख में होती हैं, परन्तु लड़कों में वह पुरुष अहंकार उत्पन्न हो ही जाता है। उनकी मासूमियत कब अहंकार में बदल जाती है पता ही नहीं चलता।

यदि भाई बहन से छोटा भी हो तो उसमें यह भाव आ ही जाता है। यह सब पुरुष प्रधान समाज की एक अमिट छाप है।

देवकी का बड़ा भाई रमणा हमेशा देवकी से चिड़चिड़ा-सा रहता है। जब उसकी सहेलियों को वह देखता है तो उसका मन आक्रोश से भर उठता है। उनके चले जाने के बाद वह इस प्रकार की अश्लील बातें कहकर अपने मन के गुबार को शान्त करता है – “इन सालियों को, एक-एक लड़की को अलग-अलग भोगकर फेंक देना चाहिए।”[12]

देवकी जब भाई रमणा के मुख से अपनी नादान सहेलियों के बारे में ऐसी बातें सुनती है तो उसका मन चीत्कार कर उठता है। उसकी धड़कनें थम जाती हैं। वह हतप्रभ-सी सोचने लगती है कि इनमें इस प्रकार की पाशविक प्रवृत्ति कहाँ से, कब और कैसे आ गई है। तत्पश्चात् स्वयं ही वह अंदाजा लगा लेती है कि हो या न हो यह पुरुष अहं का प्रभाव है।

जब देवकी घर के बाहर निकलती है बड़ा और छोटा दोनों शिवडू उसका पीछा करते हैं। घर पर रमणा तो हर बात पर उससे चिढ़ता रहता है। इसीलिए देवकी को यह समझ में आ गया था कि घर में हो या बाहर दोनों ओर स्त्रियों के लिए सम्मान, प्यार, अपनापन जैसी कोई बात नहीं मिलती। उसे कहीं भी सुरक्षा या शांति नहीं मिल सकती। बड़ा शिवडू हमेशा उस पर ताने कसता रहता है कि – "तुझसे कोई शादी नहीं करेगा। सब लोग तुम्हें रखैल बनायेंगे। वह काम मैं भी कर सकता हूँ। तुम्हें कोई कमी न आने दूँगा। यदि मेरे घर वाले मुझे किसी और लड़की से शादी कराये तो भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। अपना बनाकर रखूँगा।"[13]

प्रस्तुत संदर्भ में पुरुष की गिद्ध दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि लड़की ग़रीब और सुंदर है तो वह उसे पाना तो चाहता है लेकिन धर्मपत्नी नहीं बनाना चाहता क्योंकि गरीब लड़की के पास दहेज देने के लिए पर्याप्त धन तो नहीं होगा।

प्रस्तुत हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में समाज का अपनी (बेटी) संतान के प्रति अवहेलित भाव को अभिव्यक्त किया गया है। परिवार में लड़के और लड़की के मध्य जो माता-पिता और भाइयों का अन्यायपूर्ण व्यवहार होता है, उसका वर्णन इन उपन्यासों में यथार्थपूर्ण ढंग से प्रेषित किया गया है। आज भी समाज में लड़की होने की कीमत चुकानी पड़ती है। उसे बिना पाप किये ही सज़ा भुगतनी पड़ती है।

तेलुगु उपन्यास 'फिर से बहार आई' में भी लड़की के जन्म को लेकर शारदा का दृढ़निश्चय है। घर या बाहर दोनों जगह वह अपनी ही मनमानी करने की आदी थी। वह एक स्वतंत्र जीवन निर्वाह करना चाहती थी।

शारदा की शादी के होते ही वह कुछ ही महीनों में गर्भवती हो जाती है । परन्तु वह अपना गर्भपात करना चाहती थी। रामम इस बात से कतई राजी नहीं था। उसने उसे हर संभव मनाने की कोशिश की परन्तु सब कुछ व्यर्थ निकला था। वह रामम पर चिल्लाने लगी कि – "मेरा निर्णय नहीं बदलेगा, मर जाये तो भी नहीं बदलेगा। अपने निर्णय को क्यों बदलना है? "[14] "यदि लड़की हो तो निस्संदेह कोख से निकलवाकर फेंक दूँगी।"[15]

शारदा के मन में स्वयं एक लड़की होने की अनिष्टता इतनी अधिक घोर हो गयी थी कि वह अच्छे और बुरे, सही और गलत, कानूनी और गैरकानूनी आदि की परवाह किये बिना रामम की मर्जी का विरोध करती हुई गर्भपात कराने के लिए अकेले ही अस्पताल चली जाती है। वह गलत निर्णय और गलत हिम्मत से गर्भपात भी करा लेती है। यही कारण है कि अब उसके सुखमय वैवाहिक जीवन में अशांति और मनमुटाव पनपने लगते हैं। छोटी-सी बात भी बड़ी से बड़ी समस्या खड़ी कर देती है। अब शारदा के मन में रामम और ललिता को लेकर भी गलत संदेह होने लगता है। जब शारदा रामम पर इलज़ाम लगाती है तो वह उसे थप्पड़ मारता है। इससे शारदा अपमानित महसूस करती है और क्रोधित होकर रामम को चीखते हुए कहती है – "अब आपकी समझ में आया होगा कि मैंने गर्भपात क्यों करवाया था? ऐसे मार खाते रहना ही स्त्री की जिंदगी है? बस! मैंने एक बार गलती की थी। उसे दुबारा नहीं करुँगी।"[16] यहाँ पर स्त्री का साहस दर्शित होता है ।

कहा जाता है कि जिंदगी के दो पहलू होते हैं – सकारात्मक और नकारात्मक; नैतिक-अनैतिक। इन दोनों पहलुओं का प्रभाव अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की सामाजिक वास्तविकताओं पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक नारी अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव के साथ, पुरुषाधिकता पर प्रश्न करती हुई स्वेच्छा और समानता को पाने की दिशा में आगे बढ़ रही है। अपने अधिकारों को पाते हुए पीड़ित एवं दमित स्त्रियों की मदद् करने और न्याय दिलाने निकल पड़ी है। अपनी मर्जी से जीने की भावना को लेकर अविवाहित मातृत्व एवं सह जीवन के प्रति झुकाव दिखाई दे रहा है।

5.2 आर्थिक परिप्रेक्ष्य में

दहेज की सामाजिक प्रथा नारीवादी संघर्ष का सबसे प्रमुख क्षेत्र है। प्राचीन समय से यह प्रथा नारी का शोषण करती चली आ रही है। सम्पूर्ण भारतीय प्रदेश की नारियाँ इस सामाजिक कुप्रथा का शिकार बनी हुई हैं। जमाना बदल रहा है और उसके साथ दहेज प्रथा का रूप भी बदलता जा रहा है। अत: आधुनिक बुद्धिजीवी नारी इस कुप्रथा से बचने के लिए सतत प्रयत्नशील दिखाई देती है। आधुनिक नारी का यह प्रयास धीरे-धीरे सफलता की ओर बढ़ रहा है परन्तु फिर भी नारी को अपनी मंजिल तय करने में और काफी समय लग जायेगा।

अत: कहा जा सकता है कि हमारे हिन्दी और तेलुगु उपन्यासकारों की नारीवादी दृष्टि से यह सामाजिक पहलू कैसे अछूता रह सकता है? इन दोनों ही भाषा के उपन्यासकारों ने अपनी सजग दृष्टि से इस दहेज रूपी अमानवीय व्यापार को उजागर करने का प्रयास किया है। आज भी यह प्रथा स्त्री स्वतंत्रता को खोखला बनाने में प्रयत्नरत है। कई बार हमारे आसपास की दुनिया में इस प्रथा का शिकार हुई नारी की घटना हमारे सामने आती है।

तेलुगु उपन्यास 'जंगल की पुत्री' में पद्मा स्वयं अपनी बड़ी दीदी द्वारा छली जाती है। बड़ी दीदी के देवर के साथ पद्मा की शादी पक्की हो जाती है। वह एक तलाकशुदा पुरुष है। जीजा और दीदी ने पहले कभी इस बात का खुलासा नहीं किया था। घर की परिस्थिति को देखकर पद्मा भी यह रिश्ता स्वीकार कर लेती है। ठीक शादी के एक माह के अनन्तर उसकी कठिनाइयाँ प्रारंभ हो जाती हैं। पद्मा कहती है – "लड़कियों की जिंदगियों से खेलना कुछ मूर्खों के लिए संतोषजनक होता है। कितना भी सीधा करने का प्रयास करें फिर भी कुत्ते की दुम टेढ़ी ही रहती है।"[17]

वनजा जी का कहना है कि समाज में जब घर के बड़े लोग अपने छोटों के साथ ही गैर व्यवहार करते हैं तो यह समाज कैसे सुधर सकता है?

पहली पत्नी की तरह वह पद्‌मा को भी तंग करने लगा था। वह अपने माँ-बाप से अलग रहने लगा था। इसीलिए उसे समझना पद्‌मा के लिए मुश्किल हो रहा था। परिवार के साथ व्यक्ति की सोच कुछ भिन्न होती है। वह प्रतिदिन एक नयी परेशानी खड़ी कर देता था। वह पद्‌मा से हमेशा शादी में अच्छे कपड़े न देने की बात को लेकर हमेशा बुरा-भला कहता था कि– " दहेज नहीं तो कम-से-कम घर का सामान तो दे सकते थे। जब तक सामान नहीं लाओगी तब तक तुम अपने घर पर ही रहो। जब तुम्हारा भाई सामान खरीदकर देगा तभी मेरे पास आना। इतना ही नहीं वह हर दिन मुझे पीटता भी था।"[18]

लेखिका के विचारानुसार विशेषकर निम्नवर्ग में आज भी दहेज और पुरुष के अहं का ताना-बाना बरकरार है। इसी कारण पद्‌मा का जीवन दिन-ब-दिन बदहाल होता जा रहा था। उदात्त विचारों वाली पद्मा भला किस प्रकार यह अन्याय सहती। वह यह समझ चुकी थी कि दहेज के बिना यह स्वार्थी पुरुष जो उसका पति था, चुप बैठने वाला नहीं था। वह लगातार पद्मा का पीछा छुड़ाने की सोचने लगा। अर्थात् वह पद्मा को भी तलाक दे देना चाहता था। अब पद्मा के मन में आक्रोश की चिंगारी सुलगने लगी। पद्मा के तटस्थ और साहसी मन ने यह निश्चय कर लिया कि – "अब मुझे मरना नहीं है, चाहे कितनी भी यातनाएँ मुझे दी जाय। मुझे जीना है। मुझ पर हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़कर मर्द की तरह सीना तानकर उनकी आँखों के सामने ही जीना है। मुझे सभी काम करने आते हैं।"[19] बचपन में मन बड़ा कोमल होता है। परन्तु जितनी अधिक कोमलता उनमें होती है उतनी ही अधिक भावुकता भी होती है। कभी-कभी जीवन के कठोर अनुभव उनके भविष्य का मार्ग बदलकर रख देते हैं। अत: उनके मन में द्वेष, आक्रोश, विद्रोह, घृणा और क्रांति की भावनाएँ पनपने लगती हैं। ये सारे गुण पद्‌मा में पनपने लगे थे। पद्मा अपने व्यवहार के बारे में कहती है – "उस दिन से मेहनत की सही मजदूरी न मिलने पर या 'आ रे-जा-रे' जैसे अपशब्द कहने पर उसके मुँह पर पानी फेंककर आ जाती थी।"[20]

इस प्रकार पद्मा ने अपने आपसे विश्वास और धैर्य के साथ दहेज प्रथा के विरुद्ध लड़ने का संकल्प कर लिया। अन्तत: वह विजयी भी हुई।

हिन्दी उपन्यास 'कठगुलाब' में मृदुला गर्ग ने भी दहेज प्रथा जैसी अभिशप्त सामाजिक प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में दहेज प्रथा ऐसा सर्प है जो नारी के अस्तित्व को खाक में मिलाने की पूर्ण चेष्टा करता रहता है। अतः गर्ग जी ने पाठकों को इस ओर सोचने का आवाह्न किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में भी स्मिता को अपने परिजनों की स्वार्थी प्रवृत्ति का शिकार होना पड़ता है। यहाँ पर उसकी स्वयं की बड़ी बहन और जीजा उसे मजबूर करते हैं। स्मिता के माता-पिता के गुजर जाने के कारण ये दोनों 'ऐन-केन प्रकारेण' उसकी शादी कराकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं।

इस बात को उसके जीजा के शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है – "जो मोटा, अधेड़ या..... लड़का बिना दहेज शादी करने को तैयार दिखता है तो उसे घर आने का न्यौता देना है। उसे स्मिता को फँसाने के नुस्के भी देने होंगे।"[21]

किसी परिवार द्वारा दहेज न देने कि स्थिति में किस प्रकार के कदम उठाये जाते हैं, उसका प्रस्तुत उपन्यास में सजीव चित्रण मिलता है। परन्तु स्मिता जैसी आत्मविश्वासी लड़की इस प्रकार निछावर करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। वह ठान लेती है कि, वह आगे कि पढ़ाई जारी रखेगी। इसी कारण वह साहसिक रूप से प्रत्येक रिश्ते को ठुकराने का फैसला कर लेती है। अन्त में वह निडर होकर सफाई से कह देती है – "मैं शादी नहीं करना चाहती ! न अधेड़ से, न जवान से। मैं पढ़ना चाहती हूँ।"[22]

अब स्मिता के इस निश्चय में उसकी बड़ी बहन भी साथ देने की ठान लेती है। अतः प्रस्तुत उपन्यास में नारी को स्वार्थी पुरुष के आगे घुटने टेकने का विद्रोह करते प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी उपन्यास 'अपने-अपने कोणार्क' में भी दहेज प्रथा पर विचार किया गया है। कुनी घर की बड़ी बेटी है। उसकी दो छोटी बहनें हैं। एक छोटा भाई भी है। कुनी जब विवाह योग्य हो जाती है तब उसे देखने रिश्ते आने लगते हैं। एक दिन प्रभाकर नाम के लड़के का रिश्ता आता है। कुनी और प्रभाकर शादी के लिए राजी हो जाते हैं।

परन्तु प्रभाकर के घर से दहेज की माँग ने कुनी को परेशान कर दिया। वहाँ से गहना-गुरिया, साजो-सामान, रंगीन टी.वी., स्कूटर आदि की माँग ने उसे विचलित कर दिया।

अब कुनी ने अपने पिता की गरीबी और मजबूरी को जान लिया था। उससे अपने पिता की हालत देखी नहीं गयी। अब उसका मन विद्रोह और आक्रोश की आग में जलने लगा। उसने अपनी दादी से कहा – "नहीं, बऊ, बप्पा मेरे लिए किसी का पैर नहीं छुएंगे। मौसा, हमारी तरफ से उन लोगों को कोई भी संदेश नहीं देंगे। मुझे यह शादी नहीं करनी है।"[23]

प्रस्तुत संदर्भ में यह दृष्टव्य है कि एक बेटी की अपने पिता के प्रति यह एक संवेदना मात्र न होकर दहेज प्रथा के विरुद्ध एक आक्रोश है। नारी स्वयं को एक बिकने की या मोल-भाव की वस्तु के रूप में नहीं देखना चाहती। इसी आधार पर कुनी का स्वाभिमान जाग उठा। परन्तु परिस्थिति, पारिवारिक वातावरण नारी को दहेज के खिलाफ जाकर ब्याह न करने की सोच को स्वीकारेगा या नहीं ऐसा होना असंभव-सा है, क्योंकि कौन-सा ऐसा भाई या पिता होगा, कौन-सी ऐसी माँ होगी जो अपनी बहन-बेटी को समाज के विरुद्ध, दहेज प्रथा के विरुद्ध जाकर बेटी को घर बिठा कर रखने की हिमायत करेगा।

कुछ वर्षों तक तो जीवन जैसे-तैसे संभल जायेगा लेकिन बीमार होने पर बुढ़ापे में कौन स्त्री का सहारा बनेगा। वैसे भी पुरुष की गिद्ध दृष्टि हमेशा अकेली स्त्री पर जमी रहती है। नारी के लिए यह सब झेल पाना बड़ा ही मुश्किल है। यही कारण है कि भारी दहेज माँगने पर भी स्त्री का विवाह करा दिया जाता है।

इस परिस्थिति से उभरने के लिए आज की नारी ने आत्मनिर्भर होने की ठान ली है। उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता ही उसे इस परेशानी से निजात दिला सकती है।

तेलुगु उपन्यास 'फिर से बहार आई' में दहेज जैसी सामाजिक कुप्रथा के भयानक रूप के कारण एक पूरा का पूरा परिवार दयनीयता की घोर परिस्थिति से गुजरता है। अधिकतर लड़कियाँ शादी की बात सुनकर लज्जा जाती हैं। वे अपने

सुंदर भविष्य की कल्पना में जैसे उड़ने लगती हैं। उनका मन गुदगुदाने लगता है, यह सोच कर कि पता नहीं उसका जीवन साथी कैसा होगा आदि- आदि। परन्तु शारदा के विषय में ऐसा कुछ भी नहीं था, इसके विपरीत वह आक्रोश से भर उठती है जब उसकी शादी की बात उठती है। शारदा के इस व्यवहार के पीछे उसकी पारिवारिक दयनीय स्थिति थी। इन भावनाओं को अभिव्यक्त करने का साहस शारदा में दिखाई देता है। शारदा एक बड़े परिवार से है, जिसमें तीन बहनें और दो भाई हैं। दीदियों का ससुराल से हर बार कुछ-न-कुछ माँग लेकर आना ही होता है। शारदा लगातार यही देखती रही थी कि माता-पिता की कमर टूटती जा रही, लेकिन ससुराल से माँगे खत्म नहीं हो रही।

शारदा की दूसरी बहन विजया के ससुराल की दशा देखकर शारदा का मन खिन्न-सा रह जाता है। हमेशा दीदी की सास, दीदी को दहेज के लिए ताने देती रहती है। और-तो-और विजया के पति भी इसी कारण हमेशा विजया को सताता रहता है और दोनों में खिटपिट लगी रहती है। दीदी विजया की स्थिति बड़ी असमंजस की रहती है, ना तो वह पति का विद्रोह कर सकती है, ना ही वह सास की कभी न समाप्त होने वाली माँगों को पूरा कर सकती है, और ना ही अपने माता-पिता की निस्सहायता देख सकती है। ऐसी असमर्थ परिस्थिति के कारण वह टैंकबंड में कूदकर अपनी जान दे देती है। यही कारण है कि शारदा में आक्रोश, घृणा और विद्रोह की भावना तीव्र होती जाती है। वह कहती है – "लड़कियाँ पैदा ही नहीं होनी चाहिए। यह समाज लड़कियों को संतोष से जीने नहीं देता है।"[24]

आये दिन समाचार पत्रों में दहेज के लिए लड़कियों को जलाने वाली खबरें, शारदा के मन को और अधिक विचलित करने लगती हैं। वह बेचैन होने लगती है। समाज की नारी के प्रति अमानवीय भावनाएँ उसके मन के विचारों को धधकाती रहती है और वह कहती है – "कीरोसिन से जलाने वाली सासें, यातनाएँ न झेलपाने वाली बहुओं की आत्महत्याएँ।"[25]

अतः शारदा का आक्रोश इतना अधिक बढ़ने लगता है कि उसकी मानसिक स्थिति भी असंतुलित होने लगती है। वह रामम के बच्चे की माँ बनने वाली होती है। नारी-जाति के दुःखों से इतनी हताश हो जाती है कि वह संयम से सोच भी नहीं पाती। जब उसे अपनी कोख में लड़की होने का पता चलता है तो वह नीति-अनीति, कानून-न्याय, आदि की परवाह किये बिना गर्भपात करा लेती है।

उपन्यास में इस घटना के वर्णन से यह अंदेशा लगाया जा सकता है कि नारी जाति की अवस्था कितनी त्राहि-त्राहि मचा रही है, जिस कारण उसका विद्रोह भी सोचने-समझने की स्थिति में नहीं है।

तेलुगु उपन्यास कुमारी मधुमती में भी दहेज की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

घोर आधुनिकता की दुहाई देता आज का बुद्धिजीवी समाज भी इस कुप्रथा के प्रभाव से अभिशप्त है। इस वैज्ञानिक समाज में भी दहेज प्रथा का पाखंड और अंधविश्वास की शर्तों को स्वीकारा जाता है। आज का शिक्षित समाज दहेज देने में और दहेज लेने में विश्वास करता है। इस प्रथा के कारण कई बार शादियाँ रुकी हुई देखी गई हैं। शादी के सुनहरे सपने देखते दूल्हा-दुल्हन को कई बार मायूस होते देखा जा सकता है। दहेज की समस्या एक विशाल काल के समान युवा नारी के जीवन को तहस-नहस कर देती है। इसी प्रथा के कारण शादी जैसे स्नहेमयी, निस्वार्थ बंधन को चूर-चूर होते देखा जा सकता है।

प्रस्तुत रचना में कुमुदनी चाहती है कि – "माता-पिता और पति के लिए जिस दिन लड़की बोझ नहीं बनेगी तब से दहेज प्रथा रूपी दुराचार धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगेगा।"[26]

कुमुदनी की आयु केवल अठारह वर्ष है। इतनी कम आयु में ही उसने दहेज के विकराल स्थिति को पहचान लिया और आगे वह कहती है – "स्त्री का विरासत में अपना हिस्सा होते हुए भी कितने माँ-बाप बेटियों को अपनी विरासत में बेटों के बराबर का हिस्सा देते हैं।" वह कहती है – "मेरा मानना है कि अगर लड़की को भी हिस्सा

देने लगे तो दहेज रूपी दुराचार का अंत धीरे-धीरे हो जायेगा। स्त्रियों को अपनी जायदाद के लिए आंदोलन करना बेहतर है।"[27]

प्रस्तुत उपन्यास में केवल अठारह वर्ष की कुमुदनी ही नहीं बल्कि अठारह वर्ष का युवा रंगनाथ भी नारी चेतना के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहता है – "दहेज तो मध्यमवर्ग की समस्या है, इसीलिए दुराचार के रूप में परिणत मध्यम वर्ग का मतलब है - आर्थिक तंगी। भरपूर परिवार में, भाई-बहन, माँ-बाप और विधवा बुआएँ होती हैं। हर घर में ऐसी परिस्थितियों से गुजरकर बेटा बड़ी मुश्किल से पढ़ाई पूरी करके नौकरी तलाशने लगता है। नौकरी तो आसानी से मिलने वाली नहीं है। इस बीच लड़कियों के रिश्तों की कतार लग जाती है। लड़की के माँ-बाप, लड़के की नौकरी न होने के कारण दहेज के साथ लड़की को देने की बातें शुरू कर देते हैं। उनकी बेटी दसवीं कक्षा पढ़कर भी माँ-बाप के लिए बोझ बन जाती है। उस बोझ को उतारने के लिए वे दूल्हे को ढूँढने लग जाते हैं।"[28]

आज कम-से-कम कहीं-कहीं युवा पुरुष के इस प्रकार के उदात्त विचार समाज की दहेज की प्रथा को थोड़ा-बहुत राहत देने का प्रयास कर रहे हैं। आधुनिक नारी ही नहीं बल्कि रंगनाथ जैसे युवक भी नारी चेतना के संघर्ष में साथ देने लगे तो वह मंजिल दूर नहीं जहाँ दहेज प्रथा का निवारण हो सकता है।

रंगनाथ का कहना यह भी है कि कितने ही लोग आज इस इंतजार में है कि, अधिक से अधिक लड़कियाँ दहेज को दुराचार की प्रथा कहकर उसका विरोध करने का साहस कर सके। ऐसी लड़कियों को वह 'सलाम' करता है। परन्तु ऐसा नहीं हो रहा है। ब्याह हो जाने के बाद दहेज के खिलाफ लड़ना नारी को सही नहीं लगता। वह अपनी शादी बचाने में लगी रहती है। इसमें अमीर लड़कियाँ तो बिल्कुल ही साथ नहीं देती क्योंकि इससे उन्हें कोई फरक नहीं पड़ता। इसकी शिकार तो केवल मध्यमवर्ग की लड़कियाँ ही हो रही हैं। इस अपराध में लड़कीवाले भी बराबर के हिस्सेदार होते हैं क्योंकि वे बड़े गर्व से कहते हैं कि हमने इतना दहेज दिया, इतना सामान दिया, इतने तोले सोना-चाँदी दिया आदि-आदि।

प्रस्तुत उपन्यास ‘जंगल की पुत्री’ में पद्मा में बचपन से ही विद्रोह की भावना दिखाई देती है। जब वह आर्थिक तंगी के कारण अपनी माँ के साथ मजदूरी के लिए जाती है तब वह देखती है कि भूस्वामी ने माँ को तो मजदूरी दी लेकिन उसे तुम छोटी हो कहकर पैसे नहीं दिये। भूस्वामी के शब्दों में – “तुम छोटी हो न। बड़ों के समान काम नहीं कर सकती हो। इसीलिए कुछ दिनों तक तुमको पैसे नहीं देते। काम करना सीखो कुछ दिनों तक। तुम्हें मुफ्त में काम करना है।”[29]

बचपन में मन बड़ा कोमल होता है। परन्तु जितनी अधिक कोमलता उनमें होती है उतनी ही अधिक भावुकता भी होती है। कभी-कभी जीवन के कठोर अनुभव उनके भविष्य का मार्ग बदलकर रख देते हैं। अतः उनके मन में द्वेष, आक्रोश, विद्रोह, घृणा और क्रांति की भावनाएँ पनपने लगती हैं। ये सारे गुण पद्मा में पनपने लगे थे। पद्मा अपने व्यवहार के बारे में कहती है – “उस दिन से मेहनत की सही मजदूरी न मिलने पर या ‘आ रे-जा-रे’ जैसे अपशब्द कहने पर उसके मुँह पर पानी फेंककर आ जाती थी।”[30]

प्रस्तुत उपन्यास में समकालीन युवक-युवतियों की दहेज के प्रति प्रतिक्रिया को बड़ी सजीवता से दिखाया गया है।

समकालीन हिन्दी और तेलुगु दोनों ही उपन्यास कृतियों में नारी की दासतापूर्ण जिंदगी को वास्तविक दृष्टिकोणों के आधार पर चित्रित किया गया है। परन्तु अब नारी ने दासता के विरुद्ध लड़ने का शंखनाद कर दिया है। वह अब कदम-कदम पर अपने विद्रोह का प्रदर्शन करना चाहती है और करने में सफलता भी प्राप्त कर रही है।

5.3. राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में राजनीति के क्षेत्र में नारी चेतना का उदात्त चित्रण मिलता है। नारी ने अपने शिक्षित होने का संपूर्ण परिचय राजनीतिक परिवेश में भी दिया है। राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ बहुत ही सतर्कता, बुद्धिमत्ता, दूरदृष्टि,

महत्वाकांक्षा, चातुर्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है। अतः राजनीति के क्षेत्र में आने के लिए नारी को काफी संघर्ष करना पड़ा। आज उसका संघर्ष रंग भी ले आया है। इसका उदाहरण श्रीमती इंदिरागाँधी, सरोजनी नायडू, मायावती, प्रतिभा पाटिल आदि उदात्त गुणों वाली महिलाएँ हैं।

तेलुगु उपन्यास 'नजरिए' में डॉ. साम्बमूर्ति को पकड़ने के लिए आनंदराव नामक व्यक्ति ने अनशन करने का निश्चय किया क्योंकि पुलिस और साम्बमूर्ति का गठबंधन हो गया है। साम्बमूर्ति के गायब होने में पुलिस का ही हाथ है। अतः बस्ती में ये खबर फैल गयी और अशांति, हिंसक वातावरण उत्पन्न हो गया। इस घटना की तहकीकात करने के लिए चर्चा होने लगी। इसमें स्वच्छंद संस्था के कुछ सदस्य और समिति के कुछ सदस्य खम्मम आ गये। अब साम्बमूर्ति ने स्वयं को पुलिस के हवाले कर दिया। उन सदस्यों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये, जिसमें नेताओं के द्वारा शोषित स्त्रियों का वर्णन किया जा रहा है। सदस्य शोधन का कहना है कि – "डॉ. साम्बमूर्ति सुंदर, जवान स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करने में माहिर है। उन्होंने कई स्त्रियों को अपने चंगुल में फंसाया है।

दूसरी तरफ राजनीतिक नेता सोमलिंगम का बयान इस प्रकार है - आज विपक्षी नेता साम्बमूर्ति को अपना व्यक्ति मान रहे हैं। किन्तु सच्चाई तो यह है कि मैंने ही उन्हें जमानत देकर जेल से छुड़ाया था। उन्होंने मेरे दल की काफी मदद की। छोटे-छोटे दुकानदारों, ठेले वालों आदि सभी को वोट बेचने का काम इन्होंने ही तो किया है। विरोधी दलों के नेताओं ने इन्हें छीनने की पूरी कोशिश की। परन्तु साम्बमूर्ति नहीं माने। राजम्मा जिसने इन पर दैहिक अत्याचार का आरोप लगाया है। यह भी विपक्षी नेताओं की एक चाल है। राजम्मा स्वयं हमारे पक्ष की नेता है। राजम्मा को उन्होंने वीरेशम के साथ दल बदलने के लिए मजबूर कर दिया। पैसे के बल पर मैं साम्बमूर्ति और राज्जम्मा के बीच सुलह करा दूँगा। नेता सोमलिंगम का कहना है – "यह सब राजनीति की चाल है। राजनीति को राजनीति से ही काटना है। "बिमारी एक और दवाई अलग दिये हो" तो समस्या सुलझे कैसे। राजनीति के लिए राजनीति

ही इलाज है। इस देश में सबकुछ राजनीति की ही चाल है। राजनीति की चाल के अलावा कुछ है ही नहीं।"[31]

किस्सा चाहे भाई-भाई का हो या पति-पत्नी का यदि घर की चार दिवारी के बाहर निकल जाता है तो राजनीतिक बन जाता है। यह पंचायती न्याय कोर्ट-कचहरी तक सीमित नहीं रहता। यह राजनीतिक चाल से ही समाप्त होता है। अतः सोमलिंगम कहते हैं कि इस किस्से को भी वे राजनीतिक दाँव-पेंच से ही समाप्त करना चाहते हैं।

अतः लेखक नवीन कहते हैं कि – समाज का हर मुद्दा राजनीति की चपेट में आ जाता है। आज कल स्त्री चेतना के नाम पर प्रत्येक मुद्दे को उछाला जा रहा है। वर्तमान समय में यह भी देखा जा रहा है कि स्त्री अपने हाथों में कानून को लेकर समाज को नचा रही है। पुरुष को इस ओर सजगता के साथ कदम उठाने होंगे।

एक और बयान में वरिष्ठ क्रिमिनल वकील और फेमिनिस्ट फोरम सचिव भारती देवी ने भी कहा है कि- स्त्री केवल उपभोग की वस्तु के रूप में इस्तेमाल की जा रही है। अधिकाधिक अपशब्द, बुरे शब्द, अश्लील शब्द सभी स्त्री से संबंधित ही प्रयोग किये जाते हैं। वास्तव में स्त्री जैसी नैतिकता पुरुषों में नहीं पायी जाती।

गाँव की बूढ़ी औरत पोचम्मा भी स्त्री के राजनीतिक संदर्भ के बारे में कहती है कि स्त्रियों ने राजनीतिक सत्ता अपनाकर पुरुषों को धमकी तक दे डाली। पैसे कमाने में माहिर राजम्मा और कुछ युवतियों ने वोट देने के लिए पुरुषों को विवश कर दिया। अतः कहा जा सकता है कि राजनीति का दल-दल स्त्रियों को भी मटमैला करने से नहीं चूकता। स्त्रियाँ भी जो नैतिकता की आदर्श मानी जाती है राजनीति के चक्रव्यूह से नहीं बच सकती। राजनीति के बलबूते पर वे पुरुषों को भी ठगने में सफल हो जाती हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री विमर्श को एक नये राजनीतिक आयाम में प्रस्तुत किया गया है।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने हिन्दी उपन्यास 'इदनन्मम' में राजनीति के प्रति सजग एक वृद्ध महिला 'बऊ' की जागृति का परिचय दिया है। बऊ कहती है – "वे लोग

जीभ जुबान से लोक-सभा और विधान-सभा में लड़ते हैं, स्याही-कलम से अखबारों में और करम-आचरणों से हम और आपके बीच मचवाते हैं महाभारत। इन्हीं सब की भरपाई कर रहे हैं हम लोग। कुपरिणाम भुगते रहे हैं।"[32]

वह आगे कहती है –"लोग यहाँ मार-काट करवा, सोक मनाते हैं, दिल्ली लखनऊ में। हमारे विकास का ढोल पीटते हैं, अखबारों में। कितने भा गये हैं हम। जाँच कमीशन बैठ जाता है तुरन्त।"[33]

लेखिका बऊ के माध्यम से युगीन नारी का राजनीति के प्रति सजग विचार को प्रस्तुत करती है। वहाँ पर 'नजरिए' नामक तेलुगु उपन्यास में स्त्री स्वयं अपनी महत्वाकांक्षा और स्वार्थ पूर्ति के कारण राजनीति के दल-दल में फँस जाती है।

'इदन्नमम' उपन्यास में मनुष्य के गिरे हुए स्तर को वर्णित किया गया है। राजनीतिज्ञ अपनी आरामतलब जिंदगी के लिए कितना नीचे गिर सकता है। तेलुगु उपन्यास 'जंगल की पुत्री' में भी नारी का राजनीतिक प्रवेश और परिवेश दोनों को बड़े ही आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

'जंगल की पुत्री' उपन्यास की नायिका पद्मा दर्जी की बेटी होने के बावजूद अपना एक राजनीतिक स्वतंत्र और सफल व्यक्तित्व बनाने के लिए कटिबद्ध है। इस उपन्यास का कथानक – 'माडिया दल महिला – क्रांतिकारी आन्दोलन' के दौरान विकसित हुई एक उत्कृष्ट महत्वाकांक्षी महिला के जीवन पर आधारित है। पद्मा का इस क्रांतिकारी आंदोलन से गहरा संबंध है। इसमें क्रांति की शक्ति को चित्रित किया गया है।

जहाँ 'जंगल की पुत्री' उपन्यास में शिक्षित बुद्धिजीवी स्त्रियों द्वारा आंदोलन किया गया है तो प्रस्तुत उपन्यास में एक देहाती महिला का आंदोलित रूप प्रस्तुत हुआ है। दल की सदस्या महिलाओं को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और झूठे बयान देने के लिए विवश कर दिया। उन्हें कहना पड़ा कि – "दल में रहते समय दल के नायक ने हमारे साथ बलात्कार एवं असभ्य व्यवहार किया था। हमें दल में समानता नहीं दी गयी। इसी कारण महिलाएँ दल की नेता नहीं बन पा रही है।[34]

इस प्रकार इस क्षेत्र में भी नारी का शोषण दृष्टिगोचर हो रहा है। राजनीति में प्रवेश करने के बाद भी उसे पूर्ण स्वेच्छा से अपना कार्य करने का अधिकार नहीं है। उसे प्रत्येक कदम पर अत्याचार का सामना करना पड़ता है। पुलिस के इस बयान को लोग सच मान रहे थे। परन्तु इस संदर्भ में लेखिका का कहना है कि – "आज की 'पीपुल्स पार्टी' में अधिक महिलाएँ सदस्या कैसे बन पायी हैं? इसमें महिला सदस्यता से लेकर, जिला संस्था के नेतृत्व तक कैसे विकसित हो सकी। कोई भी सदस्या रातों-रात दल की नायिका के स्तर पर कैसे पहुँच सकती है। कुछ वर्षों पहले दल में एक महिला भी नहीं होती थी। लेकिन आज दल के नेतृत्व के स्तर पर पहुँचना विकास नहीं तो और क्या है?"[35]

इस संदर्भ में लेखिका वनजा का कहना यह भी है कि, केवल 'नारीवाद' या 'फेमिनिज़्म' के माध्यम से ही सामाजिक परिवर्तन संभव है। क्रांति के अभाव में व्यवस्था नहीं बदली जा सकती। आज का नारीवाद शहरी राजनीति तक सीमित है। परन्तु ग्रामीण महिलाओं में यह बदलाव कब आयेगा?

प्रस्तुत उपन्यास की पद्मा एक उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। ग्रामीण या जंगली जाति की होने के बावजूद भी उसने किस प्रकार दल में प्रवेश पाया? उसे कितनी घोर समस्याओं का सामना करना पड़ा? वह किन अत्याचारों को सहकर इस स्तर तक पहुँच सकी?

इस संदर्भ में यह गद्यांश दृष्टव्य है – "दल के 'अन्ना' लोग कभी-कभी घर आकर समाज में न्याय की स्थापना के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को मिलाकर लड़ने की बात को समझाते हैं तो पद्मा के मन में ये विचार उथल-पुथल करने लगे। 'दल' के 'अन्ना' लोगों की बातें मन में थिरकने लगी। हाँ 'अन्ना' लोगों की बातें सही है। चंद दिन भी जिये तो जनता के लिए जीना अच्छा है न। कभी न कभी तो मरना ही है। न्याय के लिए मरना अच्छा है। मेरी तकलीफें, व्यथा, अत्याचार किसी दूसरी लड़की की ऐसी स्थिति न होने देने की भावना मेरे कण-कण में फैल गयी।"[36]

हिन्दी उपन्यास 'अपनी सलीबें' में नमिता जी ने स्त्री की राजनीतिक चेतना को बड़े ही आकर्षक रूप में उभारने का प्रयास किया है। प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री की राजनीतिक चेतना पहले तो केवल जागरण समिति तक ही सीमित रहती है, बाद में डॉ.शहनाज, नीलिमा, रत्ना आदि की कोशिशों से स्त्री चेतना कुछ आगे बढ़ती है। अब यह चेतना राजनीतिक दिशा में अपने कदम बढ़ाती है। अपने घर-परिवार की जिम्मेदारियों के बावजूद वे इस दिशा में सफलता प्राप्त करती देखी गई हैं।

मीना की घटना स्थल पर जब समिति सदस्या गाँव की अशिक्षित महिलाओं को समझा-बूझाकर एकत्रित करने में कामयाब होती है तो, एक महिला का उद्दण्ड पति तैश में आकर पत्नी को अनर्गल बातें कहता है –"बड़ी नेतागिरी सूझ रही है। चल इधर से। अभी सब नेतागिरी छुड़वा दूँगा। चुटिया पकड़कर खींच ले जाऊँगा।"[37] इस पर झट से रत्ना ने उस अहंकारी पुरुष की नब्ज़ पकड़ते हुए, उसे सबसे पहले तो मुँहबोला भाई बना दिया और बड़ी नम्रता से ऐसी वाक्पटुता का परिचय दिया कि वह एकदम शांत हो गया। रत्ना का यह कदम स्त्री की राजनीतिक चेतना का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। रत्ना ने हाथ जोड़कर बड़े ही विनम्र और प्रेमपूर्वक उस व्यक्ति से कहा –"भाई साहब! आप हमारे सम्मानीय है। हम से ज्यादा समझदार है।"[38]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में नारी की राजनीतिक चेतना पर विशेष रूप से दृष्टिपात किया गया है। राजनीति के अनेक पहलुओं पर नारी चेतना का प्रभाव इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। आज राजनीति नारी की पहुँच से दूर की वस्तु नहीं। अर्थात् नारी राजनीति के क्रीड़ास्थल में भी अपनी साख जमाने में संघर्षरत सिद्ध हो रही है। हाँ ! यह तो ध्यान देने की बात है कि उसकी चेतना का नकारात्मक और सकारात्मक, नैतिक और अनैतिक ये दोनों ही बातें दिखाई दे रही हैं। कहना न होगा कि संसार में हर वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के दो पहलू होते हैं। अतः इस क्षेत्र में भी उपन्यासकारों ने दोनों पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

5.4. धार्मिक परिप्रेक्ष्य में

उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में नारी का विचित्र विद्रोही रूप दर्शित होता है। सामाजिक बंधन जो नारी का सबसे भावुक बंधन होता है, उसकी भी वह परवाह नहीं करती। किसी भी कीमत पर वह अपना आत्मसम्मान खोना नहीं चाहती। किसी भी भारतीय नारी के लिए उसके पति की लंबी आयु की कामना, पति के जीवित रहते उसका मर जाना, सुहागिन के रूप में चिंतामणी को समर्पित होना ही जीवन की सार्थकता होती है। अत: जब कोई स्त्री ये सब बंधन छोड़कर जब पति को मारती है या उसके मृत्यु की कल्पना करती है तो अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके अत्याचार सहने की शक्ति अब समाप्त हो गयी है।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी के इस नवीन आक्रामक रूप का अवलोकन किया जा सकता है जब प्रिया अपने पति नरेंद्र की नीच हरकतों से विचलित होकर ये शब्द कहती है – "नरेंद्र जब तुम मरोगे तो संजू से कहना रुपए की चिता सजाए।"

प्रिया अपने आप को आत्मनिर्भर बनाने में सफल हो जाती है। वह भी नरेंद्र की तरह व्यवसाय में अपना नाम कमाने लगती है। यही आर्थिक स्वतंत्रता उसे आत्मसम्मान के लिए लड़ने की ताकत बनती है। इसी व्यावसायिक या आर्थिक स्वतंत्रता और स्थिति के कारण वह नरेंद्र की धमकियों से डरने की बजाय उसे ही डराने की हिम्मत रखती है। वह लगन और निष्ठा के साथ अपनी एक पहचान बनाने में सफल होती है। उसकी यही सफलता नरेंद्र को चैलेंज देने में काम आती है और वह नरेंद्र से कहती है – "सारे जुल्मों के सामने... मैंने पाया कि अब मैं पूरी तरह जिंदगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।"[39]

वह आगे नरेंद्र से कहती है – "तुम बड़े व्यवसायी हो सकते हो, नरेन्द्र और मेरा व्यवसाय बहुत छोटा है...। मगर मुझे स्टॉफ की जो लॉयल्टी मिली हुई है, वह तुम्हारे पास नहीं है। मेरा ग्राहक भी सात समुंदर पार बैठा है, जो मुझसे चमड़ा खरीदता है। मैं एक गिरी हुई औरत हूँ या सीता सावित्री, उसके मन में इससे कोई फर्क नहीं पड़ने का।"[40]

उपन्यास 'कठगुलाब' में भी कुछ इसी प्रकार का नारी विद्रोह देखा जा सकता है जब स्मिता अपने जीजा के मरने की खबर सुनकर अफसोस करती है क्योंकि वह अब उस दरिंदे इंसान जीजा से बदला नहीं ले सकती। इसी संदर्भ में वह कहती है कि – "वह दरिंदा इन्तकाम का मौका दिये बिना ही मर गया। अब वह जीम जारविस को फरार होने का मौका नहीं देना चाहती।"[41]

उपुर्यक्त हिन्दी उपन्यासों में नारी चेतना की तुलना निम्न तेलुगु उपन्यासों में देख सकते हैं।

इस प्रकार पद्मा की आत्मनिर्भरता की सीमा चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। अब सारे परिवार का कारोबार उसी पर आधारित था। उसके लिए हर काम संभव था। उसने स्त्री और पुरुष दोनों का काम सीख लिया। किसी भी काम के लिए वह यह नहीं सोचती थी कि – "अरे यह तो पुरुष का काम है, इसे केवल वे ही कर सकते हैं।"

उपन्यास 'दिखता हुआ अतीत' में भी पूर्वचर्चित उपन्यासों के समान नारी शोषण की अनेक घटनाओं को उजागर किया गया है। नारी के आत्मनिर्भर होने के बावजूद उनका शोषण करने का प्रयास किया जा रहा है। देवकी अपनी माँ कमलाम्बा की दयनीय स्थिति को अपनी आँखों से देख चुकी थी। आत्मनिर्भर होने के बावजूद पिता उसकी माँ के साथ बुरा व्यवहार करते थे। एक बार जब माँ काम से घर लौट आती है तो पिता रामचंद्रम चिढ़ते हुए बोले - "घर में चावल नहीं है। उनसे दो रुपये माँग कर लाना था।"[42] माँ कहती है – "वे लोग अपनी पार्टी में व्यस्त थे। इसीलिए मैंने नहीं पूछा।" इस पर पिताजी माँ को गालियाँ देने लगे - "स्साली बाहर जाने के बाद तुम्हें घर की याद नहीं रहती।"[43]

यहाँ पर आत्मनिर्भर स्त्री को दुहरी मार खानी पड़ रही है - एक तो अर्थ का बंदोबस्त करो और अपने निकम्मे पति का अत्याचार सहो। आर्थिक आत्मनिर्भरता न होने के बावजूद पुरुष का अहंकार कम नहीं होता।

कभी-कभी देवकी की माँ का दबा हुआ विद्रोह दृष्टिगोचर होता है। जब पिता जमींदार की बेटियों को संगीत सिखाना छोड़ देते हैं तो माँ-बाप के बीच कहा-सुनी हो

जाती है। माँ व्यंग्य भरे स्वर में कहती है – "हाँ सच है! मेरी कमाई से घर कहाँ चल रहा है? सब कुछ आप ही की कमाई है न!"[44]

परन्तु इस विद्रोह का माँ को बड़ा-सा मोल चुकाना पड़ा था। पिताजी ने झट से माँ का जूड़ा पकड़कर खींच दिया। देवकी की माँ सूखे पत्ते के समान हिल गयी। पिता ने गर्दन पकड़कर झुका दिया और पीठ पर मुक्के मारने लगा। यह दृश्य देवकी के कोमल मन से कभी न गया। पुरुषों की यह पैशाचिक प्रवृत्ति देवकी के मन को झकझोर कर रख देती है।

श्रवणकुमार की अनुपस्थिति में दोनों घर में मिलने का अवसर न छोड़ते थे। सासूमा रत्तायम्मा को यह सब पता था पर वह अपनी कम उम्र की जवान बहू की मजबूरी जानती थी और चुप रहती थी। क्योंकि वह यह समझती थी कि – "बेटे का विकृत रूप किससे सहा जाता है और बहू खूबसूरत एवं जवान है। जवानी के जोश को रोक पाना किसके बस की बात है।"[45]

सासूमाँ का स्त्री होने के नाते यह एक मौन विद्रोह ही तो था। चाहे सामने वाला पुरुष उसका अपना बेटा ही क्यों न हो। वह उसमें अहंकारी पुरुष की भावनाओं को लगातार देख रही थी। उसने पत्नी के साथ उसकी बर्बरता, अत्याचार, शोषण आदि अमानवीय हाव-भावों को देखा था।

कुछ समय बाद कामलाम्बा ने एक सुंदर बेटी को जनम दिया। परन्तु जब वह बेटी को लेकर ससुराल आती है तो उसकी मानसिकता बिल्कुल बदली हुई होती है। वह बेचैन होने लगती है। वह सोचती है - "घर एक नरक बन गया। बेटी एक बड़ा बंधन बन गयी और पति तो महामांत्रिक लगने लगा। इसीलिए वह खुशी से नहीं रह पाती है।"[46]

अब रामंचद्रम के आकर्षण के कारण उसका मन भीतर ही भीतर विद्रोह करने लगा। वह सोचने लगी – "इस प्रकार के प्रतिबंधित परिवार में हर साल एक-एक बच्चे को पैदा करते हुए, गर्भ धारण कर और उल्टियों से चीखते-चिल्लाते कराहते हुए चीत्कार और घृणा के बीच जड़-सा नापसंद पति को शरीर सौंपकर, बिना किसी सुख

के घृणापूर्ण जीवन जी नहीं सकती। तो क्या करना है?.... मर जायें तो .... यह विचार आरम्भ में ही करना था..... क्यों मरना है?.... जान गँवाने वाली डरपोक मैं नहीं हूँ। मैंने कोई गलती नहीं की है। ना ही कोई गलती कर रही हूँ। सब लोगों ने मुझे धोखा दिया है। मैं तो नादान होने के कारण धोखा खा गई। इस धोखे से बाहर आने की कोशिश कर रही हूँ।"[47]

वर्णित संदर्भ से यह समझा जा सकता है कि आज की नारी चुपचाप अत्याचार सहने के लिए नहीं है। वह अपनी मर्जी से अपनी राह चुनने की इच्छुक है। वह कैद होकर रहने के लिए राजी नहीं है। वह लगातार अपने उड़ जाने का मौका तलाशती रहती है और उड़ने का अवसर नहीं गँवाती। वह अपनी आवश्यकताओं को समझकर उसे पाने की अभिलाषी है। कमलाम्बा ने यह साबित कर दिया कि आधुनिकता के रंग में वह रंग गयी है। उसने अपने अनचाहे जीवन का साहसपूर्ण विद्रोह कर दिया है। उसने पुरुष के अहं को ललकारा है।

तेलुगु उपन्यास 'जंगल की पुत्री में नायिका पद्मा के घर की आर्थिक स्थिति दयनीय है। इसीलिए घर वालों ने लड़के को ही शिक्षा दिलाई और लड़कियों को घर पर ही बिठा दिया। अर्थात् माता-पिता ही अपनी लड़की और लड़का संतान में भेद करने लगते हैं अतः लड़की समाज के निर्मम चंगुल से कैसे छूट सकती है। हिन्दी उपन्यास 'इदन्नमम' में भी मंदा को उसकी माता त्याग देती हैं। अतः मंदा की देखभाल कौन करेगा, यह सबसे बड़ी समस्या बन जाती है। परन्तु मंदा की दादी बऊ उसे पालने-पोसने का जिम्मा उठाती है।

मंदा के पिता जमींदार थे। उनकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा माँ रतन यादव नाम के व्यक्ति के साथ अपने अवैध संबंध स्थापित करती है। वह अपनी बेटी मंदा को भी छोड़ देती है और यादव के पास चली जाती है। यदि घर संभालने वाली स्त्री ही घर छोड़कर चली जाये तो उस घर का क्या होगा? इससे सामाजिक प्रथाएँ भी टूट जाती हैं। यह घाव कभी मिटते भी नहीं हैं। अब बऊ अकेली मंदा को लेकर बैलगाड़ी

वाले गनपत के साथ श्यामली गाँव रवाना होती है। यहाँ बऊ के भाई रहते हैं। जहाँ परिवार में तीन भाइयों के संयुक्त परिवार हैं।

मंदा के पिता के गाँव सोनपुरा में उसके लिए खतरा था क्योंकि उसकी माँ जिसके साथ गयी थी, संभव है वे उसे उठा कर ले जाये। अब बऊ अपने भाई के घर पहुँच तो जाती है परन्तु उसके परिवार के सदस्यों को बऊ का इस तरह मंदा को ले आना पसंद नहीं था। अतः बऊ को कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है और वह दु:खी होकर अपने भाई दादा को आप-बीती सुनाती है – "तो समझ लो दादा कि बहू ने तीन दिन तक अन्न ग्रहण नहीं किया। रोती रही महेन्द्र (बेटे) को याद करके।"[48]

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा जी ने प्रस्तुत संदर्भ में यह बताने का प्रयास किया है कि माँ-बाप के त्यागने पर एक बेटी को दर-दर की ठोकरें किस प्रकार खानी पड़ती हैं। दादी के होते हुए भी माँ-बाप की कमी खलती है। अतः इस कृति के माध्यम से आधुनिक भौतिकता के मोह में मनुष्य कितना निर्मम होता जा रहा है, इसका सजीव वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

5.5 सांस्कृतिकपरिप्रेक्ष्य में

प्राचीन समय से नारी पुरुष प्रधान समाज के हाथों की कठपुतली बनकर अपना जीवन व्यतीत करती चली आई है। धीरे-धीरे उसने अपनी दासता को पहचाना और मजबूरी को जाना। और अब वह खुले आसमान में विचरण करना चाहती है। ऐसा करने में वह सफल भी होती जा रही है। आज उसकी इस सफलता की स्वच्छंद उड़ान ने अहं का स्थान ले लिया है। चर्चित उपन्यासों में स्त्री के इस घमंडी रूप का चित्रण अंकित किया गया है। कभी-कभी वह अपने अहं में अंधी होकर अपना ही नाश करती देखी जा सकती है। इसका सशक्त उदाहरण मातृत्व के बदलते हुए रूप को देखा जा सकता है।

स्त्री का मातृत्व जैसी पवित्र भावना से ही संसार का सारा कारोबार चलता है। स्त्री होने की पूर्णता भी इसी भावना से होती है। उसके इसी ईश्वर प्रदत्त गुण के

कारण वह पुरुष से अलग एक मार्मिक पहचान बना पायी है। सृष्टि के सभी प्राणियों में यह गुण पाया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री ने अपने इस गुण को भी दाँव पर लगाने की भूल की है। वह अपने अहं में इतनी लीन हो गयी है कि अपने इस पवित्र मातृत्व के दायित्व को भी रौंदने से पीछे नहीं हटी।

युगीन नारी अपने उन्मुक्त यौन संबंधों में उलझकर रहने लगी। स्वतंत्र चेता नारी ने विज्ञान के वरदान को अभिशाप में बदल दिया है। उन्मुक्त यौन संबंधों से उत्पन्न संतान की रोकथाम के लिए बाजार में दवाइयाँ आ गयी हैं। गर्भपात कानूनन करवाया जा सकता है। विवाह से पूर्व भी गर्भधारण करने की कानूनी छूट, विवाहित होते हुए भी मातृत्व को ठुकराने की छूट, आदि हो रहा है। मातृत्व को ठुकराना या अपनाना एक खेल जैसा हो गया है।

हिन्दी उपन्यास 'आवां' में सुनंदा सुहैल नामक मुसलमान लड़के से प्रेम करती है। सुहैल के अब्बू शादी के लिए तभी राजी होने की शर्त रखते हैं जब सुनंदा इस्लाम धर्म को स्वीकार करेगी। सुनंदा इस शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं, परन्तु वह सुहैल के बच्चे की माँ बनने वाली होती है। वह अब बिना शादी के ही बच्चे को जन्म देने का फैसला कर लेती है। और वह ऐसा करने में सफल भी हो जाती है। वह नमिता से अपनी आत्म-निर्भरता का परिचय देती हुई कहती है – "फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ दीदी। अपनी बच्ची की परवरिश स्वयं करने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाण-पत्र का मोहताज नहीं। असुविधा है तो मात्र इतनी कि माँ स्वयं काम पर जायेगी या मेरी बच्ची की देखभाल करेंगी? कंपनी से सुविधा मिलते ही बच्ची को मैं अपने संग रख सकूँगी।"[49]

प्रस्तुत उपन्यास में नारी का यह उदात्त रूप निम्न संदर्भ में भी प्रस्तुत होता है। यहाँ नारी का फैशन की दुनिया में मदमस्त रूप दिखाई देता है।

युगीन नारी अपने फिगर को बिगाड़ना नहीं चाहती और 'टेस्टट्यूब' बेबी प्रक्रिया अपनाना चाहती है। वह अपनी भावी संतान को अपने कोख में धारण कर उसे जन्म देने के स्त्री के सबसे बड़े गौरव को भी त्यागने का फैसला कर लिया है। इसके

अलावा 'गोद लेने' की व्यवस्था का भी उसने खुशी से समर्थन किया है। वह 'माँ' बनने के सुख को भी अपने अहं और स्वेच्छा के लिए बेचने और खरीदने के लिए तैयार है। वह स्वेच्छा का पीछा पागलों की तरह करती जा रही है।

हिन्दी उपन्यास 'आवां' में संजय कनोई संतानोत्पत्ति के लिए सक्षम होते हुए भी उसकी पत्नी निर्मला अपनी बहन की बेटी को गोद लेना चाहती है। संजय नमिता से कहता है – "निर्मला अपनी प्रिय मझली बहन शारदा की आठ माह की ईशा को कानूनन गोद लेने की इच्छुक है।"[50]

परन्तु उपन्यास 'कठगुलाब' में मरियाम की माँ न बन पाने की स्थिति में गोद लेने की सोच एक सुखी-अनुभव प्रदान करती है। मरियम कहती है – "आखिर वह दिन आ पहुँचा, जब इम्तहान का नतीजा निकला और हम जरूरी कागजाद पर दस्तखत करके एक बच्ची को 'बेटी' बनाकर घर ले जाने के लिए बुलाये गये। फोन पर खबर मिली तो 'वुमेन ऑफ द अर्थ' के प्रकाशन की उपलब्धि भी उसके सामने फीकी पड़ गयी। मैं माँ बनने वाली थी। बेहद चुनिंदा किस्म की।"[51]

सदियों से दासता की मार सहते-सहते नारी इतनी पत्थर दिल बन गयी है कि 'माँ' बनने की भावुक स्थिति में भी पुरुष का सहारा नहीं लेना चाहती। उसने अपने व्यावसायिक व्यक्तित्व के आगे किसी नैतिक, सांस्कृतिक या सामाजिक बंधन को आने नहीं देना चाहती। वह मातृत्व के स्नेहमयी भाव को भी नकाराना चाहती है। उसकी इस घोर आत्मनिर्भरता ने मातृत्व को जर-जर कर दिया है।

उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा डॉक्टर के पास जाँच कराने जाती है और उसे माँ बनने की खबर मिलती है। वह अपनी सहेली नीरजा से कहती है – "मैं हर्ष के बच्चे को स्वीकार करुँगी।"[52]

हर्ष की मृत्यु हो जाती है और वर्षा भविष्य में विवाह भी नहीं करना चाहती है। जब हर्ष की बहन सुजाता उससे इस बात का जिक्र करती है तो वह कहती है – "मुझे लम्बे समय तक शून्य में जीना है और अब यही मेरा सहारा होगा।"[53] इस पर हर्ष की

माँ भी जब उसे समझाने का प्रयास करती है और कहती है – "अभी तुम्हारे सामने पूरी जिंदगी पड़ी है। हो सकता है आगे चलकर कोई ऐसा पुरुष तुम्हें मिल जाये, जिसके साथ तुम कानूनी तौर पर अपनी जिंदगी बाँटना चाहो। तुम इससे छुटकारा क्यों नहीं पा लेती। इस पर वर्षा कहती है कि – "और अब यही मेरा सहारा होगा।"[54] बच्चे के जन्म के बाद वर्षा एक नयी भावना को महसूस करती है कि – "अब वह संपूर्ण स्त्री बन गयी है।"[55]

बचपन से ही वर्षा का यह उदात्त रूप दिखने लगता है, जब वह अपने जन्म नाम यशोदा को अपनी मर्जी से बदल लेती है। उसमें यह महत्वाकाँक्षा बचपन से ही दिखाई देती है। वह अपने ही मद में मस्त रहती है और सोचती है – "मैं आगे चलकर क्या बनना चाहती हूँ। मेरा बस चले तो मैं आकाश के दहलीज़ पर बनी सात रंगों की इंद्रधनुषी कल्पना बनूँ। आश्रम में शकुंतला की वन - ज्योत्सना सखी बनूँ, चंद्रमा को देखकर खिल पाने वाली कुमुदुनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुकूल हो।"[56]

वर्षा को अभिनय के प्रति काफी लगाव है और वह इसी कारण अपना घर छोड़कर दिल्ली चली जाती है। वहाँ पर वह अपनी कला की प्रतिभा और अपने अस्तित्व का विकास करती है। आगे वह शाहजहाँपुर से 'नैशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' पहुँच जाती है। वही राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कला को प्रमाणित करती है।

कहीं-कहीं उसे मायूसी का सामना भी करना पड़ता है। उसे 'महानगरों' नाटक में 'ट्रैजडी क्वीन' की उपाधि मिलती है। इसी दौर में उसकी मुलाकात हर्ष से होती है। अब वह हर्ष के काफी करीब आ जाती है। वह पूर्ण रूप से स्वयं के प्रति समर्पित हो जाती है। वह स्त्रीत्व की गहरी अनुभूतियों को भी हर्ष से जोड़ने लगती है। हर्ष के साथ यौन संबंध में भी उसका अपराध बोध नहीं जागता, बल्कि वह बिना हिचकिचाहट प्रसन्नता से कहती है – "मैंने सृष्टि का रहस्य जान लिया है.... मैं स्त्री बन गई हूँ।"[57]

आगे वह इसी उत्साह और नयी मीठी भावना के सागर में हिलौरें लेती, इस लय के साथ दिव्या को पत्र में लिखती है – "निष्ठुर ने रतिरंग के लिए अपना घर और

राष्ट्रीय पर्व चुना, जब भारतीय गणतंत्र का संविधान लागू हुआ था। जब राजपथ पर तोपें राष्ट्रपति को सलामी दे रही थीं, तो हठी प्रेमी मेरे कामकलश पर नख-रेखा अंकित कर रहा था।"[58]

इस प्रकार उपन्यास में वर्षा की प्रफुल्लता की तुलना राष्ट्रीय पर्व से कर, नारी की स्वतंत्र प्रवृत्ति का उदात्त चित्र प्रस्तुत किया गया है।

आगे चलकर वर्षा कैमरामैन सिद्धार्थ की ओर आकर्षित होती है। वह सोचती है – "उसके स्पर्श में थरथराहट और आह्लाद है। उसकी साँसों में समर्पण का स्पंदन है, जिससे मेरा रोम-रोम सार्थकता से सिहर उठता है।"[59]

पत्रिकाओं में वर्षा के बारे में कई सारी खबरें छपी होती हैं, यहाँ तक की उसकी एक संतान होने का भी पता चलता है। उसके रोमांस और उससे भी अधिक अनैतिक खबरें छपती हैं। इन सब से परेशान जब हर्ष वर्षा से कहता है – "मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी।" वर्षा निस्संकोच कहती है- "मैं इस दुनिया में तुम्हारी अपेक्षाएँ पूरी करने के लिए नहीं हूँ।" इस पर वह कहता है – "काश, मुझे पता होता.... तुम्हारी अपेक्षाएँ अलग भी जा सकती है।"[60]

परन्तु अंत में हर्ष की मृत्यु के बाद वह एकाकी ही रह गई। उसके जीवन में एक कभी न खत्म होने वाला खालीपन आ गया। युगीन नारी की घोर महत्वाकांक्षा और स्वच्छंदता ने उसे ग्रसित कर लिया।

'कुंती पुत्रिका' तेलुगु कृति में नारी की मातृत्व भावना को कुछ अलग उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है।

नीलिमा और श्रीधर की शादी अंधविश्वास के कारण नहीं हो पाती। परन्तु नीलिमा गर्भवती हो जाती है। पिता और बहन उसे अपना गर्भपात कराने के लिए समझाते हैं। नीलिमा किसी की बात नहीं सुनती और कहती है – "आत्मा को धोखा देना मुझे मालूम नहीं। भ्रूण हत्या करने के बाद अपने को नादान, जवान लड़की

बताकर किसी पर पुरुष को धोखा नहीं दे सकती। इससे बदतर और घटिया हरकत और कुछ नहीं होगी। यह बिल्कुल मुझे पसंद नहीं है।"[61]

परन्तु स्वयं नायिका नीलिमा 'अपनी सलीबें' उपन्यास में सामाजिकता के बंधन में जकड़ी हुई है। वह उसे तोड़ना ही नहीं चाहती। झूठे अहं, रूढ़िवादिता, परिवेश आदि के सामने वह अपने मन की बात नहीं सुनती और अपने वैवाहिक सुखी जीवन को भी नष्ट कर देती है। उसकी माँ भी उसे समझाने का प्रयास करती है और कहती है – "अगर ईशू ने तुम्हें झूठ बोला था। जबरदस्त धोखाधड़ी करके तुम्हें शादी के लिए राजी किया, तब तो जरूर वह घोर अपराधी है। लेकिन बेटी वह तो 'आई.ए.एस' था।"[62]

दोनों का वैवाहिक जीवन खुशी से चल रहा था। ईशू की सरकारी नौकरी से ऐशो आराम का खूब आनंद ले रही थी नीलिमा। इस ऐशो आराम से कुछ पलों के लिए नीलिमा छुट्टी पाना चाहती थी। इसीलिए उसने गाड़ी की बजाए रिक्शे में जाने की सोची।

राह चलते रिक्शे वाले ने जैसे उसके जीवन का रूख ही बदल दिया। उसने कहा – "मेरे मामाजी है, वह मेम साहब...!"[63]

यह सुनकर जैसे-तैसे वह घर पहुँची और तैश में आकर ईशू से कहने लगी – "झूठे हो तुम ! तुमने धोखा दिया है मुझे। तुम... तुमने अपनी जाति छिपाई। हमेशा छिपाते रहे। तुम भी रिजर्व कोटा वाले थे। छोटे लोगों में से थे। तुमने सबको धोखा दिया...?"[64] इस पर ईशू ने कहा – "मैंने... धोखा नहीं दिया। जो था, जैसा था, तुम्हारे सामने था मैं।.... फिर जितना तुमने जानना चाहा, वह मैंने बताया। जिन बातों को मेरे लिए कोई महत्व नहीं, उसकी कहानी क्यों सुनाता मैं....।"[65] इस प्रकार नीलिमा ईशू से अलग हो जाती है।

समग्रत: अंतिम दशक के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का तुलनात्मक विश्लेषण भारत में विकसित होने वाली नारी के महत्वपूर्ण दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। अंतिम दशक के हिन्दी-तेलुगु उपन्यासों में ऐसे विभिन्न संदर्भ संप्रेषित हुए हैं जो

भारतीय नारी चेतना के व्यापक रूप को प्रस्तुत करते हैं और नारी चेतना के बल पर विकसित भारतीय सोच और चिंतन को प्रस्तुत करते हैं। यह चिंतन हिन्दी-तेलुगु उपन्यास साहित्य में भारतीयता के स्वरूप को प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :-

---

1 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.114
2 मुझे चांद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.7
3 कलिकथा-बाइपास - अलका सरावगी, पृ.58
4 दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.46
5 दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती, पृ.46
6 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.25
7 मरीचिका – डी. कामेश्वरी, पृ, 157
8 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.122
9 अपने-अपने कोणार्क - चंद्रकान्ता, पृ.195
10 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोक, पृ.54
11 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.120
12 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.149
13 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.169
14 फिर से बहार आई – मुक्तेवि भारती, पृ , 3
15 फिर से बहार आई – मुक्तेवि भारती, पृ 10
16 फिर से बहार आई – मुक्तेवि भारती, पृ ,18
17 अड़वि पुत्रिका, वनजा, पृ.82
18 अड़वि पुत्रिका, वनजा, पृ.14
19 अड़वि पुत्रिका - वनजा, पृ.15
20 अडवि पुत्रिका – वनजा, पृ.7
21 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.14
22 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.14
23 अपने-अपने कोणार्क - चन्द्रकांता, पृ.47
24 फिर से बहार आई – मुक्तेवि भारती, पृ.4
25 फिर से बहार आई – मुक्तेवि भारती, पृ.4
26 कुमारी मधुमती - गोविंदराजु सीतादेवी, पृ.85
27 कुमारी मधुमती - गोविंदराजु सीतादेवी, पृ.89
28 कुमारी मधुमती - गोविंदराजु सीतादेवी, पृ.90
29 अडवि पुत्रिका – वनजा, पृ.7
30 अडवि पुत्रिका – वनजा, पृ.7
31 नज़रिए - अंपशय्या नवीन, पृ.92
32 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.20
33 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.
34 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृष्ठभूमि में से
35 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृष्ठभूमि में से

36 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.25
37 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.72
38 अपनी सलीबें – नमिता सिंह, पृ.72
39 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.10
40 छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृ.176, 177
41 कठगुलाब – चित्रा मुद्गल, पृ.137
42 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.17
43 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.17
44 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.77
45 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.18
46 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.21
47 दिखता हुआ अतीत - जानकीबाला, पृ.122
48 इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.27
49 कठगुलाब – मृदुला गर्ग, पृ.100
50 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.221
51 आवां – चित्रा मुद्गल, पृ.111
52 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.553
53 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.553
54 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.556
55 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.557
56 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.20
57 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.121
58 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.121
59 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.322
60 मुझे चाँद चाहिए - सुरेन्द्र वर्मा, पृ.404
61 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.13
62 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.218
63 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.174
64 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.189
65 कुंती पुत्रिका – शारदा अशोकवर्धन, पृ.182

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

परिशिष्ट

आधार ग्रंथ

हिन्दी उपन्यास

क्रम सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/लेखिका का नाम	प्रकाशक	संस्करण / वर्ष
1	अपने-अपने कोणार्क	चंद्रकांता	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	1995
2	अपनी सलीबें	नमिता सिंह	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	1998
3	आवां	चित्रा मुद्‌गल	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	1999
4	इदन्नमम	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	1994
5	कठगुलाब	मृदुला गर्ग	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली	1996
6	कलिकथा वाया बाइपास	अलका सरावगी	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली	1996
7	छिन्नमस्ता	प्रभा खेतान	राजकमल प्राइवेंट लिमिटेड, नई दिल्ली	1993
8	दिलो दानिश	कृष्णा सोबती	राजकमल प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली	1993
9	निष्कवच	राजी सेठ		1997
10	मुझे चाँद चाहिए	सुरेन्द्र वर्मा	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली	1996

तेलुगु उपन्यास

1	आकाश में विभाजक रेखाएँ नहीं हैं	मु.सुजाता रेड्डी	रोहणम पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	1995
2	कुमारी मधुमति	गोविंदराजु सीतादेवी	अनुराधा पब्लिशर्स, हैदराबाद	2000
3	कुंती पुत्रिका	शारदा अशोकवर्द्धन	दीपिका प्रचुरणलु, हैदराबाद	1996
4	मरीचिका	डी.कामेश्वरी	रामेरको बुक्स, एलुरू	1996
5	मुझे जाने दो	के. रामलक्ष्मी	दिंव्या प्रचुरणलु, हैदराबाद	1994
6	जंगल की पुत्री	वनजा	रागो प्रचुरण, चिक्कड़पल्ली, हैदराबाद	1995
7	दिखता हुआ अतीत	इ.जानकी बाला	नव्या प्रिंटर्स, हैदराबाद	2000
8	फिर से बहार आई	मुक्तेवि भारती	मुक्तेवि प्रचुरण, सिकन्दराबाद	1997
9	नजरिए	अंपशय्या नवीन	प्रत्यूषा प्रचुरणलु,, हैदराबाद	1999
10	सहजा	वोल्गा	स्वेच्छा प्रचुरणलु, हैदराबाद	1995

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी साहित्य				
1	अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में नारी समस्याएँ	डॉ. अर्चना झा	मदर टेरिसा प्रचुरण, नई दिल्ली	2009
2	आजाद औरत : कितनी आजाद	संपादन. शैलेन्द्र कुमार, रजनी गुप्त	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	2008

3	आदमी की निगाह में औरत	राजेन्द्र यादव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	2005
4	आधुनिक कथा साहित्य में नारी : स्वरूप और प्रतिमा	संपादन :डा. उमा शुक्ला डा. माधुरी छेडा	अरविंद प्रकाशन, मुंबई	1995
5	आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन	रम.एन.श्रीनिवास	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	1967
6	आधुनिकता और राष्ट्रीयता	डॉ. राजमल बोरा	नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद	1973
7	आधुनिक साहित्य	आ. नंददुलारे वाजपेयी	साहित्य भवन प्रा.लि., इलाहाबाद	1969
8	आठवें दशक के राजनीतिक उपन्यासों में यथार्थवाद	राजश्री मोरे	मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद	1992
9	आँचलिकता से आधुनिकता बोध	डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर	1972
10	इक्कीसवीं सदी की ओर	संपादन – सुमन कृष्णकांत	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2001
11	उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में स्त्रियों की स्थिति	संतोष यादव	प्रिन्ट वेला पब्लिशर्स, जयपुर	1987
12	उत्तर आधुनिकता - कुछ विचार	संपादन : देवीशंकर नवीन शुशांत कुमार मिश्र	वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली	2000
13	उत्तर आधुनिकता– साहित्यिक विमर्श	सुधीष पचौरी	वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली	2000
14	उपनिवेश में स्त्री	प्रभा खेतान	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2004

15	औरत होने की सजा	अरविंद जैन	विकास पेपर बैक्स, नई दिल्ली	1996
16	औरत के हक में	तसलीमा नसरीन	वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली	2006
17	दलित चेतना साहित्य	रमणिका गुप्ता	नवलेखन प्रकाशन, बिहार	1996
18	नारी : दंश दलन दायित्व	डा. अहिल्या मिश्र	गीता प्रकाशन, हैदराबाद	2002
19	नारी चेतना और सामाजिक विधान	डा. मीनाक्षी व्यास	रोशनी पब्लिकेशन्स, कानपुर	2008
20	नारी नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री-पुरुष की परिकल्पना	डा ऊर्मिला प्रकाश	चिंता प्रकाशन, राजस्थान	1991
21	नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास	डा. गीता सोलंकी	भारत पुस्तकभंडार, नई दिल्ली	2007
22	परंपरा का मूल्यांकन	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	1981
23	बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का प्रवृतिमूलक अनुशीलन	डा. क्षितिज यादव राव धुमाल	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	2006
24	बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन	डॉ. मोहम्मद जमील अहमद	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	2006
25	बाजार के बीच- बाजार के खिलाफ (भूमंडलीकरण के प्रश्न)	प्रभा खेतान	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2008
26	बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक परिशीलन	डा. गोरखनाथ तिवारी	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	2009

27	भारत का आर्थिक भूगोल	दयाशंकर दुबे	नेशनल प्रेस, इलाहाबाद	1956
28	भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार	आशारानी व्होरा	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली	1985
29	भारतीय नारी दशा और दिशा	आशारानी व्होरा	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली	1986
30	भारतीय नारी अस्मिता की पहचान	उमा शुक्ल	इण्डियन प्रेस प्रा.लि., इलाहाबाद	2007
31	भारत में सामाजिक परिवर्तन	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर	1999
32	भारत का भूमंडलीकरण	अभय कुमार दुबे	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2003
33	भारत में राजनीतिक समस्याएँ	प्रज्ञा शर्मा	पोइन्टर पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर	2000
34	भारतीय राजनीतिक विचार	डा. इकबाल नारायण	ग्रंथ विकास, जयपुर	2009
35	भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना	राम खेलावन पाण्डेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	1967
36	भूण्डलीकरण की चुनौतियाँ	सच्चिदानंद सिन्हा	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2003
37	मन मांजने की जरूरत	अनामिका	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	2006
38	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	डा. अमरज्योति	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	1999
39	महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर	डा. शमा खान	राजा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर	2004
40	महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ	डा. शील प्रभा शर्मा	विद्या विहार,कानपुर	1987
42	मात्र देह नहीं है औरत	मृदुला सिन्हा	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	2007
42	मृदुला गर्ग के कथा साहित्य का मूल्यांकन	डा. तारा अग्रवाल	विद्या प्रकाशन, कानपुर	2004

43	मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ	डा. (श्रीमती) सुनी डा. श्रीमल	भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली	1994
44	समकालीन कहानी में युवा चेतना	ऋतु मंजरी	सार्थक प्रकाशन, नई दिल्ली	2000
45	समकालीन महिला लेखन	डा. ओम प्रकाश शर्मा	पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिशर्स, नई दिल्ली	2002
46	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास विविध प्रयोग	कुसुम शर्मा	श्याम प्रकाशन, दिल्ली	1991
47	साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों मे ंनारी	डा. सौ. मगल कप्पीकेर	विकास प्रकाशन, कानपुर	2002
48	साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना	डा. कृष्णकुमार बिस्स 'चंद'	दिनमान प्रकाशन, दिल्ली	1994
49	साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	डा. रेखा शर्मा	मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद	2000
50	साहित्य का समाज शास्त्र	डा. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली	1982
51	स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ का विभिन्न रूप	नीहार गीते	पंचशील प्रकाशन, कानपुर	1996
52	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप	डा. गणेश दास	अक्षय प्रकाशन, कानपुर	1992
53	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी पात्रों में युग चेतना	डा. वी विजयलक्ष्मी	लेखक मंच, दिल्ली	1998
54	स्त्री अस्मिता के प्रश्न	सुभाष सेतिया	कल्याण शिक्षा परिषद, नई दिल्ली	2006
55	स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार	डा. वैशाली देशपाण्डे	विकास प्रकाशन	2007
56	स्त्रीवादी विमर्श : समझ और साहित्य	क्षमा शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2002

57	स्त्री वादी साहित्य विमर्श	जगदीश चतुर्वेदी	अनामिका पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा. लि. नई दिल्ली	1998
58	स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा	अनामिका	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	2012
59	स्त्री विमर्श का लोक पक्ष	अनामिका	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2012
60	स्त्री विमर्श	डा. विनय कुमार पाठक	भावना प्रकाशन	2005
61	स्त्री विमर्श–भारतीय परिप्रेक्ष्य	डा. के.एम. मालती	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2010
62	स्त्री सशक्तीकरण के विविध आयाम	प्रधान संपादक – डा. ऋषभदेव शर्मा	गीता प्रकाशन, हैदराबाद	2004
63	हिन्दी उपन्यासों में नारी	डा. शैल रस्तोगी	वि.भू.प्रकाशन, साहिबाबाद	1977
64	हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. एम. वेंकटेश्वर	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	1993
65	हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा	रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	1968
66	हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला	डा.रोहिणी अग्रवाल	दिनमान प्रकाशन, दिल्ली	1992
67	हिन्दी उपन्यास–सामाजिक संदर्भ	डा. बालकृष्ण गुप्त	अभिलाष प्रकाशन, कानपुर	1978
68	हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति	वीना यादव	अकादमिक प्रतिभा, नई दिल्ली	2006
69	हिन्दी की महिला उपन्यासकारों में मानवीय संवेदना	डा. उषा यादव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	1999
तेलुगु साहित्य				
1	स्वातंत्र्योत्तर स्त्रील चैतन्यमु	मल्लादि. सुब्बम्म	मल्लादि पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	1992

2	स्त्रीवाद साहित्यमु	के.लक्ष्मी नारायण, रामचंद्रा रेड्डी	विशालाँध्रा पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	2008
3	स्त्रीवाद धोरणुलु	श्रीनिवासाचार्युलु	युवाभारती पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	1994
4	स्त्रील सामाजिक असमानतलु	मुप्पाल. कमला देवी	श्री कमला पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	1998
5	आँध्र देशंलो स्त्री स्थानम्: युगयुगाल स्त्री दुरावस्था – संक्षिप्त चरित्र	मुप्पाल कमला देवी	श्री कमला पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	1998
6	1980 के बाद तेलुगु स्त्रीवाद नवल	संपादक - के. लक्ष्मी नारायण, आर.चंद्रशेखर रेड्डी	लक्ष्मी ग्राफिक्स, अनंतपुरम	2008
शब्द-कोष				
1	नालंदा शब्द सागर	श्री नवल जी	आदीश कुमार जैन	1986
2	हिन्दी साहित्य कोष	संपादक – धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी	2000

पत्र – पत्रिकाएँ

क्रम सं.	पत्रिका का नाम	विषय	लेखक / लेखिका का नाम	माह / वर्ष
1.	हंस	अपनी सलीबें	सुधीश पचौरी	दिसम्बर, 1995
2.	हंस	साहित्य में स्त्री दृष्टि	चंदा सदायत	अक्तूबर, 1995
3.	हंस	आधुनिक हिन्दी कहानी, नारी चेतना, मर्द आलोचना	मृदुला गर्ग	मई, 1993

4.	हंस	छिन्नमस्ता – परंपरा, पूँजी और पहचान का आत्म संघर्ष	अरविंद जैन	जून, 1996
5.	मधुमति	साहित्य में नारी मुक्ति चेतना	सुदेश बत्रा	मई, 1995
6.	मधुमति	महिला लेखन एक विमर्श	डा. पुष्पपाल सिंह	जून, 1997
7.	पहल	स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	मृणाल पांडे	जनवरी, 2001
8.	समकालीन भारतीय साहित्य	तेलुगु साहित्य में स्त्रीवाद	वी. वीरलक्ष्मी देवी	जनवरी-फरवरी, 1987